ACKNOWLEDGEMENT

We sincerely express our gratitude to **"Shree Vitrag Sat Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar"** from where we have sourced **"Pravachan Sudha Part-04"** (Pravachans on Shree **Pravachansaar** by Pujya Shree Kanji Swami)

"Shree Vitrag Sat Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar" have taken due care, However, if you notice any inconsistency or error, you may please address your suggestions to info@vitragvani.com & jain92002@yahoo.com .

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

प्रवचन सुधा

भाग - 4

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित प्रवचनसार परमागम
पर हुए परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के गुजराती
प्रवचनों का शब्दशः हिन्दी अनुवाद
(गाथा 93 से 104 तक)

अनुवादक
देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ - भीलवाड़ा (राज.)

प्रकाशक :
वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति : 1000 प्रति
(पूज्य बहिनश्री की जन्म-जयन्ती दिनाँक 07 अगस्त 2009 के अवसर पर)

न्यौछावर राशि : 25 रुपये

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

- **वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट**
  श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
  580, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-364001
  फोन : (0278) 423207/2151005
- **गुरु गौरव**
  श्री कुन्दकुन्द कहान जैन साहित्य केन्द्र
  पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़
- **तीर्थधाम मंगलायतन**
  अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216, (महामायानगर) उ.प्र.
- **श्री खीमजीभाई गंगर (मुम्बई) :** (022) 26161591
  श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाता) : (033) 24752697
  अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (079) 25450492, 9377148963

टाइपसैटिंग :
विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़

मुद्रण व्यवस्था :
भगवती ऑफसेट
15-सी, वंशीधर मिल कम्पाउण्ड
बारडोलपुरा, अहमदाबाद

प्रकाशकीय

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत पञ्च परमागमों में प्रवचनसार शास्त्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सर्वोत्कृष्ट आगमों में से एक है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की महिमा दर्शानेवाले अनेक शिलालेख आज भी विद्यमान हैं। उनके द्वारा लिखित शास्त्र, साक्षात् गणधरदेव के वचनों जितने ही प्रमाणभूत माने जाते हैं।

महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवादिदेव श्री सीमन्धर भगवान की प्रत्यक्ष दिव्यदेशना सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने अनेक शास्त्रों की रचना की है। जिनशासन के अनेक मुख्य सिद्धान्तों के बीच इस प्रवचनसार शास्त्र में विद्यमान है। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस ग्रन्थ के प्रवचनों में फरमाते हैं – प्र + वचन + सार। प्र अर्थात् दिव्यध्वनि का जो दिव्यध्वनि – तीन लोक के नाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि, जो ओमध्वनि है – वह यहाँ कहते हैं। अत: यह प्रवचनसार ग्रन्थ है, वह भगवान श्री सीमन्धरस्वामी के दिव्य सन्देश ही हैं। तीन विभाग में विभाजित हुए इस ग्रन्थ में वस्तुस्वरूप को समझाते हुए मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है, जो मुमुक्षु जीव को महामिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये दिव्यप्रकाश समान ही है।

महामिथ्यात्व से प्रभावित इस दुषम काल में ऐसे सर्वोत्कृष्ट परमागमों के सिद्धान्त समझने की सामर्थ्य अज्ञानी जीवों में कहाँ थी? परन्तु भरतक्षेत्र के अहो भाग्य से तथा भव्यजीवों को ताड़ने के लिये इस मिथ्यात्व के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिये एक दिव्यप्रकाश हुआ! वह है कहान गुरुदेव!! पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अजोड़ रत्न हैं! जिन्होंने स्वयं की ज्ञान प्रवाह द्वारा गूढ़ परमागमों के रहस्य समझाये। जिनके घर में आगम उपलब्ध थे, उन्हें भी आगम समझने की शक्ति नहीं थी, ऐसे इस दुषम काल में पूज्य गुरुदेवश्री के परम प्रभावनायोग से घर-घर में मूलभूत परमागमों के स्वाध्याय की प्रणाली शुरु हुई। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त इत्यादि अनेकानेक वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करते हुए सिद्धान्तों का पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाश किया है।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के वचनानुसार पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अचम्भा ही हैं। पूज्य गुरुदेवश्री को श्रुत की लब्धि थी। पञ्चम काल में निरन्तर अमृत झरती

गुरुदेवश्री वाणी भगवान का विरह बुलाती है। इत्यादि अनेकानेक बहुमान सूचक वाक्य पूज्य गुरुदेवश्री की असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करते हैं।

ऐसे भवोदधि तारणहार, निस्कारण करुणाशील, अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक मूल परमागमों पर प्रवचन प्रदान करके दिव्य अमृतधारा बरसायी है। उन अनेक शास्त्रों में से एक प्रवचनसार जैसे गूढ़ परमागम पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन प्रकाशित करने का महान सौभाग्य वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट को प्राप्त हुआ है। प्रवचनसार शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्री के कुल 274 प्रवचन हुए हैं। मूल परमागम तीन अधिकारों में विभाजित है। उनमें अन्य अधिकारों के विभाग भी किये गये हैं जो प्रवचनसार शास्त्र की अनुक्रमणिका में दिये गये हैं। तद्नुसार 274 प्रवचनों को समाहित करने के लिये कुल ग्यारह भागों में प्रकाशित किया जायेगा। इस चतुर्थ भाग में कुल 29 प्रवचन हैं। जिसमें गाथा-93 से 104 तक का समावेश होता है। ये गाथाएँ द्रव्य सामान्य अधिकार के शीर्षक के अन्तर्गत ली गयी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की स्वाध्याय में सरलता रहे तदर्थ मूल सूत्रकार श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथायें, सूत्र टीकाकार आचार्य भगवान श्रीमद् भगवत् अमृतचन्द्राचार्यदेव की तत्त्वप्रदीपिका टीका तथा श्रीमद् भगवत् जयसेनाचार्यदेव की तात्पर्यवृत्ति टीका संस्कृत में दी गयी है। तदुपरान्त तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित प्रवचनसार परमागम के हरिगीत दिये गये हैं। साथ ही हिन्दी टीका भी समायोजित की गयी है।

समादरणीय सिद्धान्तनिष्ट जिनवाणी रहस्यज्ञ पूज्यभाईश्री शशिभाई के मार्गदर्शन में इससे पहले प्रवचन नवनीत भाग 1-4 प्रकाशित किये गये हैं। उसी अनुसार इन प्रवचनों के संकलन में भी पूर्ण सावधानी रखकर पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी अक्षरश: प्रकाशित रहे तथा भावों का प्रवाह भी यथावत् रहे, यह प्रयास किया गया है। पूज्य गुरुदेवश्री के सभी प्रवचन प्रकाशित हों ऐसी भाईश्री की भावना थी। तद्र्थ सभी प्रवचन कम्प्यूटर में पुस्तकाकाररूप आ जायें ऐसी भी उनकी शोध चलती थी। यह बात उनकी पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति भक्तिभावना को प्रदर्शित करती है। इसलिए इस भावना का अनुसरण करके यह कार्य किया जा रहा है। अत: इस प्रसंग पर उनके उपकार का स्मरण करके उनके चरणों में वन्दन करते हैं।

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट की नीति अनुसार इन प्रवचनों को सर्व प्रथम ओडियो कैसेट से अक्षरश: लिखा जाता है। तत्पश्चात् इन प्रवचनों का कैसेट सुनते-सुनते सम्पादन किया जाता है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कोष्ठक भी भरा जाता है। जहाँ-जहाँ व्यक्तिगत सम्बोधन किया गया है अथवा व्यक्तिगत बात की गयी है वह इसमें नहीं ली गयी है। पूर्णरूप से

प्रवचन तैयार होने के बाद एक बार अन्य मुमुक्षु द्वारा उन्हें कैसेट के साथ मिलान किया जाता है। जिससे किसी भी प्रकार की भूल न रह पाये। इसके फलस्वरूप प्रवचन सुधा, भाग-4 प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष होता है।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में जिन-जिन मुमुक्षुओं का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका भी यहाँ आभार प्रदर्शित करते हैं। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं एक बार पुनः सी.डी. प्रवचन से मिलान करने के लिये पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) का आभार व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सुन्दर टाईप सेटिंग के लिये विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा सुन्दर मुद्रण कार्य के लिये मैसर्स भगवती आफसेट का आभार व्यक्त करते हैं।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई क्षति रह गयी हो तो सर्व जिनेन्द्र भगवान से, आचार्य भगवन्तों से, जिनवाणी माता से तथा सर्व सत्पुरुषों से शुद्ध अन्तःकरणपूर्वक क्षमा चाहते हैं।

अन्ततः इन प्रवचनों की दिव्यदेशना को अन्तर में ग्रहण करके। सभी जीव शीघ्र आत्महित को प्राप्त करें - ऐसी भावना के साथ। विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण
वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

(दिनाँक 07 अगस्त 2009
पूज्य बहिनश्री की जन्म-जयन्ती)

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	गाथा नम्बर	प्रवचन नम्बर	पृष्ठ संख्या
१	९३	८६, ८७, ८८, ८९	१
२	९४	८९, ९०, ९१, ९२	६५
३	९५	९२, ९३, ९४	११८
४	९६	९५, ९६	१५९
५	९७	९६, ९७	१९९
६	९८	९७, ९८, ९९, १००	२११
७	९९	१००, १०१, १०२, १०३	२६१
८	१००	१०३, १०४, १०५	३२२
		१०६, १०७, १०८, १०९	
९	१०१	१०९, ११०, १११	४१८
१०	१०२	११२	४५२
११	१०३	११३	४७०
१२	१०४	११४	४८९

ॐ

श्री सर्वज्ञ-वीतरागाय नमः

॥ शास्त्र-स्वाध्याय का प्रारम्भिक मङ्गलाचरण ॥

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ॥ १ ॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित-सकलभूतलमलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती ! हरतु नो दुरितान् ॥ २ ॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥ ३ ॥

श्रीपरमगुरवे नमः, परम्पराचार्यश्रीगुरवे नमः

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री'प्रवचनसार' नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर -ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारमासाद्य श्रीमद्भगवद्-कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचितम्।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमौ गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥ २ ॥

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

प्रवचन सुधा

(प्रवचनसार प्रवचन)

भाग - ४

ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन

(द्रव्यसामान्य अधिकार)

गाथा - ९३

अथ ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनम्। तत्र पदार्थस्य सम्यग्द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपमुपवर्णयति -

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया।। ९३।।

अर्थः खलु द्रव्यमयो द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि।
तैस्तु पुनः पर्यायाः पर्ययमूढा हि परसमयाः।। ९३।।

इह किल यः कश्चन परिच्छिद्यमानः पदार्थः स सर्व एव विस्तारायतसामान्यसमुदायात्मना

द्रव्येणाभिनिर्वृत्तत्वाद्द्रव्यमयः। द्रव्याणि तु पुनरेकाश्रयविस्तारविशेषात्मकैर्गुणैरभिनिर्वृत्त-त्वाद्गुणात्मकानि। पर्यायास्तु पुनरायतविशेषात्मका उक्तलक्षणैर्द्रव्यैरपि गुणैरप्यभि-निर्वृत्तत्वाद्द्रव्यात्मका अपि गुणात्मका अपि। तत्रानेकद्रव्यात्मकैक्यप्रतिपत्तिनिबन्धनो द्रव्यपर्यायः। स द्विविधः, समानजातीयोऽसमानजातीयश्च। तत्र समानजातीयो नाम यथा अनेकपुद्गलात्मको द्व्यणुकस्त्र्यणुक इत्यादि; असमानजातीयो नाम यथा जीवपुद्गलात्मको देवो मनुष्य इत्यादि। गुणद्वारेणायतानैक्यप्रतिपत्तिनिबन्धनो गुणपर्यायः। सोऽपि द्विविधः, स्वभावपर्यायो विभावपर्यायश्च। तत्र स्वभावपर्यायो नाम समस्तद्रव्याणामात्मीयात्मीया-गुरुलघुगुणद्वारेण प्रतिसमयसमुदीय-मानषट्स्थानपतितवृद्धिहानिनानात्वानुभूतिः, विभावपर्यायो नाम रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिः। अथेदं दृष्टान्तेन द्रढयति - यथैव हि सर्व एव पटोऽवस्थायिना विस्तारसामान्यसमुदायेनाभिधावताऽऽयत-सामान्यसमुदायेन चाभिनिर्वर्त्यमानस्तन्मय एव, तथैव हि सर्व एव पदार्थोऽवस्थायिना विस्तारसामान्य-समुदायेनाभिधावताऽऽयतसामान्यसमुदायेन च द्रव्यनाम्नाभिनिर्वर्त्यमानो द्रव्यमय एव। यथैव च पटेऽवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायोऽभिधावन्नायतसामान्यसमुदायो वा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणेभ्यः पृथगनुपलम्भाद्गुणात्मक एव, तथैव च पदार्थेष्ववस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायोऽभिधावन्नायतसामान्य-समुदायो वा द्रव्यनामा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणेभ्यः पृथगनुपलम्भाद्गुणात्मक एव। यथैव चानेक-पटात्मको द्विपटिका त्रिपटिकेति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः, तथैव चानेकपुद्गलात्मको द्व्यणुकस्त्र्यणुक इति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः। यथैव चानेककौशेयककार्पासमयपटात्मको द्विपटिका त्रिपटिकेत्यसमान-जातीयो द्रव्यपर्यायः, तथैव चानेकजीवपुद्गलात्मको देवो मनुष्य इत्यसमानजातीयो द्रव्यपर्यायः। यथैव च क्वचित्पटे स्थूलात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण कालक्रमप्रवृत्तेन नानाविधेन परिणमनान्नानात्वप्रतिपत्ति-र्गुणात्मकः स्वभावपर्यायः, तथैव च समस्तेष्वपि द्रव्येषु सूक्ष्मात्मीयात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण प्रतिसमयसमुदीयमानषट्स्थानपतितवृद्धिहानिनानात्वानुभूतिः गुणात्मकः स्वभावपर्यायः। यथैव च पटे रूपादीनां स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिर्गुणात्मको विभावपर्यायः, तथैव च समस्तेष्वपि द्रव्येषु रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्था-वतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिर्गुणात्मको विभावपर्यायः। इयं हि सर्वपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायस्वभावप्रकाशिका पारमेश्वरी व्यवस्था साधीयसी, न पुनरितरा। यतो हि बहवोऽपि पर्यायमात्रमेवावलम्ब्य तत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणं मोहमुपगच्छन्तः परसमाय भवन्ति।।९३।।

इतः ऊर्ध्वं 'सत्तासंबद्धेदे' इत्यादिगाथासूत्रेण पूर्वं संक्षेपेण यद्व्याख्यातं सम्यग्दर्शनं तस्येदानीं विषयभूतपदार्थव्याख्यानद्वारेण त्रयोदशाधिकशतप्रमितगाथापर्यन्तं विस्तरव्याख्यानं करोति। अथवा द्वितीयपातनिका-पूर्वं यद्व्याख्यातं ज्ञानं तस्य ज्ञेयभूतपदार्थान् कथयति। तत्र त्रयोदशाधिकशतगाथासु मध्ये प्रथमतरस्तावत् 'तम्हा तस्स णमाइं' इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पञ्चत्रिंशद्गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं, तदनन्तरं 'दव्वं जीवमजीवं' इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं विशेषज्ञेयव्याख्यानं

अथानन्तरं 'सपदेसेहिं समग्गो लोगो' इत्यादिगाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना, ततश्च 'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्याद्येकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेति द्वितीयमहाधिकारे समुदायपातनिका। अथेदानीं सामान्यज्ञेयव्याख्यानमध्ये प्रथमा नमस्कारगाथा, द्वितीया द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानगाथा, तृतीया स्वसमयपरसमयनिरूपणगाथा, चतुर्थी द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयसूचनगाथा चेति पीठिकाभिधाने प्रथमस्थले स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयम्। तदनन्तरं 'सब्भावो हि सहावो' इत्यादिगाथाचतुष्टयपर्यन्तं सत्तालक्षणव्याख्यानमुख्यत्वं, तदनन्तरं 'ण भवो भंगविहीणो' इत्यादिगाथात्रयपर्यन्तमुत्पादव्ययध्रौव्य-लक्षणकथनमुख्यता, ततश्च 'पाडुब्भवदि य अण्णो' इत्यादिगाथाद्वयेन द्रव्यपर्यायगुणपर्यायनिरूपणमुख्यता। अथानन्तरं 'ण हवदि जदि सद्दव्वं' इत्यादिगाथाचतुष्टयेन सत्ताद्रव्ययोरभेदविषये युक्तिं कथयति, तदनन्तरं 'जो खलु दव्वसहावो' इत्यादि सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिकथनेन प्रथमगाथा, द्रव्येण सह गुणपर्याययोरभेदमुख्यत्वेन 'णत्थि गुणो त्ति व कोई' इत्यादि द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयं, तदनन्तं द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन सदुत्पादो भवति, पर्यायार्थिकनयेनासदित्यादिकथनरूपेण 'एवंविहं' इतिप्रभृति गाथाचतुष्टयं, ततश्च 'अत्थि त्ति य' इत्याद्येकसूत्रेण नयसप्तभङ्गीव्याख्यानमिति समुदायेन चतुर्विंशति गाथाभिरष्टभिः स्थलैर्द्रव्यनिर्णयं करोति। तद्यथा-अथ सम्यक्त्वं कथयति -

तम्हा तस्स णमाइं किच्चा णिच्चं पि तम्मणो होज्ज।
वोच्छामि संगहादो परमट्ठविणिच्छयाधिगमं।। १०।।

तम्हा तस्स णमाइं किच्चा यस्मात्सम्यक्त्वं विना श्रमणो न भवति तस्मात्कारणात्तस्य सम्यक्चारित्रयुक्तस्य पूर्वोक्ततपोधनस्य नमस्यां नमस्क्रियां नमस्कारं कृत्वा **णिच्चं पि तम्मणो होज्ज** नित्यमपि तद्गतमना भूत्वा **वोच्छामि** वक्ष्याम्यहं कर्ता **संगहादो** संग्रहात्संक्षेपात् सकाशात्। किम्। **परमट्ठविणिच्छयाधिगमं** परमार्थविनिश्चयाधिगमं सम्यक्त्वमिति। परमार्थविनिश्चयाधिगमशब्देन सम्यक्त्वं कथं भण्यत इति चेत् - परमोऽर्थः परमार्थः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा, परमार्थस्य विशेषेण संशयादिरहितत्वेन निश्चयः परमार्थविनिश्चयरूपोऽधिगमः शङ्काद्यष्टदोषरहितश्च यः परमार्थतोऽर्थावबोधो यस्मात्सम्यक्त्वात्तत् परमार्थविनिंश्चयाधिगमम्। अथवा परमार्थ-विनिश्चयोऽनेकान्तात्मकपदार्थसमूहस्तस्याधिगमो यस्मादिति।।१०।। अथ पदार्थस्य द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं निरूपयति - **अत्थो खलु दव्वमओ** अर्थो ज्ञानविषयभूतः पदार्थः खलु स्फुटं द्रव्यमयो भवति। कस्मात्। तिर्यक्सामान्योर्द्ध्वतासामान्यलक्षणेन द्रव्येण निष्पन्नत्वात्। तिर्यक्सामान्योर्द्ध्वतासामान्यलक्षणं कथ्यते-एककाले नानाव्यक्ति-गतोऽन्वयस्तिर्यक्सामान्यं भण्यते। तत्र दृष्टान्तो यथा-नानासिद्धजीवेषु सिद्धोऽयं सिद्धोऽय-मित्यनुगताकारः सिद्धजातिप्रत्ययः। नानाकालेष्वेकव्यक्तिगतोन्वय ऊर्ध्वतासामान्यं भण्यते। तत्र दृष्टान्तः यथा-य एव केवलज्ञानोत्पत्तिक्षणे मुक्तात्मा द्वितीयादिक्षणेष्वपि स एवेति प्रतीतिः। अथवा नानागोशरीरेषु गौरयं गौरयमिति गोजातिप्रतीतिस्तिर्यक्सामान्यम्। यथैव चैकस्मिन् पुरुषे बालकुमाराद्यवस्थासु स एवायं देवदत्त इति प्रत्यय ऊर्ध्वतासामान्यम्। **दव्वाणि गुणप्पगाणि**

भणिदाणि द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि। अन्वयिनो गुणा अथवा सहभुवो गुणा इति गुणलक्षणम्। यथा अनन्तज्ञान-सुखादिविशेषगुणेभ्यस्तथैवागुरुलघुकादिसामान्यगुणेभ्यश्चाभिन्नत्वद्गुणात्मकं भवति सिद्धजीवद्रव्यं, तथव स्वकीयस्वकीयविशेषसामान्यगुणेभ्यः सकाशादभिन्नत्वात् सर्वद्रव्याणि गुणात्मकानि भवन्ति। **तेहिं पुणो पज्जाया** तैः पूर्वोक्तलक्षणैर्द्रव्यैर्गुणैश्च पर्याया भवन्ति। व्यतिरेकिणः पर्याया अथवा क्रमभुवः पर्याया इति पर्यायलक्षणम्। यथैकस्मिन् मुक्तात्मद्रव्ये किंचिदूनचरम-शरीराकारगतिमार्गणाविलक्षणः सिद्धगतिपर्यायः तथाऽगुरुलघुकगुणषड्वृद्धिहानिरूपाः साधारण-स्वभावगुणपर्यायाश्च, तथा सर्वद्रव्येषु स्वभावद्रव्यपर्यायाः स्वजातीयविजातीयविभावद्रव्यपर्यायाश्च, तथैव स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च 'जेसिं अत्थि सहाओ' इत्यादिगाथायां, तथैव 'भावा जीवादीया' इत्यादिगाथायां **च पञ्चास्तिकाये** पूर्वं कथितक्रमेण यथासंभवं ज्ञातव्याः। **पज्जयमूढा हि परसमया** यस्मादित्थंभूतद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानमूढा अथवा नारकादिपर्यायरूपो न भवाम्यहमिति भेदविज्ञानमूढाश्च परसमया मिथ्यादृष्टयो भवन्तीति। तस्मादियं पारमेश्वरी द्रव्यगुणपर्यायव्याख्या समीचीना भद्रा भवतीत्यभिप्रायः।।९३।।

अब, ज्ञेयतत्त्व का प्रज्ञापन करते हैं, अर्थात् ज्ञेयतत्त्व बतलाते हैं। उसमें (प्रथम) पदार्थ का सम्यक् (यथार्थ) द्रव्यगुणपर्यायस्वरूप वर्णन करते हैं :-

अर्थ द्रव्यस्वरूप है, अरु गुणात्मक वह द्रव्य हैं।
पर्यायें, गुण अरु द्रव्य की, पर्यायमूढ़ परसमय हैं॥

अन्वयार्थ - [**अर्थः खलु**] पदार्थ [**द्रव्यमयः**] द्रव्यस्वरूप है; [**द्रव्याणि**] द्रव्य [**गुणात्मकानि**] गुणात्मक [**भणितानि**] कहे गये हैं; [**तैः तु पुनः**] और द्रव्य तथा गुणों से [**पर्यायाः**] पर्यायें होती हैं। [**पर्ययमूढ़ाः हि**] पर्यायमूढ़ जीव [**परसमयाः**] परसमय (अर्थात् मिथ्यादृष्टि) है।

टीका - इस विश्व में जो कोई जानने में आनेवाला पदार्थ है, वह समस्त ही विस्तारसामान्यसमुदायात्मक[१] और आयतसामान्यसमुदायात्मक[२] द्रव्य से रचित होने से

---

१. विस्तारसामान्य समुदाय = विस्तारसामान्यरूप समुदाय। विस्तार का अर्थ है चौड़ाई। द्रव्य की चौड़ाई की अपेक्षा के (एक साथ रहनेवाले, सहभावी) भेदों को (विस्तारविशेषों को) गुण कहा जाता है; जैसे, ज्ञान, दर्शन, चारित्र इत्यादि जीवद्रव्य के विस्तारविशेष अर्थात् गुण हैं। उन विस्तारविशेषों में रहनेवाले विशेषत्व को गौण करें तो इन सब में एक आत्मस्वरूप सामान्यत्व भासित होता है। यह विस्तारसामान्य (अथवा विस्तारसामान्यसमुदाय) वह द्रव्य है।

२. आयतसामान्य समुदाय = आयतसामान्यरूप समुदाय। आयत का अर्थ है लम्बाई अर्थात् कालापेक्षितप्रवाह। द्रव्य के लम्बाई की अपेक्षा के (एक के बाद एक प्रवर्तमान, क्रमभावी, कालापेक्षित) भेदों को (आयत विशेषों को) पर्याय कहा जाता है। उन क्रमभावी पर्यायों में प्रवर्तमान विशेषत्व को गौण करें तो एक द्रव्यत्वरूप सामान्यत्व ही भासित होता है। यह आयतसामान्य (अथवा आयतसामान्य समुदाय) वह द्रव्य है।

द्रव्यमय (द्रव्यस्वरूप) है और द्रव्य[१] एक जिनका आश्रय है – ऐसे विस्तारविशेषस्वरूप गुणों से रचित (गुणों से बने हुए) होने से गुणात्मक है और पर्यायें जो कि आयतविशेषस्वरूप हैं, वे जिनके लक्षण (ऊपर) कहे गये हैं – ऐसे द्रव्यों से तथा गुणों से रचित होने से द्रव्यात्मक भी हैं, गुणात्मक भी हैं। उसमें, अनेकद्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति[२] की कारणभूत द्रव्यपर्याय है। वह दो प्रकार है। (१) समानजातीय और (२) असमानजातीय। उसमें (१) समानजातीय वह है – जैसे कि अनेकपुद्गलात्मक द्विअणुक[३], त्रिअणुक इत्यादि; (२) असमानजातीय वह है – जैसे कि जीवपुद्गलात्मक देव, मनुष्य इत्यादि। गुण द्वारा आयत की अनेकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत गुणपर्याय है। वह भी दो प्रकार है। (१) स्वभावपर्याय और (२) विभावपर्याय। उसमें समस्त द्रव्यों के अपने-अपने अगुरुलघुगुण द्वारा प्रति समय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानि-वृद्धिरूप अनेकत्व की अनुभूति, वह स्वभावपर्याय है; (२) रूपादि के या ज्ञानादि के स्व-पर[४] के कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर[५] अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति[६] विभावपर्याय है।

अब, यह (पूर्वोक्त कथन) दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं –

जैसे, सम्पूर्ण पट[७], अवस्थायी (स्थिर) विस्तारसामान्यसमुदाय से और दौड़ते (बहते, प्रवाहरूप) हुए ऐसे आयतसामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ तन्मय ही है, उसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ 'द्रव्य' नामक अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय से और दौड़ते हुए आयतसामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ द्रव्यमय ही है। और जैसे पट में, अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय या दौड़ते हुए आयतसामान्यसमुदाय गुणों से रचित होता हुआ गुणों से पृथक् अप्राप्त होने से गुणात्मक ही है, उसी प्रकार पदार्थों में, अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय या दौड़ता हुआ आयतसामान्यसमुदाय – जिसका नाम 'द्रव्य' है, वह गुणों से रचित होता हुआ गुणों से पृथक् अप्राप्त होने से गुणात्मक ही है और जैसे

---

१. अनन्तगुणों का आश्रय एक द्रव्य है।
२. प्रतिपत्ति = प्राप्ति; ज्ञान; स्वीकार।
३. द्विअणुक = दो अणुओं से बना हुआ स्कन्ध।
४. स्व उपादान और पर निमित्त है।
५. पूर्वोत्तर = पहले की और बाद की।
६. आपत्ति = आपतित, आपड़ना।
७. पट = वस्त्र।

अनेकपटात्मक (एक से अधिक वस्त्रों से निर्मित) द्विपटिक[1], त्रिपटिक ऐसे समानजातीय द्रव्यपर्याय है, उसी प्रकार अनेक पुद्‌गलात्मक द्वि-अणुक, त्रिअणुक ऐसी समानजातीय द्रव्यपर्याय है और जैसे अनेक रेशमी और सूती पटों के बने हुए द्विपटिक, त्रिपटिक ऐसी असमानजातीय द्रव्यपर्याय है, उसी प्रकार अनेक जीव पुद्‌गलात्मक देव, मनुष्य ऐसी असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। और जैसे कभी पट में अपने स्थूल अगुरुलघुगुण द्वारा कालक्रम से प्रवर्तमान अनेक प्रकाररूप से परिणमित होने के कारण अनेकत्व की प्रतिपत्ति गुणात्मक स्वभावपर्याय है, उसी प्रकार समस्त द्रव्यों में अपने-अपने सूक्ष्म अगुरुलघुगुण द्वारा प्रति समय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप अनेकत्व की अनुभूति वह गुणात्मक स्वभावपर्याय है; और जैसे पट में, रूपादिक के स्व-पर के कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति वह गुणात्मक विभावपर्याय है, उसी प्रकार समस्त द्रव्यों में, रूपादि के या ज्ञानादि के स्व-पर के कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति वह गुणात्मक विभावपर्याय है।

वास्तव में यह सर्व पदार्थों के द्रव्यगुणपर्यायस्वभाव की प्रकाशक पारमेश्वरी[2] व्यवस्था भली-उत्तम-पूर्ण-योग्य है, दूसरी कोई नहीं; क्योंकि बहुत से (जीव) पर्यायमात्र का ही अवलम्बन करके, तत्त्व की अप्रतिपत्ति जिसका लक्षण है - ऐसे मोह को प्राप्त होते हुए परसमय होते हैं।

भावार्थ : पदार्थ द्रव्यस्वरूप है। द्रव्य अनन्तगुणमय है। द्रव्यों और गुणों से पर्यायें होती हैं। पर्यायों के दो प्रकार हैं - १. द्रव्यपर्याय, २. गुणपर्याय। इनमें से द्रव्यपर्याय के दो भेद हैं - १. समानजातीय। जैसे, द्वि-अणुक, त्रि-अणुक इत्यादि स्कन्ध; २. असमानजातीय। जैसे, मनुष्य, देव इत्यादि। गुणपर्याय के भी दो भेद हैं - १. स्वभावपर्याय। जैसे सिद्ध के गुणपर्याय। २. विभावपर्याय - जैसे स्वपरहेतुक मतिज्ञानपर्याय।

१. द्विपटिक = दो थानों को जोड़कर (सींकर) बनाया गया एक वस्त्र [यदि दोनों थान एक ही जाति के हों तो समानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाता है और यदि दो थान भिन्न जाति के हों (जैसे एक रेशमी और दूसरा सूती) तो असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाता है।]

२. परमेश्वर की कही हुई।

ऐसा जिनेन्द्र भगवान की वाणी से कथित सर्व पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप ही यथार्थ है। जो जीव, द्रव्य-गुण को न जानते हुए मात्र पर्याय का ही आलम्बन लेते हैं, वे निज स्वभाव को न जानते हुए परसमय हैं॥ ९३॥

प्रवचन नं. ८६ **दिनाङ्क २३ दिसम्बर १९७९**

अब, यह ज्ञेय अधिकार आता है। यह ज्ञेय अधिकार, दर्शन का अधिकार है। पहला 'ज्ञान अधिकार' है। यह दूसरा समकित अधिकार है। तीसरा चरणानुयोग का अधिकार है। आहा...हा...!

अब, ज्ञेयतत्त्व का प्रज्ञापन करते हैं, अर्थात् ज्ञेयतत्त्व बतलाते हैं। आहा...हा...! पहले यह आ गया है कि आत्मा, ज्ञानप्रमाण है; ज्ञान, ज्ञेयप्रमाण है; ज्ञेय, लोकालोकप्रमाण है। आ गया है न? पहले शुरुआत में (आ गया है।) आत्मा, ज्ञानप्रमाण है; ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है; ज्ञेय, लोकालोकप्रमाण है। आहा...हा...! ऐसी बात पहले शुरुआत में कर गये हैं। यह भी बापा, अलौकिक बातें हैं। भाई! भले ही संक्षेप रुचि हो, विस्तार (न हो) तो भी उसकी रुचि में तो पूर्ण जानना और केवलज्ञान प्रगट करना – यही होता है। आहा...हा...!

इस संक्षेपरुचि का अर्थ (संवत्) ८० के साल में किया था। कितने वर्ष हुए? पचपन (वर्ष हुए)। 'मूलचन्दजी' वहाँ बैठे थे। अर्थ तो ऐसा किया था कि देखो! सब ऐसा मानते हैं कि हम सम्प्रदाय में हैं, हमें भले ही विशेष ज्ञान नहीं है परन्तु सम्प्रदाय की दृष्टि, वह सच्ची / सम्यक् है, उसे संक्षेपरुचि कहते हैं। ऐसा नहीं है। (संवत्) ८० की बात है। ८० के साल! संवत् १९८०! पचपन वर्ष पहले! सभा बड़ी (थी) हजारों लोग थे। 'मूलचन्दजी' सुनते थे, उन्हें रुचिकर नहीं हुआ। ऐसा कहा कि 'सम्प्रदाय में हमें थोड़ा ज्ञान है, इसलिए भी हम तो बराबर समकिती हैं, संक्षेपरुचिवाले हैं – ऐसा नहीं है।' संक्षेपरुचि का अर्थ विस्तृत ज्ञान नहीं, परन्तु जो वास्तविक तत्त्व है, उसकी दृष्टि, उसकी रुचि और उसका ज्ञान है, उसे संक्षेपरुचि कहते हैं। वे लोग संक्षेपरुचि का ऐसा अर्थ करते थे कि 'विशेष जानपना न हो, परन्तु भगवान ने कहा, वह सत्य है; अपने को सच्चा सम्प्रदाय मिला है, अपने को गणधर जैसा समकित और ज्ञान मिला है; अब, अपने को चारित्र करना बाकी है' – ऐसा कहते थे। 'मूलचन्दजी' थे, वे ऐसा कहते थे।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञेयतत्त्व का प्रज्ञापन (करते हैं।) अर्थात् बतलाते हैं। **उसमें प्रथम पदार्थ का सम्यक् (यथार्थ)...** अर्थात् वस्तु किस प्रकार है ? (उसका) **द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप वर्णन करते हैं....** देखा ? यह द्रव्य-गुण और पर्याय आये। पहले से शब्द रखा है - द्रव्य-गुण-पर्याय।

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया।। ९३।।

अर्थ द्रव्यस्वरूप है, अरु गुणात्मक वह द्रव्य हैं।
पर्यायें, गुण अरु द्रव्य की, पर्यायमूढ़ परसमय हैं॥

अर्थ (अर्थात्) पदार्थ। आहा...हा...! पहले एक अन्वयार्थ लेते हैं। पहली गाथा है न ? अन्वयार्थ है न ? **(अर्थः खलु)** अर्थात् पदार्थ **(द्रव्यमयः)** द्रव्यस्वरूप है; पदार्थ द्रव्यस्वरूप है। द्रव्य, गुणस्वरूप है। आहा...हा...! वह तो अभेद एक ही है - ऐसा कहा। द्रव्यस्वरूप है, वह गुणस्वरूप ही है। आहा...हा...! ऐसा कहा गया है। भगवान की वाणी में ऐसा आया है; और फिर द्रव्य और गुणों से (अर्थात्) जो द्रव्य है, उस स्वरूप है और वह द्रव्य गुणस्वरूप है। उन द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं। आहा...हा...! **(पर्यायमूढ़ाः)** पर्यायमूढ़ जीव। अर्थ में समानजातीय और असमानजातीय - ऐसा सब लिया है। स्वभाव-विभावपर्याय - ऐसा लिया है। लोगों को समझ में आये - ऐसी शैली ली है। द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई पर्याय है। पर्यायमूढ़ है, उसकी दृष्टि तो परद्रव्य पर जाती है। समान-असमानजातीय पर जाती है, वह पर्यायमूढ़ है। आहा...हा...! अर्थात् वह परसमय मिथ्यादृष्टि है।

टीका : इस विश्व में... पहले विश्व लिख। बहुत पदार्थवाला तत्त्व, उसे यहाँ विश्व कहा है। बहुत पदार्थों से भरा है, उसे यहाँ विश्व कहते हैं। **इस विश्व में जो कोई जानने में आनेवाला पदार्थ है...** जो कोई जानने में आनेवाला विश्व में पदार्थ है, **वह समस्त ही...** आ...हा...हा...! वह समस्त पदार्थ **विस्तारसामान्यसमुदायात्मक...** नीचे अर्थ किया है। विस्तारसामान्यसमुदाय = विस्तारसामान्यरूप समुदाय; विस्तार, अर्थात् चौड़ाई; द्रव्य की चौड़ाई की अपेक्षा के (- एक साथ रहनेवाले सहभावी) भेदों, अर्थात्

गुण। चौड़ाई, अर्थात् ऐसे तिरछे। भगवान आत्मा या प्रत्येक वस्तु में अनन्त गुण हैं, वे ऐसे तिरछे हैं और पर्याय है, वह ऐसी - आयत है। विस्तार, अर्थात् चौड़ाई - द्रव्य की चौड़ाई। द्रव्य की चौड़ाई अपेक्षा के (एक साथ रहनेवाले सहभावी) भेद...' द्रव्य के साथ रहनेवाले - ऐसा नहीं; द्रव्य की चौड़ाई अपेक्षा से... आहा...! एक साथ रहनेवाले सहभावी भेद; ये गुण हैं, वे एक साथ रहते हैं। आहा...हा...! अनन्त! ऐसे सहभावी भेदों को (विस्तार विशेषों को) गुण कहा जाता है...! आ...हा...! चौड़ाई... चौड़ाई...! आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि ऐसे तिरछे हैं। पर्याय है, वह ऐसे काल अपेक्षा से आयत - ऐसी लम्बी है। एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक...।

यहाँ कहते हैं 'ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि जीवद्रव्य के विस्तारविशेष...' ऐसे तिरछे! 'गुण' हैं, उस विस्तारविशेषों में रहनेवाले विशेषपने को गौण करें; द्रव्य के विशेष गुण हैं - भेद, उन्हें गौण करें तो उन सब में एक आत्मपनारूप सामान्यपना भासित होता है। उन अनन्त गुणों का जो सामान्य और विशेषपना है, वह अकेला द्रव्य है, अकेला द्रव्य भासित होता है। आहा...हा...! विस्तारसामान्य चौड़ाई से रहनेवाले गुण (हैं), उन गुणों का एकरूप जो है, वह द्रव्य है। आहा...हा...! 'एक आत्मपनारूप सामान्य भासित होता है। यह विस्तारसामान्य (अथवा विस्तारसामान्यसमुदाय), वह द्रव्य है।' वह वस्तु है। क्या कहा, समझ में आया?

वस्तु में गुण है, वे विशेष हैं। द्रव्य, सामान्य है, उसमें गुण, विशेष है। उन अनन्त गुणों का जो विशेषपना है, यदि उनका विशेषपना लक्ष्य में नहीं लो तो उन अनन्त गुण का रूप, वह पूरा द्रव्य है। विस्तारसामान्य का रूप, वह पदार्थ है। ऐसी भाषा! द्रव्य में गुण ऐसे (तिरछे) रहते हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त (गुण हैं), तथापि वे क्रम-क्रम से नहीं रहते हैं, सहभावी गुण अक्रम से साथ रहते हैं। द्रव्य के साथ रहते हैं - ऐसा नहीं, क्योंकि द्रव्य के साथ तो पर्याय भी रहती है, परन्तु अनन्त गुण एक साथ ऐसे रहते हैं। आहा...हा...! ऐसे आत्मपनेरूप सामान्यपना भासित होता है। यह विस्तारसामान्य, वह द्रव्य है।

और आयतसामान्यसमुदायात्मक द्रव्य से रचित... दूसरी अपेक्षा से बात (की है) है तो द्रव्य वही का वही। विस्तारसामान्य का द्रव्य अलग और आयतसामान्य का द्रव्य अलग - ऐसा कुछ नहीं है। गुणों का ऐसा विस्तार है, वह द्रव्य का विशेषण होने से - ऐसा कहा जाता है परन्तु ऐसा विशेषण लक्षण निकाल दो तो वे सामान्यविस्तार गुण, वह द्रव्य है। समझ में आया कुछ? **और आयतसामान्यसमुदायात्मक...** आयतसामान्यसमुदाय = आयतसामान्यरूप समुदाय। आयत, अर्थात् लम्बाई। ऐसी (लम्बाई में) पर्याय है, वह एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक... ऐसी होती है। गुण हैं, वे एक साथ अक्रम हैं; पर्याय क्रम है। गुण सहभावी है, पर्याय क्रमभावी है। आहा...हा...!

पदार्थ के अनेक गुण हैं, वे सब सहभावी - साथ ही हैं और पर्याय साथ नहीं है। पर्याय एक के बाद एक... एक के बाद एक - ऐसी लम्बाई में अनन्त पर्यायें हैं। आहा...हा...! काल अपेक्षित प्रवाह। द्रव्य का लम्बाई अपेक्षा का (एक के बाद एक प्रवर्तते, क्रमभावी, काल अपेक्षित) भेदों को (आयतविशेषों को) पर्याय कहा जाता है। एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक - ऐसी क्रमबद्ध-क्रमभावी (पर्यायें हैं।) आहा...हा...! ऐसा तो अन्दर कहा न? क्रमभावी... क्रमभावी। क्रम से होनेवाली - यह क्रमबद्ध आ गया। आहा...हा...!

वहाँ (समयसार में) क्रमबद्ध विशेष कहने के लिये 'क्रमनियमित' डाला है। क्रम से तो होती है, परन्तु निश्चित; जिस समय जो होना है, वह होती है; इसलिए सर्वविशुद्धि (ज्ञान अधिकार में) 'क्रमनियमित' (शब्द) रखा है। वस्तु क्रमबद्ध है, उसे यहाँ 'क्रमभावी पर्याय' कहा है। आहा...हा...! पुराने लोगों को भी कठिन पड़ता है! तब विचारै अत्यन्त नये (हों) सम्प्रदाय की दृष्टिवाले हों, उन्हें तो (ऐसा लगता है कि) यह क्या कहते हैं? इसमें कुछ भी सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना (ऐसा कुछ तो आता ही नहीं) सच्ची सामायिक कैसे होती है, उसकी बात चलती है। अभी तो यह सब खोटी सामायिक, खोटे प्रौषध और खोटे प्रतिक्रमण (होते हैं) क्योंकि अभी जहाँ मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण नहीं है, वहाँ अव्रत, प्रमाद और कषाय का प्रतिक्रमण कहाँ से आया? आहा...हा...! (यहाँ

पर) मिथ्यात्व के प्रतिक्रमण की व्याख्या चलती है और सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान हो, उसकी बात है।

यहाँ कहते हैं कि 'उन क्रमभावी पर्यायों में प्रवर्तमान विशेषत्व को गौण करें तो... अर्थात्? पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... ऐसा विशेष को गौण करें तो वे तीनों काल की पर्यायें, वह द्रव्य है। विस्तारसामान्य भी द्रव्य है और ऐसी लम्बाई से (कहें तो) वह भी द्रव्य ही है। विस्तारसामान्य का द्रव्य अलग और आयतसामान्य का द्रव्य अलग (है) – ऐसा नहीं है। कुछ समझ में आया इसमें? इस प्रकार एक साथ अनन्त गुण हैं, वे भी विस्तारसामान्य (रूप) द्रव्य है और उसकी द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई जो त्रिकाली पर्याय है, उस त्रिकाली पर्याय का समुदाय, यह त्रिकाली विशेष निकाल दो तो (आयत) समुदाय द्रव्य रहता है। जैसे, विस्तारसामान्य का द्रव्य है, इसी प्रकार आयतसामान्यसमुदाय का वही द्रव्य है। विस्तारसामान्य का द्रव्य अलग और आयतसामान्य का द्रव्य अलग है – ऐसा नहीं है। यह दो प्रकार से समझाया है। इसके दो अलग-अलग द्रव्य नहीं है। विस्तारसामान्य का द्रव्य तिरछा है वह, और लम्बाईसामान्य का द्रव्य ऐसा लम्बाया है – ऐसे दो अलग (द्रव्य) हैं – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अभी तो द्रव्य को, गुण को और पर्याय को समझने में यह बात है। अरे...! क्या हो?

आहा...हा...! देखो न! छोटी-छोटी उम्र में विचारे असाध्य हो जाते हैं। आहा...हा...! बापू! (यह तो) साध्य होने की बातें हैं। मिथ्यादृष्टि है, वह असाध्य है। यहाँ तो बाह्य से असाध्य है। आहा...! जिसे अभी इस द्रव्य-गुण-पर्याय की वास्तविकता का पता नहीं है, वह असाध्य प्राणी है। आहा...हा...! वह मिथ्यात्व में असाध्य हो गया है, उसे साध्य नहीं है कि यह द्रव्य है, वह विस्तारसामान्य गुणों का समुदाय, वह द्रव्य है। त्रिकाली लम्बाई की पर्यायें – एक गुण की एक समय की पर्याय और ऐसी त्रिकाली पर्यायें, वह पूरा गुण है – ऐसे अनन्त गुणों की पर्यायें और उन अनन्त पर्याय के समुदायरूप विशेष निकाल दो तो जैसा विस्तारसामान्य का द्रव्य है, वही स्वयं आयतसामान्य का द्रव्य है। अब ऐसी भाषा! विस्तारसामान्य और (आयतसामान्य)! लाडनूँ में कहीं सुनी थी? आहा...हा...! अरे...रे...! ऐसी बात है बापा!

आत्मा कहो, या परमाणु कहो या छह द्रव्य में से कोई भी द्रव्य हो; द्रव्य ही उसे कहते हैं कि ऐसे विस्तार-तिरछे रहनेवाले गुणों का पिण्ड, वह द्रव्य है और पर्याय का ऐसा (लम्बाईरूप समुदाय) वह द्रव्य है। द्रव्य, अर्थात् यह सामान्य का द्रव्य दूसरा और विस्तार का द्रव्य (दूसरा है) - ऐसा नहीं है; द्रव्य तो वह का वही है। आहा...हा...! लम्बाई की अपेक्षा से एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक... पर्याय (होती है) क्योंकि अनन्त पर्यायों का पिण्ड, वह गुण है और अनन्त गुणों का एकरूप विस्तार वह द्रव्य है। आहा...! वह तो वह का वही हुआ। आहा...! विस्तारसामान्य से कहो तो भी द्रव्य और आयत - लम्बाई से पूर्ण पर्याय, वह भी द्रव्य। पर्याय का विशेष भाग को और अनन्त को - ऐसा निकाल दो तो उन अनन्त पर्याय का समुदाय, वही द्रव्य है। आहा...हा...! समझ में आता है कुछ? सूक्ष्म बात है बापू!

वीतराग जिनेश्वरदेव का मार्ग ऐसा अलौकिक है! और उसका फल भी आहा...हा...! उसका फल अनन्त आनन्द!! जिसके फल में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है! आहा...हा...! जिसे अन्दर में ऐसा द्रव्य-गुण-पर्याय निर्विकल्परूप से बैठा... आहा...हा...! यह विस्तारसामान्य और आयतसमुदाय का द्रव्य तो वह का वही (है ऐसा) निर्णय करनेवाली पर्याय है। वर्तमान प्रगट पर्याय! भूत-भविष्य की पर्याय तो अन्दर में है और यह प्रगट पर्याय है, वह निर्णय करती है। आहा...हा...! कहते हैं कि इन समस्त प्रगट और (अप्रगट) पर्याय का पिण्ड, (वह) द्रव्य है - ऐसा पर्याय निर्णय करती है, प्रगट पर्याय यह निर्णय करती है। आहा...हा...! तथापि ४९ वीं (गाथा में) कहा है कि पर्याय को द्रव्य स्पर्शता नहीं है, छूता नहीं है (और) वह पर्याय, द्रव्य को स्पर्शती - छूटती नहीं है। आहा...हा...हा...! यह तो वर्तमान की अपेक्षा से कहा है। वरना त्रिकाल पर्याय का समुदाय, वह तो द्रव्य है। त्रिकाल को, विशेष को, पर्याय को - ऐसे भेद को लक्ष्य में से निकाल दो तो त्रिकाल की लम्बाईरूप पर्याय, वह द्रव्य है। आहा...हा...!

आयतसामान्यसमुदायात्मक द्रव्य से रचित होने से द्रव्यमय (द्रव्यस्वरूप) है। यह अभी अकेले द्रव्य की व्याख्या की। आहा...हा...! अब, इसके गुणों की व्याख्या करेंगे।

प्रवचन नं. ८७ **दिनाङ्क २८ मई १९७९**

प्रवचनसार, (ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन की) पहली गाथा – ९३ है। भगवान के ज्ञान में जो छह द्रव्य ज्ञात हुए हैं, उनमें द्रव्य किसे कहते हैं? गुण किसे कहते हैं? और पर्याय किसे कहते हैं? – इस ज्ञान की विशेषता जानने के लिए स्व के लक्ष्य से उसका ज्ञान किया जाता है।

यहाँ (स्वाध्याय मन्दिर में) 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि' – ऐसा लिखा था न? 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि!' एक बार 'थान' के (एक भाई) आये थे, (उन्हें ऐसा लगा कि) यह 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि' अर्थात्? अभी जैन में भी, द्रव्य किसे कहते, गुण किसे कहते हैं और पर्याय (किसे कहते हैं)? – इसका भी पता नहीं है। वे कहने लगे 'यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि' (अर्थात्) यहाँ पैसेवाले करोड़पति बहुत आते हैं, यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि?' (हमने) कहा भाई! इस द्रव्य-पैसे का यहाँ क्या काम है?

द्रव्य तो यह आत्मा है। उसे यहाँ (द्रव्य) कहा है। द्रव्य किसे कहते हैं? कि विस्तारसामान्यसमुदाय का पिण्ड, उसे द्रव्य कहते हैं। यह भाषा! अर्थात्? जो यह द्रव्य-वस्तु आत्मा है, उसमें ज्ञान, दर्शन (आदि अनन्त गुणों का) ऐसा विस्तार है। विस्तारसामान्यसमुदाय को द्रव्य कहते हैं। आत्मा में ऐसे तिरछे अनन्त गुण जो हैं, वे अनन्त हैं परन्तु ऐसे (तिरछे) हैं। पर्याय ऐसे नहीं हैं, पर्याय है,वह एक के बाद एक... एक के बाद एक – ऐसे कालक्रम से होती है। पर्याय क्रम से (होती) है और गुण अक्रम से है। अत: द्रव्य किसे कहते हैं? आत्मद्रव्य भी किसे कहते हैं? कि विस्तारसामान्य (स्वरूप) जो ज्ञान, दर्शन (आदि) अनन्त गुण हैं, वे ऐसे विस्तार – ऐसे तिरछे सामान्य हैं। अनन्त गुण का सामान्य एकरूप है, उसे द्रव्य कहते हें। आहा...हा...!

दूसरी अपेक्षा से द्रव्य किसे कहते हैं? कि जो यह द्रव्य है, उसकी तीनों काल की आयत-पर्यायें हैं; गुण हैं, वे ऐसे सहभावी एक साथ अक्रम से है (और) पर्याय, क्रमभावी है। अनन्त गुणों की वे क्रमभावी पर्यायें एक समय में अनन्त है – ऐसे तीनों काल की पर्यायों का समुदाय, वह द्रव्य है। यह दोनों एक ही बात है। अनन्त गुणों का तिरछा

विस्तारसामान्यसमुदाय, वह द्रव्य या त्रिकाली अनादि-अनन्त पर्यायें हैं, उनका समुदाय, वह द्रव्य - (यह) सब एक ही वस्तु है। कुछ समझ में आता है? ऐसा सुना भी नहीं होगा! सामायिक करो, प्रौषध करो और प्रतिक्रमण करो! मर गया कर-करके अनन्त बार! तत्त्व का पता नहीं है। द्रव्य किसे कहना? गुण किसे कहना? पर्याय किसे कहना? आहा...हा...! यह द्रव्य की व्याख्या अपने आ गयी है। अब, आज गुण की व्याख्या है।

द्रव्य उसे कहते हैं - परमाणु हो या छहों द्रव्यों में से कोई द्रव्य (भी) द्रव्य (हो), आत्मा हो या धर्मास्ति या अधर्मास्ति, आकाश (या) काल हो। भगवान ने जातिरूप से छह द्रव्य देखे हैं, संख्यारूप से अनन्त हैं। परन्तु उस अनन्त द्रव्यों में उसे द्रव्य क्यों कहना? कि उसमें अनन्त गुण ऐसे तिरछा विस्तारसामान्य अक्रम से एक साथ रहते हैं, इसलिए उनके समुदाय को द्रव्य - वस्तु कहते हैं और आयत-पर्याय ऐसी तीनों काल की है। इन तीनों काल की पर्याय में एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें हैं। ऐसी जो अनादि-अनन्त पर्याय-अवस्था-हालत है, उसका पिण्ड, वह द्रव्य है। कहो, समझ में आया कुछ? आहा...हा...! ऐसी बात है। (यह) ज्ञेय अधिकार है। वास्तव में तो यह समकित का अधिकार है।

सम्यग्दृष्टि - धर्म की पहली श्रेणीवाला; श्रावक-पाँचवाँ गुणस्थान, यह तो बहुत अलग चीज है। यह वाड़ा के श्रावक, वह कोई श्रावक नहीं है। आहा...! अन्तर में श्रावक होने से पहले सम्यग्दर्शन होता है। उस सम्यग्दर्शन में, यह आत्मद्रव्य कैसा है? - उसका उसे वहाँ ज्ञान होता है। आहा...हा...! जैसे सुवर्ण में पीलापन, चिकनापन और वजन ऐसे एक साथ है न? उसी प्रकार आत्मा में... आत्मा को द्रव्य क्यों कहना? कि उसमें अनन्त ज्ञानादि गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... है, परन्तु वे सब ऐसे वर्तमान तिरछा विस्तारस्वरूप है। कालक्रम से विस्तार, वह तो पर्याय है। यह विस्तार (तिरछा/टेड़ा) है। अनन्त गुण का पिण्ड जो समुदाय, उसे द्रव्य कहते हैं अथवा तीनों काल की अनन्तानन्त पर्यायों का पिण्ड है, उसे द्रव्य (कहते हैं)। यह एक की एक बात है। गुण से द्रव्य कहा, पर्याय से द्रव्य कहा - यहाँ तक तो आ गया है।

विस्तारसामान्यसमुदायात्मक... (अर्थात्) विस्तारसामान्यसमुदायस्वरूप (और)

आयतसामान्यसमुदायस्वरूप द्रव्य से रचित होने से... आहा...हा...! ऐसे गुण और ऐसी पर्याय से रचित होने से... आहा...हा...! (किसी ने) रचा होगा? अनादि से भगवान ने (ऐसा) देखा है। प्रत्येक परमाणु और आत्मा (है, उसमें सब के) अपने अनन्त गुणों का विस्तार है और पर्याय का क्रम है। उससे रचित, अर्थात् होनेवाला है, उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्यस्वरूप है। आहा...हा...!

श्रोता : रचित होने से माने नया?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा तो क्या होगी? रचित, अर्थात् उस प्रकार है। प्रत्येक द्रव्य / वस्तु भगवान को ज्ञात हुई, उसमें किसी द्रव्य का कोई एक कर्ता नहीं है; कोई ईश्वर कर्ता है - ऐसा नहीं है। वह द्रव्य स्वयं ही अनन्त गुण के विस्तारसामान्यसमुदाय का पिण्ड है और आयतसामान्यसमुदाय का पिण्ड है, उसे द्रव्य, अर्थात् वस्तु कहा जाता है। भाषा तो सादी है प्रभु! परन्तु क्या हो? बापू! अभी तो तत्त्व की बात समझे बिना बाहर की सब व्यर्थ की बातें चलती है। (उनमें) धर्म हो जाना मानते हैं। अरे...रे...! जिन्दगी चली जाती है भाई!

(एक मुमुक्षु भाई) यहाँ बैठते थे, हेमरेज हो गया तो असाध्य हो गये। आहा...हा...! यह दशा जड़ की! जिस समय जो पर्याय होनी है, वह होगी ही। उन सब पर्यायों का पिण्ड वह परमाणु है। यह (शरीर) जो है, यह कोई एक चीज़ नहीं है; यह तो अनन्त परमाणुओं का दल-पिण्ड है। इसके अंश करते... करते... करते... अन्तिम Point रहता है - अन्तिम चीज रहती है, उसे परमात्मा जिनेश्वर देव, परमाणु कहते हैं। परम + अणु! यह परमाणु अणु भी विस्तारसामान्यसमुदाय अनन्त गुणों का पिण्ड है और अनन्त आयत-लम्बाई से हुई, ऐसी क्रम से होनेवाली पर्यायों का पिण्ड, वह परमाणु है।

श्रोता : दोनों मिलकर है?

समाधान : दोनों मिलकर एक है - एक ही वस्तु है। विस्तारसामान्य का एक द्रव्य है और आयतसामान्य का एक (द्रव्य) है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! द्रव्य की स्थिति यह है। उसे विस्तारसामान्यसमुदाय से जानो या आयतसामान्यसमुदाय से (जानो परन्तु) द्रव्य यह है। आहा...हा...! यहाँ द्रव्य, अर्थात् पैसा - ऐसा नहीं है।

श्रोता : वह भी इसमें लिखा ऐसा द्रव्य तो है!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह द्रव्य यह! पैसा तो अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है। वह एक द्रव्य नहीं है। पैसा, यह नोट, रुपये, सोना, पाई - यह तो अनन्त परमाणुओं का दल है। इसके अनन्तवें भाग में एक परमाणु जो है, वह एक-एक परमाणु अनन्त सामान्य गुण के विस्तार से भरपूर तत्त्व है और (उसकी) पर्यायें अनादि-अनन्त हैं, उनका पिण्ड वह परमाणु है - ऐसी बात है! यह द्रव्य की व्याख्या तो आ गयी। अब, गुण की व्याख्या (कहते हैं।)

और द्रव्य... अर्थात् जगत् में जो द्रव्य हैं। परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा भगवान ने जाति से छह (द्रव्य) और संख्या से अनन्त द्रव्य देखे (हैं।) उनमें **द्रव्य जिनका एक आश्रय है...** गुण हैं अनन्त, परन्तु आश्रय उनका एक द्रव्य है। आहा...! नीचे (अर्थ दिया) है - 'अनन्त गुणों का आश्रय एक द्रव्य है।'

भगवान आत्मा में ज्ञान, दर्शन ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण हैं, जिस अनन्त की संख्या का पार नहीं आता - ऐसे अनन्त गुण एक द्रव्य के आश्रय से हैं।

पहले द्रव्य की व्याख्या की थी। अब गुण की व्याख्या है। गुण किसे कहना? कि भगवान आत्मा जो एक द्रव्य है, उसके आश्रय से अनन्त... अनन्त... गुण रहते हैं, उन्हें गुण कहते हैं। ऐसे ही परमाणु एक है - एक रजकण - Point, उसमें भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि अनन्त गुण हैं; उनका आश्रय एक परमाणु द्रव्य है। आहा...हा...!

यह द्रव्य-गुण-पर्याय तो अभी ईकाई की बिन्दु की बात है। आहा...हा...! इसे (अज्ञानी को) द्रव्य किसे कहना, गुण किसे कहना, पर्याय किसे कहना - इसका भी पता नहीं होता और उसे धर्म हो जाए? आहा...हा...! यहाँ प्रभु कहते हैं कि बापू! तू अनादि से मूढ़ होकर (परिभ्रमण करता है)। द्रव्य किसे कहना? गुण किसे कहना? पर्याय किसे कहना? इसका तुझे पता नहीं है; इसलिए जो वर्तमान एक समय की पर्याय है, (उसे ही अपना स्वरूप मानता है)। यहाँ सजातीय और विजातीय (पर्याय को) साथ डाली है। दो परमाणु इकट्ठे होकर, एक नहीं होते, परन्तु संयोग है, उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं। आहा...!

आत्मा और अन्दर यह मनुष्यगति - दोनों असमानजातीय है। असमानजातीय को द्रव्यपर्याय कहते हैं। आ...हा...हा...! यह विभाविक द्रव्यपर्याय है। आहा...हा...! शास्त्र में व्यञ्जनपर्याय और अर्थपर्याय - ऐसे दो नाम हैं। व्यञ्जनपर्याय, अर्थात् द्रव्यपर्याय। अर्थपर्याय, अर्थात् द्रव्यपर्याय के अतिरिक्त अनन्त गुणों की पर्याय, उसे अर्थपर्याय (कहते हैं)। आहा...हा...! ऐसा है।

(यहाँ कहते हैं) **द्रव्य जिनका एक आश्रय है - ऐसे विस्तारविशेषस्वरूप...** विस्तारविशेषस्वरूप! ओ...हो...हो...! (अर्थात्) गुण। विस्तार है न? पहले आ गया है न? आत्मा में ऐसे विस्तार विशेष हैं। द्रव्य है, वह सामान्य है, परन्तु वह विस्तारविशेषोंस्वरूप **गुणों से रचित...** ऐसे गुणों से बने हुए। आहा...हा...! है? (पहले) यह कहा था कि **द्रव्य से रचित होने से द्रव्यमय (द्रव्यस्वरूप) है।** यहाँ (कहते हैं) **गुणों से रचित (गुणों से बने हुए) होने से...** गुणस्वरूप है। कुछ समझ में आता है? क्या कहा?

कल द्रव्य की व्याख्या हो गयी है। यह आज तो गुण की व्याख्या आती है। गुण, अर्थात् प्रत्येक वस्तु में विस्तारसामान्यस्वरूप एक समय में अक्रम से साथ रहनेवाले भावों को गुण कहते हैं। वे गुण अनन्त होने पर भी, उन गुणों का आश्रय द्रव्य एक है। आहा...हा...! भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन ऐसे अनन्त... अनन्त... गुण हैं। विस्तार कहा था न? विस्तारविशेष है। परमाणु सामान्य है और यह (गुण) उसके विशेष हैं। (ऐसे) **विस्तारविशेषस्वरूप गुणों से...** आहा...हा...! अर्थात् इन शक्तियों के सत्व से (रचित) होता है; इस कारण उसे गुणस्वरूप कहा जाता है। कुछ समझ में आया?

यह ज्ञेय अधिकार समकित का अधिकार है। जैसा द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप है, वैसा पहचान कर प्रतीति करे, उसे यह सम्यग्दर्शन का विषय है। अभी तो चौथे गुणस्थान की बात चलती है। आहा...हा...! बापू! पाँचवाँ और छठवाँ (गुणस्थान), वह तो कोई अलौकिक बात है! आहा...हा...! (यह) गुण की व्याख्या आयी। द्रव्य की (व्याख्या) आ गयी। यह गुण की व्याख्या की है।

और पर्यायें - जो कि आयतविशेषस्वरूप हैं... वे (गुण) विस्तारविशेषस्वरूप थे। पर्यायें आयतविशेषस्वरूप है। द्रव्य-आत्मा में या परमाणु में एक के बाद एक... एक

के बाद एक... एक के बाद एक... एक समय में अनन्त पर्यायें, (दूसरे समय में) अनन्त, (तीसरे समय में) अनन्त - ऐसे एक के बाद अनन्त... अनन्त... अनादि-अनन्त पर्यायें (होती हैं, उन्हें) आयत कहते हैं। (आयत अर्थात्) ऐसी लम्बाई! गुणों में लम्बाई नहीं है। गुणों ऐसे विस्तार में (तिरछे) हैं। (इस प्रकार पर्यायें) जो कि **आयतविशेषस्वरूप है...** (अर्थात्) लम्बाई में कालक्रम से होनेवाली दशाओं में है। **वे जिनके लक्षण ऊपर कहे गये हैं - ऐसे द्रव्य से तथा गुणों से...** (अर्थात्) द्रव्य से भी वह पर्याय उत्पन्न होती है और गुण से भी वह उत्पन्न होती है। पर्याय (द्रव्यों से) **तथा गुणों से रचित होने से द्रव्यात्मक भी है, गुणात्मक भी है।**

पर्याय के दो प्रकार कहे - (द्रव्यात्मक और गुणात्मक)। समझ में आया? पर्याय, द्रव्य और गुण के आश्रय से होती होने से, वे अनन्त पर्यायें - अवस्थायें जो हैं, उनका समुदाय, वह गुण है (और) गुण का समुदाय, वह द्रव्य है। यहाँ तो द्रव्य लेना है। **द्रव्यों से तथा गुणों से रचित होने से...** आहा...हा...! ऐसा करके यह सिद्ध किया कि प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा की वर्तमान पर्याय और त्रिकाली पर्याय रचित होने से द्रव्यात्मक भी है। वह द्रव्य स्वयं उसे रचता है; उस पर्याय को दूसरा द्रव्य रचता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

यह हाथ ऐसे हिलते हैं। देखो! यह भाषा निकलती है, वह उसकी जड़ की पर्याय है। वह जड़ की पर्याय है, उसका सम्पूर्ण समुदाय, वह द्रव्य है परन्तु वह पर्याय दूसरा द्रव्य उत्पन्न करता है, (अर्थात्) आत्मा इस शरीर को चलाता है - ऐसा तीन काल में नहीं है, क्योंकि पर्याय है, वह द्रव्य की पर्याय है और वह द्रव्य उस पर्याय को प्राप्त करता है। यह तीन बातें आ गयी हैं। वस्तु है, वह वर्तमान अवस्था को प्राप्त करती है - पहुँचती है... आहा...हा...! समझ में आता है? प्राप्त करता है, प्राप्त होता है; पहुँचता है। प्राप्त करता है... आहा...हा...! और प्राप्त होता है। आहा...हा...हा...!

यह शरीर ऐसे हिलता है, यह भाषा ऐसे होती है, यह होंठ ऐसे हिलते हैं, यह परमाणु की-जड़ की पर्याय है; यह पर्याय उसके द्रव्य से रचित है या उसके गुण से रचित है। उसका द्रव्य और गुण है, उससे रचित है। दूसरा द्रव्य और गुण (या) दूसरे परमाणु से अथवा आत्मा से यह भाषा-पर्याय रचित है या हाथ (हिलता) है - ऐसा नहीं है। आहा...!

ऐसा (समझने को) कब निवृत (है) ? बनिये को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं है और सिर पर सम्प्रदाय में (जो हैं, वे) कहते हैं – वह जय नारायण! करके अनन्त काल से जिन्दगी बर्बाद की है।

परमात्मा जिनेन्द्रदेव (प्रणीत)... यह 'मूलक' आ गया है न? (१२ वीं गाथा) 'शब्दब्रह्ममूलक!' भगवान का शब्दब्रह्म जो वाणी है, वह सम्यग्ज्ञान में मूल (निमित्त) है। उस वाणी के अतिरिक्त दूसरों की वाणी – अज्ञानियों की वाणी तो निमित्त भी नहीं हो सकती – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! जिनेश्वर की वाणी! परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव की वाणी को सम्यग्दर्शन और ज्ञान में मूल कहा है, वह निमित्त है। दूसरे की वाणी (अर्थात् कि) अज्ञानी ने आत्मा को देखा नहीं है, उसकी वाणी निमित्त नहीं हो सकती है। आहा...हा...! (इसलिए) पहले इसे सर्वज्ञ की वाणी कैसी है? और कहाँ है? – इसका निर्णय करना पड़ेगा। सर्वज्ञ कौन है? कहाँ है? किसमें है? और उनकी वाणी किसमें है? – यह निर्णय करना पड़ेगा। आहा...हा...! बापू! बात बहुत सूक्ष्म है। आहा...हा...!

सम्प्रदाय में यह सर्वज्ञ और सर्वज्ञ की वाणी है ही नहीं। स्थानकवासी सम्प्रदाय (हो) या श्वेताम्बर सम्प्रदाय (हो), उसमें सर्वज्ञ भी नहीं है और सर्वज्ञ की वाणी भी उसमें नहीं है; सब कल्पित किया है।

श्रोता : केवलज्ञान तो मानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्पित मानते हैं। कहा न! केवलज्ञान मानते हैं परन्तु एक समय में जानते हैं और दूसरे समय में देखते हैं – ऐसा मानते हैं। अनन्त गुणों की समस्त पर्यायें एक साथ हैं – ऐसा नहीं मानते हैं। सब अन्तर है, परन्तु यह विचार कौन करता है? जिसमें पड़े (उसमें) जय नारायण! (करके चलते बनते हैं।)

बड़ा सेठ! पचास करोड़ रुपये! मुम्बई! मुम्बई! आया था, अभी मुम्बई दर्शन करने आया था। पचास करोड़ रुपये! बड़ी धूल! आहा...हा...! बहुत बड़ी दुकानें हैं! परन्तु किसकी दुकानें बापा! वह तो जड़ की दशा है! वे परमाणु जो है, वे उसकी पर्याय को प्राप्त करते हैं... आहा...हा...! और वह पर्याय, द्रव्य और गुण से रचित है। अरे...! यह कैसे बैठे? कभी सुनने को ही नहीं मिलता। आहा...हा...!

यह जो पैर हिलता है, वह पैर के परमाणुओं की पर्याय है। आत्मा ने पैर हिलाया है - ऐसा तीन काल में नहीं है। अर... र...र...! ऐसी बात कहीं सुनते नहीं। यह पैर हिलता है न! यह पैर की पर्याय ऐसी गति - अवस्था करती है, वह अवस्था द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई अवस्था है। उसके रजकणों से उत्पन्न हुई, उसके गुण से उत्पन्न हुई पर्याय है, आत्मा से नहीं; आत्मा पैर को नहीं हिला सकता। आहा...हा...! अरे...! कैसे बैठे?

श्रोता : पक्षघात (लकवा) हो, तब बैठे!

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो पता पड़ता है (क्योंकि) हिला नहीं सकता। यह देखो न बेचारा। (यह भाई), हमारे पास से पैंतीस वर्ष से तो ब्रह्मचर्य लिया था। तैंतीस वर्ष की उम्र में! तैंतीस वर्ष की उम्र में राजकोट में संवत् २००० के साल में हमसे ब्रह्मचर्य (लिया था) उसका पिता विरोध में! श्वेताम्बर और विरोध में! तथापि उसने तैंतीस वर्ष की उम्र में (ब्रह्मचर्य लिया था।) पैंतीस वर्ष हुए। अभी ६८ वर्ष की उम्र है। अभी बड़ौदा में हेमरेज में (असाध्य हो गया है।) यहाँ था तब तो इस (बात का) बहुत घोलन-मनन (करता था।) यह देह की दशा!

जिस काल में, जड़ की जो पर्याय होनी है, वह परमाणु और उसके गुण से उनकी पर्याय हुई है। आहा...हा...! परमाणु द्रव्य है। ऐसे यह अनन्त परमाणु हैं। यह पैसा, यह मकान अनन्त... अनन्त... जड़ परमाणु का दल है। उस एक-एक परमाणु की वर्तमान दशा है, (वह) पर्याय उसके द्रव्य और गुण से होती है। आहा...हा...! कारीगर मकान बनाता है? (तो कहते हैं कि) नहीं! दर्जी कपड़े सिलता है? (तो कहते हैं कि) नहीं! कुम्हार घड़ा बनाता है? नहीं... तब (कोई यह पूछता है कि) घड़े की पर्याय हुई कैसे? (तो कहते हैं कि) उसके परमाणु और परमाणु में जो गुण हैं, उनसे घड़े की पर्याय रचित है, कुम्हार से नहीं। अरे...रे...! वीतरागी की ऐसी बात कौन सुने? आहा...हा...! ऐसी बात है! क्या कहा?

द्रव्य एक जिनका आश्रय है - ऐसे विस्तारविशेषस्वरूप गुणों से रचित (गुणों से बने हुए) होने से गुणात्मक है। और पर्यायें - जो कि आयतविशेषस्वरूप हैं वे - जिनका लक्षण ऊपर कहे गये हैं ऐसे... वे पर्यायें **द्रव्यों से और गुणों से रचित**

होने से... आहा...हा... ! बहुत कठिन बात है ! वीतराग का तत्त्व समझना (बहुत कठिन है।) बापू ! वीतराग-सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव; जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है ! आहा...हा... ! उनके द्वारा कथित द्रव्य-तत्त्व समझने में बहुत धीरज चाहिए, भाई ! आहा...हा... ! और उसे जिस प्रकार है, उस प्रकार नहीं समझे तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं कि परमाणु में और आत्मा में जितनी पर्यायें होती हैं, उन पर्यायों की रचना उस द्रव्य और गुण से हुई है। उस पर्याय की रचना दूसरा तत्त्व करता है – जो ऐसा मानता है, उसे पर्याय की स्वतन्त्रता का पता नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है। यह गुण की व्याख्या चली (है।) गुण में से पर्याय (होती है) । आहा...हा... ! (बहुत से ऐसा कहते हैं) ऐसा कहाँ से निकाला ? अरे... ! भगवान ! बापा ! अनन्त तीर्थङ्कर अनादि से कहते आये हैं ! परन्तु (तू) बाड़ा में बँध गया है और ऊपर जो कहते हैं (उसमें) हाँ...हाँ... करके जिन्दगी व्यतीत की है, तत्त्व से विरुद्ध वर्ता है। आहा...हा... !

पहले ऐसा आया था कि द्रव्य, गुण-पर्याय को पहुँचता है, प्राप्त करता है। ऐसा आया था न ? यहाँ यह आया है कि पर्याय को द्रव्य और गुण रचते हैं। आहा...हा... ! समझ में आता है ? आहा...हा... ! जो रोटी होती है, उस रोटी की जो पर्याय है, वह परमाणु और परमाणु के गुण से रचित हैं। स्त्री कहती है 'मैंने रोटी बनाई' – इस बात में मिथ्यात्वभाव है... अथवा वह क्या कहलाता है ? बेलन ! बेलन से रोटी हुई – ऐसा भी मिथ्यादृष्टि मानता है; क्योंकि बेलन की पर्याय उसके द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई है और रोटी की पर्याय, वह उसके परमाणु और द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई है। क्या कहा यह ? बेलन ! बेलन के द्रव्य-गुण से रोटी की पर्याय नहीं हुई है। (भाई !) ऐसा सब जज में (लौकिक कानून में) कहीं आया था ? वहाँ जज में सब गप्प मारते थे। आहा...हा... ! सबको ऐसा था न ?

आहा...हा... ! यह तो तीन लोक के नाथ ! सर्वज्ञ परमेश्वर ! प्रभु ! तू सर्वज्ञ है, हाँ ! सवेरे नहीं आया था ? **सव्ववाणी-सव्वदर्शी !** आहा...हा... ! किसी की पर्याय को करे – यह तू नहीं। तू तो सर्व को-विश्व को जानने-देखने के स्वभाववाला है। आहा...हा... ! वह जानने-देखने की पर्याय तेरे द्रव्य और गुण से रचित है। ज्ञेय ज्ञात होते हैं, इसलिए वह जानने-देखने की पर्याय यहाँ उनसे होती है (ऐसा नहीं है।) आहा...हा... !

यह पुस्तक ज्ञान में ज्ञेय होती है, इसलिए उससे यहाँ ज्ञान की पर्याय होती है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! तथा इस वाणी से अन्दर ज्ञान की पर्याय होती है – ऐसा नहीं है। वाणी की पर्याय, उसके जड़ परमाणु जो हैं, (वह) उनके द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई है और जो ज्ञान की पर्याय हुई है, वह इसके द्रव्य, अर्थात् आत्मा और इसका गुण, अर्थात् ज्ञानगुण है, उससे रचित पर्याय है। अरे! यह कब सुने और (कब समझे) ? आहा...हा...! और समझे बिना, जाने बिना सब प्रतीति मिथ्याभ्रम, अज्ञान है। आहा...हा...!

क्या कहा ? पर्याय की व्याख्या करी। छहों द्रव्यों की पर्याय-हालत-अवस्थाएँ जो कि आयतविशेषस्वरूप है; जो कि ऐसे कालक्रम से लम्बाई से होती दशायें – विशेष हैं, वे **जिनके लक्षण (ऊपर) कहे गये हैं...** किसके ? कि द्रव्य और गुण के... **ऐसे द्रव्यों से तथा गुणों से...** आहा...हा...! जिनके लक्षण ऊपर कहे गये हैं। किनके ? द्रव्य और गुण के। द्रव्य उसे कहते हैं कि जो विस्तारसामान्य (स्वरूप) गुण और लम्बाई से (आयतसामान्यस्वरूप का) पिण्ड है, उसे द्रव्य कहते हैं। आहा...हा...! और गुण उसे कहते हैं कि उसमें अनन्त गुण विस्तार से एक द्रव्य के आधार से रहते हैं, उसे गुण कहते हैं। ऐसा जो द्रव्य-गुण का स्वरूप पहले कहा है, उनसे उत्पन्न हुई पर्याय है। आहा...हा...!

यह लिखने की पर्याय (होती है, उसमें) अज्ञानी यह मानता है कि मैं इस कलम को हिलाता हूँ और अक्षर लिखता हूँ। प्रभु कहते हैं कि तुझे वसतु का पता नहीं है। यह कलम को हिलनेरूप जो अवस्था है, वह परमाणु के द्रव्य और गुण, जो ऊपर कहे गये हैं; जो द्रव्य-गुण का लक्षण कहा है, उससे उत्पन्न हुई (पर्याय है)। यह कलम हिलती है, वह पर्याय इससे हुई है, हाथ से कलम हिलती है – यह भी नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : कलम से अक्षर तो होते हैं!

पूज्य गुरुदेवश्री : बिलकुल छूते भी नहीं हैं न! आहा...हा...! कलम, अक्षर को छूती भी नहीं है। प्रभु! आहा...हा...! कागज का एक रजकण, दूसरे रजकण का स्पर्श नहीं करता। प्रभु! क्या है!? ऐसा है। बापा! दुनिया से अलग जाति है प्रभु की। बापा! आहा...हा...! यों ही अभिमान ही अभिमान में मर जाता है। मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... इसका मैंने किया... दुकान की व्यवस्था मैंने की; अच्छे नौकर रखे, मैंने लक्ष्मी

का दान दिया... पैसा खर्च किया... पाँच-दश लाख... बीस लाख... कौन दे? बापा! भाई! वह जो पैसे की पर्याय है, वह उसके द्रव्य-गुण से रचित है। दूसरा कहे कि पैसे की पर्याय दूसरे को देता हूँ - यह मिथ्यात्व श्रद्धा और अज्ञान श्रद्धा है। आहा...हा...! ऐसा है।

श्रोता : पैसा कमाया या नहीं कमाया?

समाधान : कौन कमाये? धूल...! उस समय बड़ी वकालात में कमाते थे न? पाँच घण्टे कोर्ट में जाते तो दो सौ रुपये लेते थे। तीस वर्ष पहले, पैंतीस वर्ष पहले! वह पैसे यह लेते होंगे? पैसे की पर्याय, वह पैसे के परमाणु और गुण से रचित है। उसके द्रव्य-गुण के लक्षण ऊपर कहे हैं। ऐसा कहा न? **जिनके लक्षण ऊपर कहे गये हैं...।** आहा...हा...! बापू! यह वीतराग के (वचन हैं।) यह कोई कथा नहीं है, यह कोई वार्ता नहीं है। प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ की तत्त्व की दृष्टि का विषय है। आहा...हा...! जिसे चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारी गणधर भी सुनते हैं। आहा...हा...! वह बात कैसी होगी? बापा! आहा...हा...! जिसमें इन्द्र... सौ इन्द्र आकर (सुनने बैठते हों), सभा में बाघ और सिंह और नाग (सुनने आते हैं।) जिसमें देवेन्द्र और असुरेन्द्र और विमान के इन्द्र भगवान की वाणी सुनते हैं। आहा...हा...! बापू! वह वाणी कैसी होगी? प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि वाणी की जो पर्याय हुई है, वह परमाणु के द्रव्य-गुण से हुई है। वह वाणी की पर्याय मुझसे नहीं हुई है।

श्रोता : तो फिर 'भगवान की दिव्यध्वनि' - ऐसा क्यों कहते हैं?

समाधान : (भगवान की) दिव्यध्वनि - यह निमित्त से कथन है। दिव्यध्वनि आवाज है। यह 'प्रवचनसार' लो! प्र + वचन। इसका नाम प्र + वचन है। प्र, अर्थात् विशेष 'दिव्य वचन' है। वह अक्षर की पर्याय जो है, वह हमने ऊपर जो द्रव्य-गुण सिद्ध किये हैं, उस द्रव्य-गुण से यह पर्याय रचित है। दूसरा पुस्तक बनानेवाला, लिखनेवाला, रचनेवाला कहता है कि मैंने यह पुस्तक बनाई! (तो) यह भ्रम, अज्ञान और मिथ्यात्व है। उसे द्रव्य-गुण और पर्याय किसकी है और किससे हुई है? - इसका पता भी नहीं है।

श्रोता : हे सकर्ण! मैं कहता हूँ, वह सुन! (ऐसा आता है न?)

पूज्य गुरुदेवश्री : सकर्ण कहा है न? हे सकर्ण! श्रद्धाहीन को वन्दन मत करना।

जिसे अभी प्रभु की श्रद्धा की खबर न हो, वह साधु नाम धरावे, नग्न दिगम्बर मुनि (हुआ होवे), वस्त्रसहितवाले तो साधु हैं ही नहीं... आहा...हा...! परन्तु जो वस्त्ररहित दिगम्बर साधु हैं, (वे भी यदि ऐसा मानते हों कि हम) पर की अवस्था कर सकते हैं (या) दया, दान के परिणाम की अवस्था है, वह मेरा स्वरूप है तो वे सब मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! ऐसा है।

(यहाँ क्या कहते हैं?) पर्याय की क्या व्याख्या की है? द्रव्य की क्या व्याख्या की है? कि विस्तारसामान्यसमुदाय और आयतसामान्यसमुदाय, वह द्रव्य है। गुण किसे कहते हैं? कि अनन्त गुण होने पर भी वे एक द्रव्य के आश्रय से रहते हैं, उन्हें गुण कहते हैं। पर्याय किसे कहते हैं? कि जो द्रव्य और गुण के लक्षण वर्णन किये गये हैं, उन द्रव्य और गुण से होनेवाली अवस्था को पर्याय कहते हैं। आहा...हा...!

आहा...हा...! (कहते हैं) पर्याय **द्रव्य तथा गुणों से रचित होने से द्रव्यात्मक भी है, गुणात्मक भी है।** (अर्थात्) द्रव्यस्वरूप भी है और गुणस्वरूप भी है। आहा...हा...! कितनी टीका! थोड़े शब्दों में तो गजब किया है न! आहा...हा...! यह सिद्धान्त कहलाता है! जिसके एक-एक शब्द के गर्भ में अनन्त... अनन्त... रहस्य पड़े हों! आहा...हा...!

(दूसरी ओर ऐसा कहते हैं कि) हे नाथ! **(वन्दे) तद्गुणलब्धये** - हम तुम्हारी जो स्तुति करते हैं, तो तुम्हें जो गुण (प्रगट हुए हैं) ऐसे गुण हमें भी प्राप्त होओ। वहाँ गुण शब्द से केवलज्ञान आदि पर्याय (अर्थ) होता है। यहाँ कहते हैं कि वह पर्याय परद्रव्य और परगुण से उत्पन्न नहीं होती। तुझे जो ज्ञान-आनन्द धर्म की पर्याय (उत्पन्न होती है), वह तेरे द्रव्य और गुण से उत्पन्न होती है। आहा...हा...! ऐसा कहकर तो यह कहा है कि पर्याय में भले ही राग हो, विकारी (पर्याय) हो; उस समय भी जो सम्यक् धर्म की पर्याय है, वह पर्याय, द्रव्य-गुण से रचित है, विकार से नहीं। आहा...हा...! यह इसमें आया है न? आहा...हा...! क्या कहा?

फिर से - पर्याय में विकार (भी) है (और) निर्विकारी पर्याय भी है; एक समय में दोनों हैं, तथापि वह निर्विकारी धर्म की पर्याय — सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय है, वह द्रव्य-गुण से रचित है, राग से रचित नहीं। (उस समय) राग का विकल्प हो, उसे जाने

परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय उससे रचित नहीं है। आहा...हा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

श्रोता : कर्तापने का ज़हर और अभिमान उतार दे – ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह (अज्ञानी) तो जहाँ हो, वहाँ मैंने किया और यह काम मैंने किया... अमुक मैंने किया, दुकान पर बैठा, इसलिए मैंने व्यवस्थित कार्य किया। आहा...हा... ! भाई ! इसमें क्या करना ?

एक-एक परमाणु और एक-एक आत्मा है, (ऐसे) अनन्त परमाणु और अनन्त आत्माएँ हैं। उनमें से एक-एक आत्मा को द्रव्य क्यों कहते हैं ? कि वह उसके गुण और उसकी पर्यायों का दल है, इसलिए उसे द्रव्य कहते हैं और गुण किसे कहते हैं ? कि वे अनन्त शक्तियाँ हैं, उनका आधार एक (द्रव्य) हैं, उन्हें गुण कहते हैं। पर्याय किसे कहते हैं ? कि (ऊपर) जो द्रव्य और गुण कहे गये हैं, उनसे (जो अवस्था) उत्पन्न होती है, उसे पर्याय कहते हैं। आहा...हा... !

यहाँ पर तो सम्यग्दर्शन और धर्म की पर्याय कैसे हो ? आहा...हा... ! वह द्रव्य जो वस्तु भगवान (आत्मा है) और गुण जो द्रव्य के आधार से रहते हैं; उस द्रव्य से समकित की पर्याय होती है, वह राग से नहीं होती, अन्य से नहीं होती, वाणी से नहीं होती, देव-गुरु से नहीं होती; भगवान और मन्दिर के दर्शन करने से भी वह पर्याय नहीं होती – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

सम्यग्दर्शन की पर्याय-धर्म की पहली शुरुआत की पर्याय कहाँ से होती है ? कि जो द्रव्य-गुण कहे हैं, उनसे वह पर्याय होती है। यह गज़ब बात की है न ! वह व्यवहाररत्नत्रय का राग है, उससे नहीं होती – ऐसा कहा है भाई ! आहा...हा... ! (अज्ञानी तो ऐसा कहता है) व्यवहार करें, (वह) करते-करते (धर्म हो जाएगा।) शुभ-मन्दकषाय करने से होता है ! यहाँ इनकार करते हैं। (कहते हैं कि) वह समकित की पर्याय है, वह द्रव्य और गुण से होती है।

श्रोता : इसके प्रयत्न से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (राग के) प्रयत्न से बिलकुल नहीं। प्रयत्न किया ही नहीं। यह

प्रयत्न किया, वह तो राग हुआ। राग भी उसके द्रव्य-गुण के कारण से उत्पन्न हुआ है। विकृत अवस्था, (उसे) आगे विभाव कहेंगे। आहा... ! पहले टीका में आ गया है। रूप और ज्ञान की टीका में पहले दो आ गये हैं। वहाँ सर्व द्रव्य नहीं लेकर, रूप और गुण लिया, इसलिए फिर यहाँ सर्व द्रव्य लिये, वह भी सर्व द्रव्यों में रूप, वर्ण, गन्ध, रस, और ज्ञान (वह जिसे) विभाविक (पर्याय) होती है - ऐसा पाठ में - टीका में है। आहा...हा... ! यह आयेगा, तब बात करूँगा, हाँ! अभी (चलता विषय लेते हैं।)

श्रोता : द्रव्य-गुण तो पहले भी थे, फिर पर्याय क्यों नयी हुई ?

समाधान : पर्याय उत्पन्न होती है। पर्याय जो है, वह कोई अनादि की नहीं है, गुण अनादि का है; गुण का आश्रय द्रव्य है, वह अनादि का है। पर्याय तो नयी होती है, भूत-भविष्य - ऐसे भले ही अनादि हो, परन्तु (समय-समय) नयी होती है। वह पर्याय होने में कारण कौन है ? विकार पर्याय होने में भी द्रव्य और गुण कारण हैं - यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! कर्म कारण नहीं है। आत्मा में विकारी अवस्था होती है, उसका कारण कर्म नहीं है। आहा...हा... ! द्रव्य-गुण का आश्रय नहीं लिया, तथापि वह विकार, द्रव्य और गुण के आश्रय से हुई (पर्याय) है। 'पञ्चास्तिकाय संग्रह' में आश्रय कहा है। विकार का आश्रय वह है - द्रव्य-गुण आश्रय है। लो, ठीक! आश्रय का अर्थ कि उसमें उनसे होता है, बस इतना। इससे होता है, पर से नहीं। आहा...हा... ! वह द्रव्य और गुण स्वयं अवस्था में विकाररूप परिणमित होते हैं, इसलिए उस विकार का आश्रय द्रव्य और गुण है। आहा...हा... ! ऐसी बात! किसे सुनना और कहाँ सुनना ? पहले तो सीधा सा था 'तस्सुत णमों अरहंताणं तिक्खुलो आयाणं पयाणं इच्छामि पडिकम्मा इरियावहीयाए तस्स उत्तरी करणेण... लोगस्स णमोत्थुणं...' (ऐसा) पाठ बोला तो हो गयी सामायिक! धूल में भी सामायिक नहीं है, सुन न! यह पाठ बोलता हूँ, वह मैं ही बोलता हूँ - यह मिथ्यादृष्टि की मान्यता है और अन्दर पाठ बोलने का विकल्प उत्पन्न हुआ है, वह राग है और राग तेरे द्रव्य-गुण के कारण उत्पन्न हुआ है, वह विकार है, वह कोई पर के कारण, कर्म के कारण (उत्पन्न नहीं हुआ है।) आहा...हा... ! ऐसा स्वरूप है।

यहाँ तो 'ढाई रुपये का मण तो चार पैसे का शेर' - यह चाबी है, फिर उसे चाहे

जहाँ लगाओ। पैंतीस शेर के पैंतीस आना, साढ़े सात शेर के साढ़े सात आना – ऐसे यह तो सब सिद्धान्त है। यह दृष्टान्त तो उसका उदाहरण है, लाखों दृष्टान्त होते हैं। आहा...हा...!

पर्यायें – जो कि आयतविशेषस्वरूप हैं, वे – जिनमें लक्षण (ऊपर) कहे गये हैं – ऐसे द्रव्यों तथा गुणों से रचित होने से... द्रव्य और गुण से पर्याय रचित है। परद्रव्य के कारण वह पर्याय होती है (–ऐसा नहीं है)। विकारी (पर्याय) होवे या समकित पर्याय होवे – वह दर्शनमोह का क्षयोपशम हुआ है, इसलिए समकित पर्याय होती है – ऐसा नहीं है और केवलज्ञान की पर्याय होती है, वह चार घातिकर्मों का नाश हुआ, इसलिए हुई – ऐसा नहीं है। वह केवलज्ञान की पर्याय उन द्रव्य-गुण के आश्रय से होती है। आहा...हा...!; भाषा तो सादी है प्रभु !;

श्रोता : विषय कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, विषय कठिन है। आहा...हा...!

'प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा...' भजन में आया था न ? 'प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा...' आहा...हा..! (एक मुमुक्षु कहता था) कि वहाँ 'प्रीतम' शब्द प्रयोग किया है। 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, तू कई बातें अधूरा; प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा।' यह नाथ – वीतराग आत्मा सब बातें पूरा है। प्रभु ! पर की आश कहाँ करे प्रीतम – हे प्रिय आत्मा ! हे प्रभु ! आहा...हा...! (स्व का) प्रियपना छोड़कर तू पर की आश कहाँ करता है ? तू कहाँ अधूरा है ? तू किस बात से अधूरा है ? प्रभु ! तू सब गुणों से पूरा है ! अरे...! ऐसा कैसे बैठे ? आहा...हा..! मानों देव से मिल जाएगा, गुरु से मिल जाएगा, मन्दिर में मिल जाएगा, भगवान की प्रतिमा के दर्शन करने से मिल जाएगा, यात्रा करूँ, उसमें से मिल जाएगा, दया-दान से मिल जाएगा – यह सब (मान्यता) मिथ्याभ्रम है। दया, दान के परिणाम तो विकार हैं और सम्यक् के परिणाम वह द्रव्य-गुण से रचित हैं, वे विकार से रचित हैं – ऐसा यहाँ नहीं आया है या नहीं ? भाई ! यह सामने पाठ है या नहीं ? यह तो भगवान की वाणी है ! आहा...हा...! गज़ब बात की है ! शब्द थोड़े, किन्तु रहस्य का पार नहीं है ! आहा...हा...!

खाने की पर्याय भी तुझसे होती है – ऐसा नहीं है। (खाते-खाते) जीभ हिलती है। वह हिले, वह पर्याय है। वह किससे हुई है ? कि जीभ के परमाणु और गुण हैं, उनके

द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई वह (जीभ की) पर्याय हिलती है। आत्मा जीभ को हिलाता है (- ऐसा जो मानता है), उसने एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व के (साथ) एकमेक किया है, मिथ्यात्व किया है। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है।

(मैं) पर की दया पाल सकता हूँ, पर की अवस्था कर सकता हूँ, उन्हें जीवित रख सकता हूँ (- ऐसा अज्ञानी माने परन्तु) वह पर्याय हुई है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण से। वह टिकता जीव (द्रव्य) है, उसके बदले यह कहता है कि मैं उसकी दया पाल सकता हूँ, उसकी पर्याय कर सकता हूँ, तो उसे अपनी पर्याय में, 'वह पर्याय कर सकता हूँ' - ऐसी मान्यता हुई, परन्तु उसकी पर्याय तो उसके द्रव्य-गुण से हुई है। उसका जीवन टिका रहा, वह उसके द्रव्य-गुण से रहा है, आयुष्य से भी नहीं। आहा...हा...हा...! इस शरीर में जो अपनी पर्याय की योग्यता से रहा है, उस पर्याय की उत्पत्ति का कारण द्रव्य-गुण है, आयुष्य का कारण नहीं, कर्म के कारण नहीं। आहा...हा...हा...!

श्रोता : पागलपन उतर जाए - ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उतर जाए! ऐसा है, बापा! यहाँ तो... आहा...हा...! अरे...! तू कौन है? भाई! तुझे पता नहीं है। अरे! परमाणु भी कितना और कैसा है? उसकी पर्याय का कर्ता कौन है? प्रभु! तुझे पता नहीं है। आहा...हा...! दूसरा परमाणु उसकी पर्याय को करे (- ऐसा भी नहीं है।) (अभी लोग) कहते हैं न? भाई! पाँच गुण, दो गुण अधिक - उसमें यह डालते हैं। पाँच गुणवाला परमाणु होवे (और दूसरा) तीन गुणवाला (परमाणु) होवे तो उसे पाँच गुणवाला कर देता है। प्रभु! (उससे यहाँ) इनकार करते हैं। वह पाँच गुण की पर्यायरूप परिणमित हुआ है, वह उसके द्रव्य-गुण से हुई है। सामने पाँच गुणवाला है, इसलिए यहाँ पाँच गुणवाली पर्याय हुई है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अरे...! ऐसा कहाँ (सुनने मिले!) अनादि से अज्ञानता चलती है।

पाठ बोलना - 'णमो अरहंताणं' - यह आवाज निकलती है। णमो अरहंताणं - यह भाषा की पर्याय है और वह परमाणु तथा परमाणु के गुण से उत्पन्न हुई भाषा (पर्याय) है। आत्मा णमो अरहंताणं की भाषा नहीं कर सकता।

श्रोता : भाषासमिति किस प्रकार पालेगा?

समाधान : भाषासमिति तो अन्दर में राग मन्द करना अथवा न करना, यह (भाषा) समिति है। स्वरूप में पर्याय को सावधान रखना और उस पर्याय को द्रव्य-गुण से उत्पन्न कर रखना - इसका नाम भाषासमिति है। बात दूसरी है बापू! क्या कहें? क्या कहना है? आहा...हा...! अभी सम्प्रदाय में तो सर्वत्र गड़बड़ चलती है। कहीं सत्य बात सुनने मिलना भी कठिन पड़ती है। बापू! क्या कहें?

पर्याय किसे कहना? द्रव्य किसे कहना - यह यहाँ कहा। गुण किसे कहना - यह कहा। अब पर्याय किसे कहना? आहा...हा...! परमाणु और आत्मा में वह पर्याय-अवस्था जो होती है, उस पर्याय की उत्पत्ति का कारण उसका द्रव्य और गुण है। उस द्रव्य और गुण से वह पर्याय रचित है। उस पर्याय को उसके द्रव्य-गुण पहुँचते हैं और प्राप्त करते हैं। आहा...हा...! वह पर्याय दूसरे द्रव्य से होती है - यह अज्ञानी का मिथ्याभ्रम-मिथ्यामान्यता है। वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। भले ही वह त्यागी हुआ हो, साधु हुआ हो और कदाचित् अज्ञानता में पञ्च महाव्रत के परिणाम करता हो (तो भी) वह मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! और वह राग के परिणाम हैं, इसलिए उसे चारित्र है (- ऐसा माननेवाला भी) मिथ्यादृष्टि है। चारित्र की पर्याय है, वह द्रव्य-गुण से उत्पन्न होती है। चारित्र की पर्याय है, वह महाव्रत के परिणाम से उत्पन्न नहीं होती। आहा...हा...! कितना समाहित किया! ऐसा है, प्रभु!

यह ९३ वीं गाथा! अभी ज्ञेय अधिकार की पहली गाथा (चलती है।) कहते हैं - **द्रव्यात्मक भी है...** कौन? कि पर्याय। पर्याय, अर्थात् अवस्था। (उसे) द्रव्यस्वरूप भी कहा जाता है और गुणस्वरूप भी कहा जाता है। **गुणात्मक भी है।**

यहाँ संयोग से अधिक बात की है। **उनमें अनेक द्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत द्रव्यपर्याय है।** (नीचे अर्थ किया है) 'ज्ञान-स्वीकार' अनेक द्रव्यस्वरूप (अर्थात्) आत्मा और परमाणु तथा परमाणु और परमाणु - यह अनेक द्रव्यस्वरूप है। **अनेक द्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति...** (प्रतिपत्ति अर्थात्) ज्ञान; उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं। आहा...हा...! वह कहेंगे। **वह दो प्रकार है (१) समानजातीय** द्रव्यपर्याय और **(२) असमानजातीय** द्रव्यपर्याय। आहा...हा...! कितना याद रखें? एक-एक बात

में अन्तर! लोग नहीं कहते? 'आणंदा कहे परमाणंदा, माणसे-माणसे फेर, एक लाखे तो न मिले, एक तांबियाना तेर' - इसी प्रकार परमात्मा कहते हैं कि प्रभु! तेरी श्रद्धा और वस्तु की श्रद्धा (उसमें) हम कहते हैं कि बात-बात में अन्तर है, प्रभु! आ...हा...हा...!

देखो! जो यह पृष्ठ ऊँचा होता है, वह उसकी अवस्था है; तो कहते हैं कि वह अवस्था अँगुली से ऊँची नहीं हुई है। ऐसी ऊँची होनेवाली अवस्था का कर्ता उसका द्रव्य और गुण है। (पृष्ठ के) परमाणु के द्रव्य और उसके गुणों से वह पर्याय ऐसी उत्पन्न हुई है, अँगुली से नहीं, आत्मा से नहीं। अरे...रे...! ऐसा सब! एक व्यक्ति कहता था - ऐसा निकाला कहाँ से!? ऐसा तो हम पचास-साठ वर्ष से कहीं नहीं सुनते थे। यह अभी का है? यह सोनगढ़ का है? यह तो अनादि से भगवान की वाणी और अनादि से भगवान का कथन ही यह है। आहा...हा...!

उनमें, अनेकद्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत द्रव्यपर्याय है। वह दो प्रकार से है। दो प्रकार कहें हैं, वे विशेष कहेंगे।

प्रवचन नं. ८८　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　दिनाङ्क २९ मई १९७९

'प्रवचनसार' ९३ गाथा। यहाँ तक आया है। पर्याय '**द्रव्यात्मक भी हैं गुणात्मक भी हैं**' सूक्ष्म बात है।

फिर से, देखो! जो यह द्रव्य है; द्रव्य (अर्थात्) आत्मद्रव्य, परमाणुद्रव्य, वह द्रव्य है कैसा? भगवान ने कहा कि विस्तारसामान्य(स्वरूप) गुण हैं, ऐसे अनन्त... अनन्त... गुण विस्तारसामान्य(स्वरूप) हैं, उसका पिण्ड (है) वह द्रव्य-वस्तु (है)। (ऐसे) आत्मा, परमाणु (आदि) छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। तो द्रव्य किसे कहते हैं? कि द्रव्य में जो विस्तार-गुण हैं (वे) ऐसे तिरछे — विस्तारसामान्यसमुदाय(स्वरूप हैं) और उसकी जो एक के बाद एक अनादि-अनन्त पर्यायें होती हैं, उन पर्याय का समुदाय भी यह द्रव्य है। गुण का समुदाय भी द्रव्य है और पर्याय का समुदाय भी द्रव्य (है)। दो द्रव्य नहीं। विस्तारसामान्य गुण का पिण्ड भी (वही) द्रव्य है और वही आयतपर्याय का पिण्ड भी वही द्रव्य है। यह द्रव्य की व्याख्या (कही)। सूक्ष्म बात है, भाई!

अब, उसके गुण(का स्वरूप बतलाते हैं)। द्रव्य में जो विस्तारसामान्य गुण (कहे) थे – ऐसे (तिरछे हैं) उन्हें गुण कहते हैं। परमाणु में भी जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि (हैं, वे परमाणु के गुण हैं)। द्रव्यसामान्य के जो विशेष अनन्त गुण हैं, ये अनन्त गुण हैं, उसे गुण कहते हैं। इन गुणों के पिण्ड को द्रव्य कहा। अब गुण किसे कहा? (यह बतलाते हैं)। आत्मा में एक समय में अनन्त आनन्द, ज्ञान आदि गुण हैं, उनको गुण कहते हैं।

इसी तरह अब, पर्याय किसे कहते हैं? द्रव्य इसको कहते हैं, गुण इसको कहते हैं और (अब) पर्याय किसे कहते हैं? आहा...हा...! यह द्रव्य जो है – विस्तारसामान्य और आयतसामान्य का समुदाय द्रव्य (है) और उसके विशेष – जो उसके गुण हैं, इस द्रव्य और गुण से उत्पन्न हुई पर्याय (है)। आ...हा...! वीतराग का दर्शन सूक्ष्म बहुत! लोगों को कुछ मालूम नहीं। द्रव्य किसे कहते हैं? गुण किसे कहते हैं? पर्याय किसे कहते हैं?

श्रोता : पर्याय (क्या है)?

समाधान : पर्याय पलटती अवस्था है।

श्रोताा : वह द्रव्य की है या गुण की है?

समाधान : द्रव्य और गुण दोनों की (है), अब दोनों की बात चलती है। द्रव्य की पर्याय भी है और गुण की पर्याय भी है। द्रव्य और गुण से पर्याय उत्पन्न हुई है। प्रश्न ठीक किया, अच्छा किया। समझने में सूक्ष्म बात है न, भगवान! आ...हा...!

भगवान ने जाति(रूप से) छह द्रव्य देखें हैं, (वे) संख्या से अनन्त (हैं)। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय और एक आकाश। अब कहते हैं कि द्रव्य किसे कहते हैं? द्रव्य-वस्तु! तो कहते हैं कि उसके (द्रव्य के) जो सामान्य अनन्त गुण(का) विस्तार है, उस विस्तारसामान्य गुण का पिण्ड (है), वह द्रव्य (है) और उसकी जो एक के बाद... एक के बाद... एक के बाद... अनन्त पलटती अवस्था – पर्यायें होती हैं, उन अनन्त पर्यायों का पिण्ड, द्रव्य (है)। गुण और पर्याय का पिण्ड (है), वह द्रव्य (है)।

अब, गुण किसे कहते हैं? कि (आत्मा में) अन्दर जो ज्ञान, दर्शन आदि

विस्तारसामान्य गुण हैं; परमाणु में वर्ण, गंध (आदि) अनन्त हैं, उसे गुण कहते हैं। अब, पर्याय किसे कहते हैं? कि जो द्रव्य है, गुण है, उससे (जो अवस्था) उत्पन्न हुई, उसे पर्याय कहते हैं। आ...हा...! यहाँ तक आया था। पर्याय '**द्रव्यात्मक भी हैं गुणात्मक भी हैं।**' यहाँ तक आया है। है उसमें? हिन्दी में १७२ (नम्बर का) पृष्ठ है। क्या है शब्द? '**द्रव्यात्मक भी हैं गुणात्मक भी हैं।**' है? ये शब्द हैं?

उसमें, अनेक द्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत द्रव्यपर्याय है। है? **द्रव्यात्मक भी है गुणात्मक भी है।** कौन? पर्याय। अब, द्रव्यात्मक और गुणात्मक पर्याय किसे कहते हैं? उसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? (कहते हैं कि) **उसमें, अनेक द्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति...** (अर्थात्) अनेक द्रव्यस्वरूप में एकपना जानने में आये, (वैसे दोनों) है तो भिन्न; फिर भी अनेकद्रव्यस्वरूप का एकता का ज्ञान, (उसके) कारणभूत द्रव्यपर्याय (है)। उसका स्पष्टीकरण बाद में करेंगे।

द्रव्यपर्याय दो प्रकार की है। है? **(१) समानजातीय और (२) असमानजातीय।** द्रव्य और गुण की व्याख्या हो गई। पर्याय की व्याख्या (ऐसी कही कि) द्रव्य और गुण से पर्याय उत्पन्न होती है; परद्रव्य से नहीं होती है। किसी भी द्रव्य की पर्याय परद्रव्य से नहीं होती; अपने द्रव्य और गुण से उत्पन्न होती है। आहा...हा...!

यह शरीर की पर्याय है, देखो! यह (हाथ हिलता है, वह) पर्याय है। (उसके) परमाणु (हैं, वह) द्रव्य (है), उसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श (आदि) अनन्त गुण (हैं)। ये द्रव्य-गुण से ऐसी पर्याय उत्पन्न होती है, आत्मा से नहीं। ऐसे-ऐसे हाथ चलता है, वह आत्मा से नहीं (चलता)। उसके द्रव्य-गुण के कारण से वह पर्याय होती है। आ...हा...हा...! आत्मा से शरीर चलता है - ऐसा तीन काल में नहीं।

ऐसे आत्मा में राग होता है तो भी कहते हैं कि अपने द्रव्य-गुण के आश्रय से राग होता है, पर के कारण से नहीं; और आत्मा में सम्यग्दर्शन होता है - धर्म की पहली शुरुआत (होती है) तो सम्यग्दर्शन की पर्याय भी अपना द्रव्य जो सामान्यसमुदाय और विशेषसमुदाय का पिण्ड है और गुण जो सामान्यसमुदाय है, उस द्रव्य-गुण से सम्यग्दर्शन की पर्याय

उत्पन्न होती है। आहा...हा...! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म (है)।

द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय के दो प्रकार (हैं)। **उसमें, अनेक द्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत द्रव्यपर्याय है। वह दो प्रकार है। (१) समानजातीय और (२) असमानजातीय। उसमें (१) समानजातीय वह है - जैसे कि अनेक पुद्गलात्मक द्विअणुक, त्रिअणुक इत्यादि।** दो परमाणु, तीन परमाणु, चार परमाणु, अनन्त परमाणु (आदि) समानजातीय का समुदाय (है), उसे समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। दो परमाणु, चार परमाणु (ऐसे) अनन्त परमाणु हैं न? (यह शरीर) अनन्त परमाणु का पिण्ड है, उसे द्रव्यपर्याय कहने में आता है - परमाणु की द्रव्यपर्याय कहने में आता है। आ...हा...! ऐसी बात है।

श्रोता : यह सब समझने की क्या जरूरत है?

समाधान : यह सब समझकर पर्याय से लक्ष्य उठाकर द्रव्य पर दृष्टि करना, यह समझना है। पर्याय और द्रव्य-गुण का भेद समझकर, उस पर से दृष्टि उठाकर द्रव्य पर दृष्टि लाना, यह सम्यग्दर्शन का कारण है। अरे...रे...! क्या हो? भाई! भाषा तो सादी है परन्तु वस्तु / भाव तो भगवान ने जो कहा, उनके अनुसार होना चाहिए न!

(यहाँ) कहते हैं कि पर्याय के दो प्रकार - एक द्रव्यपर्याय, एक गुणपर्याय। अब, द्रव्यपर्याय के दो प्रकार - (१) समानजातीय (२) असमानजातीय। समानजातीय (द्रव्यपर्याय) किसे कहते हैं? कि दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु का जो पिण्ड दिखता है, (उसे) समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। पर्यायबुद्धि छुड़ाने को यह बतलाते हैं। आहा...हा...!

यह शरीर है, वह समानजातीय द्रव्यपर्याय है। ये सब अनन्त परमाणु हैं न? तो ये अनन्त परमाणु हैं, वे समानजातीय द्रव्यपर्याय है, आत्मा की (पर्याय) नहीं।

श्रोता : शरीर किसका? आत्मा का नहीं?

समाधान : शरीर जड़ की पर्याय का है। शरीर जो है, वह द्रव्यपर्याय है। अनेक

परमाणु का एकरूप (पिण्ड है), उसे यहाँ समानजातीय द्रव्यपर्याय (कहने में आता है)। परमाणु-परमाणु समानजाति है न? और अनन्त (परमाणु) को एक गिनने में आया है तो पुद्गल के अनन्त परमाणु के एकरूप (पिण्ड को) समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो 'प्रवचनसार' (अर्थात्) भगवान की वाणी है। प्र + वचन है। 'प्र' अर्थात् विशेषरूप से; ध्रुव द्रव्य। धुनि (अर्थात्) दिव्यध्वनि। भगवान त्रिलोकनाथ (हैं), उनकी दिव्यध्वनि। ॐकार! 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे' और गणधर अर्थ का विचारकर, आगम रचकर उपदेश करते हैं तो भव्यजीव 'संशय निवारे।' आहा...हा...!

(यहाँ) कहते हैं कि द्रव्य (किसे कहते हैं? कि) अपने गुण और त्रिकाली पर्याय का पिण्ड (है), उसे द्रव्य कहा। गुण (किसे कहा?) कि विस्तारसामान्यसमुदाय को गुण कहा। पर्याय (किसे कही?) कि जो द्रव्य और गुण कहे, उन दोनों से उत्पन्न हुई (जो अवस्था है), वह पर्याय (है)। इस पर्याय के दो प्रकार (हैं)। (१) समानजातीय द्रव्यपर्याय (२) असमानजातीय द्रव्यपर्याय। गुणपर्याय दो प्रकार की (हैं)। (१) स्वभावपर्याय (२) विभावपर्याय। आहा...हा...! है (पाठ में)?

जैसे कि अनेकपुद्गलात्मक... है न? अनेक पुद्गल (अर्थात्) यह जो द्रव्यपर्याय है, वह समानजातीय जड़ की पर्याय है। समानजातीय (अर्थात्) परमाणु-परमाणु एक जाति के हैं न? तो यह द्रव्यपर्याय जड़ की है। यह होंठ की, शरीर की, हाथ की (पर्याय हैं), वह सब द्रव्यपर्याय (हैं)। अनेक परमाणु को एकरूप मानकर, ऐसे (जो) एकरूप जानने में आती है, उसे अनेक पुद्गल(परमाणु) की समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आती है। ऐसी बातें हैं!

अब, असमानजातीय (द्रव्यपर्याय कहते हैं)। **असमानजातीय वह है - जैसे कि जीवपुद्गलात्मक देव,...** (अर्थात्) जीव और शरीर दोनों एक स्थान में रहते हैं, उसे असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं। परमाणु-परमाणु एकसाथ रहते हैं, उसे समानजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं और जीव और शरीर दोनों एकसाथ रहते हैं, इस अपेक्षा से उसे असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। आ...हा...हा...हा...! वीतराग, तीन लोक के

नाथ सर्वज्ञ के अलावा यह बात अन्य किसी मत में है ही नहीं।

सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने जो तीन काल-तीन लोक देखे हैं, उसकी यहाँ व्याख्या है। 'कुन्दकुन्दाचार्य महाराज' दिगम्बर सन्त, भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह ('प्रवचनसार' शास्त्र) बनाया। एक हजार वर्ष के बाद 'अमृतचन्द्राचार्य' हुए, उनकी यह टीका है। मूल श्लोक 'कुन्दकुन्दाचार्य' के हैं, यह टीका 'अमृतचन्द्राचार्य' की है। आज से एक हजार वर्ष पहले हुए। आहा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू! धीरे... धीरे... समझना।

समानजातीय द्रव्यपर्याय किसे कहते हैं? कि अनेक परमाणु एक साथ रहते हैं। एक होते नहीं परन्तु एक साथ रहते हैं - ये होंठ, शरीर, उँगलियाँ - ये सब जड़ की समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आती हैं। आ...हा...! आत्मा से यह पर्याय उत्पन्न हुई - ऐसा नहीं है। यह पर्याय जो उत्पन्न हुई है, वह परमाणु के द्रव्य-गुण-पर्याय से उत्पन्न हुई है और एक साथ बहुत परमाणु गिनने में आते हैं तो अनेक द्रव्य की समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आती है। आहा...हा...!

अब, असमानजातीय (द्रव्यपर्याय की व्याख्या कहते हैं)। **जीवपुद्गलात्मक देव, मनुष्य इत्यादि।** यह मनुष्य कहने में आता है, (उसमें) जीव अन्दर है और यह जड़ मनुष्य शरीर है। दो को एक साथ देखने में आया तो उसे असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। ऐसी बातें हैं! यह द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या है। परमात्मा के घर की सूक्ष्म (बातें हैं)।

परमात्मा ने जो अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु (केवलज्ञान में) देखें उसमें उसका द्रव्य क्या? गुण क्या? और पर्याय क्या? एक-एक द्रव्य में द्रव्य क्या? गुण क्या? और पर्याय क्या? समझ में आया? द्रव्य क्या? गुण क्या? और पर्याय क्या? आहा...हा...! यहाँ पर्याय क्या? - (उसकी बात) चलती है। द्रव्य-गुण की बात तो कल चल गई। आहा...हा...!

भगवान ने पलटती पर्याय-अवस्था-दशा उसको कही कि जो अपना द्रव्य-गुण है, उससे उत्पन्न होती है। पर के कारण से यह पर्याय उत्पन्न होती है – (ऐसा है नहीं)।

आहा...हा...! यह पन्ना है, देखिये! ऐसा दिखता है, वह पर्याय हुई परन्तु यह समानजातीय परमाणु की पर्याय है। अँगुली ने यह (पर्याय) बनाई नहीं। आत्मा ने पन्ना ऊपर किया, ऐसा नहीं है। उसकी समानजातीयद्रव्यपर्याय से ऐसे ऊपर हुआ है, उसकी पर्याय हुई है। परमात्मा की ऐसी बातें हैं, बापू! लोगों को तत्त्व की खबर नहीं और सामायिक कर ली, प्रौषध कर लिये तो (मान लेते हैं कि) धर्म... धर्म हो गया! कहाँ से (धर्म हो गया?) अभी तो चीज क्या है? द्रव्य किसे कहते हैं? पदार्थ किसे कहते हैं? पदार्थ की शक्ति किसे कहते हैं? और पदार्थ की अवस्था – पलटती अवस्था किसे कहते हैं? – इसकी खबर नहीं है। किसी की अवस्था किसी से उत्पन्न होती है – ऐसी मान्यता तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...!

असमानजातीय वह है – जैसे कि जीव-पुद्गलात्मक देव, मनुष्य इत्यादि। द्रव्यपर्याय के दो प्रकार लिये हैं। कौन से दो? समानजातीय (और) असमानजातीय। समानजातीय, अर्थात् ये परमाणु-परमाणु एकसाथ दिखते हैं तो यह समानजातीयद्रव्यपर्याय (है); (वह) आत्मा से उत्पन्न नहीं हुई है। आहा...हा...! दूसरी बात – जो कर्मबन्धन होता है, वह कर्म के परमाणु है, उसका गुण है, उससे वह कर्मबन्धन की पर्याय उत्पन्न होती है; आत्मा ने राग किया तो कर्मबन्ध की पर्याय उत्पन्न हुई – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : सिद्ध भगवान को कर्म नहीं बँधते।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वतन्त्र है, वहाँ अकेली शुद्धपर्याय हुई (है)। अपने द्रव्य और गुण से पूर्ण शुद्धपर्याय हुई (तो कर्मबन्ध) समाप्त हो गया, (फिर भी) यहाँ अशुद्धता है तो कर्मबन्ध हुआ, ऐसा भी नहीं – ऐसा यहाँ कहते हैं। जो कर्मबन्धन-परमाणु (का) बन्धन होता है, वह समान जाति के परमाणु (की) एक समय में द्रव्यपर्याय कहने में आती है। कर्म की पर्याय को समानजातीयद्रव्यपर्याय कहने में आता है। आहा...हा...!

यह असमान (है)। (अर्थात्) शरीर और आत्मा एक जाति (के) नहीं (हैं), असमान / भिन्न हैं। दोनों को मिलाकर कहने में आया है, वह असमानजातीयद्रव्यपर्याय कहने में आयी है। आ...हा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं, बापू! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! इस

तत्त्व की वास्तविक दृष्टि और ज्ञान हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहा...हा...! और सम्यग्दर्शन के बिना तीन काल में धर्म नहीं होता। आहा...हा...!

पर्याय बताई, गुण बतायें, किन्तु सब भेद की दृष्टि छोड़कर, एक द्रव्यस्वरूप अखण्ड अनन्त गुण और अनन्त पर्याय का पिण्ड जो है, उस द्रव्य पर दृष्टि देने से, पर्यायदृष्टि छोड़ने से, सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली (सीढ़ी) - चौथा गुणस्थान होता है। आ...हा...हा...! श्रावक और मुनि की दशा तो कोई अलग है, बापू! आ...हा...! वह तो कोई अलौकिक बातें हैं! आज तो (वह दशा होनी) मुश्किल है, अभी तो सम्यग्दर्शन की बात में विवाद है। आहा...हा...!

परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, पर्याय के दो प्रकार कहते हैं। एक पदार्थ समानजातीय (द्रव्य की है)। (अर्थात्) परमाणु-परमाणु एकरूप दिखते हैं, वह समानजातीय द्रव्यपर्याय है। (दृष्टान्तरूप में) अकेले शरीर की (पर्याय); और असमानजातीय (द्रव्यपर्याय उसे कहते हैं कि), जीव और शरीर (एक साथ) ज्ञान में दिखते हैं (तो) दोनों को मिलाकर (कहना); दोनों मिले नहीं हैं, फिर भी दोनों को मिलाकर कहना, वह असमानजातीयद्रव्यपर्याय है। ऐसा है, भगवान! आहा...हा...! तू भी भगवान है, प्रभु! आ...हा...! आहा...हा...!

श्रोता : जीवद्रव्य समानजातीय, असमानजातीय क्या हुआ?

समाधान : जीव तो भिन्न ही है। जीव की पर्याय भिन्न है और शरीर की पर्याय भिन्न है परन्तु (दोनों को) एक साथ गिनने में आता है, उसे असमानजातीयद्रव्यपर्याय कहने में आता है। जानने में (एक साथ जानने में आती है परन्तु) एकरूप हुई नहीं, एक हुई नहीं है।

श्रोता : आत्मा में जो राग-द्वेष भाव पैदा होते हैं, वे असमानजातीय हैं या क्या हैं?

समाधान : नहीं, असमानजातीय नहीं। वह (बात) नहीं। अभी वह (बात) नहीं है। अभी तो राग होता है, वह अपने द्रव्य-गुण से होता है - (ऐसा सिद्ध करना है); फिर राग विकार है, इसलिए (उसकी) दृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन (है)। यहाँ तो राग भी उत्पन्न होता है, वह अपने द्रव्य-गुण से उत्पन्न होता है - ऐसा सिद्ध करना

है, प्रभु! कर्म से नहीं, पर से नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? धीरे-धीरे कहते हैं, आ...हा...हा...! यहाँ तो राग क्या, मिथ्यात्व उत्पन्न होता है... आ...हा...हा...हा...! वह अपने द्रव्य-गुण से उत्पन्न होता है, पर से नहीं, कर्म से नहीं, शरीर से नहीं। स्त्री-कुटुम्ब-परिवार से मिथ्यात्व उत्पन्न होता है - ऐसा नहीं। आहा...हा...! मिथ्याश्रद्धा (अर्थात्) पुण्य को धर्म मानना और राग-कषाय मन्द हो तो मुझे धर्म होगा - ऐसा जो मिथ्यात्वभाव (है), उस मिथ्यात्वभाव की उत्पत्ति अपने द्रव्य-गुण के कारण से होती है। आहा...हा...! समझ में आये उतना समझना, प्रभु! यह मार्ग तो वीतराग तीन लोक के नाथ (का कहा हुआ है)। अभी तो यह करो... यह करो... व्रत करो, तप करो, उपवास करो... करते-करते सब मिथ्यात्व बुद्धि में चले जाते हैं। आहा...हा...!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि पर्याय किसे कहें? कि पर्याय, द्रव्य-गुण से उत्पन्न हो, वह पर्याय (है)। पर्याय के भेद कितने हैं? (तो कहते हैं कि) पर्याय के दो भेद हैं। एक द्रव्यपर्याय, एक गुणपर्याय। द्रव्यपर्याय के कितने भेद हैं? द्रव्यपर्याय के दो भेद हैं। एक समानजातीय द्रव्यपर्याय (और) एक असमानजातीय द्रव्यपर्याय। समानजातीय पर्याय (उसे कहते हैं कि) दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु की पर्याय को समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है और यह शरीर और आत्मा एक साथ दिखते हैं, परन्तु हैं भिन्न, उसे असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। आहा...हा...! शरीर की पर्याय है, वह समानजातीय द्रव्यपर्याय है।

श्रोता : फिर जीव में (मनुष्यपर्याय में) कैसे गिनने में आता है?

समाधान : परन्तु साथ में जीव है, (उसे) साथ में गिनने में आया (दोनों एक हुए नहीं हैं, मात्र) साथ में 'गिनने में' आया कि यह असमानजातीय पर्याय-जड़ और चैतन्य की असमानजातीय (पर्याय) उत्पन्न हुई, उसे असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है।

श्रोता : (शरीर की पर्याय) तो पुद्गल की है तो (वह) समानजातीय (पर्याय) हो गई।

पूज्य गुरुदेवश्री : (उसमें) ऐसा है कि इस शरीर की जो यह पर्याय है, वह तो समानजातीय द्रव्यपर्याय (है)। आत्मा और दूसरा आत्मा तो एक होते नहीं। परमाणु

(का) एक साथ मिलना होता है, तो परमाणु में दो से अनन्त हुए, एक होते नहीं, (परन्तु) स्कन्धरूप जो देखा (तो) उसे समानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। यह समानजातीय द्रव्यपर्याय जड़ की है, हाँ! इस शरीर की (है)। यह वाणी की, जीभ की (जो पर्याय है, वह) समानजातीय द्रव्यपर्याय है और आत्मा उससे भिन्न है। आत्मा की जो रागादि पर्याय होती है अथवा सम्यग्दर्शन होता है, वह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से होता है परन्तु आत्मा और शरीर दोनों (को) क्षेत्र से एक साथ गिनने में आया (और) एक साथ गिनने में आया तो वह असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। समझ में आया? यह तो 'प्रवचनसार' (है)। 'कुन्दकुन्दाचार्य महाराज' का कहा हुआ है! आ...हा...! ऐसा कहीं नहीं है।

एक श्वेताम्बर का (आदमी) है न? वह 'काशी' में मिला था। वह ऐसा कहता है कि 'कुन्दकुन्दाचार्य' ने नग्नपना आग्रह करके कहा है!' (यह) झूठी बात है। मुनि का नग्नपना तो अनादि से है। वस्त्रसहित मुनिपना, वह तो मुनिपना है ही नहीं। समझ में आया? उसने पेपर (आता है) उसमें लिखा है कि 'कुन्दकुन्दाचार्य' ने नग्नपना का आग्रह करके नग्नपना स्थापित किया!' झूठी बात है। अनादि से यह मार्ग है, यह मार्ग कोई नया नहीं है। श्वेताम्बर पन्थ है, वह तो दिगम्बर में से (भ्रष्ट होकर) मिथ्यादृष्टि हुए बाद में अलग हुआ है और स्थानकवासी तो मूर्ति की उत्थापना करके मिथ्यादृष्टि होकर अलग हुए हैं। यह दिगम्बर धर्म है, यह कोई नया नहीं है। अनादि का सर्वज्ञ परमात्मा का कहा है। उसने ऐसा लिखा है कि, 'कुन्दकुन्दाचार्य' ने नग्नपना आग्रह करके स्थापित किया है!' झूठी बात है। अनादि (से) मुनि अपरिग्रही होते हैं। वस्त्र का टुकड़ा भी मुनि को नहीं होता और वस्त्र का टुकड़ा रखकर (स्वयं) मुनि है - ऐसा माने, मनावे (तो) निगोद में जायेगा। बात तो ऐसी है, भगवान! 'अष्टपाहुड़' में 'सूत्रपाहुड़' है, (उसमें कहा है कि) वस्त्र का एक भी टुकड़ा रखकर 'हम मुनि हैं, साधु हैं' (ऐसा माने) और मुनि मनवाते हैं (तो) निगोद में जायेगा। तो वह कहता है कि 'वह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने आग्रह करके स्थापित किया है!' क्योंकि उसमें तो पाठ ऐसा है न कि तीर्थङ्कर हों तो भी वस्त्रसहित मुनिपना नहीं होता। - ऐसा 'अष्टपाहुड़' में पाठ है। तीर्थङ्कर (भी) जब तक वस्त्रसहित हैं, तब तक मुनिपना नहीं हैं। अन्तर में आनन्द का नाथ जागा, विशेष स्वसंवेदन उत्पन्न

हुआ, तब वस्त्र छूट जाता है। वस्त्र रहते हैं और मुनिपना होता है – (ऐसा) तीन काल में नहीं है। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई!

वस्त्र जो है, वह समानजातीयद्रव्यपर्याय है। समानजातीयद्रव्यपर्याय! और यह वस्त्र और आत्मा का व्यवहार से एकसाथ जुड़ान गिनने में (आये) तो उसे असमानजातीय द्रव्यपर्याय कहने में आता है। भाषा तो सादी है, प्रभु!

आ...हा...! प्रभु ने मार्ग तो (ऐसा कहा है), दिगम्बर सन्तों! केवलज्ञान के आड़तियों ने तो केवलज्ञान खड़ा कर दिया है!! आहा...हा...! उसमें कहीं सन्देह का स्थान नहीं है। परन्तु समझना करना कठिन बहुत, भाई! वर्तमान में तो (सब) गड़बड़ चलती है। व्रत करो, उपवास करो, गजरथ निकालो... परन्तु वह तो जड़ की पर्याय है। वह पर्याय तो समानजातीय परमाणु से उत्पन्न होती है, तुझ से नहीं। हाँ, तुझ में शुभराग हुआ, वह राग तेरे द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुआ है। वह रथ निकलता है, उससे राग उत्पन्न हुआ – ऐसा है नहीं।

भगवान का दर्शन करने से अन्दर जो राग हुआ, वह राग उनके दर्शन से उत्पन्न नहीं हुआ है। वह द्रव्यपर्याय भिन्न है और इस (आत्मा की) द्रव्यपर्याय भिनन है, तो उससे राग उत्पन्न नहीं हुआ; राग तो अपने द्रव्य-गुण के आश्रय से, अपने में अपने से हुआ है। भगवान को देखकर हुआ है, ऐसा है नहीं। अरे...रे...! ऐसी बातें! प्रभु का मार्ग (ऐसा है), बापू! तू प्रभु है! आहा...हा...! वह तो (भक्ति में) नहीं आया? 'प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा...' 'प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम' पर की आश क्यों करते हो, प्रभु! राग, शरीर, वाणी आदि तो सब पर (हैं)। 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, तुम कहाँ है अधूरा' अधूरे कहाँ हो? प्रभु! तुम तो अन्दर पूर्णानन्द के नाथ हो न! आहा...हा...! अरे...रे...! क्या हो? भाई! (लोग ऐसा कहते हैं कि) 'सोनगढ़ का ऐसा है...!' (किन्तु) भाई! यहाँ तो भगवान कहते हैं, वह बात है। यहाँ 'सोनगढ़' की बात नहीं है। समझ में आया?

(यहाँ कहते हैं कि), '**असमानजातीय**' (बाद में) वस्त्र का दृष्टान्त देंगे। जैसे जीव-पुद्गलस्वरूप देव, मनुष्य को असमानजातीयद्रव्यपर्याय कहने में आता है। द्रव्यपर्याय के दो प्रकार आये।

(अब), गुण(पर्याय) के दो प्रकार (कहते हैं)। **गुण द्वारा आयत की अनेकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत गुणपर्याय हैं।** क्या कहते हैं? आत्मा के ज्ञान, दर्शन, आदि गुण; परमाणु के वर्ण, गंध आदि गुण की आयत (अर्थात्) लम्बाई (अपेक्षा से) पर्याय (होती है), एक के बाद एक पर्याय होती है (उसकी) **अनेकता की प्रतिपत्ति...** अनेक की प्रतिपत्ति अर्थात् स्वीकार, उसके (-गुण द्वारा आयत की अनेकता की) कारणभूत को गुणपर्याय कहने में आता है। आ...हा....हा...!

समानजातीय, असमानजातीय (ऐसे) द्रव्यपर्याय के दो प्रकार लिये। अब, गुणपर्याय (कहते हैं)। अपने **गुण द्वारा आयत...** अर्थात् पर्याय। (ऐसी) अनेक पर्याय की **प्रतिपत्ति की कारणभूत गुणपर्याय...** कहने में आता है। आहा...हा...! आत्मा में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान आदि जो क्रमसर ज्ञान होता है, वह आयत अर्थात् लम्बाई (है) और वह अनेक हुआ। **अनेकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत गुणपर्याय है।** इसे गुणपर्याय कहने में आता है। ऐसी बात है। द्रव्यपर्याय के दो प्रकार कहे। अब, गुणपर्याय के दो प्रकार (कहते हैं)। आहा...हा...!

गुण द्वारा आयत... अर्थात् लम्बाई-पर्याय। एक के बाद एक पर्याय होती हैं, वह **अनेकता की प्रतिपत्ति...** (नीचे अर्थ) है? (प्रतिपत्ति = प्राप्ति; ज्ञान; स्वीकार)। उसके **कारणभूत गुणपर्याय है।** उस गुण(पर्याय के) **भी दो प्रकार है।** (अर्थात्) गुणपर्याय के भी दो प्रकार हैं। आहा...हा...! **(१) स्वभावपर्याय और (२) विभावपर्याय।** गुणपर्याय के भी दो भेद हैं। (१) स्वभावपर्याय (२) विभावपर्याय।

उसमें समस्त द्रव्यों के अपने-अपने अगुरुलघुगुण द्वारा प्रतिसमय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप अनेकत्व की अनुभूति वह स्वभावपर्याय है... प्रत्येक द्रव्य में अगुरुलघु(गुण) के कारण पर्याय में षट्गुणहानिवृद्धि अनादि-अनन्त पर्याय में होती है। आहा...हा...! उसे स्वभावगुणपर्याय कहने में आता है। उसमें विभाव नहीं, विकार नहीं (लेना)। समझ में आया?

गुणपर्याय के दो प्रकार (हैं)। उसमें अगुरुलघु(गुण) की षट्गुणहानिवृद्धि की जो अनेक पर्याय होती हैं, उसे यहाँ गुणपर्याय कहने में आता है। आहा...हा...! है? उसे

स्वभावगुणपर्याय कहने में आता है। वह स्वभावपर्याय है। अगुरुलघुगुण के कारण अनन्त गुण की जो षट्‌गुणहानिवृद्धिरूप दशा होती है, उसे स्वभावगुणपर्याय कहने में आता है। सब दूसरी जाति की बात है।

(२) रूपादि के या ज्ञानादि के... देखिये, इसमें तो यही लिया है, भाई! इस शरीर में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श है, वह रूपादिक (है) और आत्मा में ज्ञानादिक हैं (वह ज्ञानादि है)। उसके **स्व-पर के प्रवर्तमान...** आत्मा(में) राग है (उसमें) उपादान अपना है और निमित्त कर्म है। **स्व-पर के कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्था...** (अर्थात्) पहले की और पीछे की दशा में **होनेवाले तारतम्य...** अर्थात् हीनाधिकता। (उसके) **कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति विभावपर्याय है।** इसमें कितना याद रहे ? आहा...हा...!

फिर से, रूप-वर्ण, गंध, रस, रूप अर्थात् वर्ण। परमाणु में रग, गंध, रस, स्पर्श (गुण हैं) उसकी जो हीनाधिकरूप पर्याय होती हैं, वह विभावपर्याय है। आत्मा में भी ज्ञान, दर्शन, आनन्द में रागादि की विकारता अथवा मतिज्ञान आदि (है), उसे यहाँ विभावपर्याय कहने में आता है। आहा...हा...!

रूपादि के या ज्ञानादि के स्व-पर के कारण (प्रवर्तमान पूर्वोत्तर)... है ? (स्व-पर के अर्थात्) स्व उपादान और पर निमित्त (है)। पूर्वोत्तर = पहले की और बाद की। आ...हा...! आपत्ति = आपतित, आ पड़ना। (अर्थात्) जानने में आता है, (ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...! **पूर्वोत्तर अवस्था में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप...** विभाव भी है तो स्वभाव(विशेषरूप)। (ऐसे) स्वभावविशेषरूप अनेकत्व को जानना, वह विभावपर्याय है। लोगों को इस मूलतत्त्व का अभ्यास नहीं और ऐसे ही, चलो सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, त्याग करो... लेकिन किसका (त्याग) ? मिथ्यात्व के त्याग के बिना पर का त्याग कहाँ (से आया) ? और पर का त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है ही नहीं।

'समयसार' में पीछे (परिशिष्ट में) ४७ शक्ति (का वर्णन) है। (उसमें) एक शक्ति ऐसी ली है कि त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। आत्मा के अलावा परपदार्थ के त्याग

और ग्रहण से आत्मा शून्य है। जड़ को ग्रहण क्या करे ? और जड़ को छोड़े क्या ? आहा... हा... ! उससे तो भगवान आत्मा भिन्न है। आहा...हा... ! पर के त्याग-ग्रहण से शून्य है। यहाँ तो (अज्ञानी मानता है कि) पर को छोड़ा तो 'मैंने त्याग किया !' क्या त्याग किया ? अभी तो तूझे मिथ्यात्व का त्याग नहीं है और यह त्याग कहाँ से आया ? समझ में आया ?

दया, दान, व्रत, भक्ति के जो शुभपरिणाम हैं, वह धर्म नहीं, अधर्म है। अधर्म में धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। अभी तो दृष्टि में अधर्म का त्याग (हुआ) नहीं और बाहर के त्याग में 'मैं त्यागी हो गया' - ऐसा कहाँ से आया ? आ...हा...हा... ! ऐसी बातें हैं, बापू !

प्रभु (आत्मा) अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण से भरा है, जिसकी संख्या का पार नहीं। एक-एक आत्मा में, हाँ ? आ...हा...हा... ! जितने आत्मा हैं, उनसे अनन्तगुने परमाणु हैं, उससे अनन्तगुना त्रिकाल का समय है, उससे अनन्तगुने आकाश के प्रदेश हैं, यह लोक है वहाँ तक भगवान ने चौदह ब्रह्माण्ड देखा है, वह असंख्य योजन में है, खाली है, वह अलोक है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आकाश (खाली जगह है उसका) कहीं अन्त नहीं। उस आकाश में एक परमाणु (जितनी जगह रोके उसे) प्रदेश कहने में आता है। (ऐसे) आकाश के प्रदेश की जितनी संख्या है, वह अपार (है)। दसों दिशा में कहीं पार नहीं। पीछे क्या... पीछे क्या... पीछे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... लक्ष्य में चले जाओ तो कहीं अन्त नहीं। ऐसे आकाश के प्रदेश की जो संख्या हैं, उससे अनन्तगुने गुण एक आत्मा में हैं !! आ...हा...हा...हा... ! समझ में आया ? अरे... ! एक परमाणु में भी अनन्त गुण हैं। जितनी संख्या आत्मा में चैतन्य (गुण) की है, उतनी ही वहाँ जड़ की संख्या है। एक परमाणु में भी आकाश के प्रदेश से अनन्तगुने गुण हैं। आ...हा...हा... ! अभी तो द्रव्य और गुण किसे कहते हैं ? - (इसकी खबर नहीं है)। बाद में पर्याय कहेंगे। आ...हा... !

एक हिन्दी भाई थे, वह लगता है कि चले गये। लगता है, गये। सूक्ष्म बहुत पड़े। (ऐसा कहते थे कि), 'राग को मूर्त कहना चाहिए !' अरे... प्रभु ! वह तो व्यवहारनय से- असद्भूत व्यवहारनय से जानने (लायक) है। आदरणीय तो प्रभु आत्मा (है)। अनन्त गुण पूर्णानन्द(स्वरूप) ! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त का कहीं अन्त

नहीं। आदर (करने लायक) और उपादेय तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव जो है, वह उपादेय है। उसे उपादेय-आदरणीय करने से सम्यक् होता है। बाकी दूसरी रीत से तीन काल में कभी सम्यक् नहीं होता। आहा...हा...! देव, गुरु और धर्म की श्रद्धा भी राग है, वह सम्यक् नहीं। नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा भी राग है, वह सम्यग्दर्शन नहीं।

आ...हा...हा...! भगवान आत्मा! जिसमें आकाश के प्रदेश की संख्या से अनन्तगुने गुण हैं! आकाश का अन्त कहीं नहीं, उसके प्रदेश से अनन्तगुने गुण! आ...हा...हा...! ऐसे अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य (है)। वह आ गया है। आहा...हा...! विस्तारसामान्य (आ गया)। विस्तारसामान्य जो गुण हैं, उसका एकरूप वह द्रव्य है। विस्तारसामान्य गुण द्रव्य के आधार (पर) हैं। ऐसे द्रव्य की दृष्टि करना। ज्ञायकभाव पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु! (की दृष्टि करना)। आहा...हा...! पर की दृष्टि तो छोड़ना, पर्यायदृष्टि छोड़ना, राग की दृष्टि छोड़ना और गुण-गुणीभेद की दृष्टि भी छोड़ना। आहा...हा...! हाँ, समझने में तो सब लेना। पर्याय है, राग है। ये हैं तो अवश्य परन्तु आश्रय करने लायक नहीं है। आश्रय करने लायक तो त्रिकाली प्रभु! (जिसे) 'समयसार' की ग्यारहवीं गाथा में **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।** (कहा)। भूतार्थ भगवान जो त्रिकाल परमात्मस्वरूप एकरूप है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। बाकी और कोई रीत से सम्यग्दर्शन नहीं हुआ और सम्यग्दर्शन के बिना (सच्चे) ज्ञान, चारित्र, व्रत, तप कुछ नहीं होते। आहा...हा..! ऐसी बातें हैं!

यहाँ यह कहते हैं, विभावपर्याय की व्याख्या चलती है। (रूपादि के और ज्ञानादि के) **पूर्वोत्तर अवस्था में होनेवाले तारतम्य...** (अर्थात्) हीनाधिक (उसके) **कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप...** विभाव है तो स्वभाव(विशेषरूप), हाँ! लो! (लोग) चिल्लाते थे न? 'राग-द्वेष जीव की पर्याय!? विभाव-जीव की पर्याय आत्मा से हुई है!?' (यहाँ कहते हैं कि) विभाव आत्मा से हुआ है, पर से नहीं।

एक द्रव्य जो है (अथवा) प्रत्येक द्रव्य जो अनन्त हैं, वे अपने गुण और अपनी पर्याय को गूँथते हैं-छूते हैं परन्तु पर की पर्याय को तो कभी छूते ही नहीं। अर...र...र...! ऐसी बात! समझ में आया? 'समयसार' (की) तीसरी गाथा में कहा है। प्रत्येक द्रव्य

अपने गुण और त्रिकाली शक्ति-विस्तारसामान्य और आयतसामान्य-पर्याय को ही (अर्थात्) गुण-पर्याय को ही द्रव्य गूँथते-छूते हैं। पर की पर्याय को तीन काल तीन लोक में छूते नहीं। आत्मा, कर्म की पर्याय को कभी छुआ ही नहीं। आत्मा, शरीर की पर्याय को कभी छुआ ही नहीं। शरीर की पर्याय आत्मा को कभी छुई नहीं। कर्म का उदय राग को कभी छुआ नहीं।

श्रोता : इसमें तो 'स्व-पर के कारण' ऐसा लिखा है।

समाधान : निमित्त कहा न! निमित्तकारण (है)। स्व-उपादान स्वयं से हुआ है। निमित्तकारण है। विभाव कहना है न? विभाव बतलाना है न इसलिए। फिर भी 'स्वभावविशेष' कहा है। आहा...हा...! ऐसा है। **तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति विभावपर्याय है।**

अब यह (पूर्वोक्त कथन) दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं - (पूर्वोक्त बात) एकदम समझ में नहीं आये तो हम समझने को दृष्टान्त से कहते हैं। इस प्रकार 'अमृतचन्द्राचार्य' महाराज दृष्टान्त (देकर समझाते हैं)। आहा...हा...!

जैसे सम्पूर्ण पट,... अर्थात् वस्त्र। **अवस्थायी (स्थिर) विस्तारसामान्यसमुदाय से...** वस्त्र जो है, उसके सामान्यविस्तार गुण हैं। **और दौड़ते...** (हुए) पर्याय। **ऐसे आयतसामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ तन्मय ही है,...** परमाणु के-वस्त्र के अनन्त गुण और उसकी पर्याय (है), उस गुण-पर्याय में पट (-वस्त्र) तन्मय है, आहा...हा...! समझ में आया? भाषा तो सादी है।

यहाँ तो कहते हैं कि पट (अर्थात्) वस्त्र स्थिर विस्तारसामान्यसमुदाय (स्वरूप है)। आत्मा में गुण जो हैं, (वे) स्थिर-ध्रुव हैं। अभी तो पट में (कहते हैं) फिर आत्मा में उतारेंगे। (ऐसा पट) **विस्तारसामान्यसमुदाय से और दौड़ते...** आहा...हा...! पट में एक के बाद एक पर्याय (होती है)। एक के बाद एक अवस्था दौड़ती (हुई हो रही है)। अर्थात् बीच में विघ्न नहीं (है)। पट में क्रमबद्धपर्याय चलती है। **(- बहते, प्रवाहरूप) हुए ऐसे आयतसामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ तन्मय ही है,...** पट अपने गुण और पर्याय में तन्मय है। पट-यह वस्त्र जो है, वह अपने वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि गुण

हैं और अपनी पर्याय (है), (ऐसे) अपने गुण-पर्याय में यह वस्त्र तन्मय है। आत्मा को तो छूता नहीं, शरीर को वस्त्र छूता नहीं। आहा...हा...! ऐसी बातें कहाँ की (होगी) ? बापू! भगवान के घर की यह बात है! जिनेश्वरदेव! उनका (कहा हुआ) जो द्रव्य-तत्त्व, उनके कहे हुए गुण और पर्याय, ये कोई अलौकिक बातें हैं!! आ...हा...हा...!

कहते हैं कि पट अपने विस्तारसामान्यसमुदाय अर्थात् गुण और क्रम-क्रम में होती हुई पर्यायें, उससे रचित होता हुआ पट गुण-पर्याय में तन्मय है। आहा...हा...! अपने गुण-पर्याय में वस्त्र तन्मय है। वस्त्र, शरीर को (छूता नहीं)। अपने गुण और पर्याय से एक प्रदेश भी दूर हटते नहीं। आहा...हा...! ऐसी बातें! यह तो भगवान की ९३ वीं गाथा (हैं)! अभी तो 'प्रवचनसार' के 'ज्ञेय अधिकार' की पहली गाथा (है)। यह समकित अधिकार है। आहा...हा...! अरे...! उसे (इसका) अभ्यास चाहिए, भाई! यह तो वीतराग की कॉलेज है! सर्वज्ञभगवान त्रिलोकनाथ के कथन की कॉलेज है! उसमें थोड़ा-बहुत जानपना हो तो कॉलेज में समझ सके। आहा...हा...!

दृष्टान्त देकर क्या कहा? कि जैसे यह वस्त्र है (वह) अपने गुण जो कायम रहनेवाली शक्तियाँ - वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और अवस्था - यह सफेद (रंग) आदि (उसकी) पर्याय है (वह) एक के बाद एक होती है। इन गुण-पर्याय में वस्त्र तन्मय है। ऐसे प्रत्येक पदार्थ... है? **उसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ 'द्रव्य' नामक अवस्थायी...** द्रव्य नामक! **अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय से और दौड़ते हुए आयतसामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ...** आ...हा...हा...हा...! प्रत्येक वस्तु-परमाणु से लेकर आत्मा... भगवान का आत्मा और भगवान की वाणी, ये सब द्रव्य अपने गुण और पर्याय में तन्मय हैं। आहा...हा...! वाणी जो है, वह भी अपने गुण और पर्याय में तन्मय है। भगवान के साथ वाणी का कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा...! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव का तत्त्वज्ञान बहुत भिन्न है। पूरे जगत् में कहीं है नहीं। वेदान्त कहते हैं न कि सर्वव्यापक एक आत्मा है... आत्मा है। सब मिथ्या भ्रम (है)। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, उनकी वाणी में यह स्वरूप आया है। आहा...हा...!

(यहाँ) क्या कहते हैं? कि वस्त्र द्रव्य है। तो यह द्रव्य-वस्त्र अपने गुण और पर्याय

में तन्मय है। ऐसे सर्व पदार्थ - परमाणु, सिद्ध, आत्मा, निगोद का जीव अथवा सब, अपने गुण और पर्याय में (सब) द्रव्य तन्मय हैं। आहा...हा...! उसके (जीव के) साथ जो कर्म है, (उस) कर्म के साथ तन्मय है ही नहीं। कर्म जो है (वह) समानजातीय द्रव्यपर्याय है, आत्मा के साथ (उसका) सम्बन्ध है नहीं। आहा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बात है! आहा...हा...! अधिकार जो चलता है, वैसा कहने में आये, दूसरा क्या करें? भगवान तीन लोक के नाथ जैसा कहते हैं, ऐसा 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं। उसे टीकाकार 'अमृतचन्द्राचार्य' स्पष्ट करते हैं। उसका यहाँ (स्पष्टीकरण) होता है। आ...हा...! आहा...हा...!

पट के दृष्टान्त से प्रथम (कहते हैं कि) पट (अपने) गुण-पर्याय में तन्मय है। वैसे प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्याय में तन्मय हैं, पर के साथ कोई सम्बन्ध है नहीं। आ...हा...हा...हा...! यह शरीर जो जड़-मिट्टी है, उसके साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध है नहीं। आहा...हा...! शरीर द्रव्य है तो वह उसके गुण और पर्याय में शरीर तन्मय है। आत्मा अपने गुण और पर्याय में तन्मय है। एक-एक परमाणु (है) उसमें अनन्त गुण (हैं) और उसकी पर्याय में परमाणु तन्मय है, उसे द्रव्य कहते हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो धीरे से समझने की बात है।

आ...हा...हा...! भगवान की वाणी जिसे इन्द्र सुनते हैं! समवसरण में इन्द्र आते हैं। पहले देवलोक के शकेन्द्र और उनकी इन्द्राणी एक भवातारी (हैं)। दोनों एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। सिद्धान्त में (ऐसा पाठ है)। शक्रेन्द्र और उनकी मुख्य रानी - दोनों मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। ऐसा सिद्धान्त में लेख है। वे सुनने आयें, वह वाणी कैसी होगी, बापू!! आ...हा...हा...! जिन्हें एक भव में तो मोक्ष जाना है और अभी मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान तो हैं। समकिती हैं। सौधर्म देवलोक! बत्तीस लाख विमान! उसका साहेब! वे मानते नहीं कि वह मेरा है। भगवान के देवदर्शन का राग आये तो भी उसे मानता नहीं कि, 'यह राग मेरा है।' आ...हा...हा...! तो फिर 'बत्तीस लाख विमान मेरे' (ऐसी मान्यता) समकिती को है नहीं। आहा...हा...! समकिती तो, अपने द्रव्य-गुण से समकित की पर्याय उत्पन्न हुई (है) वह राग से उत्पन्न नहीं हुई, देव-गुरु से उत्पन्न हुई नहीं (ऐसा मानता हैं)। आहा...हा...! मेरी पर्याय में और मेरे गुण में मैं तन्मय हूँ। दूसरे की पर्याय के

कारण मैं अपनी पर्याय में तन्मय हूँ, ऐसा भी नहीं और दूसरे की पर्याय में मैं तन्मय हूँ, ऐसा भी नहीं और दूसरे की पर्याय मैं तन्मय हूँ, ऐसा भी नहीं। आहा...हा...! यह तो थोड़ा अभ्यास करे तो समझ में आये ऐसा है, बापू! वीतरागमार्ग, जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ (का कहा हुआ मार्ग) कोई अलौकिक मार्ग है! दुनिया में कहीं है नहीं। जैन परमेश्वर के अलावा कहीं धर्म है नहीं। आहा...हा...! अभी तो जैन में जन्म हुआ, उसे भी खबर नहीं कि द्रव्य क्या और गुण क्या? बात अच्छी आयी है, भैया! सबेरे भी अच्छी आयी थी। हिन्दी (में लेने को) कहा न? आ...हा...! इसलिए हिन्दी चलता है। आहा...हा...!

जैसे पट-वस्त्र... दृष्टान्त तो देखिये...! वस्त्र जो द्रव्य है, उस वस्त्र के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुण हैं और उसकी सफेद आदि पर्याय है, उस गुण-पर्याय में वस्त्र-द्रव्य तन्मय है। द्रव्य इतने में है। **उसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ...** अनन्त पदार्थ... अनन्त पदार्थ... जितने भगवान ने कहे वे सब। आहा...हा...! भगवान केवलज्ञान में जानते हैं तो वे पर्याय में तन्मय हैं, लोकालोक में तन्मय नहीं। आहा...हा...! क्या कहते हैं? भगवान जिस केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक को देखते हैं, वह पर्याय जो है, वह अपने द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई है और इस गुण और पर्याय में आत्मा तन्मय है। तीन लोक-लोकालोक देखते हैं, उसमें यह पर्याय तन्मय नहीं (है)। आ...हा...हा...हा...!

ऐसी सूक्ष्म बातें हैं, बापू! थोड़ा अभ्यास करना चाहिए, भाई! आ...हा...! ऐसा समय कब मिले? मनुष्यपना अनन्त काल के बाद मिलता है। 'छहढाला' में तो ऐसा कहा है, 'छहढाला' में! कि निगोद में से निकलकर दो इन्द्रिय लट हो तो भी चिन्तामणि रत्न (प्राप्त होने के बराबर है)! ऐसा 'छहढाला' में पाठ है। चिन्तामणि! तो मनुष्यपना और उसमें जैन में जन्म! आ...हा...हा...हा...! और उसमें भगवान की वाणी का श्रवण हो! महा दुर्लभ है!! आ...हा...हा...!

आ...हा...! यहाँ तो कहते हैं कि, जैसे पट अपने गुण-पर्याय में तन्मय है, **उसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ 'द्रव्य' नामक अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय से और दौड़ते हुए आयतसामान्यसमुदाय से रचित होता हुआ द्रव्यमय ही है।** यह द्रव्य की व्याख्या कही।

अब, गुण व्याख्या कहते हैं। वह विशेष कहेंगे...

प्रवचन नं. ८९ दिनाङ्क ३० मई १९७९

(प्रवचनसार गाथा-९३) **जैसे पट में, अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय या दौड़ते हुए आयतसामान्यसमुदाय गुणों से रचित होता हुआ, गुणों से पृथक् अप्राप्त होने से गुणात्मक ही है, उसी प्रकार...** अब आत्मा में - पदार्थ में (उतारते हैं)। **पदार्थों में; अवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदाय...** (अर्थात्) गुण **या दौड़ता हुआ आयत-सामान्यसमुदाय...** (अर्थात्) पर्याय। **जिसका नाम 'द्रव्य' है वह - गुणों से रचित होता हुआ, गुणों से पृथक् अप्राप्य होने से...** (अर्थात्) द्रव्य है, वह गुणों से पृथक् नहीं (है)। पृथक् नहीं, अपृथक् है। **गुणों से रचित होता हुआ गुणों से पृथक् अप्राप्य...** है। द्रव्य से गुण अलग प्राप्त नहीं है। इस कारण से **गुणात्मक ही है।** (अर्थात्) गुणस्वरूप ही द्रव्य है, ऐसा कहने में आता है। बहुत सूक्ष्म बात!

आत्मा में गुण जो है (इस कारण से आत्मा को) गुणात्मक कहने में आता है परन्तु वह गुण, द्रव्य ही है; द्रव्य से गुण पृथक् नहीं (है) तो द्रव्य को गुणात्मक भी कहने में आता है। बहुत सूक्ष्म बात!

और जैसे अनेकपटात्मक... अनेक पट (अर्थात्) **(- एक से अधिक वस्त्रों से निर्मित) द्विपटिक, त्रिपटिक ऐसे समानजातीय द्रव्यपर्याय...** है? एक जात के दो-तीन वस्त्र हों, उसे समानजातीय द्रव्यपर्याय (कहते हैं)। **उसी प्रकार अनेक पुद्गलात्मक द्वि-अणुक, त्रिअणुक ऐसी समानजातीय द्रव्यपर्याय है;...** यह द्रव्यपर्याय है। आहा...हा...! समझ में आया? दो परमाणु, तीन परमाणु, चार परमाणु आदि को एकसाथ मानकर समानजातीय द्रव्यपर्याय (कहने में आता) है। समानजातीय द्रव्यपर्याय कहा न?

और जैसे अनेक रेशमी और सूती... एक रेशमी कपड़ा है और एक सूती (कपड़ा) है। (दोनों) भिन्न-भिन्न जात हैं। (ऐसे) **रेशमी और सूती पटकों के बने हुए द्विपटिक, त्रिपटिक ऐसी असमानजातीय द्रव्यपर्याय है,...** असमानजातीय

द्रव्यपर्याय है। रेशमी और सूती, उसकी असमानजातीय द्रव्यपर्याय हैं।

उसी प्रकार अनेक जीव-पुद्गलात्मक... देखो! यहाँ जीव और पुद्गल, यह शरीर आदि की बात बतानी है। उसे असमानजातीय बताना है। आत्मा-आत्मा समानजातीय है, उसे नहीं बताना। यहाँ तो पुद्गल-पुद्गल एक से हैं, वे समानजातीय हैं। आत्मा और आत्मा एक से हैं तो समानजातीय है - ऐसा नहीं। पुद्गल-पुद्गल समानजातीय हैं। आत्मा और पुद्गल एक साथ रहते हैं तो वह असमानजातीय द्रव्यपर्याय है क्योंकि असमानजातीय द्रव्यपर्याय में दृष्टि होती है, वह मूढ़ है। अपना द्रव्यस्वभाव अन्दर भिन्न है, उसकी दृष्टि नहीं (है)।

असमानजाति (अर्थात्) जीव और पुद्गल (अर्थात्) यह शरीर, (दोनों) एक साथ दिखते हैं, वह असमानजाति है। दृष्टि अनादि से असमानजाति पर रही है। आ...हा...! इस दृष्टि के कारण अपना जो त्रिकाल स्वभाव है, (उसे) भूल गया। त्रिकाल स्वभाव भूल गया तो असमानजाति में एकत्वबुद्धि है, वह सब अविद्या-मिथ्यात्व का मूल है। आहा...हा...!

(अब, पट की बात कहते हैं)। **और जैसे कभी पट में अपने स्थूल अगुरुलघुगुण द्वारा कालक्रम से प्रवर्तमान अनेक प्रकाररूप से परिणमित...** पट में अगुरुलघु (गुण की) स्थूल पर्याय होती है न? (उससे) **परिणमित होने के कारण अनेकत्व की प्रतिपत्ति गुणात्मक स्वभावपर्याय है; उसी प्रकार समस्त द्रव्यों में अपने-अपने सूक्ष्म अगुरुलघुगुण द्वारा...** प्रत्येक द्रव्य में अपने-अपने सूक्ष्म अगुरुलघु(गुण) द्वारा **प्रति समय प्रगट होनेवाली षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप अनेकत्व की अनुभूति, वह गुणात्मक स्वभावपर्याय है;...** अनन्त द्रव्य में अगुरुलघु(गुण की) पर्याय गुणात्मक स्वभाव(पर्याय) है क्योंकि अगुरुलघु(गुण) सब में है। अगुरुलघु (गुण की) स्वभावपर्याय को यहाँ (गुणात्मक) स्वभावपर्याय कहा गया है। उसे गुण की स्वभावपर्याय कहा गया है।

अब, गुण की विभावपर्याय किसे कहते हैं? **और जैसे पट में, रूपादिक के स्व-पर के कारण...** (अर्थात्) वस्त्र में रंग, गंध, रस, स्पर्श में निमित्त पर (है)। स्व उपादान अपना (है) और पर निमित्त (है)। उसके **कारण प्रवर्तमान पूर्वोत्तर अवस्था**

में होनेवाले तारतम्य के कारण देखने में आनेवाले स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति वह गुणात्मक विभावपर्याय है,... यह गुणात्मक विभावपर्याय है। पहले अगुरुलघु(गुण की) गुणात्मक स्वभावपर्याय (कही)। ऐसी बात है! है? स्वभावविशेषरूप होने के कारण गुणात्मक विभावपर्याय (है)।

वास्तव में ऐसा कहा कि जो द्रव्य है द्रव्य, वह तो विस्तारसामान्य गुण और आयतसामान्य पर्याय (है, उसका पिण्ड) वह द्रव्य (है)। अब, गुण जो अनन्त हैं, वे द्रव्य के आश्रय रहते हैं। इसलिए वह गुणात्मक द्रव्य कहने में आता है और पर्याय, द्रव्य और गुण से उत्पन्न होती है; इसलिए द्रव्य-गुण से उत्पन्न होनेवाली को पर्याय कहते हैं। पर के कारण से कोई द्रव्य में पर्याय उतपन्न नहीं होती। प्रत्येक पदार्थ में अपना द्रव्य कायम रहनेवाला, सामान्य गुण और विशेष पर्याय का पिण्ड (है), वह द्रव्य (है)। विस्तारसामान्य समुदाय गुण (है)। इन द्रव्य और गुण से पर्याय उत्पन्न होती है। दूसरे द्रव्य से दूसरे द्रव्य की पर्याय कभी उत्पन्न हो - ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहा...हा...!;

समझना यह है कि कर्म से आत्मा में विकार होता है - (ऐसा) कभी नहीं है। आहा...हा...!; और विकार हुआ है तो कर्मबंधन हुआ है - ऐसा भी नहीं। कर्मबंधन की पर्याय अपने समानजातीय परमाणु के कारण कर्मबंध की पर्याय उत्पन्न हुई है। राग है, यहाँ राग किया तो उससे (कर्मबंधन की) पर्याय उत्पन्न हुई - ऐसा नहीं है। आहा...हा...!;

श्रोता : जैसा निमित्त मिले वैसा कार्य होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कुछ नहीं करता। यह तो अज्ञानी की (मान्यता है)। आहा...हा...! अपनी द्रव्यपर्याय (अपने से होती है)।

यहाँ ऐसा लिया है कि गुण-पर्याय का पिण्ड जो द्रव्य है, उसमें द्रव्यपर्याय दो प्रकार की (है)। (१) स्वाभाविक द्रव्यपर्याय (२) विभाविक द्रव्यपर्याय। स्वाभाविक द्रव्यपर्याय तो अपने द्रव्य-गुण से जो उत्पन्न होती है, वह स्वाभाविक द्रव्यपर्याय है अथवा अगुरुलघुगुण के कारण उत्पन्न होती है, वह स्वभावपर्याय है और अगुरुलघुस्वभाव के अलावा (जो पर्याय होती है, वह) विभावपर्याय (है)। जैसे, वस्त्र के परमाणु में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श है तो रूपादिक की तारतम्यता / हीनाधिक होती है, (वह अपने उपादान से होती

है), उसमें निमित्त दूसरी चीज है, वह विभावपर्याय है। ऐसे आत्मा में जो गुण है, उसमें विकार का निमित्त होकर विभाविक पर्याय होती है, वह गुण की विभावपर्याय (है), द्रव्यपर्याय नहीं। आहा...हा...! ऐसा है। याद रखना कठिन (है)। ९४ (गाथा में) सार आयेगा।

वास्तव में यह, सर्व पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभाव की प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था... (अर्थात्) भगवान ने कही (हुई)। आहा...हा...! सर्वज्ञ परमेश्वर ने, त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने (प्रकाशित की हुई) ऐसी द्रव्य-गुण-पर्याय की प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था है। (अर्थात्) परमेश्वर ने कही ऐसी चीज है। भगवान त्रिलोकनाथ ने (कहे ऐसे समस्त पदार्थ के) द्रव्य-गुण-पर्याय (हैं)। प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय तो अपने में हैं, परन्तु यहाँ पर्याय में (जो) द्रव्यपर्याय ली, (उसमें) दूसरे की पर्याय का सम्बन्ध लेकर द्रव्यपर्याय ली और गुणपर्याय ली (उसमें) अपने अगुरुलघुस्वभाव की पर्याय (होती है, वह स्वभाव) गुणपर्याय (है) परन्तु रूप, गंध, आदि पर्याय में निमित्त से विभाव होता है, उसे विभावगुणपर्याय कहते हैं। ऐसा है।

वास्तव में यह, सर्व पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभाव की प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था... (अर्थात्) भगवान ने कही हुई व्यवस्था है। आ...हा...हा...! (सम्प्रदाय में) तो अभी ऐसा चलता है, कि शरीर चलता है (उसमें) आत्मा है तो शरीर चलता है - (ऐसा कहते हैं)। आत्मा है तो भाषा निकलती है, ये सब झूठ है, मिथ्यात्व है। भाषा की पर्याय उत्पन्न होती है, वह परमाणु के जो द्रव्य-गुण हैं, उससे उत्पन्न होती है और शरीर की यह चलने-फिरने की पर्याय (होती) है, वह परमाणु में द्रव्य-गुण है, उससे चलने-फिरने की पर्याय उत्पन्न होती है; आत्मा से नहीं। आहा...हा...!

यहाँ एक कपड़ा है, वह यहाँ से यहाँ आया... तो कहते हैं कि उसके द्रव्य-गुण के कारण वहाँ ऐसी पर्याय हुई है। वह उँगली से हुई है या आत्मा से हुई है - ऐसा नहीं है। (देखो!) यह कपड़ा यहाँ है, (अब) यहाँ आया - तो कहते हैं कि इसकी जो पर्याय हुई, वह किसके कारण से (हुई)? उँगली के कारण से? आत्मा के कारण से? (तो कहते हैं कि) नहीं; उसके द्रव्य और गुण के कारण से ऐसी पर्याय हुई है। आहा...हा...!

श्रोता : केशलोंच कौन करता है ?

समाधान : लोंच कौन करे! लोंच जो होता है, (उसमें बाल को) उँगली छूती भी नहीं। आहा...हा...! बाल की पर्याय अपने से - सिर पर से निकलने की योग्यता से निकलती है, उँगली से नहीं, आत्मा से नहीं, इच्छा से नहीं। आहा...हा...!

एक-एक पदार्थ (की) समय-समय की पर्याय अपने-अपने द्रव्य-गुण से होती है - यह सिद्धान्त लेना है। कोई द्रव्य-गुण की पर्याय, कोई दूसरे द्रव्य-गुण से उत्पन्न होती है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : फिर तो कोई किसी को मदद नहीं कर सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई किसी को मदद नहीं कर सकता और कोई किसी को नुकसान नहीं कर सकता। आ...हा...!

श्रोता : तो संसार कैसे चलेगा ?

समाधान : संसार चलेगा। स्वयं को (कर्ता) माने तो अपने मिथ्यात्व से संसार चलेगा। मैं करता हूँ, पर की पर्याय मैं करता हूँ, शरीर की करता हूँ, भाषा की करता हूँ, कपड़े की करता हूँ। यह टोपी है, टोपी! टोपी ऐसे होती है तो वह पर्याय, टोपी के द्रव्य-गुण से (ऐसी) पर्याय होती है, आत्मा से नहीं और यहाँ टोपी है तो (वह) सिर के आधार से है - ऐसा नहीं।

श्रोता : टोपी की सिलाई किसने की ?

समाधान : टोपी के द्रव्य-गुण से टोपी हुई है।

श्रोता : दरजी ने सिलाई नहीं की ?

समाधान : दरजी ने नहीं की! जगत् से उलटा है, बापू!

श्रोता : दरजी को पेसे देने या नहीं देने ?

समाधान : पैसे कौन दे ? पैसे तो परमाणु की पर्याय (है)। एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं तो वह परमाणु के द्रव्य-गुण के कारण से वह पर्याय जाती है। देनेवाले हाथ हैं तो जाता है, ऐसा भी नहीं है। आ...हा...! ऐसा है!

श्रोता : बिना दरजी के टोपी बनती कहाँ है ?

समाधान : दरजी कौन ? दरजी के आत्मा की पर्याय (में) जो रागादि हुआ है, वह तो उसके द्रव्य-गुण-पर्याय से अन्दर राग हुआ है और कपड़े की जो पर्याय हुई है, वह तो कपड़े के द्रव्य-गुण-पर्याय से कपड़े की पर्याय हुई है। आहा...हा... !

सोनी है... क्या कहते हैं ? जेवर ! जेवर की जो कड़े, कुण्डल (आदि) पर्याय होती है, वह परमाणु के द्रव्य-गुण के कारण से होती है, सोनी से नहीं। ऐसी बात है। हथौड़ी से तो नहीं, ऐरण (-निहाई) से (भी) नहीं। ऐसी बात है। आहा...हा... !

यहाँ यह कहते हैं, पारमेश्वरी व्यवस्था ! प्रत्येक द्रव्य और प्रत्येक गुण अपने में हैं। उस कारण से उस समय (जो पर्याय होती है), वह द्रव्यात्मक हो – द्रव्यपर्याय हो या गुणपर्याय हो परन्तु अपने से होती है, पर से बिलकुल नहीं। आहा...हा... !

श्रोता : महिलाओं को शाक लाना...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब्जी कौन लाये ? और कौन दे ? शाक समझे ? क्या कहते हैं ? (सब्जी) ! दूधी (-लौकी) की सब्जी आती है तो वह पैसे से नहीं आती। अपने हाथ से नहीं आती है। दूधी के परमाणु जो हैं, उसमें जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुण हैं, उस द्रव्य -गुण से दूधी की पर्याय यहाँ आती है। आहा...हा... ! जगत् से ऐसी उलटी बात है ! और वह सब्जी पकती है, वह पानी से नहीं, अग्नि से नहीं। सब्जी के जो परमाणु हैं, उस परमाणु के द्रव्य-गुण से सब्जी पकने की क्रिया हुई है; अग्नि से, पानी से, स्त्री से बिलकुल नहीं। ऐसी पदार्थ-व्यवस्था भगवान के मुख से आयी है ! आहा...हा... ! कठिन काम है।

(ऐसी व्यवस्था क्यों है ?) क्योंकि, पदार्थ अनन्त हैं। अनन्त हैं तो अनन्त अनन्तरूप कब रहें ? कि अपने कारण से द्रव्य, गुण और पर्याय हों तब अनन्त अनन्तरूप रहें। परन्तु दूसरे के कारण से दूसरे में पर्याय हो तो अपनी पर्याय बिना का द्रव्य हो गया। तो वह द्रव्य -गुण भी यथार्थ में रहे नहीं। पर के कारण से किसी की पर्याय हो, तो पर्याय बिना का द्रव्य हो गया। (क्योंकि) पर से पर्याय हुई। (किन्तु ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है)।

श्रोता : पर से पर्याय नहीं हो किन्तु निमित्त से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से बिलकुल नहीं होती। (उस समय) निमित्त हो, किन्तु निमित्त से होती नहीं। निमित्त है अवश्य, परन्तु निमित्त से पर में पर्याय होती है - ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं है। आ...हा...हा... ! प्रभु के घर की ऐसी बातें हैं, बापू! 'ज्ञेय अधिकार' है न ? यह 'ज्ञेय अधिकार' है। यह 'ज्ञेय अधिकार' है न ? ९२ (गाथा में) 'ज्ञान अधिकार' पूरा हो गया। ९३ (गाथा में) यह 'ज्ञेय अधिकार' - 'समकितदर्शन' का अधिकार है।

प्रत्येक ज्ञेय स्वतन्त्र (है)। अपने द्रव्य से स्वतन्त्र (है), गुण से स्वतन्त्र (है) और समय-समय में जो पर्याय होती है, वह अपने द्रव्य-गुण से स्वतन्त्र होती है। पर के कारण से पर में पर्याय हो - ऐसा तीन काल-तीन लोक में वीतरागमार्ग में (है) नहीं। आहा...हा... ! ऐसा काम है !

श्रोता : यहाँ तो 'स्व-पर के कारण' ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त से कथन किया है। विभाविक पर्याय है, इसलिए (ऐसा कहा है)। विभाविक पर्याय है, इसलिए स्व-पर का निमित्त लिया। स्व-उपादान से तो होनेवाली हुई ही है। वहाँ निमित्त दूसरी चीज है, इसलिए विभाव कहने में आया है, बस! स्व-उपादान से अपनी पर्याय हुई। अपनी पर्याय से क्रमबद्ध में द्रव्य की पर्याय होनेवाली हुई। वहाँ दूसरी चीज निमित्त है, तो स्व-पर से हुई ऐसा कहने में आया है। हुई तो अपने से हुई है, निमित्त तो साथ में उपस्थित है। निमित्त की पर्याय भी निमित्त के द्रव्य-गुण से हुई है।

देखो ! यह लकड़ी है। यह लकड़ी ऐसे चलती है तो उसके द्रव्य-गुण के कारण से ऐसी पर्याय होती है, उँगली से नहीं और उँगली के आधार से यह रहा है, ऐसा नहीं। उस पर्याय में षट् कारक हैं। जड़ की पर्याय हो या चैतन्य की पर्याय हो, प्रत्येक पर्याय में षट् कारक हैं। षट् कारक (माने) क्या ? पर्याय, पर्याय की कर्ता; पर्याय, पर्याय का कार्य; पर्याय, पर्याय का साधन - करण; पर्याय, पर्याय का सम्प्रदान अर्थात् अपने से अपने कारण से हुई।

'पञ्चास्तिकाय संग्रह' की ६२ (गाथा है)। **निश्चयनय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के (-अपने-अपने रूप के) कर्ता हैं...** कर्म की पर्याय होती है, वह कर्म से होती है। कर्म में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय (की) जो पर्याय (होती है), वह कर्म के परमाणु से वह पर्याय हुई है। वह कर्म की पर्याय षट् कारक से हुई है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात बहुत, बापू! छह कारण से ज्ञानावरणीय (कर्म) बँधते हैं। ज्ञान की अशातना (आदि) छह कारण आते हैं न? ('मोक्षशास्त्र' अधिकार-९, सूत्र-१०, प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात) उससे ज्ञानावरणीय (कर्म बँधता है) - वह तो निमित्त का कथन है। विकारी पर्याय के जो छह कारक हैं, वह षट् कारक अपने से उत्पन्न हुआ (है) और ज्ञानावरणीय (कर्म की) जो पर्याय हुई है, वह कर्म की पर्याय (उसके) षट्कारक से उत्पन्न हुई है, राग से नहीं। ऐसी बातें हैं! जगत से वीतराग का मार्ग कोई अलग प्रकार का है! आहा...हा...!

शास्त्र में ऐसा आये कि छह कारण से ज्ञानावरणीय बँधता है। 'निह्नव' आता है न? 'तत्त्वार्थसूत्र'! निह्नव, अशातना इत्यादि से। वह विकारी पर्याय जीव में अपने कारण से - छह कारक से उत्पन्न हुई है और ज्ञानावरणीय की जो पर्याय हुई, वह कर्म भी, ज्ञानावरणीय के जो परमाणु हैं, उन परमाणु में पर्याय हुई वह अपने षट् कारक से हुई है। आहा...हा...! बहुत कठिन काम! यह तो तीन लोक के नाथ की वाणी है! वर्तमान में तो सब गड़बड़ चली है। पण्डित लोग (कहते हैं) निमित्त से होता है... निमित्त से होता है... निमित्त से होता है...! (यदि) निमित्त से होता है तो, पर की पर्याय निमित्त से हुई तो पर्याय ने क्या किया? निमित्त ने क्या किया? (श्रोता : उपादान ने क्या किया?) उपादान ने क्या किया और निमित्त ने क्या किया? निमित्त ने पर की पर्याय की तो निमित्त ने अपनी पर्याय की या नहीं? निमित्त (में) भी अपने द्रव्य-गुण से - अपने कारण से निमित्त की पर्याय हुई और उपादान की पर्याय भी अपने से - द्रव्य-गुण के कारण उपादान से हुई, ऐसा व्यवहार है। निश्चय से विकारी पर्याय (हो) या अविकारी पर्याय (हो), प्रत्येक ज्ञेय में (द्रव्य में) एक-एक समय में स्वतन्त्र षट् कारक से परिणमन होता है। यह भगवान की वाणी है! क्या कहा?

आत्मा की विकारी-अविकारी (कोई भी) पर्याय हो या कर्म की विकारी पर्याय हो या एक परमाणु की निर्मल-निर्विकार (पर्याय हो); निर्मल पर्याय है न? एक परमाणु स्वाभाविक पर्याय है। परमाणु (की) विभाव पर्याय (भी है), दो परमाणु इकट्ठे हों तो विभावपर्याय होती है। उस परमाणु की वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की होती है, वह पर्याय भी अपने षट् कारक से उत्पन्न होती है; पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अधिकरण, पर्याय अपादान, आ...हा...! षट् कारक! आहा...हा...!

देखो! यहाँ ('पञ्चास्तिकाय संग्रह' में) सब लिया है। **जीव भी (१) भावपर्यायरूप से प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ,...** देखो! आत्मा अपनी पर्याय (में) विकाररूप या अविकाररूप परिणमित हो तो अपने कारण से है। आहा...हा...! कर्म का बहुत जोर (से) उदय आया तो आत्मा में विकार हुआ, यह बात वीतरागमार्ग में तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

यह बात हम (संवत) ७१ (की साल से) कहते हैं! ७१ की साल! ६४ वर्ष हुए! ६० + ४! ६६ वर्ष तो दुकान छोड़कर दीक्षा लेकर (हुए)। ६६ वर्ष तो दुकान को छोड़े हुए और दीक्षा ली ७० की साल (में)। ७१ की साल में 'लाठी' (में) हमारा चातुर्मास था, तब से हम कहते थे। विकार होता है, (वह) अपनी पर्याय से अपने अपराध से होता है, कर्म से बिलकुल नहीं। (यह सुना तो) थोड़ी तकरार हुई थी। गुरु थे वे तो सुनते थे। दूसरे एक गृहस्थ सेठ थे। दस लाख रुपये उन दिनों में (थे)! उन्हें ऐसा लगा कि ऐसा कहाँ से निकाला? ऐसी बात कहाँ से (आयी)? हमें हमारे गुरु ने कही नहीं, सुनी नहीं, ऐसा कहाँ (से निकाला)? (हमने कहा) सिद्धान्त ऐसा कहता है।

भगवान की वाणी - सिद्धान्त ऐसा कहते हैं कि आत्मा में जो विकार होता है, वह अपनी षट् कारक की परिणति से होता है, कर्म के कारण से नहीं। कर्म की पर्याय कर्म में षट् कारक से होती है, आत्मा से नहीं। आ...हा...!

श्रोता : अपने से हो तो स्वभाव हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा स्वभाव है। विभावपर्याय भी स्वभाव है, ऐसा इसमें चल गया है। अपने इसमें आ गया है। स्वभावविशेष और विभावपर्याय, ऐसा (आ गया

है)। आ गया है। स्वभावविशेष आ गया है। देखो (टीका में)! **स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति, वह गुणात्मक विभावपर्याय है,...** देखो! **स्वभावविशेषरूप अनेकत्व की आपत्ति, वह गुणात्मक विभावपर्याय है,...** यह आ गया है। '**स्वस्य भवनं स्वभावः**' अपनी पर्याय में हुआ, इसलिए 'स्वस्य भवनं स्वभावः' स्वभाव का अर्थ यहाँ निर्मल (स्वभाव) नहीं लेना। अपनी पर्याय में विभाविक शक्ति (के कारण विभावरूप होता है)। आत्मा में अनादि-अनन्त एक विभाविक नाम का गुण है। विभाविक गुण निमित्त के आधीन अपने से होता है, तब विकार होता है। कर्म से विकार नहीं (होता)। आहा...हा...! कठिन काम है। यह बावत तो (संवत) ७१ की साल (में) बाहर में रखी थी। ९४ वर्ष हुए! जैन में कर्म से विकार होता है - ऐसा कहने में आता है, यह बात झूठ है। जैन परमेश्वर ऐसा नहीं कहते। समझ में आया?

प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक समय की अवस्था अपने द्रव्य-गुण से होती है - ऐसा कहना भी अभी व्यवहार है। बाकी वह पर्याय अपने षट् कारक से होती है, यह निश्चय है। पर से होती है, वह तो बात ही नहीं है।

यहाँ यह कहा है, **वास्तव में यह, सर्व पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभाव की प्रकाशक...** देखो! (ऊपर जिसे) विभाव कहा, उसे यहाँ स्वभाव कहा, भाई! क्या कहा? पहले कहा था कि परमाणु में रूप इत्यादि गुण हैं, निमित्त (पर) और स्व-उपादान दोनों से हुआ, वह विभाव है। हुआ है अपने से, परन्तु वहाँ निमित्त है तो विभाव को भी स्वभाव कहने में आया है। वह (बात) यहाँ ली। **द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभाव की...** देखो! **प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था...** (अर्थात्) परमेश्वर की कही हुई व्यवस्था! **भली-उत्तम-पूर्ण-योग्य है,...** आ...हा...हा...हा...! यह बात भी दिगम्बर में है, हाँ! और कहीं यह बात है नहीं। श्वेताम्बर में, स्थानकवासी में तो है ही नहीं। उसे तो 'अजैन' कहने में आया है! अन्यमती! 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पाँचवें (अधिकार में)! जैसे वेदान्ती, जैसे ईश्वर करनेवाला (है) - ईश्वरकर्ता (है - ऐसा माननेवाले हैं), वैसे स्थानकवासी, देरावासी सबको अन्य मत में डाले हैं! 'मोक्षमार्गप्रकाशक!' पाँचवाँ अध्याय। 'टोडरमल्लजी' का 'मोक्षमार्गप्रकाशक' है न? आ...हा...हा...!

प्रभु ! यहाँ वीतराग ने कहे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय की व्यवस्था समझनी हो तो द्रव्य भी अपने गुण-पर्याय से स्वतन्त्र है; गुण भी अपने गुण से स्वतन्त्र है और पर्याय भी हो चाहे तो स्वभाविकपर्याय हो, चाहे तो विभाविकपर्याय हो, (वह) षट् कारक से अपनी पर्याय अपने से उत्पन्न हुई है। आहा...हा... ! समझ में आता है ? यह अलग बात है !

श्रोता : टोपी सिलने में दरजी ने क्या डाला ?

समाधान : कुछ किया नहीं। (दरजी ने) अपनी राग की पर्याय की। उसने टोपी की पर्याय को कभी स्पर्श भी नहीं किया! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता ही नहीं। आ...हा... ! यह (बात) 'समयसार' की तीसरी गाथा में आयी है। यह 'प्रवचनसार' (है)।

'समयसार' की तीसरी गाथा में है कि प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय अपने द्रव्य-गुण -पर्याय को छूते हैं, पर को कभी स्पर्श किया ही नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चूंबते नहीं - ऐसा पाठ है। प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्याय को चूंबते हैं - छूते हैं - स्पर्श करते हैं परन्तु परद्रव्य की पर्याय को कोई द्रव्य चूंबते नहीं - स्पर्श करते नहीं - छूते नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बात कहाँ (है) ? वर्तमान में तो (सब) गड़बड़... गड़बड़... (चलती है)। पण्डितों ने भी गड़बड़ मचा दी! सब की खबर है, खबर नहीं है (ऐसा नहीं है)। आ...हा... ! (कहते हैं कि) 'निमित्त से होता है... निमित्त से होता है... !' धूल भी नहीं होता ! निमित्त निमित्त में है। क्या निमित्त अपनी पर्याय को छूता है तो उसमें आ गया ? आहा...हा... !

वास्तव में... अर्थात् वस्तुतः। **सर्व पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभाव की प्रकाशक पारमेश्वरी व्यवस्था भली-उत्तम-पूर्ण-योग्य है,...** आ...हा... ! अरे... ! यह बात सुनने मिले नहीं (तो) उसे बैठे कब ? **दूसरी कोई नहीं;...** परमेश्वर ने जो द्रव्य-गुण-पर्याय कहें, इसके सिवा और कोई (कुछ) भी कहे, वह सब बात झूठ है। परमेश्वर ने यह कहा, वह बात सत्य है।

क्योंकि बहुत से (जीव) पर्यायमात्र का ही अवलम्बन करके... देखो ! पर्याय को ही अपना मानकर, **पर्यायमात्र का ही अवलम्बन करके, तत्त्व की अप्रतिपत्ति जिसका लक्षण है...** (अर्थात्) तत्त्व का अज्ञान जिसका लक्षण (है), **ऐसे मोह को**

प्राप्त होते हुए परसमय होते हैं। वह परसमय मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! समझ में आया? बहुत से अज्ञानी जीव, पर्यायमात्र को ही अपना (स्वरूप) मानते हैं।

९४ (नम्बर की) गाथा में आयेगा - असमानजाति। आत्मा असमानजाति शरीर को ही अपना मानता है और शरीर की क्रिया अपने से होती है - ऐसा मानता है। (अज्ञानी कहता है कि) 'शरीर का घूमना-फिरना होता है, वह अपने से है, मुर्दा क्यों चलता नहीं?' अरे...! सुन तो सही! मुर्दे में भी परमाणु की पर्याय होती है। पर्याय बिना का द्रव्य है ही नहीं। तीन काल में कोई द्रव्य, पर्याय बिना का है नहीं। पर्याय बिना का द्रव्य नहीं है - (ऐसा) 'पञ्चास्तिकायसंग्रह' में (आता) है। वह पर्याय हुई है, वह अपने से हुई है - चाहे तो विकार हो, चाहे तो अविकार हो; चाहे तो विभाव हो, चाहे तो स्वभाव हो, आ...हा...हा...! ऐसा मार्ग है, बापू! वर्तमान में तो लोगों ने लोप कर दिया है। इससे ऐसा होता है... वैसा होता है... व्यवहाररत्नत्रय करते-करते निश्चय होता है। (यह) सब मिथ्यात्वभाव है।

यहाँ तो यह कहा कि सम्यग्दर्शन की पर्याय अपने द्रव्य-गुण से होती है, राग से नहीं। आहा...हा...! व्यवहाररत्नत्रय करते-करते निश्चयसम्यग्दर्शन-मोक्षमार्ग होता है - ऐसा नहीं है। यहाँ तो यह कहा कि सम्यग्दर्शन की पर्याय या सम्यक्चारित्र की पर्याय का उत्पादक तो द्रव्य-गुण है। द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई है, राग से नहीं। आ...हा...हा...! 'व्यवहाररत्नत्रय साधक है, निश्चयरत्नत्रय साध्य है' - ऐसा कहते हैं! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप करना, उससे निश्चय (मोक्षमार्ग) होगा - यह सब मिथ्या - झूठ है।

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय अपने द्रव्य-गुण से होती है, इतना सिद्ध करना है। निश्चय से तो सम्यग्दर्शन की पर्याय षट् कारक से अपने से उत्पन्न हुई है; राग से तो नहीं, परन्तु द्रव्य-गुण से नहीं। (क्योंकि) पर्याय है, वह सत् है (और) सत् है तो अहेतुक है। सत् को हेतु की जरूरत नहीं है। 'समयसार' 'बंध अधिकार' में है। पर्याय भी सत् है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।' द्रव्य सत् (है)। तीनों सत् हैं - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों सत् हैं। सत् को दूसरे हेतु की जरूरत नहीं है। आहा...हा...!

आगे आयेगा, १०१ गाथा! १०१ गाथा में आयेगा कि प्रत्येक पर्याय की उत्पत्ति –उत्पाद अपने से होता है। उत्पाद (होता) है, वह द्रव्य-गुण से भी नहीं। उत्पाद जो है, (वह) व्यय से नहीं (होता); उत्पाद, ध्रुव से नहीं (होता)। ध्रुव, उत्पाद से नहीं; ध्रुव, व्यय से नहीं। व्यय, उत्पाद से नहीं; व्यय, ध्रुव से नहीं। ध्रुव अपने से स्वतन्त्र, उत्पाद भी अपने से स्वतन्त्र और व्यय भी अपने से स्वतन्त्र (होता है)। ऐसा एक गाथा में आयेगा। आ...हा...हा...! समझ में आया?

१०२ गाथा में आयेगा – जन्मक्षण! बहुत बार कहा है। प्रत्येक पदार्थ की पर्याय की उत्पत्ति का काल है – जन्मक्षण है। (ऐसा) संस्कृत में पाठ है। प्रत्येक द्रव्य की जिस समय जो पर्याय होती है, वह उसकी उत्पत्ति का काल है। जन्मक्षण – उत्पत्ति का काल है, इसलिए होती है; पर के कारण से बिलकुल नहीं। आ...हा...हा...! (ऐसा सुने फिर) 'सोनगढ़वाले' को एकान्त (ही) कहे न! व्यवहार से मानते नहीं, निमित्त को मानते नहीं! सब मालूम है, बापू! सुन ना! व्यवहार से होता है (ऐसा) मानते नहीं, निमित्त से पर में कुछ होता है, (ऐसा) मानते नहीं। व्यवहार की भी बापू! तुझे खबर नहीं। भाई! आ...हा...!

व्यवहार भी राग की पर्याय है और सम्यग्दर्शन की पर्याय तो निर्मल है, तो राग से निर्मल पर्याय होती है? यहाँ तो (कहते हैं) निर्मल पर्याय होती है, (वह) तो द्रव्य-गुण से होती है। (ऐसा कहना) भी व्यवहार है। बाकी समकित की पर्याय षट्कारक से होती है, वह निश्चय है। आ...हा...! राग से (होती) नहीं, द्रव्य-गुण से (होती) नहीं। ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती हैं। वर्तमान में चलता है, वह सब गड़बड़ (चलती) है। पण्डितों ने गड़बड़ मचा दी है! लोग फिर 'जय नारायण!' (करके चल देते हैं)।

यहाँ तो (कहते हैं कि) प्रत्येक द्रव्य की, प्रत्येक समय की पर्याय अपने षट् कारक से उत्पन्न होती है, जिसे निमित्त की अपेक्षा नहीं, द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। आ...हा...हा...! ढिंढोरा पीटा है! भगवान ने तो ढिंढोरा पीटा है!! समझ में आया?

(यहाँ चलते विषय में कहते हैं कि) **क्योंकि बहुत से (जीव), पर्यायमात्र का अवलम्बन करके, तत्त्व की अप्रतिपत्ति....** (अर्थात्) तत्त्व का अज्ञान **जिसका लक्षण है – ऐसे मोह को प्राप्त होते हुए परसमय होते हैं।** वे परसमय मिथ्यादृष्टि हैं।

आहा...हा...! अपनी पर्याय पर से उत्पन्न हो और पर की पर्याय अपने से उत्पन्न हो - ऐसा माननेवाला परसमय मिथ्यादृष्टि है। वह स्वसमय (में) नहीं आया - आत्मा में नहीं आया। आ...हा...! मिथ्यात्व में है।

भावार्थ : पदार्थ द्रव्यस्वरूप है। द्रव्य अनन्त गुणमय है। द्रव्यों और गुणों से पर्यायें होती हैं। यह पाठ का अर्थ किया। द्रव्य और गुण से पर्याय होती है, पर से नहीं। है भावार्थ? **पर्याय के दो प्रकार हैं : १. द्रव्यपर्याय, २. गुणपर्याय। इनमें से द्रव्यपर्याय के दो भेद हैं - समानजातीय - जैसे द्वि-अणुक, त्रि-अणुक इत्यादि स्कन्ध;...** (अर्थात्) दो-तीन परमाणु एक से हो, वह समानजातीय द्रव्यपर्याय है। **२. असमानजातीय - जैसे मनुष्य, देव इत्यादि।** वह असमानजातीय (द्रव्य) पर्याय (है)।

गुणपर्याय के दो भेद हैं - १. स्वभावपर्याय - जैसे सिद्ध के गुणपर्याय। २. विभावपर्याय - जैसे स्वपरहेतुक मतिज्ञानपर्याय। मतिज्ञान को भी स्व-परहेतुक कहा है। क्यों? क्योंकि (उसमें) ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम निमित्त है और मतिज्ञान अपने स्वतन्त्र उपादान से उतपन्न हुआ है। आ...हा...हा...हा...! 'ज्ञानावरणीय' (ऐसा पढ़कर अज्ञानी) भ्रम में पड़ा। 'गोमट्टसार' में आये कि 'ज्ञानावरणीय ज्ञान को आवरण करता है।' आवरण दूसरी चीज है, ज्ञान दूसरी चीज है। (दूसरी चीज) आवरण करे, यह बात सच्ची है ही नहीं। वहाँ तो ऐसा निमित्त का कथन लिया है। परद्रव्य अपनी पर्याय को आवरण करे? परद्रव्य छूता ही नहीं तो आवरण कैसे करे? अपनी पर्याय में विपरीत पर्याय करते हैं, वही (विपरीतता) आवरण है।

गुणपर्याय के दो भेद हैं - १. स्वभावपर्याय - जैसे सिद्ध के गुणपर्याय। २. विभावपर्याय जैसे स्वपरहेतुक मतिज्ञानपर्याय। 'स्वपवरहेतुक' (कहा इसका मतलब) निमित्त है इतना। निमित्त है परन्तु उससे (पर्याय) होती नहीं। उससे होती है (ऐसा) कहने में आता है वह व्यवहार का कथन है। अभूतार्थनय (से कहते हैं)।

ऐसा जिनेन्द्र भगवान की वाणी से कथित सर्व पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप ही यथार्थ है। भगवान ने जो यह द्रव्य-गुण-पर्याय कहें, यही यथार्थ है। **जो जीव, द्रव्य-गुण को न जानते हुए मात्र पर्याय का ही आलम्बन लेते हैं...**

(अर्थात्) एक समय की पर्याय का ही आश्रय-अवलम्बन लेते हैं। द्रव्य-गुण त्रिकाल आनन्द का नाथ प्रभु है, ध्रुव है उसका आश्रय नहीं लेते और पर्याय का आश्रय लेते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। आहा...हा...! कठिन काम है। क्या कहा ?

जो जीव, द्रव्य-गुण को न जानते हुए... (अर्थात्) अपना द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड और गुण (अर्थात्) अनन्त गुण, उसका स्वतन्त्र आश्रय तो है नहीं। आहा...हा...! और **मात्र पर्याय का ही आलम्बन लेते हैं...** (अर्थात्) एक समय की पर्याय का आलम्बन (और) असमानजातीय देहादि का आलम्बन लेते हैं। आहा...हा...! **वे निज स्वभाव को न जानते हुए...** (अर्थात्) आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान! ज्ञायकस्वभाव त्रिकाल (है), उसको न जानते हुए, एक समय की पर्यायमात्र में ही अपनी दृष्टि रखी है, वह परसमय मिथ्यादृष्टि है। आ...हा...हा...! है ? **निज स्वभाव को न जानते हुए परसमय हैं।** परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि। आहा...हा...! उसे जैन की खबर नहीं। वह जैन नहीं। अपनी पर्याय में राग होता है और ज्ञान के क्षयोपशम का आश्रय लेता है और द्रव्य का आश्रय नहीं लेता है, वह जैन नहीं।

फिर से, पर का (आश्रय) तो नहीं परन्तु अपने आत्मा में जो क्षणिक पर्याय है, उसका आश्रय लेता है और द्रव्य-गुण त्रिकाली है, उसका आश्रय नहीं लेता है, वह परसमय मिथ्यादृष्टि अजैन है। आ...हा...हा...! कठिन काम है, बापू! दुनिया को जानते हैं न!

यहाँ तो शरीर को ९० वर्ष हुए। क्या कहते हैं ? नब्बे! नब्बे कहते हैं न ? ९ और ०। ६६ वर्ष से दीक्षा है, ६७ वर्ष से दुकान छोड़ी है, दुकान पर भी हम तो पढ़ते थे। ६४-६५ की साल से! पिताजी ६३ में गुजर गये, तो ६४ की साल से हम शास्त्र पढ़ते थे। लेकिन श्वेताम्बर के; उस समय तो श्वेताम्बर थे न! पिताजी श्वेताम्बर स्थानकवासी थे। वहाँ श्वेताम्बर का एक 'अध्यात्म कल्पद्रुम' (शास्त्र) है, वह पहले मिला। ६४-६५ के साल की बात है, संवत १९६४-६५, १८-१९ वर्ष की उम्र थी। (उसमें तो) वैराग्य की बात (आये) तत्त्व की (बात) कुछ नहीं। फिर 'दस वैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'आचारंग', 'सूयगडांग' है, वह देखे। दुकान पर देखे। संवत् ६५-६६ की साल! ७० वर्ष पहले की बात हे। यहाँ तो पूरी जिन्दगी ऐसे गयी है।

श्रोता : करोड़ों श्लोक आपने पढ़े थे!

पूज्य गुरुदेवश्री : करोड़ों... ! श्वेताम्बर के सब ग्रन्थ देखे हैं, अपने दिगम्बर के सब ग्रन्थ देखे हैं। करोड़ों श्लोकों! आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं कि आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में तो है, परन्तु (मिथ्यादृष्टि जीव) पर्याय का आश्रय करता है - एक समय की अवस्था का आश्रय करता है और उसका अवलम्बन लेता है तो त्रिकाली द्रव्य का आलम्बन नहीं लेता है, तो वह परसमय मिथ्यादृष्टि है - पर्यायबुद्धि मूढ़ जीव है। पाठ है, देखो! पर्यायमूढ़ा! ९३ गाथा में चौथा पद है। '**पज्जयमूढा हि परसमया**' ९३ गाथा है। 'पज्जयमूढा हि परसमया' जो आत्मा अपनी पर्याय का आश्रय लेते हैं परन्तु त्रिकाली भगवान द्रव्यस्वभाव का आश्रय नहीं लेते हैं, वे पर्यायमूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। आहा...हा... ! भगवान! दिगम्बर सन्त (तो) ! तीर्थङ्कर की वाणी कहनेवाले हैं! और कहीं है नहीं। आ...हा... ! दिगम्बर जैन, यह कोई पक्ष नहीं, कोई पन्थ नहीं, वाड़ा नहीं (है), वस्तु का स्वरूप है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा यहाँ कहने में आता है। ऐसा दिगम्बर सन्तों ने कहा है और वह भी भगवान की (कही हुई) व्यवस्था! त्रिलोकनाथ ने कहा है, वह कहते हैं। अपनी (घर की) बात नहीं (कहते)। आहा...हा... ! यहाँ अन्तिम शब्द (परसमय) आया, इसलिए (मूल पाठ में से लिया)।

गाथा – ९४

अथानुषङ्गिकीमिमामेव स्वसमयपरसमयव्यवस्थां प्रतिष्ठाप्योपसंहरति -

जे पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा।
आदसहावम्हि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा।। ९४।।

ये पर्यायेषु निरता जीवाः परसमयिका इति निर्दिष्टाः।
आत्मस्वभावे स्थितास्ते स्वकसमया ज्ञातव्याः।। ९४।।

ये खलु जीवपुद्गलात्मकसमानजातीयद्रव्यपर्यायं सकलाविद्यानामेकमूलमुपगता यथोदितात्मस्वभाव-संभावनक्लीबास्तस्मिन्नेवाशक्तिमुपव्रजन्ति, ते खलूच्छलितनिरर्गलैकान्तदृष्टयो मनुष्य एवाहमेष ममैवैतन्मनुष्यशरीरमित्यहङ्कारममकाराभ्यां विप्रलभ्यमाना अविचलित-चेतनाविलासमात्रादात्मव्यवहारात् प्रच्युत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहार-माश्रित्यरज्यन्तो द्विषन्तश्च परद्रव्येण कर्मणा संगतत्वात्परसमया जायन्ते। ये तु पुनरसंकीर्णद्रव्य-गुणपर्यायसुस्थितं भगवन्तमात्मनः स्वभावं सकल-विद्यानामेकमूलमुपगम्य यथोदितात्मस्वभाव-संभावनसमर्थतया पर्यायमात्राशक्तिमत्यस्यात्मनः स्वभाव एव स्थितिमासूत्रयन्ति, ते खलु सहजविजृम्भितानेकान्तदृष्टिप्रक्षपितसमस्तैकान्तदृष्टिपरिग्रहग्रहा मनुष्यादिगतिषु तद्विग्रहेषु चाविहिताहङ्कारममकारा अनेकापवरकसंचारितरत्नप्रदीपमिवैकरूप-मेवात्मानमुपलभमाना अविचलितचेतनाविलासमात्रमात्मव्यवहारमुररीकृत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहार-मनाश्रयन्तो विश्रान्तरागद्वेषोन्मेषतया परममौदासीन्यमवलंबमाना निरस्तसमस्तपरद्रव्य-संगतितया स्वद्रव्येणैव केवलेन संगतत्वात्स्वसमया जायन्ते। अतः स्वसमय एवात्मनस्तत्त्वम्।।९४।।

अथ प्रसंगायातां परसमयस्वसमयव्यवस्थां कथयति - **जे पज्जयेसु णिरदा जीवा ये** पर्यायेषु निरताः जीवाः **परसमयिग त्ति णिद्दिट्ठा ते परसमया इति निर्दिष्टाः** कथिताः। तथा हि - मनुष्यादिपर्यायरूपोऽहमित्यहङ्कारो भण्यते, मनुष्यादिशरीरं तच्छरीराधारोत्पन्न-पञ्चेन्द्रियविषयसुखस्वरूपं च ममेति ममकारो भण्यते, ताभ्यां परिणताः ममकाराहङ्काररहित-परमचैतन्यचमत्कारपरिणतेश्च्युता ये ते कर्मोदयजनितपरपर्यायनिरतत्वात्परसमया मिथ्यादृष्टयो भण्यन्ते। **आदसहावम्मि ठिदा** ये पुनरात्मस्वरूपे स्थितास्ते **सगसमया मुणेदव्वा** स्वसमया मन्तव्या ज्ञातव्या इति। तद्यथा - अनेकापवरकसंचारितैकरत्नप्रदीप इवानेकशरीरेष्वप्येकोऽहमिति दृढसंस्कारेण निजशुद्धात्मनि स्थिता ये ते कर्मोदयजनितपर्यायपरिणतिरहितत्वात्स्वसमया भवन्तीत्यर्थः।।९४।।

अब, आनुषंगिक[१] ऐसी यह ही स्वसमय-परसमय की व्यवस्था (अर्थात् स्वसमय और परसमय का भेद) निश्चित करके (उसका) उपसंहार करते हैं -

पर्याय में रत जीव जो हैं, परसमय उनको कहा।
लीन आत्मस्वभाव में जो, स्वसमय वे जीव अहा!॥

अन्वयार्थ - [**ये जीवाः**] जो जीव [**पर्यायेषु निरताः**] पर्यायों में लीन हैं, [**परसमयिकाः इति निर्दिष्टाः**] उन्हें परसमय कहा गया है, [**आत्मस्वभावे स्थिताः**] जो जीव आत्मस्वभाव में स्थित हैं, [**ते**] वे [**स्वकसमयाः ज्ञातव्याः**] स्वसमय जानने।

टीका : जो जीव-पुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का - जो कि सकल अविद्याओं का एक मूल है, उसका आश्रय करते हुए यथोक्त[२] आत्मस्वभाव की सम्भावना[३] करने में नपुंसक होने से उसी में बल धारण करते हैं, (अर्थात् उन असमानजातीय द्रव्य-पर्यायों के प्रति ही बलवान हैं), वे जिनकी निरर्गल[४] एकान्तदृष्टि उछलती है ऐसे - 'यह मैं मनुष्य ही हूँ, मेरा ही यह मनुष्य शरीर है' इस प्रकार अहङ्कार-ममकार से ठगाये जाते हुए, अविचलितचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार[५] से च्युत होकर, जिसमें समस्त क्रियाकलाप को छाती से लगाया जाता है - ऐसे मनुष्यव्यवहार[६] का आश्रय करके रागी-द्वेषी होते हुए परद्रव्यरूप कर्म के साथ संगतता के कारण (- परद्रव्यरूप कर्म के साथ युक्त हो जाने से) वास्तव में परसमय[७] होते हैं, अर्थात् परसमयरूप परिणमित होते हैं।

और जो असंकीर्ण[८] द्रव्य गुण-पर्यायों से सुस्थित भगवान आत्मा के स्वभाव का जो कि सकल विद्याओं का एक मूल है, उसका आश्रय करके यथोक्त आत्मस्वभाव की सम्भावना में समर्थ होने से, पर्यायमात्र प्रति के बल को दूर करके आत्मा के स्वभाव में ही

---

१. आनुषंगिक = पूर्व गाथा के कथन के साथ सम्बन्धवाली। २. यथोक्त = पूर्व गाथा में कहा जैसा।
३. सम्भावना = सञ्चेतन; अनुभव; मान्यता; आदर।
४. निरर्गल = अंकुश बिना की; बेहद (जो मनुष्यादि पर्याय में लीन हैं, वे बेहद एकान्तदृष्टिरूप हैं।)
५. आत्मव्यवहार = आत्मारूप वर्तन, आत्मारूप कार्य, आत्मारूप व्यापार।
६. मनुष्यव्यवहार = मनुष्यरूप वर्तन (मैं मनुष्य ही हूँ। ऐसी मान्यतापूर्वक वर्तन)।
७. जो जीव पर के साथ एकत्व की मान्यतापूर्वक युक्त होता है, उसे परसमय कहते हैं।
८. असंकीर्ण = एकमेक नहीं ऐसे; स्पष्टतया भिन्न [भगवान आत्मस्वभाव स्पष्ट भिन्न - पर के साथ एकमेक नहीं ऐसे - द्रव्यगुणपर्यायों से सुस्थित है]।

स्थित करते हैं (– लीन होते हैं), वे जिन्होंने सहज–विकसित अनेकान्तदृष्टि से समस्त एकान्तदृष्टि के परिग्रह[१] के आग्रह प्रक्षीण कर दिये हैं, ऐसे – मनुष्यादि गतियों में और उन गतियों के शरीरों में अहङ्कार–ममकार न करके अनेक कक्षों (कमरों) में सञ्चारित[२] रत्नदीपक की भाँति एकरूप ही आत्मा को उपलब्ध (अनुभव) करते हुए, अविचलित – चेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार को अङ्गीकार करके, जिसमें समस्त क्रियाकलाप से भेंट की जाती है – ऐसे मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करते हुए, राग–द्वेष का उन्मेष (प्राकट्य) रुक जाने से परम उदासीनता का आलम्बन लेते हुए, समस्त परद्रव्यों की सङ्गति दूर कर देने से मात्र स्वद्रव्य के साथ ही सङ्गतता होने से वास्तव में स्वसमय[३] होते हैं, अर्थात् स्वसमयरूप परिणमित होते हैं।

इसलिए स्वसमय ही आत्मा का तत्त्व है।

भावार्थ : 'मैं मनुष्य हूँ, शरीरादि की समस्त क्रियाओं को मैं करता हूँ, स्त्री–पुत्र–धनादि के ग्रहण–त्याग का मैं स्वामी हूँ' इत्यादि मानना, सो मनुष्यव्यवहार (मनुष्यरूप प्रवृत्ति) है; 'मात्र अचलित चेतना, वह ही मैं हूँ' ऐसा मानना – परिणमित होना, सो आत्मव्यवहार (आत्मारूप प्रवृत्ति) है।

जो मनुष्यादिपर्याय में लीन हैं, वे एकान्तदृष्टिवाले लोग मनुष्यव्यवहार का आश्रय करते हैं, इसलिए रागी–द्वेषी होते हैं और इस प्रकार परद्रव्यरूप कर्म के साथ सम्बन्ध करते होने से वे परसमय हैं; और जो भगवान् आत्मस्वभाव में ही स्थित हैं, वे अनेकान्तदृष्टिवाले लोग मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करके आत्मव्यवहार का आश्रय करते हैं, इसलिए रागी–द्वेषी नहीं होते, अर्थात् परम उदासीन रहते हैं और इस प्रकार परद्रव्यरूप कर्म के साथ सम्बन्ध न करके, मात्र स्वद्रव्य के साथ ही सम्बन्ध करते हैं; इसलिए वे स्वसमय हैं॥ ९४॥

---

१. परिग्रह = स्वीकार; अङ्गीकार।

२. सञ्चारित = ले जाये गये। (जैसे, भिन्न-भिन्न कमरों में ले जाया गया रत्नदीपक एकरूप ही है, वह किञ्चित्मात्र भी कमरे के रूप में नहीं होता, और न कमरे की क्रिया करता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शरीरों में प्रविष्ट होनेवाला आत्मा एकरूप ही है, वह किञ्चित्मात्र भी शरीररूप नहीं होता और न शरीर की क्रिया करता है - इस प्रकार ज्ञानी जानता है।)

३. जो जीव स्व के साथ एकत्व की मान्यतापूर्वक (स्व के साथ) युक्त होता है, उसे स्वसमय कहा जाता है।

प्रवचन नं. ८९ का शेष दिनाङ्क ३० मई १९७९

अब, ९४ गाथा। **अब आनुषंगिक....** (अर्थात्) 'पूर्व गाथा के कथन के साथ सम्बन्धवाली' **आनुषंगिक ऐसी यह ही स्वसमय-परसमय की व्यवस्था (अर्थात् स्वसमय और परसमय का भेद) निश्चित करके (उसका) उपसंहार करते हैं -**

जे पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा।
आदसहावम्हि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा।। ९४।।

नीचे उसका हरिगीत (है)।

पर्याय में रत जीव जो हैं, परसमय उनको कहा।
लीन आत्मस्वभाव में जो, स्वसमय वे जीव अहा!॥

आ...हा...हा...! टीका देखो। पहले असमानजातीय लिया है, देखो! **जो जीवपुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का - जो कि सकल अविद्याओं का एक मूल है...** आ...हा...हा...हा...! यहाँ पर्यायमूढ़ में शरीर के साथ ले लिया, क्योंकि पर्याय की दृष्टि है, उसकी दृष्टि पर ऊपर जाती है। 'शरीर की पर्याय मेरी है और शरीर की पर्याय मैं करता हूँ' ऐसा मूढ़ जीव (मानता है)। (ऐसी मान्यता) **सकल अविद्याओं का एक मूल है...** असमानजातीय (अर्थात्) जीव और पुद्गल दोनों को एक मानता है कि मैं आत्मा, पुद्गल का (कार्य) कर सकता हूँ और पुद्गल मेरा कुछ कर सकता है, ऐसा जो अज्ञान (है, वह) सब अविद्या का मूल है। आ...हा...हा...! 'अमृतचन्द्राचार्य' की टीका है। असमानजाति को लिया है, भाई! आत्मा को असमानजाति कहाँ है? आत्मा और शरीर - पुद्गल दो असमानजातीय (है)। उसको पर्याय में अपना मानते हैं, शरीर को (ही अपना) मानता है और शरीर पर नजर है। पर्यायदृष्टिवाले की दृष्टि शरीर पर है और पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई, उसकी दृष्टि द्रव्य पर है - ध्रुव पर है। समकिती की दृष्टि ध्रुव पर है। मिथ्यादृष्टि की दृष्टि पर्याय पर है। पर्याय पर होने से शरीर पर जाती है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म! इससे तो दया पाली, व्रत किये, भक्ति की, पूजा

की... (ये सब) आसान था। मिथ्यात्व और भटकने के लिए (आसान था)! आहा...हा...! ऐसा मार्ग!

जो जीव **जो जीवपुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का – जो कि सकल अविद्याओं का एक मूल है...** मिथ्यात्व का–महामिथ्यात्व का यह मूल है। उसका **आश्रय करते हुए यथोक्त आत्मस्वभाव की सम्भावना करने में...** यथोक्त (अर्थात्) जैसा है वैसा। 'पूर्व गाथा में कहा जैसा।' सम्भावना = सञ्चेतन; अनुभव; मान्यता; आदर। वह तो आत्मस्वभाव की सम्भावना करने में नपुंसक है। आहा...हा...! क्लीव... क्लीव कहा है! संस्कृत में 'क्लीव' (कहा) है। क्या कहते हैं?

जो कोई प्राणी 'राग और शरीर की अवस्था मेरी है', ऐसा मानता है, वह नपुंसक है – पावैया, हीजड़ा है। जैसे नपुंसक को वीर्य नहीं होता तो प्रजा नहीं होती। वैसे पर ही को – शरीर को अपना मानना, शरीर की क्रिया कर सकता हूँ, ऐसा मानना और आत्मा की पर्याय में राग है, इतना मैं हूँ – ऐसा मानना, वह नपुंसक है, उसे धर्म की प्रजा उत्पन्न नहीं होती। कठिन बात है। 'समयसार' में चार-पाँच जगह आया है। नपुंसक-क्लीव! पुण्य को धर्म माननेवाला नपुंसक–पावैया–हीजड़ा है। व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता है – ऐसा माननेवाला नपुंसक है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय राग है और निश्चयरत्नत्रय तो वीतरागीपर्याय है। वीतरागीपर्याय तो अपने द्रव्यस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न होती है, राग से नहीं। आहा...हा...! इसमें भी (प्रवचनसार) में भी नपुंसक आ गया है, यह दूसरी बार आया और 'समयसार' में दो बार (आया है)। १५४ गाथा और ३५ से ४३ (गाथा में आया है)।

'क्लीव' कहा है, पाठ में है। देखो! '**यथोदितात्मस्वभावसंभावनक्लीव**' 'क्लीव' है संस्कृत में, दूसरी पंक्ति है। है? 'क्लीव'! 'यथोदितात्मस्वभावसंभावनक्लीव'! (इस अधिकार की) दूसरी गाथा में बीच में है। नपुंसक कहते हैं। आहा...हा...!

भगवान तो ऐसा कहते हैं कि आत्मा का जो वीर्य है – त्रिकाल पुरुषार्थ! वह पुरुषार्थ – वीर्य, स्वरूप की रचना करता है। विभाव की रचना करे, वह वीर्य नहीं; वह तो नपुंसक है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! धीरे से समझो!

फिर से – ४७ गुण हैं (उसमें) वीर्य गुण लिया न? 'समयसार' में अन्त में ४७ शक्तियाँ हैं, उसमें एक पुरुषार्थ गुण – वीर्य गुण लिया है। त्रिकाली भगवान में त्रिकाल पुरुषार्थ है, तो पुरुषार्थ क्या (कार्य) करता है? (तो कहते हैं कि), पुरुषार्थ का कार्य तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप की रचना (करना है)। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं परन्तु इसे छोड़कर राग की रचना करे, उसे नपुंसक कहते हैं। आहा...हा...! कठिन लगे! (नये आदमी को तो ऐसा लगे) ऐसा कैसा उपदेश!? यहाँ कहते हैं न, सुनो न यहाँ क्या कहा?

आत्मस्वभाव की सम्भावना करने में नपुंसक... त्रिकाली भगवान ज्ञायकभाव ध्रुवभाव परमपारिणामिकभाव स्वभावभाव! आ...हा...! अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय न करके पर्याय में राग का आश्रय करते हैं, उसे प्रभु यहाँ नपुंसक कहते हैं। 'अमृतचन्द्राचार्य' सन्त मुनि हैं! पञ्च महाव्रतधारी! आ...हा...हा...!

वीर्यगुण में ऐसा कहा कि अपना वीर्यगुण जो त्रिकाल है, वह तो शुद्ध पर्याय की रचना करता है, उसे वीर्य कहते हैं। जो वीर्य, पुण्य और पाप, शुभाशुभभाव की रचना करे, वह अपना वीर्य नहीं, अपना बल नहीं; वह नामर्द है। 'समयसार' में ४३ और १५४ गाथा में 'नामर्द' आ गया है। नामर्द! मर्द नहीं। राग की रचना करके धर्म माननेवाला है, वह नामर्द है। आ...हा...हा...! कठिन है! यह तो परमात्मा की वाणी है, प्रभु! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा 'सीमन्धरस्वामी' भगवान (विराजते हैं), उनके पास से (यह वाणी) आयी है। आ...हा...हा...! क्या कहा?

जीव-पुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का – जो कि सकल अविद्याओं का एक मूल है... (अर्थात्) राग की क्रिया मैं करता हूँ, शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, यह सर्व मिथ्यात्व का मूल (है)। **उसका – आश्रय करते हुए यथोक्त आत्मस्वभाव...** (अर्थात्) जो त्रिकाली स्वभाव है। है तो द्रव्य-गुण-पर्याय। वह आगे लेंगे। आगे लेंगे, भाई! गुजराती में पढ़ा था। क्या कहते हैं? आहा...हा...! यह स्वभाव -आत्मा के स्वभाव से विपरीत भाव और परभाव (अर्थात्) कर्म, शरीर (आदि), उसे (जो) अपना मानता है, वह परसमय मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! पहले लिया है, द्रव्य

-गुण-पर्याय (की ऐसी व्यवस्था कही है)। द्रव्य-गुण-पर्याय तीन शब्द हैं। भगवान ने आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय कहे, उन तीन में से द्रव्य का आश्रय नहीं लेता है (और) पर्याय का आश्रय लेता है, वह मिथ्यादृष्टि है। द्रव्य-गुण-पर्याय हैं तो अपने, अपने में (है); पर के कारण से नहीं। फिर भी पर्याय का आश्रय लेना नहीं। त्रिकाली भगवान ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेना, वह (जीव) स्वसमय और समकित है। विशेष कहेंगे! गुजराती में कहेंगे।

प्रवचन नं. ९० **दिनाङ्क ३१ मई १९७९**

'प्रवचनसार' ९४ गाथा (टीका) फिर से (लेते हैं।)

जो जीव-पुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का... ऐसा क्यों नहीं लिया कि जीव की पर्याय को पकड़ने पर? पर्याबुद्धिवाला पर्याय को पकड़ने पर - ऐसा नहीं लिया, क्योंकि अज्ञानी पर्याय को पकड़ नहीं सकता। इस कारण भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने (ऐसा लिया है कि) पर्यायबुद्धिवाले की दृष्टि असमानजातीय पुद्गल (शरीर) पर जाती है, वह उसे देख सकता है, मान सकता है, जान सकता है; वरना पर्यायबुद्धि में तो द्रव्य-गुण से उत्पन्न हुई पर्याय - ऐसा आया है न? और यह तो असमानजातीय को मिथ्यात्व में डालते हैं, पर्यायबुद्धि को नहीं। क्या कहा समझ में आया?

रात्रि में कहा था कि पर्याय एक समय की है, उसे यह पकड़ नहीं सकता। ऐसे पर्यायबुद्धिवाले की दृष्टि शरीर पर, असमानजातीय शरीर पर जाती है; इसलिए पर्यायबुद्धिवाले की पर्याय की दृष्टि है - ऐसा नहीं लेकर; पर्यायबुद्धिवाले को असमानजातीय शरीर की दृष्टि है - ऐसा लिया है। आहा...हा...! समझ में आता है? (यह) अमृतचन्द्राचार्य (की टीका है)। इसमें उनकी भूल निकालना कि ऐसा क्यों कहा? वरना (इस अधिकार की) पहली गाथा का पाठ तो ऐसा लिया है कि विस्तारसामान्यसमुदाय और आयतसामान्यसमुदाय का पिण्ड, वह द्रव्य और अनन्तगुणों का एक आधार, वह द्रव्य। इसलिए गुणात्मक - **अत्थोखलुदव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि** (कहा) और पर्याय दोनों से उत्पन्न हुई है। वह तो अपनी पर्याय अपने से - द्रव्य और गुण से उत्पन्न हुई है।

यहाँ पर्यायदृष्टि में पर्याय नहीं लेकर असमानजातीय शरीर को लिया है, वह यथार्थरूप से लिया है। आ...हा...! क्योंकि अज्ञानी एक समय की पर्याय को नहीं पकड़ सकता, इसलिए यहाँ पर्याय (की दृष्टि) विस्तृत होकर उसकी दृष्टि शरीर पर जाती है आ...हा...! समझ में आया?

(यहाँ कहते हैं) **जो जीव-पुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का...** यह द्रव्यपर्याय ली है। उसकी अपनी द्रव्यपर्याय-व्यञ्जन(पर्याय) या अर्थपर्याय नहीं ली है। आहा...हा...! भाई! वरना द्रव्यपर्याय, व्यञ्जनपर्याय है। जहाँ केवली की बात ली है - **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयतेहिं** - वहाँ उनकी पर्याय में व्यञ्जनपर्याय है, वह ली है और केवलज्ञान आदि अर्थपर्याय भी ली है। आहा...!

यहाँ तो उनका कहने का आशय यह है कि भाई! जिसे त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की दृष्टि नहीं है, ज्ञायक ध्रुवस्वरूप प्रभु, परमानन्दमूर्ति, नित्यानन्द परम स्वभावभाव की जिसे दृष्टि नहीं है, उनकी दृष्टि शरीर पर जाती है। आहा...हा...! समझ में आया कुछ? जो अपनी जाति नहीं है, ऐसा यह जड़ (शरीर), उनकी जाति आत्मा की जाति से भिन्न है। आहा...हा...! **जो जीव-पुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय...** उसे द्रव्यपर्याय कहा है।

९३ वीं गाथा में भी द्रव्यपर्याय कही थी न? द्रव्य उसे कहा कि सामान्य और विशेष (अर्थात्) गुण और पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य है। गुण उसे कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय से (रहे हैं)। अनन्त गुण हैं, तथापि एक के आश्रय से रहते हैं, वह गुण है। पर्याय उसे कहते हैं कि जो द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय (- ऐसे दो प्रकार की है।) द्रव्यपर्याय के दो प्रकार हैं। आहा...हा...! एक असमानजातीय द्रव्यपर्याय (और) एक समानजातीय द्रव्यपर्याय। वहाँ समानजातीय द्रव्यपर्याय में भी प्रश्न उठा था न? कि वहाँ आत्मा और आत्मा - ऐसा क्यों नहीं लिया? समानजातीय में पुद्गल लिया है, (उसका कारण यह है कि) समानजातीय आत्मा को (और) आत्मा को वास्तव में एकरूप स्कन्धपना नहीं है। एकपना तो परमाणु को भी नहीं है, परन्तु परमाणु के पिण्ड को स्कन्ध कहते हैं - यह शरीरादि पिण्ड-स्कन्ध है; इस कारण द्रव्यपर्याय में आत्मा और शरीर की

असमानजातीय को द्रव्यपर्याय में लिया है और समानजातीय में परमाणु के पिण्ड को द्रव्यपर्याय लिया। आहा...हा... ! परमाणु के स्कन्ध की अवस्था को द्रव्यपर्याय लिया।

गुणपर्याय तो फिर (ली है) - स्वाभाविक गुणपर्याय और विभाविक गुणपर्याय। उनमें अगुरुलघुस्वभाव की स्वाभाविक पर्याय (कही) और ज्ञानादि तथा रूपादि के परिणमन में निमित्त होने पर हीनाधिक अवस्था होती है और निमित्तपने में कर्म है, उस दशा को विभावगुणपर्याय कहा। विभावगुणपर्याय !

यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव ने ऐसा क्यों लिया ? (क्योंकि) वह पर्यायबुद्धिवाला, त्रिकाली स्वभाव को तो देखता नहीं, परन्तु उसके गुण को भी नहीं देखता तथा एक समय की पर्याय को भी नहीं पकड़ सकता। आहा...हा... ! ओ...हो...हो...हो... ! क्या शास्त्र की गम्भीरता ! दिगम्बर सन्तों की शैली गजब बात है ! जहाँ उसकी गम्भीरता/गहराई देखते हैं, वहाँ तो ऐसा लगता है कि ओ...हो...हो...हो... ! उन्हें बताना तो है ध्येय (स्वरूप) सम्पूर्ण द्रव्य ! द्रव्य का स्वभाव बताना है। आत्मा को द्रव्य-गुण-पर्याय तीन हैं - ऐसा अन्त में कहेंगे। भगवान (आत्मा) **असंकीर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय द्वारा सुस्थित...** है। अन्तिम दो लाइने हैं न ! ऐसे आत्मा के स्वभाव का... स्वभाव का ! द्रव्य-गुण-पर्याय है अवश्य ! आहा...हा... ! परन्तु उसका त्रिकाली स्वभाव, जो भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकभाव ! उसकी सम्भावना का (अनुभव का) उसे अभाव है। आहा...हा... ! जो कि सकल ज्ञान विद्या का मूल है, उसका अज्ञानी को अभाव है। कुछ समझ में आया ? आहा...हा... !

(यहाँ कहते हैं) **असमानजातीय द्रव्यपर्याय - जो कि सकल अविद्याओं का एक मूल है...** आहा...हा...हा... ! अज्ञान और मिथ्यात्व, यह सकल अविद्याओं का मूल है। पर्यायबुद्धि में असमानजातीय (स्वरूप ऐसे) शरीर को अपना मानता है, उसकी क्रिया हो, उसे अपनी मानता है। यद्यपि मनुष्यव्यवहार में क्रिया लेंगे। क्या कहा ? आत्मव्यवहार में उसकी पर्याय लेंगे और मनुष्यव्यवहार में (मैं) मनुष्य हूँ, देव हूँ - ऐसा लेंगे। मनुष्यव्यवहार में (- ऐसा लेंगे) और उसमें हूँ यह (तो) ठीक, परन्तु 'हूँ' में जो वे राग-द्वेष के परिणमन की क्रिया (होती) है, उस क्रिया को एकरूप मानता है। आहा...हा... !

सकल अविद्याओं का एक मूल है... आहा...हा... ! (अज्ञानी जीव) पर्यायदृष्टि

में पर्याय नहीं पकड़ सकता, इसलिए वह असमानजातीय द्रव्य को पकड़ता है और जानता है, अर्थात् उसका लक्ष्य शरीर पर जाता है और वह 'शरीर मेरा है' - ऐसी जो बुद्धि, वह सकल अविद्या का मूल है। वह महामिथ्यात्व और अज्ञान का मूल है। आहा...हा...! समझ में आया कुछ?

सकल अविद्याओं का जो एक मूल है, उसका - आश्रय करते हुए... देखो? **उसका आश्रय करते हुए...** (ऐसा कहा है।) 'शरीर और मैं दोनों एक हैं, मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ' - ऐसी मान्यता, हाँ! (इसी प्रकार) **आश्रय करते हुए यथोक्त आत्म -स्वभाव की सम्भावना...** अब, यथोक्त अर्थात्? यथा + उक्त। जहाँ विस्तारसामान्य और आयतसामान्य का पिण्ड जो द्रव्य कहा, वह उसका - द्रव्य का यथोक्त स्वभाव है। क्या कहा?

यथोक्त आत्मस्वभाव की सम्भावना... (अर्थात्) यथा + उक्त, हमने जो द्रव्य कहा (अर्थात्) अनन्त सामान्य - विस्तारसामान्यसमुदाय और आयतसामान्यसमुदाय, वह द्रव्य। उस द्रव्य का... आहा...हा...! अर्थात् द्रव्य का-आत्मस्वभाव की सम्भावना, अर्थात् अनुभव **करने में नपुंसक होने से...** आहा...हा...! उस असमानजातीय पर दृष्टि पड़ी और वही मेरा स्वरूप है - ऐसा मानकर (परिणमित होता है, जो कि सकल) अविद्या का मूल है। वह आत्मस्वभाव जो कहा कि द्रव्य-गुण और पर्याय, उसके कहे, परन्तु आत्मद्रव्य है, वह गुण और पर्याय का सम्पूर्ण अखण्ड पिण्ड है। ऐसी जो द्रव्यस्वभाव की बात की थी, (उसे अनुभव करने में नपुंसक है।) आहा...हा...! यथोक्त = यथा + उक्त, अर्थात् पूर्व कथित (ऐसे) **आत्मस्वभाव की सम्भावना...** ऐसा जो आत्मस्वभाव - अनन्त गुण और अनन्त पर्याय का एकरूप द्रव्य, वह आत्मस्वभाव - वह वस्तु है। उसकी सम्भावना (अर्थात्) उसका अनुभव। यहाँ (फुटनोट में) सम्भावना के बहुत अर्थ किये हैं। सम्भावना = सञ्चेतन (अर्थात्) उसका चेतना, अनुभव करना, मान्यता, आदर। आहा...हा...!

भगवान आत्मा, अनन्त गुण - विस्तारसामान्य और अनन्त पर्याय - लम्बाई - आयतसामान्य का पिण्ड, वह द्रव्यवस्तु है। वस्तु! उस वस्तु के स्वभाव की सम्भावना,

उस वस्तु के स्वभाव की मान्यता, उस वस्तु के स्वभाव का सञ्चेतन (अर्थात्) उसमें जागृत होना... आहा...हा... ! उसका अनुभव करना, उसे अपना मानना... आहा...हा... ! – यह करने में नपुंसक है। आहा...हा... ! अरे... ! उसका वीर्य जो है, (वह) पर्यायबुद्धि में असमानजातीय पर जाने से, उसे अपना माने – ऐसी जो मान्यता (होती है)... वह नपुंसक है। आहा...हा... ! उसने वीर्य को वहाँ रोका है। वह रुका हुआ वीर्य है, वह वास्तविक वीर्य नहीं है, वह नपुंसकता है। आहा...हा... !

श्रोता : घड़ी-क में उपवास करे, घड़ी-क में ब्रह्मचारी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ भी धन्धा करे न ! धन्धा छोड़कर बैठा, इसलिए हो गया ? परन्तु अन्दर में... आह...हा... ! यथोक्त द्रव्यस्वभाव का अनुभव करने में असमर्थ है। आहा...हा.. ! यह तो वीतराग की बातें हैं बापा ! क्या कहें ? इसका पूर्ण रहस्य तो सन्त जानें केवली जानें ! आहा...हा... ! आ...हा...हा... !

कहते हैं, ऐसी पर्यायबुद्धिवाला (जीव) अर्थात् असमानजातीय का आश्रय करने की अपेक्षा यथोक्त आत्मस्वभाव का आश्रय करना चाहिए। आश्रय करना कहो या अनुभव करना कहो, सञ्चेतन (करना कहो); आत्मद्रव्य जैसा है, वैसा चेतना-सञ्चेतन कहो, उसकी मान्यता कहो या आत्मस्वभाव का अनुभव कहो – ऐसा अनुभव करने में नपुंसक होने से... आहा...हा... ! गजब बात की है न ! उन्हें कहाँ पड़ी है ? समाज संगठित रहेगा या नहीं ? समाज में (यह बात) जँचेगी या नहीं ? बापू ! मार्ग यह है भाई !

आहा...हा... ! भगवान आत्मा ! पूर्ण स्वभाव ! उसका अनुभव, उसका आश्रय और उसका सञ्चेतन, जागना; उसका अभाव है, वह नपुंसकता है (– ऐसा) कहते हैं। आहा...हा... ! जो वीर्य, द्रव्यस्वभाव का अवलम्बन करके द्रव्य-त्रिकाली ज्ञायक का अनुभव करे... आहा...हा... ! वह मर्द है; वह मर्द का वीर्य है। आ...हा... ! वह आत्मा का वीर्य है। आहा...हा... ! ऐसी बात है ! उन तत्सूत्री... (आदि की क्रियाओं में से) निकलकर इसमें आना (लोगों को कठिन पड़ता है) परन्तु यह तो परम सत्य है प्रभु ! जगत् के साथ मेल नहीं बैठे, इससे कहीं (सत्य), असत्य नहीं हो जाता। आहा...हा... !

परम सत्य प्रभु ! ऐसा जो भगवान (स्वरूप) आत्मस्वभाव ! भले ही आत्मा, द्रव्य

-गुण-पर्यायस्वरूप है, परन्तु उसका द्रव्यस्वभाव जो है, उसका अनुभव चाहिए, उसका अनुभव करने में (अज्ञानी) नपुंसक है आहा...हा...! और मनुष्यदेह आदि के प्रति लक्ष्य करके उसका अनुभव करने में उदार है, वह नपुंसक है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं! ओ...हो...हो...! दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है! आहा...हा...! केवली को भुला दे! पञ्चम काल में केवली नहीं है, उन्हें भुला दे - ऐसा काम सन्तों ने किया है। आहा...हा...!

जिसमें भव का अन्त आवे - ऐसी दृष्टि नहीं की है। आत्मस्वभाव का अनुभव नहीं किया है। आहा...हा...! भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकस्वरूप है। पहले (समयसार गाथा १५६ में) आया था न? विद्वानजन भूतार्थ तज (व्यवहार में वर्तन करें); वहाँ ऐसा आया कि विद्वान् निश्चय छोड़कर व्यवहार में वर्तन करते हैं। (जबकि) नियमसार ५८ श्लोक है, वह ४१ वीं गाथा का है। क्या कहा? ४१ वीं गाथा में, क्षायिकभाव भी जीव में नहीं है - ऐसा कहा है, इससे उस गाथा में - ५८ वें कलश में ऐसा डाला है कि आहा...हा...! जिसमें क्षायिकभाव नहीं! प्रभु! आत्मद्रव्यस्वभाव तो देख! आत्मद्रव्यस्वभाव में उदयभाव तो नहीं, उपशम तो नहीं, क्षयोपशम तो नहीं, (परन्तु) क्षायिकभाव भी नहीं है। आहा...हा...! ऐसा जो आत्मद्रव्य स्वभाव है, उसे विद्वान्, पञ्चम गति की प्राप्ति के लिये उस पञ्चमभाव तो स्मरण करते हैं। उन्हें विद्वान् कहा है। आहा...हा...! वहाँ (समयसार की १५६ वीं गाथा में) विद्वान् उन्हें कहा है कि जो शास्त्र में से व्यवहार ढूँढकर निकाला, निश्चय पड़ा रहा!

श्रोता : दो प्रकार के पण्डित हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो प्रकार के! है न? नियमसार! आ...हा...! दूसरा समयसार का तो अपने आ गया - व्यवहार अभूतार्थ है। यह तो (नियमसार की ४१ वीं गाथा) है न? (उसमें) मूल तो कहना है कि क्षायिकभाव आत्मा में नहीं है। (५८ वें कलश में ऐसा कहते हैं कि) **(ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप) पाँच आचारों से युक्त और कुछ भी परिग्रह प्रपञ्च से सर्वथा रहित - ऐसे विद्वान...** आहा...हा...! **पूजनीय पञ्चम गति को प्राप्त करने के लिए... पूजनीय पञ्चम गति** (अर्थात्) सिद्धदशा! वह साध्यपद लिया। **विद्वान्, पूजनीय पञ्चम गति को प्राप्त करने के लिये...** यह

साध्य लिया और ध्येय क्या? (तो कहते हैं कि) **पञ्चम भाव का स्मरण करते हैं।** आहा...हा...! क्षायिकभाव भी जिसमें नहीं है! आहा...! ऐसा चैतन्य पिण्ड! चैतन्य दल! अतीन्द्रिय अनन्त गुण का एकरूप (स्वरूप) प्रभु भगवन्त! जिनस्वरूप भगवन्त आत्मा! आहा...हा...! उस पञ्चम गति को (प्राप्त करने के) लिये विद्वान् ऐसे पञ्चम भाव का स्मरण करते हैं, पञ्चम भाव का अनुभव करते हैं, क्योंकि उसमें ऊपर कहा था कि चार भाव आवरण संयुक्त हैं – ऐसा कहा है। चार भाव आवरण संयुक्त है – ऐसा कहा है। क्षायिकभाव आवरण संयुक्त, अर्थात्? क्षायिक में भी कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है न? और यह पञ्चम भाव-स्वभावभाव है, इसे तो कोई अपेक्षा है नहीं। ऐसा त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु! द्रव्यस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, भूतार्थस्वभाव! आहा...हा...! जिसे कर्म के निमित्त की और निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। क्षायिकभाव में तो कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा आयी। आहा...हा...! यहाँ कहना है वह तो यह है कि एक ओर विद्वत्‌जनों विद्वानों निश्चय को छोड़कर व्यवहार में वर्तते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं और विद्वान्... आहा...हा...! पञ्चम गति के लिए पञ्चम भाव का, अर्थात् ध्रुव का अनुभव करते हैं, वे सच्चे विद्वान् हैं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। (ऐसी बात है परन्तु) बैठे (जँचे) बापू! हाँ! आत्मा है न? अन्दर आत्मा है। आहा...हा...! इसलिए न समझ में आवे – ऐसी बात नहीं लेना। उसमें यह आड़ नहीं डालना। आ...हा...हा...!

भगवान आत्मा! (समयसार की) पाँचवीं गाथा में तो कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है न कि **जदि दाएज्ज** दिखाऊँगा **एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।** एक शब्द **दाएज्ज** तो पहले कहा, परन्तु यदि कदाचित् **दाएज्ज** – दर्शाऊ तो प्रमाण करना – स्वभाव का अनुभव करना – ऐसा कहते हैं। **पमाणं!** आहा...हा...! त्रिकाली द्रव्यस्वभाव का अनुभव करना! मात्र 'हाँ' करके वहीं का वहीं मत रहना। आहा...हा...! पञ्चम काल के सन्त पञ्चम काल के जीव को इतनी बड़ी बात करते हैं! बापू! तेरी कितनी महानता है कि उसे काल रोकता नहीं है। भाई! जिसमें क्षायिकभाव नहीं है, फिर तुझे उसमें क्या प्रश्न लेना है? आ...हा...हा...!

अन्दर पूर्ण परम अमृत का सागर भरा है। अतीन्द्रिय सुख का सागर... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... अनादि से पूर्ण ही है! जिसे आवरण नहीं है, जिसमें हीनता नहीं है, जिसमें विपरीतता नहीं है; जो निरावरण है, अविपरीत है और पूर्ण है। आहा...हा...! द्रव्यस्वभाव ऐसा है। यहाँ **यथोक्त आत्मस्वभाव** कहा है न! आत्मस्वभाव तो पहले यह वर्णन किया था कि विस्तारसामान्यसमुदाय और आयतसामान्यसमुदाय है, परन्तु वस्तु क्या है? कि यह सब होकर द्रव्य है। द्रव्य पर दृष्टि दे। भले ही विस्तारसामान्यस्वरूप अनन्त हैं, गुण हैं, आयतसामान्य(स्वरूप) अनन्त पर्यायें हैं, परन्तु उनका मूलरूप तो द्रव्य है। आहा...हा...! ऐसा जो यथोक्त आत्मस्वभाव कहा था... आहा...हा...! ऐसा कहकर (यह कहते हैं कि) प्रभु! तुझे ऐसा मनुष्यदेह का अवतार प्राप्त हुआ, भाई! वह खो जाएगा तो तू कहाँ जाएगा? भाई! आहा...! तेरा पता नहीं लगेगा बापा! आहा...! दुनिया को कठिन पड़े, दुनिया न माने, एकान्त कहे तो भी (उसका) लक्ष्य छोड़ दे। अकेले द्रव्यस्वभाव के आश्रय से ही धर्म होता है – इस बात को कोई एकान्त कहे तो भले कहे।

वस्तु, द्रव्य-गुण-पर्याय तीन (स्वरूप है), तथापि आश्रय करने योग्य तो द्रव्यस्वभाव है। जो गुण और पर्याय का पिण्ड द्रव्य कहा था... आहा...हा...! यह ज्ञेय अधिकार है। द्रव्य जो पूर्ण ज्ञेय है... आहा...हा...! वह तो अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों – दोनों का एकरूप है, वह द्रव्य है। ऐसा जो यथोक्त आत्मस्वभाव कहा था... आ...हा...हा...! हिन्दी की अपेक्षा गुजराती में स्पष्ट आता है। कल इतना अधिक स्पष्ट नहीं आया था।

यथोक्त... (अर्थात्) यथा कथित, (मूल शास्त्र में नीचे फुटनोट में) है न? (पूर्व गाथा में) जैसा कहा वैसा **आत्मवभाव...** अर्थात् अनन्त गुण सामान्यविस्तार और अनन्त पर्यायों का एकरूप, वह द्रव्य है। वह यथोक्त कथित जो आत्मस्वभाव, उसकी **सम्भावना...** (अर्थात्) उसको जानना, उसे चेतना, उसका अनुभव करना, उसे मानना... आहा...हा...! ऐसा करने में, जिसे पर्यायबुद्धि में असमानजातीय (द्रव्यपर्याय) यह दृष्टि है... आहा...हा...! वह **नपुंसक होने से...** आहा...हा...!

श्रोता : वैसे तो मात्र अकेला शरीर दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता है (परन्तु) देखनेवाला कौन है? देखनेवाला, (जो)

दिखता है, उसमें नहीं है। पर दिखता है, उसमें देखनेवाला नहीं है; देखनेवाला, देखनेवाले में है। जाननेवाला, जाननेवाले में है। जाननेवाला, देह को जानता है, उसमें वह नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। लोगों को कठिन पड़ता है। (स्वयं को) अभ्यास नहीं है और दूसरे प्रकार से सम्प्रदाय चलाये, उसमें ऐसा मूल तत्त्व था, वह रह गया। वीतराग-सर्वज्ञ! उसमें दिगम्बर मुनियों ने तो गजब काम किया है। बापा! आहा...हा...! केवली के विरह में, केवलज्ञान कैसे प्राप्त हो? - उसका उपाय बताया है। तुझे केवलज्ञान कैसे हो? (वह बताते हैं।) भले ही अभी केवली नहीं है। आहा...हा...!

आहा...हा...! प्रभु! तुझे द्रव्यस्वभाव कहा न! विस्तारसामान्य का समुदाय द्रव्य; आयतसामान्यसमुदाय द्रव्य - यह तो दो प्रकार एक ही है, हाँ! कोई दो द्रव्य नहीं है, आहा...! ऐसा जो द्रव्यस्वभाव... आहा...हा...! उसकी **सम्भावना करने में नपुंसक होने से उसी में बल धारण करते हैं...** आहा...हा...! 'शरीर, वह मैं' - ऐसी द्रव्यपर्याय में ही बल-वीर्य को धारण करते हैं, इस कारण उन्हें नपुंसक कहा गया है। आहा...हा...! जो वीर्य, स्वभावदृष्टि करने पर स्वभाव की रचना का कार्य करता है, जो वह वीर्य नहीं है और वह बल-वीर्य असमानजातीय (पर्याय) में जुड़ा है... आहा...हा...! उसे यहाँ नपुंसक वीर्य कहा है। प्रभु! आहा...हा...! सन्तों ने तो थोड़े में बहुत (समाहित कर दिया है।) अभी तो हजार वर्ष पहले हुए, उनकी यह बात है, उनकी टीका है। भगवान को तो २५०० वर्ष हुए। भगवान को (मोक्ष) पधारे हुए २५०० वर्ष हुए। यह तो भरतक्षेत्र में एक हजार वर्ष पहले सन्त विचरते थे, आहा...हा...! वे अमृतचन्द्राचार्य प्रभु! वे ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तुझे ९३ वीं गाथा में आत्मद्रव्य तो बताया; उस द्रव्यस्वभाव का अनुभव करने के लिए नपुंसक, उसका अनुभव करने को नालायक... आहा...हा...! (ऐसे जीव ने) असमानजातीय शरीर में बल जोड़ दिया है। आहा...हा...!

मनुष्यभव होवे तो केवलज्ञान हो, चार गति में दूसरे भव में कहीं होता है? (एक) मारवाड़ी आया था, (उसे) कोई बात नहीं जँचती थी। (वह ऐसा कहता था कि) मनुष्यभव होवे तो केवलज्ञान होता है, तो मनुष्यभव साधन है न? अरे...! प्रभु! तू यह क्या कहता है?

श्रोता : मनुष्यभव में दुःख से साधन हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे... ! उसका अभाव (होता है)। इसके सद्भाव में उसका अभाव हो जाता है। उसका अभाव करना भी नहीं पड़ता। जो ऐसा द्रव्यस्वभाव है, विस्तारसामान्यसमुदाय (स्वरूप) ऐसा जो द्रव्य है, उसकी दृष्टि और अनुभव करने पर असमानजातीय की एकताबुद्धि टूट जाती है। आहा...हा... !

'अब हम अमर भये न मरेंगे' - आता है न? यह (ब्रह्मविलास में) आनन्दघनजी का डाला है। 'या कारण मिथ्यात्व दियो तज... अब हम अमर भये न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्यों कर भव धारण करेंगे'। अब हम भव धारण नहीं करेंगे। आहा...हा... !

श्रोता : श्वेताम्बर के शास्त्रों को सच्चा माना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने ?

श्रोता : आनन्दघनजी ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनन्दघनजी की बात नहीं है। यह तो मैंने अपने दूसरे पण्डित की बात की है। आनन्दघनजी के शब्द हैं, वे अपने में हैं। कैसा कहा ? ब्रह्मविलास में, यह दिगम्बर के पण्डित में है, मेरे यह कहना है। आनन्दघनजी के शब्द लिये हैं - 'अब हम अमर भये न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे ? क्यों कर देह धरेंगे ?' आहा...हा... ! अब हम अमर भये न मरेंगे। जहाँ त्रिकाली अमर वस्तु का अनुभव किया, (वहाँ) हम तो अब अमर हो गये। आहा...हा... !

भगवान द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाल है... आहा...हा... ! ज्ञायकभाव को पकड़ा और जहाँ अनुभव किया और माना... आहा...हा... ! और वह सोया हुआ था, उसे जगाया, जागृत हुआ भगवान आत्मा ! अब उसे भव नहीं है। एक-दो भव हों, वे ज्ञान के ज्ञेय हैं। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं - उस (आत्मस्वभाव की) भावना करने में असमर्थ (होने से), **उसमें ही बल धारण करता है...** किसमें ? असमानजातीय जो शरीर है, 'वह मैं हूँ'

(उसमें बाल धारण करता है।) 'मैं आत्मद्रव्य हूँ' ऐसा हूँ – ऐसी इसकी इस ओर दृष्टि नहीं है, इसलिए 'यह (शरीर, वह) मैं हूँ' – ऐसी दृष्टि हुई है। पर्याय जितना हूँ – ऐसा नहीं, परन्तु शरीर हूँ – ऐसी उसकी दृष्टि हुई है। आहा...हा...! **उसमें ही बल धारण करता है (अर्थात् उन असमानजातीय द्रव्यपर्यायों के प्रति ही बलवान है।)...** आहा...हा...! उसमें आता है न? पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में! **शरीराद्यं खलु धर्म साधनम्** – लो! वह तो निमित्त के कथन की बात है। शरीरादि साधन कैसा? जहाँ दया, दान, व्रत, भगवान की भक्ति का भाव भी साधन नहीं है, (वहाँ शरीर साधन कैसा?) आ...हा...हा...! अरे...! ऐसी बात कहाँ मिले? प्रभु! ऐसी मनुष्यदेह और उसमें भी जैनपना प्राप्त हुआ। उसमें यह वाणी सुनने का योग (मिला), यह कोई कम बात है? प्रभु! ओ...हो...हो...हो...! अरे...! विचारें कहाँ पड़े हैं? देखो न! अभी तो सब (कैसा चलता है?) कक्षाओं में (विद्यालयों में) छात्रों को अण्डे दो! ऐसा चलता है। कहते हैं। बड़ा लेख आता है कि कक्षा में छात्रों को अण्डे दो! अरे...रे...! आहा...हा...! कहाँ गये? अण्डे खिलाओ, ऐसा करो... अरे...! उन्हें यह बात सुनने नहीं मिलती।

(कहते हैं) अपने स्वभाव का अनुभव करने में नपुंसक है और असमानजातीय (शरीर में) समस्त बल-जोर वहाँ खर्च किया है। आहा...हा...! कहा न? **उसी में बल धारण करते हैं (अर्थात् उन असमानजातीय द्रव्यपर्यायों के प्रति ही बलवान है...)** बलवान! असमानजातीय को अपना मानने में बलवान है – विपरीत जोरवाले हैं। आहा...हा...!

वे – जिनकी निरर्गल एकान्तदृष्टि उछलती है... आहा...हा...! है? निरर्गल = अंकुश बिना की बेहद। (जो मनुष्यादि पर्यायों में लीन हैं, उन्हें बेहद एकान्तदृष्टि उछलती है।) आ...हा...हा...! यह एकान्तदृष्टि हुई। देखा? (मैं) यह स्वभाव हूँ और विभाव तथा मनुष्यपना नहीं – यह अनेकान्तदृष्टि है। आहा...हा...! श्रीमद् ने कहा है – अनेकान्त भी सम्यक्एकान्त ऐसे निज पद की प्राप्ति (अर्थात्) इस ओर ढले बिना अनेकान्तपना सच्चा नहीं होता। आहा...हा...! आया है न? उस दिन एक घण्टे व्याख्यान दिया था, ववाणिया में! इस लाइन पर (एक घण्टे!) बापू! अनेकान्त... अनेकान्त... कहते हैं, परन्तु अनेकान्त में सम्यक् एकान्त ऐसे द्रव्यस्वभाव की ओर ढले बिना अनेकान्त का सच्चा ज्ञान नहीं

होता। आहा...हा...! अन्तर के द्रव्यस्वभाव की ओर झुके बिना, पर्याय और पर्याय में राग है – ऐसा व्यवहार का ज्ञान भी यथार्थ नहीं होता। आहा...हा...!

यह तो १२ वीं गाथा में आ गया है न? उसका अर्थ भी बहुत विपरीत करते हैं। 'व्यवहार सम्भालो' – ऐसा अर्थ किया है। 'व्यवहार प्रयोजनवाला है' (– ऐसा जो कहा है), इसलिए 'व्यवहार सम्भालो।' अरे...! प्रभु! सम्भालने की बात नहीं है। वह तो उस समय पर्याय हीन है और शुद्धाता की पूर्णता नहीं है, उसे उस काल में उस ज्ञान से जानना। वह ज्ञान की पर्याय उस काल में वैसी ही होती है – ऐसी उसकी दशा है, उसका वर्णन किया है। (वह व्यवहार) जाननेयोग्य है। अब, इसके बदले सब वहाँ से निकालते हैं कि (व्यवहार प्रयोजनवान है।) पहला प्रश्न यहाँ बड़वाण के (एक भाई) लाये थे कि १२ वीं गाथा में कहा है कि 'व्यवहार प्रयोजनवान है।' प्रश्न वहीं से लिया था, भाई! संवत् १९९४ में आये थे न? उस मकान में से यहाँ आये थे। (संवत्) ९४ की, ४१ वर्ष पहले की बात है। वह की वह बात अभी दिगम्बर पण्डित करते हैं – देखो! १२ वीं गाथा में व्यवहार को प्रयोजनवान (कहा है।) अपने स्थान में दोनों प्रयोजनवान हैं... परन्तु प्रयोजनवान माने क्या? वह जानने योग्य है कि पर्याय में ऐसी अशुद्धता आदि वस्तु है, उसे जाने, बस! उस समय, उस काल में, उस-उस समय का जो ज्ञान है, वह ज्ञान उसे जाने। दूसरे समय दूसरा (जाने) – थोड़ी अशुद्धता घटी और शुद्धता बढ़ी तो वह उसे जाने। जानने का प्रयोजन है; आदरणीय है – यह बात नहीं है। उसका विपरीत अर्थ करते हैं।

(दूसरे ने ऐसा अर्थ किया कि) पुण्यफला अरहंता! गजब करते हैं न! पुण्य का फल अरहन्त (पद) प्राप्त होता है। यहाँ तो कहते हैं कि यह बात कहाँ है? वहाँ तो पाठ लिया है कि 'पुण्यफल आत्मा को अकिञ्चित्कर है' – ऐसा पाठ लिया है। टीका का पहला शब्द देखते नहीं और टीका निकालकर स्वयं उसकी टीका करते हैं – पुण्य के फल में अरहन्त पद मिलता है! यह तो उन्हें वाणी का, गमन का (-विहार का) योग आदि है, वह सब पुण्य का फल है – ऐसा बताना है। अरहन्त पद हुआ है, वह कहीं पुण्य के कारण हुआ है – यह प्रश्न ही (बात ही) वहाँ नहीं है। आहा...हा...! ऐसे अर्थ करके उन्हें करना क्या है?

श्रोता : ऐसे विपरीत अर्थ करनेवाले होते ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते ही हैं; वरना संसार अनादि (अनन्त) किस प्रकार रहेगा? आस्रव को, बन्ध को (धर्म) माननेवाले न हों तो संसार नहीं रहेगा। मुक्त जीवों की संख्या की अपेक्षा संसार के जीवों की संख्या अनन्त रहेगी। आहा...हा...! मुक्त जीवों की संख्या से अथवा मोक्षमार्गी जीवों की संख्या की अपेक्षा संसारमार्गी जीवों की संख्या सदा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त रहेगी। आहा...! आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) **जिनकी निरर्गल...** आहा...हा...! (अर्थात्) अंकुश बिना की। (जो मनुष्यादि पर्यायों में लीन है, उन्हें बेहद एकान्तदृष्टि उछलती है।) आहा...हा...! देखो! यह मनुष्यपना मैं हूँ और मुझे मनुष्यपने से लाभ होता है – इस दृष्टि को एकान्तदृष्टि, मिथ्यादृष्टि कहा है। अब, उस दिन वह पण्डित आया था, (वह यह कहता था) देखो! मनुष्यपना हो तो केवलज्ञान होता है, उसके बिना होता है? अरे...! प्रभु! सुन न! वज्रवृषभनाराचसंहनन हो तो केवलज्ञान होता है! अरे भाई! ऐसा नहीं है बापू! केवलज्ञान की पर्याय तो मोक्षमार्ग की पर्याय से भी नहीं होती। वह तो, त्रिकाली द्रव्य में ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं, उसमें जहाँ अन्दर एकाग्र होता है तो पर्याय में केवलज्ञान होता है। आहा...हा...! उस द्रव्यस्वभाव की भावना में से केवलज्ञान होता है; पूर्व का मोक्षमार्ग है, उससे भी नहीं। आहा...! क्योंकि पूर्व का मोक्षमार्ग तो व्यय हो जाता है और यह तो उत्पाद है। व्यय में से उत्पाद कैसे आयेगा? आहा...हा...! वह मोक्ष की–केवलज्ञान की पर्याय, द्रव्यस्वभाव का अनुभव करने पर, अन्तर में एकाग्र होने पर आती है। आ...हा...! उसे न तो मनुष्यपने की आवश्यकता है, न उसे वज्रवृषभनाराचसंहनन की जरूरत है; आहा...हा...! उसे कर्म, अकर्मरूप परिणमित होते हैं, इसलिए केवलज्ञान होता है – ऐसी भी आवश्यकता नहीं है। ज्ञानावरणीय कर्म जो है, वह अकर्मरूप परिणमेगा, उसकी पर्याय अकर्मरूप होगी, इससे यहाँ केवलज्ञान होगा – ऐसा नहीं है।

सर्वज्ञ जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ने (ऐसा देखा है कि) भगवान आत्मा परम पदार्थ अनन्त गुण की ध्रुवधातु है। जिसने ज्ञायकपना धार रखा है, जिसने अनन्त गुणों को धार रखा है – ऐसी चैतन्यधातु का आश्रय करने में नपुंसक और असमानजातीय में बल धारण

करने में बलवान है, (उसे) एकान्तदृष्टि उछलती है – ऐसा कहते हैं। (वह जीव) मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...!

तब (फिर कोई ऐसा कहता है कि) अनेकान्त करना हो तो (ऐसा कहो कि) स्वभाव के आश्रय से भी होता है और उससे (–व्यवहार से) भी होता है – इसका नाम अनेकान्त है, (परन्तु) ऐसा अनेकान्त नहीं है। आहा...हा...! जब अनेकान्त में सम्यक्एकान्त होता है, तब पर्याय का ज्ञान करे, उसका नाम अनेकान्त है। आ...हा...! क्या हो? भाई! वास्तविक परमात्मा–केवलज्ञान का विरह पड़ा; सन्तों की ऐसी वाणी रह गयी। आहा...हा...!

एकान्तदृष्टि उछलती है – ऐसे... (जीव) क्या करते हैं? कि **यह मैं मनुष्य ही हूँ...** देखा? मनुष्य ही हूँ (अर्थात् यह) गति। **मेरा ही यह मनुष्यशरीर है...** आत्मा नहीं कहा? जीव को तीन शरीर होते हैं, चार होते हैं, पाँच होते हैं – ऐसा नहीं कहा। आत्मा को तीन शरीर तो होते ही हैं – औदारिक, तैजस और कार्मण। वैक्रियक (शरीर में) होवे तो वैक्रियक, तैजस और कार्मण (शरीर होते हैं) और आहारक आवे तो फिर उसे चार (शरीर) हो जाते हैं। विक्रिया करने की शक्ति होवे तो फिर पाँच हो जाते हैं। आहा...हा...! जीव को शरीर होते हैं, जड़ को होते हैं? – ऐसा लोग कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि जड़ में जड़ का होता है। जीव को जड़ (शरीर) होता ही नहीं। आहा...हा...!

यह मैं मनुष्य ही हूँ... एक बात; **मेरा ही यह मनुष्यशरीर है।** देखो! यह मैं मनुष्य ही हूँ और मेरा ही यह शरीर है। **इस प्रकार अहंकार...** आहा...हा...! ऐसा **ममकार...** आहा...हा...! मेरापन; **से ठगाये जाते हुए...** ठगाये जाते हैं, भाई! आहा...हा...!

एक पण्डित ऐसा कहता था कि मनुष्य होवे तो केवलज्ञान होता है; वज्रनाराचसंहनन होवे तो केवल(ज्ञान) होता है। मनुष्य होवे तो केवल(ज्ञान) होता है, दूसरी गति में होता है? इसलिए वह गति कारण है। वज्रवृषभनाराचसंहनन होवे तो केवल(ज्ञान) होता है, दूसरे पाँच (संहनन) हों तो कब होता है? इसलिए संहनन कारण है। इस प्रकार विपरीत मान्यताएँ करते हैं, (उन पर) जोर देते हैं। आहा...हा...! वह (ऐसे) अहंकार–ममकार से ठगाया जाता है। आहा...हा...!

अविचलितचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार से च्युत होकर,... आहा... हा...

हा... ! चलित न हो – ऐसा चेतनाविलासआत्मव्यवहार। आत्मा है, वह तो त्रिकाल निश्चय है, परन्तु उसका व्यवहार जो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह आत्मव्यवहार है। पर्याय है न! भगवान त्रिकाली द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेने पर जो सम्यग्दर्शन-पर्याय हो, वह पर्याय है।

द्रव्य तो त्रिकाली है, वह तो त्रिकाली पर दृष्टि पड़ने पर जो पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आता है, वह आत्मा का व्यवहार है। आहा...हा... ! वह व्यवहार... व्यवहार करते हैं न ? परन्तु वह व्यवहार नहीं है। आहा...हा... ! वह व्यवहार – दया, दान, व्रत, भक्ति का व्यवहार, (उसे व्यवहार कहते हैं) परन्तु वह व्यवहार नहीं है! बापू! यह (आत्मव्यवहार) तो सद्भूत व्यवहार है; वह तो असद्भूत व्यवहार है। यह सद्भूत व्यवहार है। अपनी पर्याय है न, इसलिए! आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं!

ऋषभदेव (भगवान) के समय में साधु जहाँ विपरीत प्रवर्तन करने लगे तो देवों ने आकर रोका! गजब बात है! काल ऐसा था। देव आकर कहते हैं कि नग्नपना रखकर यदि कोई दूसरी चीज करोगे – सदोष आहार आदि लोगे तो दण्ड देंगे। नग्नपना छोड़कर दूसरा कुछ भी करो! आहा...हा... ! विपरीत करते तो देव आते। वह तो उससे अनन्तगुना विरुद्ध करे तो देव नहीं आते, गुप्त हो गये हैं। इतना पुण्य नहीं है न! परन्तु अन्दर यह बड़ा देव है न!

देवाधिदेव भगवान! आहा...हा... ! जो एक समय में पञ्चम भाव परिपूर्ण ध्रुव ज्ञायक भूतार्थ है। आहा...हा... ! जो अस्तिवान वस्तु है – अस्तिमालवाली चीज है, उसे तो गिनता नहीं और मनुष्यपना मिला तो मैं मनुष्य हूँ, और यह मेरा मनुष्य शरीर है (– ऐसा मानता है।) आहा...हा... ! पैसा, स्त्री, पुत्र तो कहीं रह गये, परन्तु यह तो समीपवर्ती है और पर्यायबुद्धि है, इसलिए वहाँ दृष्टि गयी। आहा...हा... ! यह मनुष्य, वह मैं और मेरा शरीर आहा... ! पैसा, वह मैं – यह तो बहुत दूर रह गया। आहा... ! यहाँ तो पर्यायबुद्धिवाला यहाँ अटका है (– ऐसा कहते हैं।) **इस प्रकार अहंकार-ममकार से ठगाये जाते हुए अविचलित...** (अर्थात्) चलित नहीं ऐसे **चेतनाविलासमात्र...** चेतनाविलास! आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह चेतनाविलास है। आहा...हा... ! रागादि

और मनुष्यपना, वह मैं (– ऐसी मान्यता) तो सब अज्ञानभाव की चेष्टा है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा, अनन्त विस्तारसामान्यसमुदाय का पिण्ड है। उसका जहाँ ज्ञान हुआ तो उस पर्याय में निर्मलता आयी – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, उस निश्चयमोक्षमार्ग को यहाँ आत्मव्यवहार कहा गया है। आहा...हा...! अरे...! क्या हो? भाई! निश्चयमोक्षमार्ग जो है, वह तो उसे राग की अपेक्षा से निश्चय कहा है परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से तो पर्याय को व्यवहार कहा जाता है। आहा...हा...! **चैतन्यविलास...** भाषा क्या है?

श्रोता : इतना सब याद रखना...?

समाधान : इसमें याद कहाँ रखना? वस्तु की स्थिति ही इस प्रकार है। संसार में सब कैसे याद रखता है?

हमारे यहाँ (दुकान में) आणंदजी था न, आणन्दजी! वह सब याद रखता था। फिर अन्त में तो (ऐसा हो गया था कि) उसे उठाकर बैठाते थे। अन्त में कहता – मुझे किसी ने छोड़ने का नहीं कहा। परन्तु तुझे हम तो कहते थे, परन्तु उस घर के लोगों ने नहीं कहा, इस प्रकार घर के लोगों ने नहीं कहा कि अब तुम घर रहो, दुकान दो घण्टे आओ। कागज पढ़े (दूसरा) कोई पढ़े, परन्तु उसकी धारणा बहुत थी। हजारों (प्रकार का) माल पड़ा हो, वह क्या भाव आया था, कितना बिका, कितना बाकी रहा और अब नया भाव कितना आयेगा – यह सब उसे याद रहता था। वह मुम्बई माल लेने जाता था। तीन-चार, तीन-चार दिन में (जाना पड़ता था, इसलिए) पास लिया था, पालेज से मुम्बई का पास! तीन-चार दिन में जाना पड़ता, इसलिए महीने का पास लिया था। तीन-चार दिन में माल लेने जाना पड़ता; दस-दस हजार, बीस-बीस हजार, पच्चीस-पच्चीस हजार, पचास हजार (का माल लाना पड़ता था।) बड़ा व्यापार था न! यह तो संवत् १९६४-६५-६६ के साल की बात है। आहा...हा...! मैं पट्टी पर बैठा होऊँ, तब रेल में से उतर निकलता, हाथ में छत्री होती और एकदम ऐसे...ऐसे... ऐसे...(चलता)! तत्पश्चात् उसके पैर रुक गये तो उठाकर बैठाते, तब (बैठ सकता।) आहा...हा...! जब माल लेकर आता (और) रेल में से उतरता, वरना वह तो कुँवरजी भाई का नौकर था, तथापि (स्वयं) माल लेकर आता, ऐसा करता... वैसा करता... उसके पैर रह गये, उठाकर बैठाते तब बैठ पाता। आहा...हा...!

उसमें स्वयं को अभिमान (होता) कि यह मैंने किया, यह शरीर का किया, मैंने उसका किया... इसका किया... यहाँ तो शरीर तक की बात ली है। आगे जाकर सबको ऐसा लगता है कि यह किया... यह किया... यह किया... यह तो फिर तीव्र मिथ्यात्व है। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) **अविचलितचेतनाविलास...** कैसा चेतनाविलास? भाषा देखो! यहाँ तो जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ध्रुव द्रव्य के ध्येय (लक्ष्य) से प्रगट हुए, उन्हें अविचलितदशा कहा है। वह दशा बदल जाए ऐसी नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! गिरेगी या गिर जाएगी - यह बात यहाँ है ही नहीं। आहा...हा...! आहा...हा...! **अविचलितचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार...** आहा...हा...! (आत्मव्यवहार अर्थात्) आत्मा का वर्तन। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान (हुए), वह आत्मा का वर्तन कहा जाता है। निश्चय सम्यक् द्रव्य के स्वभाव से हुई श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की पर्याय, वह आत्मा का वर्तन है। राग, वह आत्मा का वर्तन नहीं है। आहा...हा...हा...! अरे...! (यह) टीका!

मुम्बई में उपाधि का पार नहीं है, (उसमें) ऐसी बात कहाँ सुनने मिलेगी!

श्रोता : पूरा वातावरण अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते, लोग विचारे सुनने आते, परन्तु फिर टिके कहाँ तक? आहा...हा...! अरे...रे...! ऐसा मनुष्यदेह मिला और प्रति समय व्यतीत होता जा रहा है। उसमें कहते हैं कि जिसे इस पर में अभिमान वर्तता है... आहा...हा...! उसे तो आत्म-व्यवहार नहीं है, वह तो मनुष्य का व्यवहार है; संसार का व्यवहार है। आहा...हा...! शरीर को (अपना) मानकर (जो कुछ) दया, दान, व्रत, भक्ति, करता है, वह सब संसारव्यवहार है, आत्मव्यवहार नहीं। आहा...हा...!

आत्मव्यवहार - **अविचलितचेतनाविलासमात्र...** (यहाँ पर) 'मात्र' क्यों कहा? (क्योंकि) उसमें राग के अंश की किञ्चित् भी सहायता नहीं है। अविचलितचेतनामात्र विलास! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, उसकी यहाँ ज़रा भी सहायता-मदद नहीं है। आहा...हा...! **अविचलितचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार से च्युत...** हो गये हैं - भ्रष्ट हो गये हैं। 'मैं मनुष्य, मैं मनुष्य की क्रिया कर सकता हूँ' (- ऐसी मान्यतावाले

जीव) चैतन्यविलासस्वरूप आत्मव्यवहार से भ्रष्ट हैं। निश्चय से तो भ्रष्ट हैं, परन्तु आत्मा के व्यवहार से भी भ्रष्ट है। आहा...हा...! समझ में आया?

जिसमें समस्त क्रिया-कलाप को छाती से लगाया जाता है... देखो! यह मैंने दया पालन की, मैंने व्रत किये, मैंने उपवास किये! (जिस प्रकार) पुत्र को ऐसे छाती से लगाते हैं; उसी प्रकार यह क्रियाकाण्ड को छाती से पकड़ (रखता है।) आहा...हा...! टीका तो टीका है! गजब है! **समस्त क्रियाकलाप को...** दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, यात्रा और मन्दिर बनाया और हाथी निकाला, इन्द्र बने... आहा...हा...! ऐसे क्रिया कलाप को छाती से लगा कर... आहा...हा...! **छाती से लगाया जाता है - ऐसे मनुष्यव्यवहार का आश्रय करके...** वह तो मनुष्य का व्यवहार है। देखो! है? यह मनुष्यपने की गति का वर्तन है, यह जीव का वर्तन नहीं है। आहा...हा...! देह से कुछ क्रिया होती है, वह सब मनुष्यवर्तन है, जड़ का वर्तन है, वह आत्मा का (वर्तन) नहीं है। आहा...हा...!

ऐसे मनुष्यव्यवहार का आश्रय करके रागी और द्वेषी होते हुए... आहा...हा...! **परद्रव्यरूप कर्म के साथ संगतता के कारण...** परद्रव्यरूप कर्म के साथ (अर्थात्) इस राग के साथ, कर्म के साथ, शरीर आदि **परद्रव्यरूप कर्म के साथ संगतता के कारण...** पर में जुड़ गया है, (इस कारण वह जीव) **वास्तव में परसमय होता है...** (अर्थात्) वह मिथ्यादृष्टि है। परसमय का (अर्थ नीचे) है न? जो जीव पर के साथ एकपने की मान्यतापूर्वक जुड़ता है, उसे परसमय कहा जाता है। वह आत्मा से बाहर चला गया है। वह परसमय मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! **वास्तव में परसमय होता है, अर्थात् परसमयरूप परिणमित होता है।** मिथ्यात्वरूप परिणमित होता है। विशेष कहेंगे।

प्रवचन नं. ९१ **दिनाङ्क ०१ जून १९७९**

(प्रवचनसार) ९४ गाथा का दूसरा पैराग्राफ। पहला पैराग्राफ चला है। **...और जो असंकीर्ण द्रव्य गुण-पर्यायों से...** आत्मा है, उसका द्रव्य त्रिकाल है, गुण त्रिकाल है और वर्तमान पर्याय है परन्तु उसे पर के साथ कोई मिलावट नहीं है। भले ही कर्म हो, शरीर हो (परन्तु) उस स्वद्रव्य को अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त दूसरे किसी पदार्थ के

साथ मिलावटपना नहीं है, भिन्न है। आहा...हा...! **असंकीर्ण...** (अर्थात्) मिलावटरहित। **द्रव्य-गुण-पर्यायों से सुस्थित भगवान आत्मा के स्वभाव का...** यहाँ नीचे (मूल शास्त्र के फुटनोट में) तो 'स्पष्ट भिन्न द्रव्य-गुण-पर्यायों द्वारा सुस्थित' (- ऐसा) अर्थ लिखा है, परन्तु वस्तुतः तो द्रव्य जो कि विस्तारसामान्यसमुदाय का पिण्ड है, उसमें गुण और पर्यायें हैं, वे स्वयं पर के मिलावटरहित हैं, तथापि आश्रय लेने योग्य तो त्रिकाली द्रव्य है। आहा...हा...!

ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, एकरूपभाव का आश्रय लेने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं। आहा...हा...! **जो कि सकल विद्याओं का एक मूल है...** आहा...हा...! भगवान आत्मा, पूर्णस्वरूप द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेना, वह सकल विद्याओं का एक मूल है। आहा...! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान, जो सच्ची विद्या है, उसका वह मूल है। भगवान द्रव्यस्वभाव त्रिकाली अनन्त गुण का चैतन्य, अमृत का सागर-अमर... आहा...हा...! उसका आश्रय करना, वह सकल विद्याओं का मूल है, समस्त पढ़ाई का मूल है। किसी भी प्रकार पढ़ा हो, आहा...हा...! **सकल विद्याओं का एक मूल है...** ऐसा भेद नहीं, परन्तु जो एकरूप त्रिकाल स्वभाव! आहा...हा...! कायम रहनेवाला द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, ज्ञायकभाव भूतार्थभाव एक ही आश्रय करने योग्य है। यह ज्ञेय अधिकार है और यह समकित का अधिकार है।

आत्मा का स्वभाव! एक समय की पर्याय, गुण और द्रव्य (ऐसे) तीन (भेद) करके पर से मिलावटरहित कहा है, तथापि उसे पर्याय ओर गुणभेद आश्रय करने योग्य नहीं है। भाई! यह तो धीरजवान का काम है। अरे...! अनन्त काल से जन्म-मरण करता है! कहते हैं कि उस जन्म-मरण के नाश की विद्या का मूल सम्यग्ज्ञान की विद्या है। उसका मूल यह विद्या है। आहा...हा...! उस विद्या का मूल त्रिकाली द्रव्यस्वभाव का आश्रय करना है, वह सकल विद्या का मूल है। आहा...हा...!

प्रश्न : दो शामिल हैं, उन्हें पृथक् किस प्रकार करना?

समाधान : शामिल कहाँ हैं? शामिल नहीं है। गुण, द्रव्य के आश्रय तन्मय है, भिन्न नहीं। पर्याय भिन्न है परन्तु पर्याय को त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेना, वह सकल विद्या का मूल है। आहा...हा...!

बारह अंग और शास्त्र की सम्यक् विद्या का हेतु यह प्रभु स्वयं द्रव्य-गुण-पर्याय से पर में मिलावटरहित स्थिति (में) है, तथापि आश्रय करने योग्य तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है। आहा...हा...! (उसका आश्रय करे), तब उसे सम्यग्दर्शन होता है; उसे धर्म की शुरुआत होती है क्योंकि द्रव्यस्वभाव, जो महाप्रभु, चैतन्य महाप्रभु! अनन्त... अनन्त... गुण की शक्ति से (भरपूर) महाप्रभु स्वयं! आहा...हा...! उसका आश्रय लेने पर (सम्यग्दर्शन होता है।) आश्रय लेनेवाली पर्याय है, इसलिए पर्याय की अस्ति आ गयी। गुण और द्रव्य अभेद है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

द्रव्य-गुण-पर्याय तीन होने पर भी, गुण भी ध्रुव है और द्रव्य भी ध्रुव है। ऐसा उनका स्वभाव है। अब, यहाँ पर्याय उसका आश्रय ले, वहाँ पर्याय भी आ गयी। कुछ समझ में आता है? आहा...हा...! अगम प्याला! अजर प्याला!! ऐसा है।

अगम प्याला पीओ मतवाला, चीह्नी आध्यात्म वासा,
आनन्दघन चेतन व्हें खैले देख लोक तमाशा॥

आनन्दघनजी के शब्द हैं।

पहले (पैराग्राफ में) यह कहा था कि 'जीव-पुद्गलात्मक असमानजातीय द्रव्यपर्याय का आश्रय जो कि सकल अविद्या का एक मूल है' - ऐसा था। पर्याय का लक्ष्य करनेवाला पर्याय को नहीं पकड़ सकता, इसलिए उसका लक्ष्य असमानजातीय (ऐसे) शरीर पर जाता है और इस कारण शरीर को अपना माननेवाला 'मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ' - ऐसा माननेवाले (जीव की ऐसी मान्यता) सकल अविद्या का मूल है। आहा...हा...!

यहाँ (दूसरे पैराग्राफ में) सकल विद्या का मूल लेना है। सम्पूर्ण गुणों की शक्ति और उनकी पूरी-पूरी शक्ति का पूर्ण सागर - ऐसा जो द्रव्यस्वभाव है, उसका आश्रय - उसका अवलम्बन - उस ओर का झुकाव... आहा...हा...! जो सकल विद्याओं का मूल है, ऐसी बात है। सकल विद्या का एक मूल है। पहले ऐसा आया था कि **सकल अविद्याओं का एक मूल है।** उसमें भी 'एक' आया था। आहा...हा..! यहाँ वास्तव में पर्याय और असमानजातीय द्रव्य पर लक्ष्य है, वह लक्ष्य जाता है (अर्थात्) छूटता है, तब पर्याय का लक्ष्य द्रव्यस्वभाव पर ही जाता है। समझ में आया? इसलिए यहाँ गुण-

पर्यायवाला (द्रव्य) होने पर भी, उसकी पर्याय, द्रव्यस्वभाव की ओर जाने पर उसे अकेले त्रिकाल द्रव्य का आश्रय रहता है। आहा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बात है।

अरे...रे...! अभी कहीं लेख आया था कि बहुत से जीव, तिर्यञ्च में उत्पन्न होंगे। लेख कहीं आया अवश्य था। आहा...हा...! जिसे आत्म की ओर का झुकाव नहीं है; पूरे दिन चौबीसों घण्टे पाप में बीतते हैं, एक आधे घण्टे कहीं सुनने जाता हो तो शुभभाव होता है, परन्तु (बाकी के) तेईस घण्टे में पाप! आहा...हा...!

प्रश्न : धन्धा छोड़ दे तो खाये-पीये क्या?

समाधान : खाने-पीने का क्या? उसकी ओर जुड़े तो खाने-पीने का आता है? वे खाने-पीने के परमाणु आने (हों), वे आते हैं। ऐसा नहीं कहा? कि 'दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है।' आता है न तुम्हारी हिन्दी में?

प्रश्न : बैठे-बैठे आ जाएगा?

समाधान : बैठे-बैठे आ जाएगा। योग्यता ऐसी है। खानेवाले का नाम परमाणु में है (अर्थात्) जो परमाणु आनेवाला है, (वही) आयेगा; नहीं आनेवाला नहीं आयेगा। वहाँ तेरा प्रयत्न कुछ काम नहीं कर सकता है। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) **सकल विद्याओं का एक मूल है, उसका आश्रय करके...** देखा? आहा...हा...! भगवान! पर्याय है, वह इस ओर (- पर तरफ) है, वह इस ओर (-स्व तरफ) जाने पर उसे एकदम द्रव्य का ही आश्रय आता है। आहा...हा...! यह आया है न? कि पर का लक्ष्य छोड़! उसमें स्व का लक्ष्य आता है। इस ओर का - पर का लक्ष्य छोड़ने पर दृष्टि द्रव्य पर ही जाती है। समझ में आता है कुछ? आहा...हा...! दृष्टि में जो असमानजातीय शरीर है, वह पर्यायबुद्धि है; इस कारण वहाँ उसका झुकाव हो गया है। वह उससे छूटे, अर्थात् वास्तव में गुण पर न जाकर, वह पर्याय से छूटा कि (सीधा) द्रव्य पर जाता है। आहा...हा...! तब वह सकल विद्या का मूल - ऐसा द्रव्यस्वभाव इसे पकड़ने में - सम्यग्दर्शन में आता है। आहा...हा...हा...! है?

...आश्रय करके यथोक्त... यथा + उक्त = यथोक्त जिसमें (- ९३ वीं गाथा में) कहा था वैसा द्रव्य। विस्तारसामान्य गुण, आयतसामान्य पर्याय का पिण्ड जो यथोक्त

स्वभाव... आहा...हा...! ऐसे **आत्मस्वभाव की सम्भावना में समर्थ होने से...** आहा...हा...! पहला (पर्यायबुद्धि जीव) अविद्या में-पर में पुरुषार्थ में समर्थ था। इस आत्मा की ओर जहाँ सन्मुखता और झुकाव हुआ, तब आत्मा की ओर के अनुभव में उसका पुरुषार्थ झुकता है। सम्भावना में समर्थ है (अर्थात्) आत्मा का अनुभव करने में समर्थ है। 'सम्भावना' (शब्द) आ गया है। सम्भावना-अनुभव करना। इसमें कहीं सम्भावना का अर्थ नहीं है? सम्भावना आता है न? इस ओर दायें पृष्ठ पर है। (सम्भावना अर्थात्) सञ्चेतना। आहा...हा...! भगवान आत्मा, पूर्ण नित्यानन्द प्रभु की ओर का सञ्चेतन... आहा...हा...! उसका अनुभव, उसकी मान्यता। मान्यता (अर्थात्) अकेली मान्यता - ऐसा नहीं, हाँ! अनुभव में (सच्ची) मान्यता (होती है।) आहा...! आदर। त्रिकाली स्वभाव की मान्यता, अनुभव और आदर। सञ्चेतन (अर्थात्) उसका चेतन / जागना। जो राग और पर्यायबुद्धि में असमानजातीय (द्रव्यपर्याय में) जागता था, वह चैतन्य के त्रिकाली स्वभाव की ओर के झुकाव में पड़ा, उसे सञ्चेतन हुआ; भगवान जागृत हुआ। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में उसने द्रव्य का आश्रय लिया, इसलिए वह जागृत हो गया। आहा...हा...! ऐसा लोगों को सूक्ष्म पड़ता है।

सम्भावना में समर्थ होने से... जिसने भगवन आत्मा का आश्रय लिया। उसमें अनन्त... अनन्त... सामर्थ्य (भरा है), अनन्त वीर्य का सामर्थ्य भी भरा है। आहा...हा...! अनन्त वीर्य, अनन्त ज्ञान, आनन्द आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता - ऐसे सामर्थ्य का धारक भगवान का आश्रय लेने पर, अनुभव करने में समर्थ होने के कारण, भगवान आत्मा का अनुभव करने की ताकतवाला हुआ। आहा...हा...! अनादि से राग का वेदन था... वह, द्रव्यस्वभाव में दृष्टि पड़ने पर उसे आनन्द के वेदन की भावना प्रगट हुई - ऐसा है।

पर्यायमात्र प्रति के बल को दूर करके... आहा...हा...! पर तरफ के लक्ष्यवाला जोर था - असमानजातीय तरफ (लक्ष्य था), पर्याय में पर्याय को पकड़ नहीं सकता था, इसलिए उसका लक्ष्य शरीर पर जाता था। ऐसा पर्यायमात्र का बल दूर करके (अर्थात्) उस ओर के झुकाव को दूर करके - ऐसी बात है। **आत्मा के स्वभाव में ही स्थिति करते हैं...** पर तरफ की पर्यायबुद्धि - असमानजातीय द्रव्यपर्याय की पर्यायबुद्धि थी, उसका

लक्ष्य छूटता है और स्वभाव का आश्रय करता है, वहाँ स्वभाव में ही स्थिति करता है। स्व-भाव – अपना कायमी नित्यानन्द प्रभु; द्रव्य का जो नित्य स्वभाव, कायमी स्वभाव, सत् का पूरा पूर्ण सत्व (है), उसमें आश्रय करता है, उसमें स्थिति करता है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। उसमें **(लीन होता है।)...**

वे – जिन्होंने सहज विकसित अनेकान्तदृष्टि... आहा...हा...! सहज विकसित! स्वभाव में पर्याय नहीं है, राग नहीं है, पर नहीं है... आहा...हा...! ऐसी स्वाभाविक विकसित। आहा...! **अनेकान्तदृष्टि से...** त्रिकाल स्वभाव, वह मैं हूँ और असमानजातीय पर्याय मैं नहीं – इसका नाम अनेकान्त है। आहा...हा...! उस **अनेकान्तदृष्टि से समस्त एकान्तदृष्टि के परिग्रह के आग्रह प्रक्षीण कर दिये हैं...** आहा...हा...! स्वभावसन्मुख के अनुभव से, आहा...हा...! जो समस्त एकान्तदृष्टि थी (अर्थात्) शरीर मेरा, राग मेरा – ऐसी जो एकान्तदृष्टि थी, उससे मुझे कल्याण होता है – दया, दान, व्रत के परिणाम करूँ तो मेरा कल्याण (होता है) – यह सब दृष्टि एकान्तदृष्टि थी – मिथ्यादृष्टि थी। आहा...हा...! **एकान्तदृष्टि के परिग्रह के आग्रह...** (परिग्रह अर्थात्) उसका स्वीकार, अंगीकार। उसे छोड़कर, आहा...हा...!

भगवान परिपूर्ण अमृतगुण से भरपूर, प्रभुगुण से भरपूर, शान्तिगुण से भरपूर, स्वच्छतागुण से भरपूर – ऐसे-ऐसे अनन्त... अनन्त गुणों से भरपूर भगवान एकरूप स्वभाव; (जिसमें) भेद नहीं – ऐसे स्वभाव में आने पर समस्त एकान्तदृष्टि का आग्रह छूट गया है। **प्रक्षीण कर दिये हैं...** आहा...हा...! भाषा तो देखो! प्रक्षीण – क्षय किया है। आहा...हा...! पञ्चम काल के सन्त, पञ्चम काल के अप्रतिबुद्ध जीव जब प्रतिबुद्धता को प्राप्त करते हैं, उसकी यह बात करते हैं। आहा...हा...! जिसने एकान्तदृष्टि के पकड़ का भाव नष्ट कर दिया है। आहा...हा...! अकेला 'क्षीण' (नहीं कहा), 'प्रक्षीण' – ऐसा (कहा) है न? आहा...हा...! प्रक्षीण किया है। प्र – विशेषरूप से नाश किया है। आहा...हा...!

प्रवचनसार में प्रारम्भ में आता है न? कि कुन्दकुन्दाचार्य कैसे हैं? **जिनको समस्त एकान्तरूप अविद्या का अभिनिवेश अस्त हुआ है...** प्रारम्भ में आता है। समस्त एकान्तदृष्टि का नाश किया है।

यहाँ कहते हैं... आहा...हा...! गुणभेद से लाभ होता है, पर्यायभेद से लाभ होता है; दया, दान के विकल्प से आत्मा को (लाभ होता है) – इस सब एकान्तदृष्टि को द्रव्य का आश्रय करने पर (सबको) प्रक्षीण कर दिया है – विशेष नाश कर दिया है। इस प्रकार अनेकान्त और एकान्त है। यह (अज्ञानी तो) कहता है कि व्यवहार से भी होता है, पर्यायबुद्धि से होता है, द्रव्यबुद्धि से होता है। आहा...हा...! दो प्रकार पड़े तो एक दूसरे से अत्यन्त विरुद्ध है। आहा...हा...! अभी तो ऐसी बात सुनना भी कठिन पड़ता है। सुनने को नहीं मिलती है, वह विचार कब करेगा? अरे...! जिन्दगी चली जाती है। आहा...हा...! बहुत से जीव यों के यों ही जिन्दगी बिताकर वापिस जन्म-मरण के चक्कर में चले जाते हैं। आहा...हा...!

यहाँ तो प्रभु विराजता है न! चैतन्य महाप्रभु! जिसमें भव और भव का अभाव और पर्याय जिसमें नहीं है। जो पर्याय उसका आश्रय करती है, वह पर्याय उसमें नहीं है। आहा...हा...! ऐसी **समस्त एकान्तदृष्टि के परिग्रह के आग्रह प्रक्षीण कर दिये हैं...** आहा...हा...! लो, यह तो दूसरे आत्मा की बात ली है। (पहले जो कही थी), वह कुन्दकुन्दाचार्यदेव की थी। प्रारम्भ में है न?

कुन्दकुन्दाचार्य! आहा...हा...! **जिनके संसारसमुद्र का किनारा निकट है...** पृष्ठ तीसरा है। आहा...हा...! ये शब्द, जिसने द्रव्य का आश्रय किया है, उसे लागू पड़ते हैं। **जिनके संसारसमुद्र का किनारा निकट है... ऐसे कोई (आसन्न भव्य महात्मा श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव) जिनके सातिशय (उत्तम) विवेकज्योति प्रगट हुई है...** सातिशय विवेकज्योति! राग और पर से भिन्न विशेष – उत्तम विवेकज्योति प्रगट हुई है, कि जो ज्योति प्रगट हुई है, वह भव अस्त होनेवाली नहीं है। आहा...हा...! **और जिनके समस्त एकान्तरूप अविद्या का अभिनिवेश अस्त हो गया है...** देखो? समस्त एकान्तवाद की अविद्या का अभिनिवेश-आग्रह-अभिप्राय अस्त हो गया है। आहा...हा...! **ऐसे, पारमेश्वरी (परमेश्वर जिन भगवान की) अनेकान्त विद्या को प्राप्त करके, समस्त पक्ष का परिग्रह (शत्रु-मित्रादि का समस्त पक्षपात)...** छोड़कर अत्यन्त मध्यस्थ हो गये हैं। आहा...हा...! वहाँ ये शब्द प्रयोग किये हैं। भगवान

कुन्दकुन्दाचार्यदेव के (सन्दर्भ) में प्रयुक्त ये शब्द यहाँ द्रव्य के आश्रय में प्रयुक्त किये हैं। आहा...हा...!

आत्मा है न! कहते हैं – तू भी आत्मा है न! प्रभु! तू एक समय की पर्याय की क्रीड़ा में पड़ा है, (इसलिए) प्रभु! तुझे सूझ नहीं पड़ती। आहा...हा...! सूझ-बूझ नहीं पड़ती। प्रभु! एक समय की पर्याय की एकता में अनन्त काल व्यतीत किया है प्रभु! इसलिए तुझे इसमें सूझ नहीं पड़ती परन्तु प्रभु तो अन्दर महाप्रभु विराजमान है। अन्दर में ऐसे महाप्रभु का आश्रय लेकर जिसने एकान्तदृष्टि सर्वथा छोड़ दी है। आहा...हा...! वैसे तो उस ओर (स्वभाव सन्मुख) ढल गया है। नय है, वह सम्यक् एकान्त है। आहा...हा...! परन्तु सम्यक् एकान्त; मिथ्या एकान्त का नाश करके सम्यक् एकान्त उत्पन्न हुआ है। आहा...हा...! समस्त एकान्तदृष्टि के आग्रह... आहा...हा...! (परिग्रह अर्थात्) स्वीकार; अंगीकार **प्रक्षीण कर दिये हैं।** आहा...हा...!

ऐसे – मनुष्यादि गतियों में और उन गतियों के शरीरों में... गति और गति के शरीरों में **अहंकार-ममकार न करके...** आहा...हा...! ९४ (गाथा) है न? अहंकार और ममकार का अर्थ इसमें दूसरा कुछ किया है। टीका में देखो! **मनुष्यादिपर्यायरूपोऽह-मित्यहक्ङारो भण्यते,....** जयसेनाचार्य की टीका। **मनुष्यादिपर्यायरूपोऽहमित्यहक्ङारो भण्यते, मनुष्यादिशरीरं तच्छरीराधारोत्पन्नपंचेन्द्रियविषयसुखरूपं च ममेति ममकारो भण्यते,....**। अहं और मम् – दोनों में अन्तर डाला है। आहा...हा...! टीका में है – जयसेनाचार्य की टीका! जो पैराग्राफ पढ़ा जा रहा है न, उसके ऊपर ही है। आहा...हा...! जिसे पर के प्रति अहंकार (अर्थात्) मनुष्य हूँ, देव हूँ, गति हूँ – इसका अहंकार छूट गया है और उस तरफ से मुझे सुख होता था – ऐसा ममकार छूट गया है। इस प्रकार दो अर्थ किये हैं। आहा...हा...!

अहंकार-ममकार न करके... आहा...हा...! **अनेक कक्षों (-कमरों) में सञ्चारित रत्नदीपक की भाँति...** आहा...हा...! (सञ्चारित अर्थात्) ले जाये गये। (जैसे, भिन्न-भिन्न कमरों में ले जाया गया रत्नदीपक...) रत्नदीपक! (...एकरूप ही है...) कितने ही कमरों में ले जाए तो वह एकरूप ही रहता है। आहा...हा...! चाहे जितना राग और मनुष्यदेह, देव आदि देह में हो परन्तु वह तो रत्न का दीपक ऐसा का ऐसा

चैतन्यमूर्ति भगवान है। आहा...हा...! अनेक कमरों में रत्न का दीपक ले जाओ तो रत्न के दीपक में उसकी चमक को लाने को कोई हवा नहीं लाना पड़ती। आहा...हा...! तथा कमरे में जाने पर वह रत्न उस कमरेरूप नहीं होता। आहा...हा...! उसी प्रकार भले ही भगवान आत्मा अनेक शरीरों में और रागादि में वर्त गया हो, तो भी चैतन्यरत्न तो उनसे भिन्न ही वर्तता है। आहा...हा...! ऐसा व्याख्यान! बापू! प्रभु का मार्ग तो ऐसा है। आहा...हा...!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ, वीतरागपना प्राप्त करने का उपदेश (देते हैं) आहा...हा...! भाई! तू वीतरागभाव से भरपूर प्रभु है न? आहा...हा...! तुझमें जिनस्वरूप वीतरागभाव परिपूर्ण भरा है न? आहा...हा...! उसका जिसने आश्रय लिया है, उसे समस्त एकान्तदृष्टि क्षय हो गयी है। आहा...हा...! प्रक्षीण हो गयी है। विशेषरूप से क्षय हो गयी है। आहा...हा...! प्रभु! वर्तमान में तो क्षयोपशम समकित होता है न? क्षायिक तो है नहीं; तथापि कहते हैं कि क्षयोपशम समकित में भी... आहा...हा...! समस्त एकान्तदृष्टि का विशेषरूप से नाश हो गया है। आहा...हा...! भले ही क्षयोपशम हो या दूसरे भव में क्षायिक होने की तैयारी हो, ऐसा यहाँ हो, परन्तु उसको, एकान्त के जितने सब आग्रह हैं, (वे सब) छूट गये हैं, नष्ट हो गये हैं। आहा...हा...! अकेला प्रभु! पूर्णानन्द का नाथ भगवान ध्रुव स्वभाव ज्ञायकभाव का आश्रय लेकर जो चैतन्यप्रकाश कर नूर प्रगट हुआ... आहा...हा...! उसमें एकान्त के सब आग्रह नष्ट हो जाते हैं और निर्मल अनेकान्तपर्याय प्रगट होती है। आहा...हा...! समस्त एकान्तदृष्टि का नाश - प्रक्षीण होता है (- यह) व्यय कहा, परन्तु उस त्रिकाली आनन्द के नाथ का आश्रय लेने पर सम्यग्दर्शन आदि जो अनेकान्तपर्याय है, वह उत्पन्न होती है। आहा...हा...! यह ज्ञेय अधिकार है। ज्ञेय का स्वरूप ऐसा है - यह कहते हैं। ज्ञान में जाननेयोग्य जो ज्ञेय है, उसका स्वरूप ही ऐसा है। वह कोई पन्थ, पक्ष या वाड़ा नहीं है। आहा...हा...! जैनधर्म कोई वाड़ा नहीं है, कोई पन्थ नहीं है कि हमारा पन्थ यह है और तुम्हारा पन्थ यह - ऐसा यहाँ नहीं है। यह तो ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। आहा...हा...!

जिसने भगवान पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय लिया है, उसको समस्त एकान्तदृष्टि नष्ट हो जाती है। आहा...हा...! आहा...हा...! उसे, शरीरादि में मैं हूँ (- ऐसी बुद्धि का)

नाश हो जाता है और पर में कुछ ठीक है – बहुत गर्मी हो गयी होवे और हवा आवे तो ठीक है – अन्तर में ऐसी बुद्धि हो जाए, वह मिथ्यात्व है। पंखा आता है न पंखा ? आहा...हा... ! अपनी बड़ी सभा में तो सबके ऊपर पंखा रखते हैं। सुनना है यह; और सिर पर पंखा रखते हैं ?! मुम्बई... अहमदाबाद... सर्वत्र। आहा...हा... ! यहाँ दूसरा कहना है। यहाँ शरीर में ज़रा गर्मी हो और उसमें जहाँ ठण्डी हवा आवे तो इसे ठीक लगता है – यह ममकार है। आहा...हा... ! शरीरादि मैं हूँ – यह अहङ्कार है और प्रतिकूलता में ठीक नहीं लगे, यह भी एक ममकार है – ममता है। आहा...हा... ! दरवाजा बन्द होवे और अन्दर गर्मी लगे तो कहते हैं कि उसके प्रति जो ममकार था कि यह गर्मी है, वह ठीक नहीं है – यह ममकार छूट जाता है। आहा...हा... ! इतनी अधिक गर्मी लगी हो, लू (लगी हो)... आहा...हा... ! उसमें यह ठण्डी हवा, इसलिए इसे ठीक लगता है। कहते हैं ऐसा ममकार ज्ञानी को छूट जाता है। आहा...हा... ! पहले में (– अहङ्कार में) पर का मैं पना था, वह छूट जाता है और दूसरे में (–ममकार में) पर में ठीक है या अठीक है – यह सब छूट जाता है। आहा...हा... ! शरीरादि अहं – मैं हूँ – यह छूट जाता है और अनुकूल-प्रतिकूलता में जो ठीक-अठीकपने की बुद्धि थी, वह छूट जाती है। आहा...हा... ! गज़ब काम किया है न ? वस्तु की स्थिति का वर्णन किया है ! आहा...हा... !

उन **गतियों में और गतियों के शरीरों में अहङ्कार-ममकार न करके...** आहा...हा... ! अनुकूल वस्तु में मुझे ठीक है और प्रतिकूल में ठीक नहीं है, यह समस्त ममकार का आग्रह... आहा...हा... ! ज्ञानी को छूट जाता है। कुछ समझ में आया ? आहा...हा... ! इसलिए (समयसार में) निर्जरा (अधिकार में २१० से २१३ गाथा में) कहा है न ? (कि ज्ञानी को) पानी का परिग्रह नहीं है, आहार का परिग्रह नहीं है, आहा...हा... ! पुण्य का परिग्रह नहीं है, पाप का परिग्रह नहीं है। आहा...हा... ! इत्यादि (कहकर) फिर बहुत डाला है। (कहा है।)

जहाँ भगवान अन्दर से जागृत हुआ; अनेकान्तदृष्टि होने पर एकान्तदृष्टि का नाश हुआ; वहाँ 'पर में कुछ भी ठीक-अठीकपना है' – ऐसी श्रद्धा उड़ जाती है। ऐसा मार्ग है, बापा ! आहा...हा... ! तथापि वे ज्ञानी चक्रवर्ती समकिती थे। (उनका) बत्तीस ग्रास का

आहार (होता है, उसमें से) एक ग्रास, छियानवें करोड़ सैनिक नहीं पचा सकते, वे खाते! तथापि वे खाते नहीं (– ऐसा यहाँ कहते हैं।) आहा...हा...! यह ठीक है – ऐसी दृष्टि ही वहाँ नहीं थी। अठीक है – ऐसी दृष्टि भी नहीं। अस्थिरता का राग आ जाता है परन्तु अन्दर दृष्टि में ठीक-अठीक है ही नहीं। आहा...हा...! सम्पूर्ण दुनिया की प्रतिकूलता में से 'प्रतिकूलता मुझमें हैं' – ऐसा मिट जाता है और प्रतिकूलता है, इसलिए द्वेष होता है – यह (बुद्धि) उड़ जाती है। प्रतिकूलता के कारण द्वेष होता है (– यह बात उड़ जाती है।) गज़ब बात है बापा! आहा...हा...! सन्तों ने क्या काम किया है और स्पष्ट किया है! आहा...हा...! सन्तों ने क्या काम किया है और स्पष्ट किया है! आहा...हा...! अहं (अर्थात्) यह मैं; मम् (अर्थात्) यह मेरा, यह मुझे ठीक पड़ता है या अठीक पड़ता है – यह सब ममकार है।

मनुष्यादि गतियों में और उन गतियों के शरीरों में अहङ्कार-ममकार न करके अनेक कक्षों (– कमरों) में सञ्चारित रत्नदीपक की भाँति... रत्न का दीपक लिया है, उसे हवा लगे तो भी उसका प्रकाश कुछ हिलता है? आहा...हा...! अन्धेरे कमरे में ले जाए तो उस प्रकाश का अभाव होता है? आहा...हा...! इसी प्रकार मनुष्यगति, देवगति या नरकगति (कहीं भी जाए, आत्मा एकरूप ही रहता है।) आहा...हा...! स्वभगवान पूर्णानन्द का जहाँ आश्रय लिया कि यह सब में जो अनुकूल और प्रतिकूल – ऐसी बुद्धि/दृष्टि है, (वह) छूट जाती है। आहा...हा...! तथापि इन्द्रियों से निवृत्त नहीं है – ऐसा आता है न? इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त नहीं है। गोम्मटसार! चौथे (गुणस्थान में) समकिती अविरति है न! परन्तु दृष्टि अपेक्षा (निवृत्त है)। बापू! आहा...हा...! सम्पूर्ण दुनिया की कोई भी वस्तु में मुझे ठीक पड़ेगा या अठीक पड़ेगा – ऐसी बुद्धि का नाश हो गया है, बापू! आहा...हा...! अस्थिरता का राग आवे, वह कहीं एकताबुद्धि नहीं हुई है। इस (मिथ्यादृष्टि को) तो एकताबुद्धि हुई है। आहा...हा...! गर्मी हो और ऐसे शरीर को चन्दन लगाये, तो भी उसे वह ज्ञेय है; उसके अतिरिक्त 'यह ठीक है' – ऐसा ममकार मिट गया है (– ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! जयसेनाचार्यदेव की ठीका में अहं और मम दो शब्द हैं, इसलिए दोनों का अलग अर्थ तो करना पड़ेगा न? आहा...हा...! दो शब्द हैं तो उनके वाच्य भी दो हैं। आहा...हा...!

तीन लोक का नाथ, भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, ध्रुव परम स्वभाव, पञ्चम भाव, पारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव! पारिणामिक भाव (कहा) है, परन्तु परमाणु में भी पारिणामिकभाव है, इस कारण यहाँ ज्ञायकभाव लिया है। ज्ञायकभाव! अकेले ज्ञानप्रकाश का पुंज प्रभु! जैसे, रत्नदीपक कमरों में घूमता है, तथापि उसका प्रकाश हिलता नहीं है; उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, कैसे भी प्रसङ्ग में, राग-द्वेष आदि के प्रसङ्ग में अस्थिरता में आया, परन्तु उसमें से वह हिलता नहीं है। 'यह मेरा है और यह मुझे हुआ है' - ऐसा वह मानता नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं! यहाँ निवृत्त कब (होवे) और ऐसा कब करे? पूरी जिन्दगी चली जा रही है। आहा...हा...! भाई! करने योग्य तो यह है। मनुष्य देह प्राप्त हुआ, इसमें करने योग्य हो तो भव के अन्त की बात करने योग्य है, बापा! भव में भव के अन्त का भाव प्रगट करना है। आहा...हा...!

ऐसे **अनेक कक्षों (-कमरों) में सञ्चारित रत्नदीपक की भाँति एकरूप ही आत्मा को उपलब्ध (-अनुभव) करते हुए...** अनेक कमरों में जाने पर वह रत्नदीपक अनेकरूप होता है - ऐसा नहीं है। कमरा छोटा हो, बड़ा हो, अन्धेरा हो, गन्दगी जैसा भरा हो या सुन्दर हो, वह रत्न(दीपक) तो वहाँ एकरूप रहता है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा... आहा...हा...! राग की अस्थिरता हो या द्वेष की अस्थिरता हो, परन्तु वहाँ तो चैतन्यदीपक तो अकेले जानने-देखने के (स्वभाव में) स्थित रहता है। आहा...हा...! **एकरूप ही आत्मा को उपलब्ध करते हुए...** अनेक कमरों में रत्न जाए परन्तु रत्न तो एकरूप ही रहता है; इसी प्रकार अनेक शरीरों में (जाने पर भी आत्मा तो एकरूप ही रहता है।) वह आत्मा है न? स्वधर्मव्यापकशक्ति! अनन्त शरीरों में रहने पर भी वह स्वधर्मव्यापक -शक्ति पर को स्पर्श ही नहीं करती। आहा...हा...! ४७ शक्तियाँ हैं, (उनमें एक) स्वधर्मव्यापकशक्ति है। पर में रहने पर भी... आहा...हा...! उसका गुण ऐसा है कि (वह पर को स्पर्श नहीं करता) आहा...हा...! स्वधर्मव्यापकत्व! २५ वीं (शक्ति) है। आहा...हा...! अनेक शरीरों में रहने पर भी, जैसे रत्न का दीपक ऐसा का ऐसा रहता है; ऐसा भगवान आत्मा! जिसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर पड़ गयी है, उसका आत्मा ऐसा का ऐसा रहता है। आहा...हा...!

(एक व्यक्ति ऐसा कहता था कि) 'यह तो बाबा हो जाए, तब होता है।' बाबा ही है! परन्तु सुन न! आहा...हा...! (वह कभी) राग में नहीं आया, रागरूप नहीं हुआ, फिर तुझे नया बाबा कहाँ करना है? किसी स्थान में, किसी क्षेत्र में रहा और किसी काल में, भाव में रहा; पररूप हुआ ही नहीं। जहाँ रागरूप नहीं हुआ (तो पररूप तो होगा ही कैसे?) आहा...हा...! यह तो चैतन्य चमत्कार! रत्न दीपक! आहा...हा...! यह रत्न(दीपक) अन्धकाररूप हुआ ही नहीं। आहा...हा...! ऐसे ही भगवान चैतन्य रत्न! जिसने स्व का आश्रय लेकर समस्त एकान्तदृष्टि का नाश किया, उसे अनेकान्त चैतन्यरत्नदीपक ऐसा का ऐसा रहता है। आहा...हा...! यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान की बात है। आहा...हा...!

एकरूप ही आत्मा को उपलब्ध करते हुए, अविचलित चैतन्यविलासमात्र आत्मव्यवहार... आहा...हा...! वह (अज्ञानी) भ्रष्ट था। यह चैतन्यविलासमात्र (अर्थात्) ज्ञानचेतना! आहा...हा...! ज्ञानचेतना जागृत हुई, उसका विलास हुआ, चले नहीं ऐसा चैतन्यविलास! आहा...हा...! अरे...रे...! ऐसी बातें! चले नहीं ऐसा अचलित चैतन्यविलास! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हुए) वह चेतना का विलास है। आहा...हा...! रागादि का अनुभव, वह अचेतना का विलास है। आहा...हा...! जड़ का विलास! आहा...हा...!

जहाँ भगवान आत्मा, पूर्णानन्द के नाथ का अवलम्बन लिया, आहा...हा...! आश्रय किया, वह **अविचलित चैतन्यविलासमात्र आत्मव्यवहार...** (प्रगट हुआ), यह व्यवहार! वह दया, दान के व्यवहार की तो बात ही (दूर रह गयी।) आहा...हा...! (यह तो) आत्मव्यवहार! आत्मव्यवहार यह है। यह तो 'परमार्थ वचनिका' चिट्ठी में है न? मोक्षमार्ग व्यवहार है, भाई! परमार्थ वचनिका में है। मोक्षमार्ग व्यवहार है, निश्चय तो द्रव्य है, बापू! पर्याय है न? आहा...हा...! वह तो राग को तो व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा है, इस अपेक्षा से चैतन्यविलास - निर्मल सम्यग्दर्शन - ज्ञान की अपेक्षा से उसे (राग को) व्यवहार कहा और इन्हें निश्चय कहा, परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से, भगवान पूर्णानन्द के नाथ में जो परिणमन हुआ; परिणमन हुआ, वह पर्याय ही व्यवहार है। आहा...हा...हा...! ऐसी बातें हैं।

भाई! तीन लोक के नाथ परमात्मा का पुकार है। तेरे लिए प्रभुता का पुकार है भाई!

अन्दर चैतन्यस्वरूप प्रभु पड़ा है न! भगवान! उसकी पर्याय में उसका विलास (प्रगट हुआ।) द्रव्य में तो वह था, परन्तु पर्याय में चैतन्यविलास आया। स्वभाव का आश्रय लेने पर जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, वह चेतना का विलास है। आहा...हा...! पञ्च महाव्रत के परिणाम हैं, वह तो राग का विलास है, कर्मचेतना का विलास है। आहा...हा...! अविचलित चेतनाविलास! चले नहीं ऐसा चेतनविलास! रत्न के दीपक को कहीं भी ले जाओ (तो भी वह) उसके प्रकाश में से चलित नहीं होता, उसे हवा का झपट्टा लगे (और बुझ जाए - ऐसा नहीं होता।) परसों नहीं हुआ था? हवा की (आँधी), ऐसी हवा में रत्न के दीपक का प्रकाश कुछ हिलता होगा? आहा...हा...! यह दीपक तो ज़रा-सी (हवा आये वहाँ) लबझब होने लगता है। रत्न का दीपक लबझब नहीं होता। आहा...हा...! इसी प्रकार ध्रुव स्वभाव भगवान आत्मा को जिसने पकड़ा, उसकी पर्याय तो अविचलित चेतनाविलास है। वह चेतना की आनन्द की क्रीड़ा है। आहा...हा...हा...! उसे यहाँ आत्मव्यवहार कहा जाता है।

शरीर की क्रिया तो कहीं गयीं; दया, दान और देव-गुरु की भक्ति का व्यवहार भी कहीं गया... आहा...हा...! यहाँ तो भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसे जिसने सम्यग्दर्शन में पकड़ा; पूर्णानन्द के नाथ को जिसने सम्यग्ज्ञान में ज्ञेय बनाया, उसकी पर्याय में अविचलितचेतनाविलास प्रगट हुआ, उसे धर्म कहा जाता है। आहा...हा...! भगवान तीन लोक के नाथ, जिनेश्वरदेव का जगत् के समक्ष यह पुकार (सन्देश) है। आहा...हा...! प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर पूर्णानन्द से भरपूर, पूर्ण अनन्त गुण के रत्न से (भरपूर)! चैतन्यरत्नाकर महासमुद्र अन्दर है। आहा...हा...! अरे प्रभु! तूने कभी वहाँ नजर भी नहीं की है। उसकी नजर (करने में) तुझे निधान दिखेगा! और वह नजर हुई, वह निर्मल पर्याय - चेतना का विलास - आत्मव्यवहार है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुए, वह व्यवहार है। दया, दान, भक्ति और यात्रा - ये सब व्यवहार नहीं, यह तो राग है। आहा...हा...! ऐसी बात है, भाई! ऐसी बातें हैं, ओ...हो...हो...हो...! समयसार... प्रवचनसार... नियमसार... गज़ब बात है! जिनने चैतन्यसूर्य का साक्षात्मकार कैसे हो? - उसकी बात की है।

आहा...हा...! परमस्वभावभाव कारणपरमात्मा! कारणपरमात्मा, भगवान आत्मा! आहा...हा...हा...! त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु! सत् ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान आत्मा भगवान ने देखा है, जो ऐसे आत्मा को पकड़ता है, उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है, उसे धर्म का प्रारम्भ होता है। इसके बिना लाख यात्रा, पूजा, भक्ति, दया, दान करे, उसमें अकेला राग, बन्धन और अधर्म है। आहा...हा...! कठिन काम है, भाई! अनन्त काल हुआ, इसने इस वस्तु को (जाना नहीं है।) भगवान पूर्णानन्द से भरपूर है, उस ओर का झुकाव ही नहीं किया है। बाहर के झुकाव में (धर्म) मानकर वह किया और यात्रा की, भक्ति की, पूजा की, दान दिया, व्रत किये और अपवास किये... अब, ऐसा तो अनन्त बार किया है। सुन न! उस राग की क्रिया में धर्म मानने पर एकान्तदृष्टि-मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...!

यहाँ तो स्वयं परमात्मस्वरूप विराजमान है। आहा...हा...! परमात्मा जो केवली हुए, वे कहाँ से हुए? प्रभु! वह परमात्मपद कहीं बाहर से आता है? वह अन्दर भरा है - परमात्मपद ही भरा है। आहा...हा...! कैसे जँचे? ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द का सागर आत्मा! उसका जिसने आश्रय लिया है और समानजातीय और असमानजातीय की पर्यायबुद्धि/रागबुद्धि छोड़ दी... आहा...हा...! उसे एकान्तदृष्टि नष्ट हो जाती है और अनेकान्तदृष्टिवाला तत्त्व ऐसा का ऐसा शोभायमान प्रगट होता है। ऐसी सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या करें? आहा...हा...! परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ की यह वाणी है। जगत् को सुनने नहीं मिलती। अरे...रे...रे...! आहा...हा...! क्या हो? अनन्त काल परिभ्रमण में गया। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, यहाँ कहना क्या है? कि आत्मा जो पूर्णानन्द ध्रुव नित्यानन्द प्रभु है, उसे जिसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में पकड़ा है; वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो दशा प्रगट होती है, वह निर्मल वीतरागी पर्याय है - वह चेतनाविलास है और वह चेतनाविलास आत्मा का व्यवहार है। दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा यह आत्मा का व्यवहार नहीं है। आहा...हा...! अरे...! कठिन लगे (परन्तु) क्या हो? प्रभु! आहा...हा...! गाथाएँ तो गाथाएँ हैं न! आहा...हा...!

प्रभु! एक बार सुन तो सही! अन्दर तेरी चीज़ चैतन्य के अनन्त गुण के भार से भरपूर है। आहा...हा...! उसे राग नहीं होता, पुण्य-पाप, दया-दान उसे नहीं होते, भाई! वह सब विकार है। आहा...हा...! जहाँ अन्दर निर्विकारी भगवान का आश्रय लिया... आहा...हा...! तब अविचल चेतनाविलास की दशा प्रगट हुई, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेती दशा प्रगट हुई। आहा...हा...! उसे यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र धर्म कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेती अविचल चेतना (विलास) की दशा प्रगट हुई, आहा...हा...! है ? उसे हम आत्मा का व्यवहार कहते हैं (-ऐसा) कहते हैं। आत्मा का व्यवहार! आहा...हा...! यहाँ तो अभी (सम्प्रदाय में) ऐसा कहते हैं कि यात्रा करना, भक्ति करना, पूजा करना और दया, दान (करना) और व्रत व अपवास (करना) - यह सब व्यवहार है। बापू! (यह) व्यवहार नहीं है। (इसे व्यवहार कहना तो) असद्भूत कथन है। यह तेरे आत्मा का व्यवहार नहीं है, यह तो जड़ का व्यवहार है। कठिन पड़ता है, प्रभु! आहा...हा...!

तेरी प्रभुता को हीनता मत दे भाई! आहा...हा...! जितनी प्रभुता है, उतनी रख। उसे, पर्याय में मैं हूँ - इतना मत मान। आहा...हा...! पूर्णानन्द, पूर्णज्ञान, पूर्णशान्ति, पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर प्रभु भगवान का जहाँ अनुभव - सम्भावना हुआ; मान्यता-अनुभव (हुआ, तो) कहते हैं कि वह अनुभव चेतनाविलास है। वह आत्मा के चेतन का चेतनाविलास है। चेतन तो त्रिकाली है, परन्तु उसकी पर्याय में आनन्द का विलास आया, वह चेतनाविलास है, उसे हम आत्मव्यवहार कहते हैं। यह परमात्मा का फरमान है! जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ का यह फरमान दिव्यध्वनि में इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में यह बात थी, उसे सन्त जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहा...हा...!

अरे...रे...! कहाँ ज़िन्दगी जाती है ? आहा...हा...! पूरे दिन व्यापार का पाप, स्त्री-पुत्रादि को सम्भालने का पाप; पूरे दिन २२ घण्टे यह पाप! कभी घण्टे-दो घण्टे मन्दिर जाए, कोई यात्रा जाए, उसमें कोई शुभभाव-पुण्य हो; वह पुण्य तो अधर्म है, वह धर्म नहीं है। यह बात जँचे कैसे ? बापा! आहा...हा...! बापू! तुझे शल्य रह गयी है, भाई! इस एकान्तदृष्टि की शल्य रह गयी है। आहा...हा...! राग के कारण चैतन्य को किञ्चित् धर्म

का लाभ होता है, (इस मान्यता में) तुझे एकान्तदृष्टि की, मिथ्यात्व की शल्य रह गयी है। आहा...हा... ! इस चेतना के विलास में आने पर वह शल्य निकल जाती है। आहा...हा... ! समझ में आया ? यह तो मात्र आत्मव्यवहार पर वज़न है।

आहा...हा... ! भगवान पूर्ण अमृत का सागर है, प्रभु ! सर्वज्ञ परमात्मा केवली को जो अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया ? प्रभु ! वह आनन्द कहीं बाहर से आता है ? अन्दर में भरा है, भाई ! प्राप्त की प्राप्ति है। कुएँ में हो, वह बर्तन में आता है। इसी प्रकार भगवान में, अन्तर आत्मा में... अन्दर सब प्रभु-भगवान है, हाँ ! आहा...हा... ! अनन्त... अनन्त... आनन्द और ज्ञान से भरपूर प्रभु है। आहा...हा... ! उसका आश्रय लेने पर - उसका अवलम्बन लेने पर जो आनन्द और शान्ति की चेतना प्रगट होती है, उसे हम आत्मा का व्यवहार कहते हैं। आहा...हा... ! आत्मा त्रिकाली है, वह निश्चय है और उसका अनुभव करना - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र — दया, दान और व्रत के परिणामरहित निर्विकारीदशा (प्रगट होना)... आहा...हा... ! उसे यहाँ आत्मव्यवहार कहते हैं। आहा...हा... ! है ? फिर ज़रा बात है, परन्तु (अभी) समय हो गया।

प्रवचन नं. ९२ **दिनाङ्क ०२ जून १९७९**

प्रवचनसार ९४ गाथा। दूसरे पैराग्राफ की ५ वीं पंक्ति से शुरु करना है। दूसरे पैराग्राफ की अन्तिम ५ वीं पंक्ति। **अविचलितचेतनाविलास...** है ? क्या कहते हैं ? दो पंक्तियाँ आ गयी थी। यहाँ से (लेना) है - **अविचलितचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार...** भगवान परमात्मा सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं कि आत्मा, जो अन्तर शुद्ध चैतन्य परमानन्द अमृत का धन है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके, उस त्रिकाली स्वभाव का स्वीकार करके और श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की जो निर्विकारी दशा प्रगट हो, वह अविचलितचेतनाविलास आत्मा का व्यवहार है। आहा...हा... ! जगत् को तो यह बात कठिन पड़ती है।

दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा का भाव, यह सब राग है, वह कहीं आत्मव्यवहार नहीं है; वह तो मनुष्य का व्यवहार है। आहा...हा... ! कठिन काम ! विचारा जगत् क्या करे ? (जहाँ सत्य सुनने को) नहीं मिलता। अरे... ! अनन्त काल हुआ, अन्दर चैतन्य

वस्तु अनन्त गुण की भण्डार, अनन्त चैतन्यरत्न से भरपूर प्रभु, जिसमें दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभपरिणाम भी नहीं हैं। आहा...हा...! ऐसे धर्मी का, अर्थात् आत्मा का अवलम्बन करके... सूक्ष्म बात है प्रभु! ऐसा जो भगवान आत्मा, अन्दर सबको विराजता है... आहा...हा...! उसकी अविचलित चेतनाविलासमात्र! अन्तर के अनुभव की दृष्टि; उस चैतन्यस्वभाव का अनुसरण करके होनेवाली निर्मलपरिणति, निर्मलपर्याय, वह अविचलित — चलित नहीं - ऐसी चेतनाविलासमात्र है। जिसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का विकल्प नहीं है, क्योंकि ये सब तो पुण्यबन्ध का कारण है और वस्तुत: तो ये अधर्म हैं। अर...र...र...! ऐसी बात कैसे सहन करे? अभी तो सम्प्रदाय इसे धर्म मानकर चलता है।

श्रोता : इस काल में तो शुभ उपयोगी ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वस्तु हैं, कहें कुछ भी। वस्तुस्थिति तो यह है। चैतन्यस्वरूप भगवान-अस्ति है। यह आगे आयेगा; लक्षण बतायेंगे वहाँ (आयेगा।) अस्ति सामान्य कहा है न? भाई! अस्ति सामान्य है...है...है...है... सूक्ष्म बात है, प्रभु! है...है...है... ऐसा त्रिकाल चेतनास्वभाव! अनन्त आनन्द है और अनन्त शान्ति, अनन्त अतीन्द्रिय गुण का धाम प्रभु! आहा...हा...! उसका अवलम्बन करके — उसका आश्रय लेकर निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (हों); निश्चय-सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, स्वभाव के आश्रय से-अवलम्बन से होते हैं। ऐसी बात है, प्रभु! यह अविचलितचेतनाविलास है। चेतनाविलासमात्र क्यों कहा? (क्योंकि) उसे व्रत, तप, भक्ति और पूजा के विकल्प का ज़रा भी सम्बन्ध नहीं है। वे सब बन्ध के कारण-संसार है। आहा...हा...! क्या हो? अननत काल से चौरासी के अवतार में भटकता है। आहा...हा...! ऐसा करोड़पति होवे, वह मरकर पशु- बकरा होवे, गधा होवे, आहा...हा...!

श्रोता : यह आप बोलते हो तब झगड़ा पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ा पड़ता है। बात सच्ची है। बहुत-सों को तो माँस और मदिरा नहीं है, प्रभु! इसलिए नरकगामी तो नहीं है, परन्तु पुण्य भी नहीं है। सच्चे सत्समागम से सत् प्ररूपणा सुनने पर दो-चार घण्टे सुनने में जो पुण्य होता है, वह भी नहीं

हैं, उसे अकेले पाप के परिणाम (होते हैं।) प्रभु तो कहीं एक ओर रह गया है। आहा...हा...!

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में-दिव्यध्वनि में आवाज-फरमान आया है — प्रभु! तू प्रभु है! तू मेरी जाति का है, मेरी जाति-पाति का है। आहा...हा...! तुझमें अनन्त गुण की प्रभुता पड़ी है। प्रभु! उसका अवलम्बन करके — उसका आश्रय करके जो निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्मल ज्ञान और निर्मल शान्ति-चारित्र-आत्मा की निर्मल पर्याय (प्रगट हुई), उसे यहाँ अविचलितचेतनाविलास कहा जाता है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग, (उसमें) कहाँ पहुँचना? एक तो व्यापार के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। व्यापार से निवृत्त होवे तो छह-सात घण्टे नींद में चले जाते हैं। स्त्री-पुत्रादि को प्रसन्न रखने में, सम्भालने में जाते हैं। अर...र...र...! किस दिन यह करे? क्या करे?

परिभ्रमण करते-करते अनन्त काल गया। प्रभु! इस परिभ्रमण के अभाव का यह एक उपाय है कि जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द, अनन्त गुण का पिण्ड-राशि पड़ी है, आहा...हा...! उसका अवलम्बन लेने पर — उसका आश्रय करने पर — उसका श्रद्धा-ज्ञान में स्वीकार करने पर जो श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट होती है, उसे यहाँ अविचल-न चले ऐसी चेतनाविलास कहते हैं। जैसे, द्रव्य नहीं चलता, (ऐसे) आहा...हा...! भगवान त्रिकाली वस्तु आत्मा तो परमात्मस्वरूप ही है। स्वभाव और शक्ति से तो परमात्मस्वरूप है, वह कभी चलित नहीं होता। आहा...हा...! वह जैसे चलित नहीं होता, वैसे ही उसका आश्रय लेनेवाली दशा भी चलित नहीं होती। आहा...हा...! आहा...हा...! ऐसी बात है प्रभु! क्या हो? वीतराग-परमात्मा त्रिलोकनाथ की अकषाय करुणा है। आहा...हा...! अकषाय करुणा है, प्रभु! तेरे अन्तर में - तेरे मूल स्वभाव आत्मा में अनन्त...अनन्त... पवित्रता (भरी है), उसका पिण्ड तू है। अनन्त... अनन्त... शुद्ध चैतन्यघन की राशि है। आहा...हा...! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम-राग (होता है), प्रभु! वह तुझमें नहीं है, वह तेरा नहीं है। तुझमें नहीं है, वहाँ तू नहीं है। जहाँ तू है, वहाँ वह राग नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात!

(ऐसा) **अविचलितचेतनाविलासमात्र-आत्मव्यवहार...** उसे व्यवहार कहते हैं। आत्मा जो त्रिकाली निश्चय वस्तु है — सत्...सत्... सच्चिदानन्द प्रभु! सत्-शाश्वत्

ज्ञान और आनन्द आदि स्वभाव का सागर है, उसे निश्चय कहते हैं, उसे परम सत्य कहते हैं। तब उसका आश्रय लेकर जो दशा प्रगट हुई है, उसे आत्मा का व्यवहार कहते हैं। आहा...हा...! ऐसी बात है! क्या हो? भाई! सब खबर है, दुनिया की खबर नहीं है (कुछ)? आहा...हा...! दुनिया कैसे चलती है और कैसी है, सब खबर है। आहा...हा...! ६६ वर्ष से तो निवृत्ति / दीक्षा है; भले ही दीक्षा स्थानकवासी में ली थी (परन्तु) दीक्षा थी कब? आहा...हा...! अभी तो सम्यग्दर्शन किसे कहना? (इसका) पता न हो, वहाँ दीक्षा कैसी? आहा...हा...! दख्या (-दुखिया) थे! राग को धर्म मानना, यह दुःख है। वह दुःखी... दुःखी है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! यदि तुझे कल्याण करना हो, जन्म-मरण का अन्त, भव का अन्त लाना हो (तो यह बात है।) भव भ्रमण! आहा...हा...! नियमसार में नहीं (आता?) चार-पाँच शब्द हैं। भगवन्त और भव्य... नियमसार में है। चार-पाँच बोल हैं। (शास्त्र) है यहाँ? (१२ वाँ श्लोक है) **भव के भय का भेदन करनेवाले** सर्वत्र भ...भ... **भव के भय का भेदन करनेवाले इन भगवान के प्रति...** भगवान तीन लोक के नाथ के **प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है?** आहा...हा...! यह भ...भ... आया। **भव के भय का भेदन करनेवाले इन भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है? तो तू भव समुद्र के मध्य में स्थित मगर के मुख में है।** आहा...हा...! पाँचवीं गाथा में भगवान का स्वरूप है न! इसलिए (ऐसा कहा है।) **अत्तागमत्तच्चाणं... वयगयअसेसदोसो सयल-गुणप्पा...।** सर्व गुणवाला है, उसमें (कहना है।) आहा...हा...! प्रभु! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा तो महाविदेह में विराजमान है। महावीर आदि प्रभु तो मोक्ष पधार चुके हैं। (वे तो) णमो सिद्धाणं में गये हैं। यह णमो अरिहंताणं-अरिहन्त पद में यह वर्णन किया है। आहा...हा...! भव के भय का भेदन करनेवाले भगवान के प्रति तुझे भक्ति नहीं है? आहा...हा...! ऐसा कहते हैं। यह तो अभी शुभराग है।

यहाँ तो परमात्मा स्वयं आत्मा भव के भय को छेदनेवाला प्रभु आत्मा स्वयं है। आहा...हा...! अरे...! भगवान! बालक हो या वृद्ध हो, वह तो शरीर की दशा है। आत्मा तो अन्दर त्रिलोकनाथ आनन्द का कन्द प्रभु विराजमान है। भगवान के भगवत्स्वरूप

विराजमान है। आहा...हा...! उसकी जो श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन (प्रगट हुए, वह अविचलित चेतनाविलास है)। फिर एक व्यक्ति अभी ऐसा लिखता है कि आत्मा का चिन्तन और सम्यक् तो सातवें गुणस्थान में होता है। करुणादीप में (आया है)। अरे भगवान! क्या करे? यहाँ का निषेध करने को कहाँ ले जाते हैं? अरे...प्रभु! यहाँ का (कोई) व्यक्ति का नहीं है। यह तो आत्मा का है और अनन्त वीतरागियों से कथित है, वह है, प्रभु! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं **अविचलित चेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार...** उसे व्यवहार कहते हैं। इस शरीर की क्रिया, पर की क्रिया की तो कुछ बात ही नहीं है, परनतु अन्दर जो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आते हैं, वह तो राग है, वह भी आत्मव्यवहार नहीं है। आहा...हा...! **आत्मव्यवहार को अङ्गीकार करके...** आहा...हा...! अमृत का सागर भगवान आत्मा! जिसमें पूर्ण अमृत भरा है, उसका आश्रय करके और जो अविचलचेतना (प्रगट हुई), उसे अङ्गीकार करके... देखा? ऐसे व्यवहार को अङ्गीकार करके (- ऐसा कहा है।) आत्मा तो ठीक, परन्तु आत्मा के व्यवहार को अङ्गीकार करके (- ऐसा कहा है।) आहा...हा...! भाई! बहुत सूक्ष्म बात है! क्या हो? अभी तो ऐसी सब गड़बड़ चली है कि सोनगढ़ को मिथ्या सिद्ध करने के लिए बेचारे लोग प्रयत्न करते हैं। करो, बापा! तुम भी भगवान हो, प्रभु! (परन्तु) मूल में भूल है। आहा...हा...!

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं कि **अविचल चेतनाविलास...** यह प्रवचनसार है। प्रवचन, अर्थात् भगवान की दिवयध्वनि!

ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे;
रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे॥

यह आगम के वचन! यह जगत् के समक्ष परमात्मा का फरमान है कि तू स्वयं मेरी जाति का भगवान है, भाई! वह भगवान अन्दर है, उसका तू आश्रय ले। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम तो पामर-नपुंसकता है। आहा...हा...! ऐसी बातें... आहा...हा...! सुनना कठिन पड़ती हैं।

वहाँ (सम्प्रदाय में) पूरे दिन यही चलता — यह करो... यह करो... जीवों को मत

मारो... मत मारो। यह बात आवे (ऐसा कहते हैं कि) यह भगवान का फरमान है कि मत मारो... मत मारो। अरे... ! सुन न! अभी (दूसरा एक) बहुत डालते हैं – वीर कहते हैं – जीओ और जीने दो – यह डालते हैं, बहुत डालते हैं। जीओ किसे कहना, बापू? आहा...हा... ! यह अंग्रेजी में आता है, उसे लोगों ने यहाँ डाल दिया है – 'जीओ और जीने दो' – अरे... जीना तो प्रभु! तेरा आनन्द का जीवन, वह जीवन है, वह चेतनाविलास है, वह तेरा जीवन है। आहा...हा...! पहली जीवत्वशक्ति आयी है न? ४७ शक्तियों में जीवत्वशक्ति! अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता, सुख, वीर्य... आहा...हा...! उसका जो निर्विकल्पदशारूप परिणमन होना, वह अविचलचेतनाविलासमात्र आत्मव्यवहार है। व्यापार मेरा – इस व्यवहार की यहाँ बात नहीं है। वह आत्मा का व्यवहार नहीं है, वह तो जड़ का व्यवहार है। आहा...हा...!

आत्मव्यवहार को अङ्गीकार करके, जिसमें समस्त क्रियाकलाप से भेंट की जाती है... आहा...हा...! परमात्मा 'प्रवचनसार' में कहते हैं, वह सन्त आढ़तिया होकर जगत् को प्रसिद्ध करते हैं। आहा...हा...! क्रियाकलाप (अर्थात्) यह किया, भक्ति की, व्रत पालन किये, अपवास किये, और वर्षीतप किया और अमुक... अमुक... किया, महीने के अपवास किये – यह सब राग का क्रिया-कलाप राग है, बापा! वह आत्मा की वस्तु नहीं है। आहा...हा...! उस **समस्त क्रियाकलाप को...** ऐसा; एक भी शुभ का राग, चाहे जो हो, वह क्रियाकलाप है। समस्त क्रिया, अर्थात् राग की क्रिया के समूह को **भेंट की जाती है – ऐसे मनुष्यव्यवहार का...** वह तो मनुष्य का व्यवहार है, वह तो संसारी का व्यवहार है। आहा...हा...! वह तो (भव) भ्रमण में परिभ्रमते जीव के परिभ्रमण का कारण (है), वह व्यवहार है। अरे...रे...! आहा...हा...!

प्रश्न : क्रिया कलाप में आत्मा का विचार आता है या नहीं?

समाधान : विचार, वह क्रियाकलाप – विकल्प है। गुण-गुणी के भेद का विकल्प उत्पन्न हो, वह क्रियाकलाप है। सूक्ष्म बात है!

श्रोता : उसे आँगन कहा है न?

समाधान : अपने आ गया है, कहा था, 'कलश टीका' में! अरे...! क्या हो? भाई!

जिसमें समस्त क्रियाकलाप से भेंट की जाती है... भगवान की भक्ति का, व्रत का, तप का विकल्पमात्र उत्पन्न हो, वह विकल्प है, वह राग है; वह क्रिया का समूह है, राग का समूह है, उससे भेंट की जाती है, **ऐसे मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करते हुए...** (अर्थात्) धर्मी जीव उसका आश्रय नहीं करता। आहा...हा...! धर्मी-जन्म-मरण का अन्त लानेवाला धर्मी — सम्यग्दृष्टि — धर्म की पहली सीढ़ीवाला उसे कहते हैं कि जो भगवान पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय करके जो शान्ति और आनन्द प्रगट हुआ, वह राग की क्रियाकलाप से भेंट नहीं करता (अर्थात्) वह मेरा है और मुझे करने योग्य है — ऐसा नहीं करता। आहा...हा...! ऐसी बात है!

श्रोता : ऐसी बात तो रोज़ सुनने जैसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर भगवान है, बापू! भगवान न होवे तो भगवान आयेगा कहाँ से? अरहन्त परमात्मा को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? वह अन्तर में पड़ा है, प्रभु! अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्तिरूप स्वभाव भगवान है! आहा...हा...! उसका आश्रय लेकर जिसने निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अविचलचेतनाविलास प्रगट किया है, वह क्रियाकाण्ड के भाव से भेंट नहीं करता। वह क्रियाकाण्ड — दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम को-विकल्प को अपना नहीं मानता — उससे भेंट नहीं करता। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

यह तो एक विचार ऐसा आया था कि ५५ वर्ष (की आयु) होवे तो नौकरी छोड़ देता है। यह बनिया धन्धा करे तो ५५ वर्ष में भी निवृत्त नहीं होता। ५५ वर्ष की उम्र हो, तो (कहते हैं) अब छोड़ दो! इसे व्यापार में ६५ वर्ष होवे तो भी नहीं छोड़ता। पाप अकेला...! आहा...हा...!

यहाँ तो (कहते हैं कि) दया, दान, व्रत, तप के परिणाम; साधु नाम धराकर क्रिया करे, वह क्रियाएँ मेरी हैं (- ऐसा मानकर) उनसे भेंट करे, वह मिथ्यादृष्टि है, वह अज्ञानी है, वह जैन नहीं है, उसे जैन का पता नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं, बापू! आहा...हा...! यह तो जंगल है। बाड़ा में हो तो रहने भी नहीं दे। अरे...! ऐसा कहाँ (निकाला)? — (ऐसा कहते हैं।) आहा...हा...!

कहते हैं कि **जिसमें समस्त क्रियाकलाप...** (अर्थात्) दया, दान, व्रत, तप आदि (और) परमात्मा की विनय, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का राग, उन्हें मानने का राग — यह सब क्रियाकलाप-राग है, उससे भेंट की जाती है, वह मनुष्य का व्यवहार है; वह आत्मव्यवहार नहीं है। आहा...हा...! उसका **आश्रय नहीं करते हुए...** दो बातें हुई — आत्मव्यवहार को अङ्गीकार करके और मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करते हुए — ऐसा अनेकान्त किया है। आहा...हा...! सामने पुस्तक है न, भाई! यह कोई सोनगढ़ की पुस्तक नहीं है, यह तो भगवान की वाणी का है। आहा...हा...! सन्तों ने जगत् के लिए प्रसिद्ध किया है। आहा...हा...! जिसे इस व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का उत्साह आता है, वह मिथ्यादृष्टि है, उसे जैनपने का पता नहीं है। आहा...हा...!

जैन तो उसे कहते हैं कि जो जिनस्वरूप 'घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन' — उस जिनस्वरूप प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की वीतरागदशा होने को जैन कहते हैं। जिन तो उसका स्वरूप है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र-निर्विकल्प अनुभव (होवे), उसे जैन कहा जाता है, बाकी सब अजैन हैं। आहा...हा...!

श्रोता : नामधारी जैन हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम उल्टा रखें। (पहले) दृष्टान्त देते थे। क्या कहलाता है? थैली? कड़वी! (श्रोता - चिरायता) हाँ, चिरायता! चिरायते की थैली हो (और) ऊपर नाम दे शक्कर! इससे शक्कर हो जाती है? आहा...! हम जैन हैं, हम स्थानकवासी हैं, हम मन्दिरमार्गी हैं, हम दिगम्बर हैं... यह सब तो नाम है, बापा! जैनपना तो यह है। आहा...हा...! (जो) मनुष्य की क्रियाकलाप का व्यवहार है, मैंने दया पालन की, यह व्रत पालन किये, तप किया — वह मिथ्यादृष्टि है, उसे जैन का पता नहीं है, उसे जैनपना क्या है — यह पता नहीं है। आहा...हा...!

(ज्ञानी पुरुष तो आत्मव्यवहार को) अङ्गीकार करके, मनुष्य के व्यवहार का आश्रय नहीं करते हुए **राग-द्वेष का उन्मेष (प्राकट्य) रुक जाने से...** दया, दान के विकल्प अटक गये, रुक गये। आहा...हा...! (उन्मेष अर्थात्) प्रगट होना; प्राकट्य; स्फुरण होना। भगवान आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप है। उसकी पर्याय में वीतरागता प्रगट

हुई — सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हुए), उसे राग का स्फुरण नहीं होता। (वह) व्यवहार के दया, दान, व्रत आदि के विकल्प के अनुभव में नहीं आता। आहा...हा...! ऐसी बात है! (अज्ञानी ऐसा कहता है कि) यह तो एकान्त कहलाता है; अनेकान्त तो उसे कहते हैं कि व्यवहार से भी होता है, निश्चय से भी होता है। यहाँ कहते हैं कि निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, उसे अनेकान्त कहते हैं। ऐसी बात है! अरे... प्रभु! यह सब (बात) जानते हैं, बापा! (पूरी) दुनिया को जानते हैं, बापा! यहाँ तो शरीर को ९० वर्ष हुए। ९०...९० किसे कहते हैं? ९० वर्ष! आहा...हा...! यह तो सर्राफ दुकान है, सर्राफा का व्यवसाय है। खोटा रुपया (होवे तो) रोक दे, चलने नहीं दे, वापिस नहीं दे! इसी प्रकार यह दया, दान, व्रत और तप में धर्म मानता है, वह तेरा खोटा रुपया है, लम्बा नहीं चलेगा; मर जाएगा, चार गतियों में परिभ्रमण करेगा। आहा...हा...! ऐसी बात! उन लोगों को, बेचारों को बैठती नहीं, इसलिए एकान्त करके निकाल देते हैं, बापा! भाई! तुझे पता नहीं है। यह अनेकान्त है। वस्तु के स्वरूप की शुद्धपरिणति प्रगट करना, वह (आत्मव्यवहार) अङ्गीकार करना और रागादि को उत्पन्न होने न देना, वह अनेकान्त है।

सम्यग्दर्शन होने में, यह प्रश्न उठा था 'कलश टीका' में कि तुम ज्ञान... ज्ञान करते हो, परन्तु भगवान ने तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र (तीन होकर) मोक्षमार्ग कहा है? (तो कहते हैं कि) सम्यग्दर्शन होने पर ये तीनों साथ आ जाते हैं। दो-तीन जगह आता है न? अरे... प्रभु! यह तो उलटपलट की बातें हैं, नाथ! आहा...हा...! यह शरीर और वाणी जड़-मिट्टी का पुतला है। मोम जैसे पिघल जाएग, उसी प्रकार यह पिघल (नष्ट) जानेवाला है, बापा! यह तो जड़-धूल है।

अन्दर में दया, दान, व्रत के परिणाम आवें, उन्हें भी धर्मी स्वयं अङ्गीकार नहीं करता। आहा...हा...! उनका आश्रय नहीं करता। आहा...हा...! **राग-द्वेष का उन्मेष रुक जान से परम उदासीनता का अवलम्बन लेता हुआ...** आहा...हा...! **समस्त परद्रव्यों की संगति दूर कर देने से...** यह रागादि परद्रव्य हैं, उनका परिचय दूर किया है। आहा...हा...! भगवान आत्मा का परिचय किया है। आहा...हा...! आहा...हा...! पागल जैसा लगे! यह सब लाखों लोग कहे, वह खोटा? और यह सच्चा? (-ऐसा लगता

है) यह तो सत्य है, सत्य है, बापा! सत्य को किसी संख्या की आवश्यकता नहीं है। बहुत माननेवाले हों तो सत्य है – ऐसा कुछ नहीं है। आहा...हा...! सत्य तो यह है।

समस्त परद्रव्यों की संगति दूर कर देने से... स्वद्रव्य के-असंग के संग में आ गया। अन्दर असंग आत्मा प्रभु है, उसके जहाँ संग में आया, उसने परसंग छोड़ दिया। आहा...हा...! **परद्रव्य की संगति दूर कर देने मात्र से...** आहा...हा...! **मात्र स्वद्रव्य के साथ ही संगतता होने से...** ठीक! केवल स्वद्रव्य भगवान पूर्ण प्रभु! जिनस्वरूपी, वीतरागमूर्ति आत्मा (है) – ऐसा परमात्मा का फरमान है। आहा...हा...! **केवल स्वद्रव्य...** देखा? अकेला स्वद्रव्य नहीं, मात्र स्वद्रव्य! मात्र भगवान पूर्णानन्द प्रभु! आहा...हा...! **मात्र स्वद्रव्य के साथ...** आहा...हा...! टीका...! **संगतता...** परिचय होने से **वास्तव में स्वसमय होते हैं...** वह स्वसमय होता है। (नीचे स्वसमय का अर्थ) है न? जो जीव स्व के साथ एकपने की मान्यतापूर्वक (स्व के साथ) जुड़ता है, उसे स्वसमय कहा जाता है। उसे स्वसमय कहते हैं। आहा...हा...! **वास्तव में स्वसमय होते हैं, अर्थात् स्वसमयरूप परिणमित होते हैं।** अर्थात् कि आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन, वह चैतन्यघनरूप से शुद्धरूप से परिणमित होता है, उसे यहाँ स्वसमय आत्मा कहा जाता है। उसे आत्मा कहा जाता है। आहा...हा...! ऐसी भाषा!

इसलिए स्वसमय ही आत्मा का तत्त्व है। लो! (यह) तात्पर्य! **इसलिए स्वसमय...** अर्थात् शुद्ध चैतन्य का पवित्र परिणमन; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी पर्याय, वह **स्वसमय ही आत्मा का तत्त्व है।** वह आत्मा का तत्त्व है – वह आत्मा का भाव है। आहा...हा...! **इसलिए...** इस कारण से **स्वसमय ही आत्मा का तत्त्व है।** यह तो परिणमन में तत्त्व लिया है, भाई! क्योंकि आत्मा तो शुद्ध आनन्दघन है ही, परन्तु 'यह है' – ऐसा परिणमन न करे तब तक वह स्वसमय नहीं हुआ। आहा...! (जब परिणमन हुआ), तब उसे आत्मा का तत्त्व कहा।

तत्त्वार्थ – तत्त्व (अर्थात्) द्रव्य, उसका परिणमन वह तत्त्व-भाव, वह आत्मा का तत्त्व है। कठिन बात! यहाँ दुकान के धन्धे से फुर्सत में नहीं होता, घण्टा भर मिले तो कहीं सुनने जाए। मन्दिरमार्गी हो तो भगवान की भक्ति, पूजा करे; फिर तेईस घण्टे दुकान और

सोने में और स्त्री-पुत्रादि को प्रसन्न रखने में जाते हैं। अरे...रे...! प्रभु! वहाँ तो पुण्य का भी ठिकाना नहीं है। आहा...हा...! यहाँ तो (कहते हैं) पुण्यतत्त्व भी आत्मा का तत्त्व नहीं है। आत्मतत्त्व तो उसे कहते हैं कि वीतरागी स्वभावरूप... आहा...हा...! परिणमन करे, उसे आत्मतत्त्व कहते हैं। आहा...हा...! वाद-विवाद से तो कुछ पार पड़े - ऐसा नहीं है।

(एक) मन्दिरमार्गी (साधु) आया था न? उसके (यहाँ के) विरोध में लेख आते हैं। 'लीमड़ी' में आया था। 'लीमड़ी' आये (तब) दो-तीन साधु (थे), दो-तीन गृहस्थ थे। (आकर कहा कि) हम विचार करते हैं। (मैंने) कहा हम किसी के साथ विचार नहीं करते हैं। इस (बात का) मेल किसके साथ खाये? (तो कहे कि) तुम्हारी प्रतिष्ठा क्या? (मैंने) कहा – यहाँ प्रतिष्ठा है किसकी? (तो कहने लगे) – अपना इतना बड़ा नाम और चर्चा से आप इनकार करते हो? ऐसे करते हुए अन्त में बोला कि इस चश्मे के बिना ज्ञात होता है? (मैंने) कहा – आ गयी चर्चा। यह जड़-मिट्टी है, इससे आत्मा जानता होगा?

प्रश्न : तो लगाया किसलिए?

समाधान : वह उसके कारण आया है और उसके कारण रहा है। आहा...हा...! जाननेवाला, चश्मे से और इस जड़ की आँख से भी नहीं जानता। अरे...रे...! यह दीपक है न दीपक? यह जड़ मिट्टी! इससे भी नहीं जानता। जाननेवाला स्वयं अपनी दशा में जाननेवाले को जानता है। आहा...हा...! 'करुणादीप' (मासिक) में बहुत लम्बा-लम्बा बहुत (विरोध) आता है। इसके (इस बात के) विरुद्ध में यह दिगम्बर लिखते हैं। आज आया है, परन्तु हम पढ़ते नहीं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु आत्मा की अनन्त प्रभुता! उस प्रभुतारूप प्रभुत्व पर्याय में प्रभुता हुई; निर्विकारी वीतराग सम्यग्दर्शन हुआ, वह आत्मतत्त्व है, वह स्वसमय है। लो!

भावार्थ : मैं मनुष्य हूँ, शरीरादि की समस्त क्रियाओं को मैं करता हूँ... आहा...हा...! यह हाथ हिलता है, यह पैर चलता है – इन सभी क्रियाओं को मैं करता हूँ – यह मिथ्यादृष्टि की मान्यता है। आहा...हा...! वे अजीव को जीव माननेवाले हैं। यह तो अजीव-मिट्टी है। यह हाथ ऐसे हिलता है, यह पैर ऐसे चलता है – यह तो जड़ की क्रिया है। आत्मा के कारण पैर नहीं चलता। आहा...हा...! यह जो भाषा निकलती है, वह

आत्मा के कारण नहीं, वह तो जड़ परमाणु हैं, उनमें से भाषा की पर्याय आती है। शरीरादि (उसमें) शरीर, वाणी (आदि) **समस्त क्रियाओं को मैं करता हूँ...** पर की दया पालता हूँ, पर को सहायता करता हूँ, पर को सुखी करता हूँ, पैसा देकर सबको व्यवस्था देता हूँ – यह सब मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की मान्यता है। आहा...हा... ! शरीरादि पर की क्रिया कर नहीं सकता। अरे...रे ! पूरे दिन करता है और कहता है कि कर नहीं सकता ! भाई ! तुझे करने का पता नहीं है। आहा...हा... !

जमीन पर जो पैर चलते हैं, वे पैर जमीन का स्पर्श नहीं करते। प्रभु ! तुझे कठिन लगेगा। वीतरागमार्ग ऐसा है। पैर जमीन का स्पर्श नहीं करते – ऐसा तीन लोक के नाथ का फरमान है, क्योंकि एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य के बीच अत्यन्त अभाव है। भाई ! (यह बात) तुझे कैसे बैठे ? आहा...हा... ! सत्य के पक्ष में आया नहीं और असत्य का सेवन किया है। आहा...हा... ! इस जमीन को स्पर्श किये बिना पैर चलते हैं ! यह पुस्तक (इस तख्ती के) कारण उसके आधार से ऊपर रहा है – ऐसा भी नहीं है। इस (पुस्तक के) परमाणु में आधार नाम का गुण है, उसके कारण यहाँ ऊपर रही है, इसके (तख्ती के) कारण नहीं। अरे...अरे... ! यह होंठ हिलते हैं, वह आत्मा की इच्छा से नहीं। अज्ञानी, ऐसी समस्त क्रियाओं में 'मैं करता हूँ' (– ऐसा मानता है।)

स्त्री-पुत्र-धनादिक के ग्रहण-त्याग का मैं स्वामी हूँ। मैंने स्त्री को ग्रहण किया-पाणिग्रहण किया, आहा...हा... ! पुत्र ! मेरा पुत्र ऐसा बड़ा हुआ है, महीने में पच्चीस हजार का वेतन ! आहा...हा... ! कैसा कर्मी जगा है ! यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्री है ! पुत्र (कहते हैं) परन्तु पुत्र का आत्मा अलग और उसका शरीर अलग, वह तो मिट्टी-शरीर अलग है और आत्मा अलग है। तेरा पुत्र कहाँ से आया ? अरे...रे... ! आहा...हा... ! पुत्र का विवाह करे... विवाह करे तब वह अपने पिता के पैर लगे, मुझे ठीक किया – डाला – मुझे जेल में डाला ! आहा...हा... ! सबके पैर छूता है। बड़े पिता हों, दादा हों, सास-ससुर बैठे हों तो उनके पैर छूता है। आहा...हा... ! क्या है प्रभु यह ? यह पागलपन क्या है ?

(यहाँ) कहते हैं कि स्त्री-पुत्र-धन-वस्त्रादि को ग्रहण करता हूँ और छोड़ता हूँ – यह मान्यता मिथ्यात्व है। स्वरूप में परद्रव्य का ग्रहण-त्याग है ही नहीं। आत्मा में वह गुण

है – त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति! परमात्मा का वचन है! आत्मा या परमाणु से लेकर लक्ष्मी, स्त्री, परिवार या किसी भी परद्रव्य का तूने ग्रहण नहीं किया है, उन्हें तू छोड़ता नहीं है; तेरा स्वरूप उनके त्याग-ग्रहण से रहित है। आहा...हा...! उसके बदले **ग्रहण-त्याग का मैं स्वामी हूँ** – ऐसा मानता है। मैंने इतना छोड़ा, ऐसा छोड़ा, पाँच हजार दान में दिया था; अमुक इकट्ठा किया था, वकालात करके फिर छोड़ दी (– ऐसा माननेवाला भी) मूढ़ है। वकालात करे कौन? वह तो जड़ भाषा है। आहा...हा...! यह (भाई) छोड़कर बैठे हैं, (परन्तु) अभी कहीं जानेवाले हैं।

श्रोता : उत्तरदायित्व बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्तरदायित्व किसका? आहा...हा...! ये स्त्री-पुत्र-धन-वस्त्र-गहने-मकान-महल मैंने ग्रहण किये और मैंने त्याग दिये, (इस प्रकार) उनका स्वामी होता है, वह मूढ़ है। आहा...हा...! (वह) **इत्यादि मानना, वह मनुष्यव्यवहार है!** यह मनुष्य का व्यवहार है, यह मिथ्यादृष्टि का व्यवहार है; धर्मी का नहीं।

मात्र अचलित चेतना वह ही मैं हूँ... आहा...हा...! संक्षिप्त किया है। **अचलित चेतना वही मैं हूँ – ऐसा मानना-परिणमित होना, वह आत्मव्यवहार (आत्मारूप प्रवृत्ति) है।** यह आत्मा का वर्तन है। आहा...हा...! यह अपवास करता हूँ और व्रत लिये हैं और... व्रत अर्थात् संवर; उपवास अर्थात् निर्जरा-तप। आहा...हा...! इस परद्रव्य के ग्रहण-त्याग में मिथ्यादृष्टि रुक गया है। आहा...हा...! मात्र अचलित चेतना! चेतना भगवान चलित नहीं – ऐसी पर्याय जो स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। **...ऐसा मानना-परिणमित होना, वह आत्मव्यवहार (आत्मारूप वर्तन) है।**

जो मनुष्यादिपर्यायों में लीन हैं... शरीर मेरा, वाणी मेरी, मैं सुन्दर; मेरा शरीर मजबूत लट्ठ जैसा है, मेरा शरीर पतला – कद पतला! क्या कहलाता है वह? पतली काठी (जैसा) शरीर (तेरा) था (कब)? वह तो मिट्टी-धूल है। वह आत्मा में था या है कब? मेरा कठी पतली – ऐसा कहते हैं न? मेरी काठी लट्ठी जैसी! आहा...हा...!

जो मनुष्यादि पर्यायों में लीन हैं, वे एकान्तदृष्टिवाले लोग, मनुष्यव्यवहार का आश्रय करते हैं, इसलिए रागी-द्वेषी होते हैं... वे मिथ्यात्व-श्रद्धा में रागी-द्वेषी

होते हैं; **और इस प्रकार परद्रव्यरूप कर्म के साथ...** (अर्थात्) परद्रव्यस्वरूप कार्य के साथ **सम्बन्ध करते होने से वे परसमय है...** परसमय, अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं, अनात्मा हैं। आहा...हा...!

और जो भगवान आत्मस्वभाव में ही स्थित हैं... आहा...हा...! भगवान आत्मा! ऐसी भाषा की है, देखा? **भगवान आत्मस्वभाव!** शुद्ध चैतन्य आनन्द ज्ञाता-दृष्टा आनन्दरूप **स्वभाव में ही स्थित हैं, वे अनेकान्तदृष्टिवाले...** कहा, इसे अनेकान्त कहते हैं। (अज्ञानी) कहते हैं उसे भी माने और इसे भी माने, (अर्थात् कि) व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है – वह अनेकान्त है। यहाँ कहते हैं कि व्यवहार से नहीं होता और निश्चय से होता है – इसका नाम अनेकान्त है। बहुत अन्तर है, बापू! आहा...हा...! नये सुननेवालों को तो ऐसा लगे... यह क्या (कहते हैं) ? यह कोई जैन की बात है ? जैन में तो छह काय की दया पालो (– ऐसा आता है)। संवत्सरी पर पत्र लिखें तो (ऐसा लिखते) छह काय के पिपर, छह काय के रखवाले, दह काय के गोवाल! संवत्सरी के पत्र में लिखते थे न ? किसके गोवाल ? आहा...हा...!

वे अनेकान्त दृष्टिवाले लोग, मनुष्यव्यवहार का आश्रय नहीं करते हुए... व्यवहार जो दया, दान, रागादि है, उसका आश्रय नहीं करते हुए **आत्मव्यवहार का आश्रय करते हैं, इसलिए रागी-द्वेषी नहीं होते...** आहा...हा...! ज्ञाता-दृष्टा के भाव में रहते हैं। **अर्थात् परम उदासीन रहते हैं और इस प्रकार परद्रव्यरूपकर्म के साथ सम्बन्ध न करके मात्र स्वद्रव्य के साथ ही सम्बन्ध करते हैं, इसलिए वे स्वसमय हैं।** आहा...हा...! ऐसी व्याख्या! वह (व्याख्या तो ऐसी आती है कि) त्रसजीव उसे कहते हैं कि जो हिलता-चलता है, उसे त्रसजीव कहते हैं। स्थावर उसे कहते हैं कि जो स्थिर रहे, उसे स्थावर कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि आत्मा उसे कहते हैं कि जो पुण्य-पापरूप परिणमित न हो और शुद्ध वीतरागरूप परिणमित हो, उसे आत्मा कहते हैं। अरे...रे...! यह कहाँ मेल खाये ? यह कलकत्ता में कहीं नहीं मिलता, कलकत्ता में धूल है।

यह ९४ वीं गाथा (पूर्ण) हुई।

गाथा - ९५

अथ द्रव्यलक्षणमुपलक्षयति -

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।
गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति।।९५।।

अपरित्यक्तस्वभावेनोत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धम्।
गुणवच्च सपर्यायं यत्तद्द्रव्यमिति ब्रुवन्ति।।९५।।

इह खलु यदनारब्धस्वभावभेदमुत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण गुणपर्यायद्वयेन च यल्लक्ष्यते तद्द्रव्यम्। तत्र हि द्रव्यस्य स्वभावोऽस्तित्वसामान्यान्वयः। अस्तित्वं हि वक्ष्यति द्विविधं, स्वरूपास्तित्वं सादृश्यास्तित्वं चेति। तत्रोत्पादः प्रादुर्भावः, व्ययः प्रच्यवनं, ध्रौव्यमवस्थितिः। गुणा विस्तारविशेषाः। ते द्विविधाः सामान्यविशेषात्मकत्वात्। तत्रास्तित्वं नास्तित्वमेकत्वमन्यत्वं द्रव्यत्वं पर्यायत्वं सर्वगतत्वमसर्वगतत्वं सप्रदेशत्वमप्रदेशत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं सक्रियत्वमक्रियत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं कर्तृत्वमकर्तृत्वं भोक्तृत्वमभोक्तृत्वमगुरुलघुत्वं चेत्यादयः सामान्यगुणाः। अवगाहहेतुत्वं गतिनिमित्तता स्थितिकारणत्वं वर्तनायतनत्वं रूपादिमत्ता चेतनत्वमित्यादयो विशेषगुणाः। पर्याया आयतविशेषाः। ते पूर्वमेवोक्ताश्चतुर्विधाः। न च तैरुत्पादादिभिर्गुणपर्यायैर्वा सह द्रव्यं लक्ष्यलक्षणभेदेऽपि स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव द्रव्यस्य तथाविधत्वादुत्तरीयवत्। यथा खलूत्तरीयमुपात्तमलिनावस्थं प्रक्षालितममलावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते; तथा द्रव्यमपि समुपात्तप्राक्तनावस्थं समुचितबहिरङ्गसाधनसन्निधिसद्भावे विचित्रबहुतरावस्थानं स्वरूपकर्तृकरण-सामर्थ्यस्वभावेनान्तरङ्गसाधनतामुपागतेनानुगृहीतमुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथा च तदेवोत्तरीयममलावस्थयोत्पद्यमान मलिनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते; तथा तदेव द्रव्यमप्युत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथैव च तदेवोत्तरीयमेककालममलावस्थयोत्पद्यमानं मलिनावस्थया व्ययमानमवस्थायिन्योत्तरीयत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्बमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमव-लम्बते; तथैव तदेव द्रव्यमप्येक-कालमुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानमवस्थायिन्या

द्रव्यत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्बमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते, न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथैव च तदेवोत्तरीयं विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते; तथैव तदेव द्रव्यमपि विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथैव च तदेवोत्तरीय-मायतविशेषात्मकैः पर्यायवर्तिभिस्तन्तुभिर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते; तथैव तदेव द्रव्यमप्यायतविशेषात्मकैः पर्यायैर्लक्ष्यते, न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते।।९५।।

द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयं सूचयति - **अपरिच्चत्तसहावेण** अपरित्यक्तस्वभावमस्तित्वेन सहाभिन्नं **उत्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं** उत्पादव्ययध्रौव्यैः सह संयुक्तं **गुणवं च सपज्जायं** गुणवत्पर्यायसहितं च **जं** यदित्थंभूतं सत्तादिलक्षणत्रयसंयुक्तं **तं दव्वं ति वुच्चंति** तद्द्रव्यमिति ब्रुवन्ति सर्वज्ञाः। इदं द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह लक्ष्यलक्षणभेदे अपि सति सत्ताभेदं न गच्छति। तर्हि किं करोति। स्वरूपतयैव तथाविधत्वमवलम्बते। तथाविधत्वमवलम्बते कोऽर्थः। उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपं गुणपर्यायस्वरूप च परिणमति शुद्धात्मवदेव। तथा हि-केवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्ति-निश्चलानुभूतिरूपकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशे सति शुद्धात्मोप-लम्भव्यक्तिरूपकार्यसमयसारस्योत्पादः कारणसमयसारस्य व्ययस्तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यं च। तथानन्तज्ञानादिगुणाः, गतिमार्गणाविपक्ष-भूतसिद्धगतिः, इन्द्रियमार्गणाविपक्ष-भूतातीन्द्रियत्वादिलक्षणाः शुद्धपर्यायाश्च भवन्तीति। यथा शुद्धसत्तया सहाभिन्नं परमात्मद्रव्यं पूर्वोक्तोत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि सति तैः सह सत्ताभेदं न **करोति,** स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। तथाविधत्वं कोऽर्थः। उत्पादव्ययध्रौव्यगुण-पर्यायस्वरूपेण परिणमति। तथा सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीययथोचितोत्पादव्ययध्रौव्यैस्तथैव गुणपर्यायैश्च सह यद्यपि संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभिर्भेदं कुर्वन्ति तथापि सत्तास्वरूपेण भेदं न कुर्वन्ति, स्वभावत एव तथाविधत्वमवलम्बते। तथाविधत्वं कोऽर्थः। उत्पादव्ययादिस्वरूपेण परिणमन्ति। अथवा यथा वस्त्रं निर्मलपर्यायेणोत्पन्नं मलिनपर्यायेण विनष्टं तदुभयाधारभूतवस्त्ररूपेण ध्रुवमविनश्वरं, तथैव शुक्लवर्णादिगुणनवजीर्णादिपर्यायसहितं च सत् तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैस्तथैव च स्वकीयगुणपर्यायैः सह संज्ञादिभेदेऽपि सति सत्तारूपेण भेदं न करोति। तर्हि किं करोति। स्वरूपत एवोत्पादादिरूपेण परिणमति, तथा सर्वद्रव्याणीत्यभिप्रायः।।९५।।

अब, द्रव्य का लक्षण बतलाते हैं -

छोड़े बिना निजभाव को, उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त हैं।
गुण और पर्यायों सहित है, द्रव्य कहते हैं उन्हें॥

अन्वयार्थ - **[अपरित्यक्तस्वभावेन]** स्वभाव को छोड़े बिना **[यत्]** जो

[उत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धम्] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसंयुक्त **[च]** तथा **[गुणवत् सपर्यायं]** गुणयुक्त और पर्यायसहित है, **[तत्]** उसे **[द्रव्यम् इति]** 'द्रव्य' **[ब्रुवन्ति]** कहते हैं।

टीका – यहाँ (इस विश्व में) जो, स्वभावभेद किये बिना, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रय[1] से और गुणपर्यायद्वय[2] से लक्षित[3] होता है, वह द्रव्य है। इनमें से (स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय में से) द्रव्य का स्वभाव वह अस्तित्वसामान्यरूप[4] अन्वय है; अस्तित्व दो प्रकार का कहेंगे – १. स्वरूप-अस्तित्व। २. सादृश्य-अस्तित्व। उत्पाद वह प्रादुर्भाव (प्रगट होना-उत्पन्न होना) है; व्यय वह प्रच्युति (अर्थात् भ्रष्ट-नष्ट होना) है; ध्रौव्य वह अवस्थिति (ठिकाना) है; गुण वह विस्तारविशेष हैं। वे सामान्यविशेषात्मक होने से दो प्रकार के हैं। इनमें, अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, द्रव्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, सप्रदेशत्व, अप्रदेशत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व, इत्यादि सामान्य गुण हैं; अवगाहहेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिकारणत्व, वर्तनायतनत्व, रूपादिमत्व, चेतनत्व इत्यादि विशेष गुण हैं। पर्याय आयतविशेष है। वे पूर्व ही (९३ वीं गाथा की टीका में) कथित चार प्रकार की हैं।

द्रव्य का उन उत्पादादि के साथ अथवा गुणपर्यायों के साथ लक्ष्य-लक्षण भेद होने पर भी स्वरूपभेद नहीं है। स्वरूप से ही द्रव्य वैसा (उत्पादादि अथवा गुणपर्यायवाला) है – वस्त्र के समान।

जैसे, मलिन अवस्था को प्राप्त वस्त्र, धोने पर निर्मल अवस्था से (निर्मल अवस्थारूप, निर्मल अवस्था की अपेक्षा से) उत्पन्न होता हुआ उस उत्पाद से लक्षित होता है, किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है (अर्थात् स्वयं उत्पादरूप से ही परिणत है); उसी प्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है – ऐसा द्रव्य

---

१. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रय = उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य - यह त्रिपुटी (तीनों का समूह)।

२. गुणपर्यायद्वय = गुण और पर्याय - यह युगल (दोनों का समूह)

३. लक्षित होता है - लक्ष्यरूप होता है, पहचाना जाता है। [(१) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तथा (२) गुणपर्याय वे लक्षण हैं और द्रव्य वह लक्ष्य है।]

४. अस्तित्वसामान्यरूप अन्वय = 'है, है, है' ऐसा एकरूप भाव द्रव्य का स्वभाव है। (अन्वय = एकरूपता सदृश्यभाव।)

भी-जो कि उचित बहिरङ्ग साधनों के सान्निध्य (निकटता; हाज़री) के सद्भाव में अनेक प्रकार की बहुत सी अवस्थाएँ करता है /वह – अन्तरङ्गसाधनभूत[१] स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण के सामर्थ्यरूप स्वभाव से अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्था में उत्पन्न होता हुआ वह उत्पाद से लक्षित होता है; किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है, परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है; उसी प्रकार वही द्रव्य भी उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और पूर्व अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है; परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र एक ही समय में निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ और टिकनेवाली ऐसी वस्त्रत्व-अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है; परन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है; इसी प्रकार वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, पूर्व अवस्था से व्यय होता हुआ, और टिकनेवाली ऐसी द्रव्यत्वअवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है, किन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र विस्तारविशेषस्वरूप (शुक्लत्वादि) गुणों से लक्षित होता है; किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वह वैसा है; इसी प्रकार वही द्रव्य भी विस्तारविशेषस्वरूप गुणों से लक्षित होता है; किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। और जैसे वही वस्त्र आयतविशेषस्वरूप पर्यायवर्ती (-पर्यायस्थानीय) तन्तुओं से लक्षित होता है; किन्तु उसका उन तन्तुओं के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है; उसी प्रकार वही द्रव्य भी आयतविशेषस्वरूप पर्यायों से लक्षित होता है, परन्तु उसका उन पर्यायों के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है ॥ ९५ ॥

१. द्रव्य में निज में ही स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण होने की सामर्थ्य है। यह सामर्थ्यस्वरूप स्वभाव ही अपने परिणमन में (अवस्थान्तर करने में) अन्तरङ्ग साधन है।

प्रवचन नं. ९२ का शेष **दिनाङ्क ०२ जून १९७९**

अब, ९५ वीं गाथा।

अब, द्रव्य का लक्षण बतलाते हैं। पहले पदार्थ का स्वरूप बताया था; अब पदार्थ का लक्षण बताते हैं। ९३ वीं (गाथा में), – द्रव्य किसे कहना, गुण किसे कहना, पर्याय (किसे कहना ?) – ऐसा बताया था। अब, यह द्रव्य का लक्षण बताते हैं, जिस लक्षण से पहचाना जा सके। आहा...हा...!

अब, द्रव्य का लक्षण बतलाते हैं –

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।
गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति।। ९५।।

आहा...हा...! मुनिराज कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसा कहते हैं... आहा...हा...! भगवान ऐसा कहते हैं... – ऐसा करके (कहते हैं) **वुच्चंति** है न? भगवान ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो तीसरे नम्बर पर आये – **मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी। मंगलं कुन्दकुन्दार्यो...** श्वेताम्बर में 'स्थूलभद्र' (आते हैं।) आहा...हा...! यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव तीसरे नम्बर पर (आते हैं।) (अन्तिम पद है।) **जैन धर्मोस्तु मंगलं।** जैन धर्म मांगलिक है।

आहा...हा...! मंग अर्थात् पवित्रता और ल अर्थात् लाती; पवित्रता की प्राप्ति हो, उसे मांगलिक कहते हैं। वह मांगलिक यह! शुद्धस्वरूप भगवान त्रिकाल मंगलस्वरूप है और उसका आश्रय लेकर निर्विकल्प (अर्थात्) रागरहित दशा, श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति होवे, उसे मांगलिक कहा जाता है। आहा...हा...! **अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं** – यह सब तो व्यवहार की बातें हैं। आहा...हा...! **केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं** – अभी पर्याय को मांगलिक कहना है, वरना वास्तविक मंगल तो द्रव्य है कि जिसका आश्रय लेकर (पर्याय में पवित्रता प्रगट होती है) परन्तु यहाँ पर्याय को आत्मतत्त्व कहा है न? आहा...हा...! पूर्णानन्द की प्राप्ति अथवा पूर्णानन्द प्रभु की प्रतीति, अनुभव (हुआ), उसे मांगलिक कहा जाता है। यह उसका लक्षण वर्णन करते हैं।

छोड़े बिना निजभाव को, उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त हैं।
गुण और पर्यायों सहित है, द्रव्य कहते हैं उन्हें॥

भगवान ने उसे द्रव्य कहा है। उसका थोड़ा सा अन्वयार्थ लेते हैं। है न अन्वयार्थ? **स्वभाव को छोड़े बिना, जो उत्पाद-व्यय ध्रौव्य संयुक्त है तथा गुणयुक्त और पर्यायसहित है...** अभी द्रव्य-गुण और पर्याय क्या है? – इसका पता नहीं होता। जो जैन के एकड़े के शून्य की बातें हैं। पर्याय (अर्थात्) क्या? ऐसा प्रश्न एक व्यक्ति ने किया था। लो! वह पण्डित आया था, वह भी प्रश्न करता था! द्रव्य किसे कहना? गुण किसे (कहना?) पर्याय (किसे कहना?) अभी तो नाम (नहीं आते हों) आहा...हा...! एक व्यक्ति (कहता है कि) द्रव्य किसे कहना? (तो कहे कि) पैसे को द्रव्य कहना! आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि – '**छोड़े बिना निजभाव को, उत्पाद-व्यय ध्रुवयुक्त हैं; गुण और पर्यायोंसहित हैं, द्रव्य कहते हैं उन्हें।**' भगवान ने ऐसा कहा है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है तथा गुणवाला है और पर्याय-अवस्थासहित है, उसे द्रव्य कहते हैं। उसे परमात्मा ने, वीतराग केवली परमात्मा ने गणधरों और इन्द्रों के बीच द्रव्य कहा है। आहा...हा...!

विशेष आयेगा।

प्रवचन नं. ९३ **दिनाङ्क ०३ जून १९७९**

प्रवचनसार, ९५ गाथा, उसकी टीका। **यहाँ (इस विश्व में) जो, स्वभावभेद किये बिना...** क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है। द्रव्य किसे कहना, गुण किसे कहना और पर्याय किसे कहना? द्रव्य, उत्पाद-व्यय (होने पर भी) स्वभावभेद किये बिना अभेद है। **स्वभाव भेद किये बिना, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य...** (अर्थात्) नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था व्यय-नष्ट होती है और ध्रुवरूप कायम रहता है। आहा...हा...! प्रत्येक वस्तु का ऐसा स्वभाव है। आत्मा भी अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित द्रव्य है। उसके उत्पाद के लिये दूसरे की आवश्यकता नहीं है तथा दूसरे द्रव्य (अर्थात्) आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी आदि सभी वस्तुओं की अवस्था जो उत्पन्न होती है, वह उसके

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का स्वभावभेद किये बिना द्रव्यस्वभाव है। आहा...हा...! उसके उत्पाद की पर्याय करने के लिए दूसरा द्रव्य कुछ करे – ऐसा नहीं होता। सूक्ष्म बात है, भाई! इसने अनन्त काल में तत्त्व की बात सुनी नहीं है, समझी नहीं है। आहा...हा...!

द्रव्य-वस्तु **स्वभावभेद किये बिना, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य त्रय से और गुण-पर्याय द्वय से लक्षित होता है...** आहा...हा...! प्रत्येक वस्तु (इस प्रकार लक्षित होती है।) इस प्रकार आत्मा में नयी अवस्था उत्पन्न हो, पुरानी (अवस्था) व्यय हो और ध्रुवरूप (कायम रहे) और गुण, ध्रुव है तथा पर्याय-अवस्था है; उन उत्पाद-व्यय-ध्रुव – तीन और गुण-पर्याय (दो) इनसे द्रव्य का लक्ष्य होता है। ये उसके लक्षण हैं और उनसे द्रव्य ज्ञात होता है।

आहा...हा...! आत्मद्रव्य सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप से भरपूर प्रभु! वह भी उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव और गुण-पर्याय से ज्ञात होता है। कोई देव-शास्त्र-गुरु से वह ज्ञात हो – ऐसा नहीं है – यह कहते हैं। आहा...हा...!

श्रोता : कल आपने कहा था कि गुरुगम के बिना ज्ञात नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरुगम अर्थात् वह तो उसे ऐसा होता है। इस भव में या परभव में सत्समागम-सच्चा सत्समागम होता है, इतना! परन्तु उससे प्राप्त करता है – ऐसा नहीं। वह तो देशनालब्धि होती है, इसलिए उससे प्राप्त करता है – ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा, सच्चिदानन्द प्रभु का लक्षण तो उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव से वह ज्ञात होता है और या वह ध्रुव अर्थात् गुण और उत्पाद-व्यय अर्थात् पर्याय; गुण-पर्याय से ज्ञात होता है। ऐसे ही यह परमाणु है – यह शरीर जड़-धूल है, उसका एक-एक परमाणु भी उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव से ज्ञात होता है और उसके गुण-पर्याय से ज्ञात होता है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिकालज्ञानी परमात्मा की यह वाणी! बहुत सूक्ष्म! आहा...हा...!

(कहते हैं) **स्वभावभेद किये बिना...** (अर्थात्) उत्पाद-व्यय-ध्रुव और गुण-पर्याय का स्वभावभेद किये बिना वस्तु है। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय-ध्रुव भी उसका स्वभाव है और गुण-पर्याय भी उसका स्वभाव है। आहा...हा...! ऐसा कुछ समझना नहीं

और बाहर से कुछ भक्ति करें, पूजा करें, दान, दया करें तो धर्म हो जाए भाई! ऐसी बातें (क्रियाएँ) तो तूने अनन्त बार की है। सूक्ष्म बात है, बापू!

यहाँ तो द्रव्य जो चैतन्य भगवान, पूर्णानन्द और अतीन्द्रिय अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु आत्मा है, उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव से स्वभावभेद किये बिना, उनसे ज्ञात हो – ऐसा है और उसके गुण और पर्याय (अर्थात्) उत्पाद-व्यय, वह पर्याय है और ध्रुव, वह गुण है, उनसे ज्ञात हो – ऐसा है। यह दूसरे प्रकार से कहा है। (पहले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) तीन होकर कहा; यह दो (गुण-पर्याय) होकर कहा, परन्तु तीन होकर भी स्वभावभेद बिना द्रव्य है और गुण-पर्याय भी स्वभावभेद बिना द्रव्य है। आहा...हा...! द्रव्य अर्थात् यह पैसा नहीं, हाँ! द्रव्य अर्थात् वस्तु जो अनादि है, (उसकी बात है)।

परमात्मा-आत्मा अनादि है। ऐसे ही यह जो परमाणु हैं; इस शरीर जड़-मिट्टी के जो परमाणु हैं, वे अनादि हैं। उन परमाणु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव से परमाणु द्रव्य ज्ञात होता है और या उसके कायम रहनेवाले गुणों और बदलती अवस्थाओं से ज्ञात होता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा! आहा...हा...! उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव से ज्ञात होता है या गुण -पर्याय से ज्ञात होता है। वह तो एक ही है। गुण-पर्याय से वह द्रव्य लक्षित होता है। लक्ष्य करनेवाली पर्याय है (और जिसका लक्ष्य करती है, वह) द्रव्य-वस्तु है। आहा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर और अनन्त गुण का धाम! अनन्त चैतन्य रत्नाकर प्रभु आत्मा है! उसकी दृष्टि करने के लिये, कहते हैं कि उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव से उसे बतलाया है। आहा...हा...! क्योंकि दृष्टि जो होती है, वह उत्पाद है। प्रथम धर्म-सम्यग्दर्शन होता है, वह भी उत्पाद है, पूर्व की पर्याय का व्यय है और कायम टिकना (-टिकानेवाला) ध्रुव और उसके गुण हैं। इसलिए दृष्टि का विषय त्रिकाली द्रव्य है, वह उत्पाद से ज्ञात हो, ऐसा वह द्रव्य है। राग और दया, दान, व्रत, भक्ति की विकार की पर्याय है तो उसकी पर्याय, किन्तु उससे हटकर जानना है द्रव्य, अर्थात् जिसका लक्ष्य (करते हैं ऐसा) गुण-पर्याय, वह द्रव्य है; उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह द्रव्य है। उत्पाद-व्यय में विकारीपर्याय भी आ गयी। गुण-पर्याय में विकारी (और) अविकारी दोनों (पर्यायें) आ गयी।

यहाँ तो उसे लक्षण कहा है। लक्ष्य-भगवान पूर्णानन्द प्रभु! उसकी उत्पाद-अवस्था (अर्थात्) नयी अवस्था उत्पन्न होती है; पूर्व की अवस्था-बदलती पर्याय का व्यय-नाश होता है और कायम-सदृशरूप से रहनेवाला भगवान ध्रुव है। ऐसे ही गुण हैं, वे कायम रहनेवाले हैं और पर्याय है, वह उत्पाद-व्ययवाली है। इन गुण-पर्याय से भी वह ज्ञात होता है और उत्पाद-व्यय-ध्रुव से स्वभावभेद किये बिना (भी) वह (द्रव्य) ज्ञात होता है। ऐसा कभी सुना न हो और उसे ऐसे ही बाहर से धर्म हो जाए... आहा...हा...! देव-गुरु की भक्ति करो, बस! उससे हो जाएगा... धूल भी नहीं होता। सुन न! वह तो राग है। राग यहाँ होता है – आत्मा में उसकी पर्याय में (होता है), उसके लक्षण से जानना हो तो वह द्रव्य ज्ञात होता है। इस प्रकार यहाँ लक्षण लिया है। पञ्चास्तिकाय में भी लिया है न? आहा...हा...! भले ही विकारी पर्याय उत्पन्न हो और विकार व्यय हो और निर्विकारी (गुण) ध्रुव रहें; वे निर्विकारी गुण ध्रुव रहें और विकारी-अविकारी पर्याय हो, परन्तु उस पर्याय और गुण के ज्ञात होने योग्य, वह द्रव्य है। अब ऐसा (वस्तु स्वरूप)! (लोगों को) निवृत्ति कहाँ है? सूक्ष्म बात है, इसलिए फिर लोग ऐसा कहते हैं (कि सूक्ष्म पड़ता है।)

बापू! अनन्त काल... अनन्त काल... व्यतीत हुआ, भाई! वह द्रव्य-वस्तु क्या है? चैतन्य भगवान कौन है? उसकी इसे खबर भी नहीं है। बाहर से विषय छोड़ो और स्त्री-पुत्रादि छोड़ो, व्यापार-धन्धा छोड़ो, (इसमें) धूल भी (धर्म नहीं है।) (ऐसा तो) अनन्त बार छोड़ा है! उसे कहाँ ग्रहण किया कि छोड़े! आत्मा में परवस्तु का ग्रहण-त्याग है ही नहीं। आहा...हा...! कठिन बात है, भाई!

आत्मा प्रभु है। उसके गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रुव से स्वभावभेद हुए बिना वह ज्ञात होता है। आहा...हा...! इस परवस्तु का तो उसमें अनादि से त्याग ही है; परवस्तु का ग्रहण तो उसने किया ही नहीं है। भगवान आत्मा ने एक परमाणु का भी ग्रहण नहीं किया है तो स्त्री, पुत्र, दुकान और पैसे ग्रहण किये थे और उन्हें छोड़ा – यह बात स्वरूप में नहीं है। आहा...हा...! आहा...! स्त्री थी, उसे छोड़ा, हजारों रानियाँ छोड़कर दीक्षा ली, इसलिए वह दीक्षा चारित्र है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! प्रभु तो त्रिकाल पर के ग्रहण-

त्याग से रहित है। अब, जो वह त्रिकाली वस्तु है, उसकी दृष्टि करनी हो और उसे पहचानना होवे तो उसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और गुण-पर्याय से स्वभाव-भेद (किये बिना पहचानी जाती है।) जो द्रव्य का स्वभाव है, वही गुण-पर्याय का और उत्पाद-व्यय का स्वभाव है; स्वभाव भिन्न करके यह आत्मा ज्ञात हो – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! है? नीचे है।

उत्पादव्ययध्रौव्यत्रय = उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य – यह त्रिपुटि (तीन का समूह); गुण-पर्यायद्वय = गुण और पर्याय – यह युगल (इनका समूह।) लक्षित होता है = लक्ष्यरूप होता है, पहचाना जाता है। [(१) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तथा (२) गुण-पर्याय, यह लक्षण है और द्रव्य, वह लक्ष्य है।] आहा...हा...! ऐसी बातें! बापू! आहा...हा...!

यह जो जड़ है, मिट्टी-धूल है। यह शरीर तो मिट्टी-धूल है। अन्दर कर्म है, वह भी मिट्टी-धूल है। स्त्री, कुटुम्ब-परिवार तो परवस्तु है, उनमें कहीं तेरा स्वभाव है और वे तेरी पर्याय में है – ऐसा नहीं है। तेरी पर्याय में विकार और अविकारीदशा होती हे और कायम रहनेवाला ध्रुव रहता है; अत: उस ध्रुव और उत्पाद-व्यय से लक्ष्य तो द्रव्य का करना है कि यह किसके (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) है? समझ में आया कुछ? सूक्ष्म बात है, भाई! इसने अनन्त काल में आत्मतत्त्व का वास्तविक विचार ही नहीं किया; ऐसे का ऐसा जीवन बिताया और मानो धर्म हो गया! आहा...हा...!

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रय से और गुण-पर्यायद्वय से लक्षित होता है, वह द्रव्य है। छहों द्रव्य, हाँ! इस परमाणु को पहचानना होवे तो वह गति करता है, ऐसी जो पर्याय और स्थिर रहता है, ऐसी जो पर्याय; उत्पाद-व्यय और कायम रहता है, ऐसा जो ध्रुव – इस उत्पाद-व्यय से और ध्रुव से वह परमाणु ज्ञात होता है। इस प्रकार गति हुई, इसलिए आत्मा ने उसकी गति की और पर्याय की (– ऐसा नहीं है।) आहा...हा...! क्या वस्तु! यह शरीर ऐसे चलता है, वह उत्पाद आत्मा से हुआ है – ऐसा नहीं है। उस उत्पाद-व्यय और ध्रुव से परमाणु ज्ञात होता है। आहा...हा...! अरे...रे...! ऐसी सत्य बात कहाँ है? लोग लक्ष्यहीन जिन्दगी बिता देते हैं, तत्त्व की बात की खबर भी नहीं होती। आहा...हा...!

कहते हैं कि **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्रय से और गुण-पर्यायद्वय से लक्षित...**

कौन? **वह द्रव्य है।** चाहे तो परमाणु हो – यह रजकण। (यह शरीर) कोई एक वस्तु नहीं है। इसके टुकड़े करते-करते... अन्तिम Point रहता है, वह परमाणु है। वह परमाणु भी उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव और गुण-पर्याय से स्वभावभेद किये बिना, उसके लक्षण से लक्षित होता है। आहा...हा...! ऐसा है। दूसरे आत्मा ने उसे हिलाया, और भाषा बोले, वह (भाषा) आत्मा ने की है – ऐसा नहीं है, क्योंकि वे भाषा के परमाणु भी भाषावर्गणारूप से उत्पन्न होना, और पूर्व की वचनवर्गणा समुच्चय थी, उसका व्यय होना और परमाणुरूप से कायम रहना – ऐसे उस उत्पाद-व्यय-ध्रुव से वे भाषा के परमाणु पहचाने जाते हैं। वह बोलता है, इसलिए अन्दर आत्मा है – ऐसा पहचाना जाता है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप!

सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ प्रभु ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखा है, उन परमेश्वर की यह वाणी है, भाई! आहा...हा...! तू भी परमेश्वर है! परन्तु अपने परमेश्वर को पहचानने के लिए तेरे उत्पाद-व्यय और ध्रुव चाहिए। आहा...हा...! है ध्रुव, उसे (जानने को) उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य चाहिए। है तो ध्रुव द्रव्य; परन्तु वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव से ज्ञात होता है। उसे स्वभावगत किये बिना (ज्ञात नहीं होता) आहा...हा...! भाषा तो सादी है, प्रभु! वस्तु कोई ऐसी है। अभी तो इतनी गड़बड़ चली है कि यह बात (सुनकर) ऐसा लगता है कि ये कहाँ की बात करते हैं? भाई! तेरे घर की बात है, प्रभु! तुझे तेरा पता नहीं है।

ऐसा कहते हैं न कि हिले-चले, वह त्रसजीव, ऐसा नहीं है। कहते हैं – हिलने-चलने की जो पर्याय है, (जो) पहले स्थिर थी और (फिर) व्यय होकर हिलने-चलने का उत्पाद हुआ और परमाणुरूप से कायम रहे, उससे तो वह परमाणु-द्रव्य ज्ञात होता है; उससे आत्मा ज्ञात होता है (– ऐसा नहीं है।) यह भाषा करता है, वह आत्मा है – ऐसा नहीं है, प्रभु! आहा...हा...! ऐसी बात है।

इनमें से (- स्वभाव...) एक स्वभाव आया, एक **(उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य...)** ऐसे चार आये, **(गुण और पर्याय...)** छह आये। छह शब्द कहे – स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय। अब, छहों की व्याख्या (कहते हैं।) छह शब्द हुए, उनकी व्याख्या (कहते हैं।) आहा...हा...!

उनमें से **द्रव्य का स्वभाव...** प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक भगवान आत्मा का, द्रव्य का स्वभाव **वह अस्तित्वसामान्यरूप अन्वय,** अर्थात् है...है...है...है...है...है...है...है... ऐसा जो अस्तित्त्व (– ऐसा) एकरूप द्रव्य का स्वभाव, वह अन्वय अर्थात् एकरूपता त्रिकाली सदृशभाव... आहा...हा... ! है ? **द्रव्य का स्वभाव, वह अस्तित्त्व सामान्यरूप अन्वय है...** है... है... (जिसकी) आदि नहीं, अन्त नहीं – ऐसी चीज़ अन्दर है। चाहे तो परमाणु हो या चाहे तो आत्मा हो, वह है...है...है... अस्तित्त्व, अर्थात् अस्ति। उस अस्तित्त्वसामान्यरूप को अन्वय अर्थात् कायम रहनेवाली चीज़ कहते हैं।

अब, उस अस्तित्त्व के दो प्रकार हैं। है...है...है... वह आत्मा का और परमाणु का अस्तित्त्व का/अस्ति का स्वरूप। परमाणु भी है... है... और है। है न यह ? आहा...हा... ! दूसरे चार तो भले ही जानने में नहीं आवे, परन्तु यह कौन है न ? यह शरीर, यह नाक... आहा...हा... ! एक बार पद्मप्रभमलधारिदेव ने नियमसार में कहा कि प्रभु ! तू स्त्री के शरीर की विभूति को (स्मृति में लेता है कि) ऐसा सुन्दर है और ऐसा शरीर है और ऐसा यह है और ऐसा (यह है।) उसकी स्मृति में प्रभु तू भूल जाता है। आहा...हा... ! उसके शरीर की आकृति, शरीर का संस्थान, स्त्री के स्त्री प्रमाण शरीर के अवयवों की स्थिति तो जड़ की विभूति है। उस स्त्री की विभूति को देखकर, प्रभु ! तू भूल जाता है। तेरी विभूति अन्दर गुण-पर्याय से ज्ञात हो – ऐसी चीज़ है, उसे तू भूल जाता है। आहा...हा... ! इसी प्रकार स्त्री को, पुरुष देखने पर अपनी विभूति भूल जाती है। पुरुष के सुन्दर अवयव, उसकी विभूति आदि देखकर और उसके स्मरण में तू रुक गया प्रभु ! तूने अपना स्मरण नहीं किया। स्मरण है उत्पाद की पर्याय... परन्तु वह उत्पाद की पर्याय, द्रव्य को बतलाती है; उसका लक्ष्य नहीं किया, परन्तु उत्पाद में अन्य विभूति देखकर आश्चर्य (पाता है।) आहा...हा... ! शरीर सुन्दर है, रूपवान है और शरीर के अवयव ऐसे हैं, प्रभु ! तू भूल में पड़ गया है, हाँ ! आहा...हा... ! भूलभूलैया नहीं आता ? भूलभूलैया ! क्या कहते हैं ? मेंदी ! वहाँ बड़ोदरा में मेंदी की बड़ी (भूलभूलैया) है।

संवत् १९६३ के साल में एक माह मुकदमा चला था न ? ६३ के साल ! उसमें अन्दर गये थे, (परन्तु फिर) निकलना किस प्रकार ? बड़ोदरा में मेंदी की बनायी हुई एक

बड़ी भूलभूलैया है। उसमें गये तो गये, परन्तु फिर निकलना किस प्रकार? एक व्यक्ति खड़ा था (उससे पूछा कि) निकलना किस प्रकार? ६३ के (वर्ष की) बात है – संवत् १९६३! आयु सत्रह वर्ष की थी! ७३ वर्ष पहले की बात है। बड़ोदरा में हमारा बड़ा मुकदमा चलता था, अफीम का बड़ा मुकदमा चलता था। उस (समय) भूलभूलैया देखने गये थे। हमारे साथ बहुत लोग थे। किसी से पूछे बिना अन्दर गये अवश्य, परन्तु उसमें से निकलना कैसे? यद्यपि व्यक्ति था, (उससे कहा कि) तू पैसे ले और हमें (बाहर निकलने का रास्ता) बता। फिर उसने कहा, ऐसे होकर ऐसे जाओ तो ऐसे (निकलोगे।) वह भूलभूलैया कहलाती है।

इसी प्रकार आत्मा अनादि से अपनी विभूति को भूलकर, अपने अन्दर आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय (गुणों का) सागर को भूलकर और भूलभूलैया – यह पर की ऋद्धि, स्त्री और पुरुष की, पैसे की, मकान की, आबरु-कीर्ति की भूलभूलैया में घुस गया है। अब निकलना कैसे? कहते हैं कि निकलने का उपाय यह है कि उन्हें भूल जा! उनके उत्पाद -व्यय से तो उनके परमाणु-शरीर का लक्ष्य होता है और आत्मा है, वह भी उसके उत्पाद -व्यय-ध्रुव से उसे ज्ञात होता है। तू उसे जाने, इसलिए तुझे वह (द्रव्य) जानने में आया – ऐसा नहीं है। तू तुझे जानने में तब आयेगा कि तेरा जो उत्पाद है – (जो) नयी पर्याय होती है, वह द्रव्य का लक्षण है। वहाँ देख तो तुझे ज्ञात होगा। आहा...हा...! पर्याय में द्रव्यस्वभाव की स्मृति प्रगट कर, क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभावभेद किये बिना का उसका लक्षण है। आहा...हा...! क्या थोड़ी बात में (वस्तुस्वरूप बताया है)! दया पालन की, व्रत किये, कुछ शास्त्र पढ़े और कण्ठस्थ किये तो लोगों को लगता है कि धर्म हो गया। धूल भी नहीं है। अनन्त बार शास्त्र कण्ठस्थ किये हैं; सुन न! शास्त्र परवस्तु है। आहा...हा...! उसे याद करने पर तेरा स्वरूप क्या है – यह तो पर्याय में भूल जाता है।

यहाँ तो अन्दर आत्मा भगवान सच्चिदानन्दप्रभु की नयी पर्याय उत्पन्न हो, पूर्व की अवस्था व्यय हो; समकित की उत्पत्ति हो, मिथ्यात्व का व्यय हो और गुणरूप से ध्रुवपने कायम रहे – ऐसे लक्षण से वह ज्ञात हो – ऐसा है। आहा...हा...! यह किस प्रकार की बात है! बापू! सत्यमार्ग यह है, भाई! (बाकी) सब बाहर के मार्ग (मिथ्या हैं।) आहा...हा...!

द्रव्य का स्वभाव, वह अस्तित्व सामान्य... है...है...है... वह तो सामान्यस्वरूप हुआ। अब, उस अस्तित्व के दो प्रकार (कहते हैं)।

(१) स्वरूप-अस्तित्व और (२) सादृश्य-अस्तित्व। उत्पाद, वह प्रादुर्भाव... अस्तित्व के दो प्रकार – स्वरूप-अस्तित्व और (सादृश्य-अस्तित्व)। स्वयं अपना स्वरूप है, वह स्वरूप-अस्तित्व और स्वयं तथा दूसरे सब है, वह सादृश्य अस्तित्व हैं। उत्पाद का अर्थ प्रादुर्भाव **(अर्थात् प्रगट होना, उत्पन्न होना); व्यय, वह प्रच्युति (अर्थात् भ्रष्ट होना, नष्ट होना); ध्रौव्य, वह अवस्थिति...** यह तो अर्थ करते हैं, हाँ!

गुण, वह विस्तारविशेष है। आत्मा में गुण जो हैं, वे ऐसे विस्तारविशेष हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, अतीन्द्रिय आनन्द गुण, वह ऐसे विस्तारविशेष हैं। आहा...हा...! जैसे, सोने में पीलापन, चिकनापन और वजन ऐसे एक साथ तीरछे हैं; ऐसे ही इस प्रभु आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण विस्तारसामान्य ऐसे तीरछे रहे हुए हैं। वस्तु में ऐसे एकसाथ सहभाव/तीरछे रहे हुए हैं, उन्हें गुण कहते हैं। आहा...हा...! है ? **गुण, वह विस्तारविशेष है।**

वे सामान्य-विशेषात्मक होने से दो प्रकार के हैं। अस्तित्व के भी दो प्रकार – स्वरूप-अस्तित्व और सादृश्य-अस्तित्व। ऐसे ही गुण के दो प्रकार हैं। कितना याद रखना ? कभी सुना नहीं हो! आहा...हा...! वे कहते हैं - गुरु की भक्ति करो, तो कल्याण हो जाएगा। लाख भक्ति कर न! वे तो परद्रव्य हैं। भक्ति का (भाव) तो राग है, विकल्प है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है; वह कहीं धर्म नहीं है। आहा...हा...! समझ में आता है कुछ ?

आहा...हा...! अनन्त... अनन्त गुणस्वरूप प्रभु को पहचानना होवे तो उसके उत्पाद-व्यय से पहचाना जाता है, अन्य के द्वारा पहचाना जावे – ऐसा नहीं है और उसके गुण पहचानना होवे तो वे गुण विस्तारविशेष हैं। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे अनन्त गुण ऐसे विस्तार से पड़े हैं और परमाणु में – एक रजकण में भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अनन्त (गुण) ऐसे पड़े हैं – आड़े पड़े हैं – विस्तार से पड़े हैं। आहा...हा...! **वे सामान्य-विशेषात्मक होने से दो प्रकार के हैं।** अब, उनमें सामान्य (गुणों की) बात

करते हैं। (जो) प्रत्येक आत्मा में भी हों और परमाणु में भी हों; छहों द्रव्यों में हों, उन्हें सामान्यगुण कहते हैं। आहा...हा...! ९५ वीं गाथा!

अस्तित्व... (अर्थात्) 'है' – ऐसा अस्तित्वगुण है, वह सामान्य है, अर्थात् आत्मा में भी है और परमाणु में भी अस्तित्व नामक गुण है। ऐसे छह द्रव्य हैं। भगवान ने तो छह द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, एक आकाश (ऐसे) छह द्रव्य भगवान केवली परमात्मा ने देखे हैं। आहा...हा...! उनमें प्रत्येक द्रव्य में सामान्य अस्तित्वगुण है। आत्मा में भी अस्तित्व है, परमाणु में भी है, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि छहों द्रव्यों में अस्तित्व है; इसलिए उसे सामान्य कहा जाता है।

नास्तित्व... (अर्थात्) पर से नहीं। आत्मा पर से नहीं है, परमाणु पर से नहीं है – ऐसा नास्तित्व सामान्यगुण है। वह नास्तित्व छहों द्रव्यों में है, इसलिए उसे सामान्य कहा जाता है। आहा...हा...!

एकत्व... है? एकत्वपना-एकपना। स्वरूप जो है, द्रव्य-गुण आदि है परन्तु है एकपना। यह तो ४७ शक्तियों में आता है – एक-अनेकत्व शक्ति आती है। वह एकपना सामान्य है, क्योंकि आत्मा, द्रव्य-गुण-पर्याय से एक है। ऐसे ही परमाणु भी द्रव्य-गुण -पर्याय से एक है। ऐसा एकपना है, वह आत्मा में भी है और परमाणु में भी है। अरे...रे...! आहा...हा...! इसलिए वह सामान्य है।

अन्यत्व... (अर्थात्) अन्यपना। आहा...हा...! आत्मा से परमाणु अन्यत्व है (और) परमाणु से आत्मा अन्यत्व है (अर्थात्) अन्यपना है। इस आत्मा से शरीर का अन्यपना है और शरीर से आत्मा का अन्यपना है। वह सामान्यगुण है। आत्मा में भी अन्यत्व है और शरीर में भी अन्यत्व है। जड़ में भी अन्यत्व नामक गुण है। आहा...हा...!

द्रव्यत्व... द्रव्यत्व, वह सामान्य गुण है। वे तो छह बोल (-गुण) आते हैं – अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और (प्रदेशत्व)। वे तो आते हैं। यहाँ तो अधिक डाले हैं। द्रव्यपना (अर्थात्) द्रवता है। प्रत्येक पदार्थ द्रवता है, अर्थात् जैसे पानी में से तरंग उठे, वह द्रवती कहलाती है। इसी तरह प्रत्येक द्रव्य में एक द्रव्यत्व नामक

गुण है कि जिसके कारण वह द्रव्य द्रवता है। द्रवता है अर्थात् परिणमन करता है। आहा...हा...! उसका परिणमन उसके द्रव्यत्व के कारण है। प्रत्येक द्रव्य का पर्याय का परिणमना उसके द्रव्यत्व के कारण है, दूसरे (द्रव्य का) परिणमना दूसरे द्रव्य के कारण है – ऐसा नहीं है। बहुत कठिन काम है। आहा...हा...! अभी चलता विषय कहीं नहीं मिलता। (अभी तो ऐसा कहते हैं कि) भक्ति करो, विनय करो और शास्त्र पढ़ो... गुरु की कृपा से मोक्ष हो जाएगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न! आहा...हा...! परद्रव्य की कृपा की पर्याय तो उसमें रही। (उसमें) तेरी पर्याय कहाँ आयी? आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहा...हा...! वह द्रव्यत्व आत्मा में भी है और छहों द्रव्यों में है।

पर्यायत्व... देखा? छहों द्रव्यों में पर्यायत्व नामक गुण है कि जिसके कारण पर्याय होती है; परद्रव्य के कारण (पर्याय) होती है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य में-छहों द्रव्यों में पर्यायत्व नामक गुण है, सामान्यगुण है, सबमें हैं; इसलिए सामान्यगुण है। विशेषगुण बाद में लेंगे।

सर्वगतत्व... आहा...हा...! सर्वगतत्व (अर्थात्) व्यापक है न? प्रत्येक (द्रव्य) स्वयं में सर्वगतरूप है न? यह सर्वगतत्वगुण सब में है।

असर्वगतत्व... सर्व में नहीं और अपने में ही है - ऐसा भी एक गुण है, वह भी सामान्य है।

सप्रदेशत्व... (अर्थात्) प्रदेशपना। उसे यहाँ सामान्य कहा है। भले कालाणु (भी) एक प्रदेश है न? भले ही (बहु) प्रदेश नहीं परन्तु (एक) प्रदेश है न? प्रदेशत्व सामान्यगुण है, छहों द्रव्यों में है। आहा...हा...!

अप्रदेशत्व... भेद बिना का अप्रदेशपना, वह भी प्रत्येक द्रव्य में है। अप्रदेशत्व – जहाँ प्रदेश का भेद नहीं है, ऐसा अप्रदेशत्वस्वरूप सामान्य है।

मूर्तत्व... आहा...हा...! मूर्तपना भी सामान्य है। जड़ में मूर्तत्व है, वह सामान्य है; चैतन्य में मूर्तपना कहना, वह अपेक्षित है परन्तु यहाँ पर मूर्तत्व को सामान्यगुण में लिया है।

अमूर्तत्व... वह भी सामान्यगुण है। पर की अपेक्षा करके मूर्तत्व कहना, वह भी सामान्य है और पर की अपेक्षा बिना अमूर्तपना है, वह सामान्य है। आहा...हा...!

सक्रियत्व... आहा...हा...! वह गति करे। यह सक्रियत्व सामान्य है। भले ही धर्मास्तिकाय आदि में नहीं है परन्तु आत्मा में है न? आत्मा में और परमाणु है, इसलिए बहुतों में होने से सामान्यगुण है।

अक्रियत्व... गति नहीं करे, ऐसा अक्रियत्व भी उसका गुण है। आहा...हा...!

चेतनत्व... चेतनत्व को यहाँ सामान्य में लिया है क्योंकि बहुत है न? (इसलिए) भले ही दूसरे पाँच द्रव्यों में चेतनत्व नहीं है, परन्तु चेतनत्व अनन्त में है, इसलिए चेतनत्व को सामान्य गुण में लिया है, वरना तो चेतनत्व विशेष गुण है, परन्तु अनन्त आत्माओं में चेतनपना है, इसलिए उसे सामान्य कहा जाता है। भाई! यह विषय अलग प्रकार का है, भाई!

अचेतनत्व... आहा...हा...! जड़ का अचेतनत्व भी सामान्य है।

कर्त्तृत्व... आहा...हा...! आत्मा में भी कर्त्तृत्व है और अन्य (द्रव्यों में) भी कर्त्तृत्व है।

अकर्त्तृत्व... पर का नहीं कर सके – ऐसा अकर्त्तृत्व भी सामान्य है।

भोक्तृत्त्व... आहा...हा...! अपनी दशा को भोगे – ऐसा एक भोक्तृत्त्व नाम का गुण प्रत्येक द्रव्य में है। आहा...हा...! जड़ की पर्याय को जड़ भोगे, आहा...! उसमें तो ऐसा आता है कि दो जन करे तो जड़ को भोगना पड़े। ऐसा आता है, समयसार में आता है न? कि विकार परिणाम, जीव भी करे और जड़ (भी) करे तो दोनों को (फल) भोगना पड़े। यहाँ दूसरी अपेक्षा है – इसकी जो पर्याय है, वह भोगती है – ऐसी बात है। सुख-दु:ख को भोगे – यह तो चैतन्य की बात है, परन्तु जड़ में भी उसकी पर्याय का भोगपना है न? आहा...हा...! सामान्यगुण लिया है।

अभोक्तृत्त्व... यह भी सामान्यगुण है। पर को नहीं भोगता। अपने को भोगता है – यह भोक्तृत्वगुण भी सब में है (और) पर को नहीं भोगता – यह (अभोक्तृत्त्व)

सामान्यगुण भी सब में है। आहा...हा... ! यह आत्मा, शरीर को नहीं भोगता। आहा...हा... ! स्त्री के शरीर को नहीं भोग सकता; वह तो जड़ है, मिट्टी-धूल है; इसमें अभोक्तृत्वगुण है, वह का कुछ नहीं कर सकता और आत्मा उसका कुछ नहीं कर सकता, शरीर को नहीं भोग सकता। आहा...हा... ! है ? **अभोक्तृत्व...** पर को नहीं भोग सकता। प्रत्येक द्रव्य पर को नहीं भोग सकता। आहा...हा... ! अपनी पर्याय को भोगे – ऐसा भोक्तृत्वगुण सब में है और दूसरे को नहीं भोगे – ऐसा सामान्यगुण भी प्रत्येक में है। आत्मा, आहार-पानी नहीं कर सकता।

श्रोता : लड्डू तो खाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही कहते हैं – लड्डू, दाल-भात या स्त्री के शरीर को आत्मा को नहीं भोगता। उसे भोगता है, (उसमें) तो राग-द्वेष को भोगता है या आनन्द को भोगता है। धर्म प्राप्त किया होवे तो अतीन्द्रिय आनन्द को भोगता है; नहीं प्राप्त किया होवे तो राग-द्वेष को भोगता है, परन्तु पर को तो भोग नहीं सकता। आहा...हा... ! बहुत कठिन है, भाई ! दाल-भात और सब्जी को नहीं भोग सकता, वस्त्र को स्पर्श नहीं कर सकता, वस्त्र को आत्मा भोग नहीं सकता, बापू ! ऐसी वस्तु है। वे आतमा को नहीं भोग सकते (और) आत्मा उन्हें नहीं भोग सकता। ऐसा अभोक्तृत्व (नाम का) सामान्यगुण प्रत्येक द्रव्य में है। आहा...हा... ! आज का विषय जरा सूक्ष्म है ! आहा...हा... ! धीमे से, धीरे से (समझना) बापू ! यह तो अनन्त काल चला गया, तत्त्व की दृष्टि बिना ! वास्तविक तत्त्व की स्थिति क्या है (– उसका ज्ञान नहीं किया।) जिसे कर्ता-भोक्ता में पर की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... !

परमाणु को भी आत्मा भोगता है – ऐसा नहीं है। वह परमाणु को नहीं भोगे – ऐसा उसमें गुण है। इसी तरह परमाणु में भी आत्मा को भोगे – ऐसा गुण नहीं है और परमाणु, आत्मा को नहीं भोगे – ऐसा गुण उसमें है। आहा...हा... ! एक परमाणु, दूसरे परमाणु को कर नहीं सकता तथा दूसरे को भोग नहीं सकता। बहुत लम्बी बात ली है। आहा...हा... ! ९५ गाथ सूक्ष्म है ! शास्त्र और सिद्धान्त (समझना), परमात्मा के द्वारा कथित तत्त्व को समझना और उनकी स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि होना, यह बहुत अलौकिक बात है ! आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं कि जो यह मानता है कि मैंने स्त्री का शरीर भोगा – तो कहते हैं कि यह झूठ बात है। आत्मा में, पर को भोगे – ऐसा कोई गुण ही नहीं है। अपनी पर्याय को भोगे और पर को नहीं भोगे – ऐसा गुण है। आहा...हा...! प्यास लगी होवे (और) बर्फ - आईसक्रीम (खाये), अरे...! उन आईसक्रीम के परमाणु को आत्मा भोगे (-यह) तीन काल में नहीं है। उस आईसक्रीम को आत्मा स्पर्श नहीं कर सकता, प्रभु! तुझे सूक्ष्म पड़ता है! आत्मा, आईसक्रीम को स्पर्श नहीं कर सकता; स्पर्श नहीं कर सकता, वह खाये – यह कहाँ से आया प्रभु तुझे? आहा...हा...! रसगुल्ला, मैसूरपाक, घी की पूड़ी... आहा...हा...! कोई कहता नहीं था? कि मुम्बई में तो एक थाली के ३५ रुपये!

(एक मुमुक्षे के) पुत्र की सगाई थी। ३०० लोगों को भोजन कराया, वीसी में! तो एक-एक की थाली के ३५ रुपये! अन्दर कुछ ऊँचा देते होंगे! सब धूल! परन्तु कहते हैं कि उस धूल को-थाली को आत्मा भोग नहीं सकता। आहा...हा...! मैसूर हो, घी की पूड़ी हो, पालक के भुजिया हो... आहा...हा...!

छोटा सा बालक हो, उसे ऐसे... ऐसे... पुच्ची करते हैं न? (यहाँ) कहते हैं कि यह होंठ उसके शरीर को छूते ही नहीं। यह बात कौन माने? जगत को तत्त्व की खबर नहीं है। आहा...हा...! यह पुच्ची भरते हैं न बालक को? कहते हैं – यह (होंठ) उसे छूते ही नहीं न! आहा...हा...! इन परमाणुओं ने उन परमाणुओं को छुआ ही नहीं तो उन्हें भोगे किस प्रकार? और करे किस प्रकार? आहा...हा...!

श्रोता : सन्तोष तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का सन्तोष करे, वह राग करे; मेरा बालक सुन्दर है और पहला जन्मा है और छह महीना हुए हैं और ऐसा रूपवान शरीर है। आहा...हा...! अद्‌भुतरूप लेकर आया! और इसमें कुछ बाप की झलक आती है। झलक तो आवे न? बाप की झलक आवे, इसलिए (बाप को ऐसा लगता है कि) मेरे जैसी झलक आयी! परन्तु तू कहाँ और (यह कहाँ)

प्रश्न : वह झलक क्यों आयी?

समाधान : वह तो जड़ है। आहा...हा...! पिता की झलक पुत्र के परमाणु की

अवस्था में आती है – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। जाना जाता है इसलिए (कहा जाता है), वरना व्यवहार अर्थात् झूठा व्यवहार है। आहा...हा... !

श्रोता : जैसा बाप वैसा बेटा – ऐसा तो कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा जाता है, बोला जाता है, बाकी (ऐसा) है नहीं। किसका पुत्र और किसका पिता ? आहा...हा... ! भगवान आत्मा को पुत्र का जीव और पुत्र का शरीर उसका कहाँ है ? उसका तत्त्व तो वहाँ है। आहा...हा... ! उस तत्त्व को भगवान आत्मा स्पर्श भी नहीं करता तो 'मेरा' कहाँ से हुआ ? आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू ! ऐसी बात कहाँ है ? कोई तो दया पालन में रुक गये और कोई भगवान की और गुरु की भक्ति (करने में रुक गये), सब रुक (अटक) गये हैं। वहाँ भी वह भाव तो राग है। दया का भाव राग है, उसकी पर्याय तो तुझमें है। आहा...हा... ! उस भाव के कारण वहाँ पर का जीवितत्व हुआ है, दया पाली है – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा (समझने के लिए) कब निवृत्त (होवे) ?

अगुरुलघुत्व... जितने गुण और पर्याय हैं, उनमें घट-बढ़ नहीं है। कोई एक गुण का अभाव नहीं हो जाता। (ऐसा) प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु में अगुरुलघुत्व-गुण है। आहा...हा... ! वह भी प्रत्येक द्रव्य में है और अगुरुलघुगुण अपने-अपने प्रत्येक गुण में भी है। आहा...हा... ! गाथा सूक्ष्म है। ठीक रविवार को ऐसा आया है। आहा...हा... !

शरीर के एक-एक रजकण की अवस्था आत्मा नहीं कर सकता और भोग नहीं सकता – ऐसा आत्मा में अकर्ता और अभोक्ता गुण है। इसी तरह परमाणु में भी अकर्ता और अभोक्ता (गुण) है। आहा...हा... ! एक परमाणु दूसरे परमाणु का स्पर्श नहीं करता, इसलिए (उसे) करे या भोगे – यह कहाँ से आया ? आहा...हा... ! ऐसा एक घण्टे (चले, वह) याद रखना ! दुकान का धन्धा, नौकरी का धन्धा... पूरे दिन मजदूरी ! भले ही फिर दो-पाँच लाख की आमदनी होवे (परन्तु) बड़ा मजदूर है ! आहा...हा... ! तत्त्व की बात क्या है ? (उसकी) मर्यादा क्या है ? वस्तु की स्थिति की मर्यादा कैसी है ? (- यह समझना चाहिए।) जैसे, गढ़ पक्का होवे तो अन्दर प्रवेश नहीं हो सकता; इसी प्रकार (एक) परमाणु दूसरे परमाणु में प्रवेश नहीं कर सकता। आत्मा, परमाणु में नहीं जाता और परमाणु, आत्मा में प्रवेश नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य ऐसा वज्र किला है।

इत्यादि सामान्यगुण हैं... इसमें चेतन को भी क्यों सामान्य (गुण लिया) है? क्योंकि आत्मा अधिक है न (इस अपेक्षा से); और मूर्तपना भी परमाणु अधिक है न, इस अपेक्षा से (कहा) है, हाँ! (बाकी) आत्मा में मूर्तपना नहीं है, बहुत (अनन्तानन्त) परमाणुओं में मूर्तपना है न! इसलिए (सामान्यगुण में डाला है।) मूर्तपना आत्मा में नहीं है परन्तु बहुत परमाणुओं में है, इसलिए मूर्तत्त्व को सामान्यगुण कहा है और अमूर्तत्त्व बहुत आत्मा में है, इसलिए उसे भी सामान्यगुण में लिया है। समझ में आया कुछ? आत्मा में मूर्तपना लागू पड़ता है – ऐसा नहीं है। यह तो वास्तविक कथन है। आत्मा, मूर्त है ही नहीं; और मूर्त को सामान्यगुण कहा, वह बहुत द्रव्यों में है, इसलिए (अर्थात्) बहुत (अनन्तानन्त) परमाणुओं में है, इसलिए (कहा है), परन्तु सभी द्रव्यों में है, इसलिए (सामान्य गुण है) – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! एक हिन्दी भाई यही आपत्ति करता था न? कि मूर्त कहा है, (आत्मा को) मूर्त कहा है।

बापू! मूर्त कहा, वह मूर्त तो उपचार से है, वरना मूर्तपना तो अनन्त परमाणुओं में - अधिक में है, इसलिए मूर्त को सामान्यगुण कहा है परन्तु आत्मा में भी मूर्तपना है, इसलिए सामान्यगुण है – ऐसा नहीं है।

चेतनपना सबमें है, इसलिए सामान्यगुण है – ऐसा नहीं, परन्तु चेतनपना बहुत में है – अनन्त आत्माओं में है और बहुत (समस्त) आत्मा में है, इसलिए उसे सामान्यगुण कहा है, परन्तु वह चेतनपना जड़ में भी है, इसलिए सामान्य कहा है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! कितना याद रखना इसमें? मस्तिष्क में कितनी ही विपरीत मान्यताएँ घुस गयी हों! अनादि की मान्यताएँ हैं, उनमें यह बात पहुँचना (कठिन लगती है।)

अब, विशेष (गुण कहते हैं) –

अवगाहनहेतुत्व... आकाश का विशेष (गुण) अवगाहनहेतुत्व है। वह आकाश में ही है, अन्य में नहीं। आहा...हा...!

गतिहेतुत्व... धर्मास्ति! धर्मास्ति नामक पदार्थ है। भगवान सर्वज्ञ ने देखा है। वह गति निमित्तता उस धर्मास्तिकाय का विशेषगुण है। ऐसी गति निमित्तता सबमें नहीं है।

स्थितिकारणत्व... अधर्मास्ति नामक पदार्थ है, उसमें स्थितिकारणत्व, उसका ही गुण है, अन्य सब में वह नहीं है। वह एक द्रव्य है।

वर्तनायतनत्व... काल का लक्षण है। वर्तना, वह काल का लक्षण है, वह विशेष है।

रूपादिमत्व... जड़! रूपादिपना (अर्थात्) वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शपना, वह विशेषगुण है। (पहले) पहले मूर्त कहा था, वह बहुतों में होकर गिना था और यह रूपादिमत्व विशेष (गुण) है, वह पुद्गल परमाणु के अतिरिक्त अन्य में नहीं है। आहा...हा...!

चेतनत्व... देखो! फिर वापस लिया! पहले सब (आत्माओं) में था – ऐसा गिना था और अब, चेतनत्व एक आत्मा में ही है और दूसरे में नहीं, इसलिए विशेषगुण है। चेतनत्व दो प्रकार से लिया - एक – चेतनत्व बहुत में है, इसलिए सामान्य और एक – चेतनत्व आत्मा में ही है और जड़ में नहीं, इसलिए विशेष। आहा...हा...! **इत्यादि विशेषगुण हैं।** सामान्यगुण भी अनन्त हैं (और) विशेषगुण भी अनन्त हैं। यह तो नाम इतने दिये हैं। आहा...हा...!

एक-एक आत्मा में सामान्य अस्तित्वादि अनन्त गुण हैं और ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि विशेष गुण भी अनन्त हैं। अनन्त का पिण्ड है, प्रभु! अरे...! आहा...हा...! अमरनाथ! भगवान अमरनाथ हैं! किसी दिन नाश न हो, नित्यानन्द रहे, ध्रुवस्वरूप रहे... आहा...हा...! उसका चेतनपना है, वह विशेषगुण है। दूसरे जड़ में नहीं है, इस अपेक्षा से; और बहुत आत्मा में है, इस अपेक्षा से उसे सामान्यगुण कहा है। एक के एक गुण को दोनों में लागू किया। यह तो गुण की व्याख्या हुई। पहले द्रव्य की (व्याख्या) कही थी। स्वरूप-अस्तित्व और सादृश्य अस्तित्व – ऐसा करके द्रव्य है। गुण में यह प्रकार किये – सामान्य और विशेष। आहा...हा...! (अब, पर्याय की व्याख्या करते हैं।)

पर्याय... अवस्थाएँ **आयतविशेष हैं।** प्रत्येक द्रव्य में पर्याय क्रम... क्रम से ऐसी लम्बाई से एक के बाद एक होती है। गुण हैं, वह ऐसे (तीरछा) होते हैं और पर्याय है, वह ऐसे क्रम से होती है; इसलिए उसे आयत-लम्बाई कहा है। आहा...हा...! एक गाथा में तो कितना समा दिया है!

आत्मा में विकार को मूर्त कहा है, परन्तु वह कोई वास्तविक नहीं है, वह तो उपचार से कहा है। वह मूर्तगुण जैसे जड़ में है, वैसे आत्मा में है – ऐसा नहीं है। मूर्तत्वगुण तो जड़ में ही है, आत्मा में नहीं है। आहा...हा...! परन्तु अपेक्षा से बतलाने के लिए कहा है, क्योंकि मूर्त कर्म निमित्त है न, उससे हुआ है। स्वभाव और अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है तो कोई गुण विचार करे – ऐसा तो कोई गुण है नहीं – यह अपेक्षा गिनकर, जब स्वभाव को अरूपी और अमूर्त कहा, तब विभाव को रूपी और मूर्त कहा है... आहा...हा...! परन्तु वह वास्तविक नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात कहीं जज में (लौकिक कानून में) भी नहीं है और (अन्यत्र) कहीं नहीं है, अभी तो सम्प्रदाय में कहीं नहीं है। बेचारों को बहुत कठिन पड़ता है, क्या करें? अरे... भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव, त्रिलोकनाथ के कहे वचन हैं और ऐसी ही वस्तु की मर्यादा है – ऐसा जब तक नहीं जाने, ऐसा विवेक नहीं करे, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहा...हा...!

मेरा प्रभु मेरी पर्याय को भोगता है परन्तु पर को तीन काल में नहीं भोगता; तो उसे पर्याय का भोगना, वह द्रव्य का है और वह भोगना लक्षण है, उससे आत्मा का लक्ष्य करना है – द्रव्य का लक्ष्य करना है। आहा...हा...! पर का अभोक्ता है, परन्तु अभोक्तापर्याय से द्रव्य का लक्ष्य करना है। त्रिकाली द्रव्य आत्मा है, उस पर लक्ष्य करना है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म! कितने ही ने तो जिन्दगी में सुना न हो, (इसलिए ऐसा लगता है कि) ऐसा यह नया मार्ग कहाँ से निकाला होगा? बापू! (नया नहीं), यह तो अनादि का है। आहा...हा...!

पर्याय, आयतविशेष है। यह अपने ९३ वीं (गाथा में) आ गया है – विस्तारसामान्यसमुदाय और आयतसामान्यसमुदाय। आयत, अर्थात् ऐसे क्रम-क्रम से पर्याय / अवस्था / हालत होती है। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा की एक के बाद एक अवस्था-पर्याय बदलती है, वह आयत अर्थात् ऐसे लम्बाई से होती है। सभी पर्यायें एक साथ नहीं है। एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक अवस्था है, वह आयतविशेष है। **वे पूर्व ही (९३ गाथा की टीका में) कथित चार प्रकार की है।** लो, आहा...हा...! पर्यायें कही थी - द्रव्य की समानजातीय और असमानजातीय (द्रव्यपर्यायें) और गुण की स्वभावपर्याय और विभावपर्याय! आहा...हा...!

द्रव्य का उन उत्पादादि के साथ... अब, वस्तु जो है आत्मा और यह जो जड़ परमाणु हैं, इन्हें उत्पाद-व्यय-ध्रुव के साथ **अथवा गुण-पर्यायों के साथ लक्ष्य-लक्षण भेद होने पर भी...** उत्पाद-व्यय लक्षण है; गुण-पर्याय लक्षण है (और) द्रव्य, वह लक्ष्य है – ऐसा लक्ष्य, लक्षण भेद होने पर भी **स्वरूप भेद नहीं है...** उनके प्रदेशभेद नहीं है। प्रदेश अलग नहीं है। आहा...हा...! एक परमाणु के भेद से जैसे दूसरा परमाणु पृथक् है; एक आत्मा से (जैसे दूसरा आत्मा पृथक् है), ऐसा पृथक्‌पना इन तीन में नहीं है – इनके प्रदेश पृथक् नहीं है। यहाँ अभी यह कहना है। आहा...हा...!

जबकि (समयसार में) संवर अधिकार में (बात) आवे, तब उत्पाद की पर्याय का प्रदेश-क्षेत्र भिन्न है (– ऐसा कहते हैं।) वह फिर भिन्न वस्तु है। आहा...हा...! वह एक समय की पर्याय है, उतनी का क्षेत्र और ध्रुव का क्षेत्र – दोनों को भिन्न गिना है। यहाँ वह बात नहीं लेना है। यहाँ तो मात्र उत्पाद-व्यय-ध्रुव की वस्तु, वह द्रव्य है। भले ही लक्ष्य-लक्षण का भेद होने पर भी वस्तुभेद नहीं है। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय और ध्रुव अपने ही प्रदेश में है; गुण और पर्याय भी अपने ही क्षेत्र में है। क्षेत्र और प्रदेश, यह क्या बात है? बापू! धर्म की बात ऐसी सूक्ष्म है। आहा...हा...! ९५ वीं गाथा बहुत सूक्ष्म है।

स्वरूप से ही द्रव्य वैसा उत्पादादिवाला अथवा गुण-पर्यायवाला है... प्रत्येक द्रव्य-वस्तु स्वरूप से तो उत्पाद-व्यय और ध्रुव तथा गुण-पर्यायवाली है। अब, इसका दृष्टान्त कहेंगे **वस्त्र की भाँति...।**

प्रवचन नं. ९४ **दिनाङ्क ०४ जून १९७९**

प्रवचनसार, ९५ गाथा। द्रव्य, गुण और पर्याय - यह द्रव्य के हैं, तथापि उनमें स्वभावभेद नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में द्रव्यपना, गुणपना और पर्यायपना (है), वह उसका स्वभाव है। गुण-पर्याय (-ऐसे) दो बात ली है न? गुण-पर्याय भी उसका स्वभाव है। अब, यहाँ दृष्टान्त देते हैं।

जैसे मलिन अवस्था को प्राप्त वस्त्र... वस्त्र ने मलिन अवस्था धारण की है। **...प्राप्त वस्त्र धोने पर निर्मल अवस्था से (निर्मल अवस्थारूप, निर्मल अवस्था की**

अपेक्षा से) उत्पन्न होता हुआ, उस उत्पाद से लक्षित होता है... वह वस्त्र उत्पाद द्वारा लक्षित होता है। लक्षण कहा है न! उत्पाद-व्यय-ध्रुव लक्षण है, द्रव्य लक्ष्य है। ऐसे ही गुण-पर्याय लक्षण है, द्रव्य लक्ष्य है। इसी प्रकार वस्त्र में मलिन पर्याय का व्यय होकर निर्मलपर्याय उत्पन्न हुई, वह वस्त्र का अपना स्वरूप है। आहा...हा...! वह निर्मलपर्याय जो (उत्पन्न) हुई, वह लक्षण है और वस्त्र लक्ष्य है। वह उपजती पर्याय, पानी से, डण्डे से या साबुन से उत्पन्न नहीं हुई है। आहा...हा...! ऐसा कहना चाहते हैं। **उस उत्पाद से लक्षित होता है....**

किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद नहीं है... वस्त्र जो निर्मलपर्यायरूप उत्पन्न हुआ, वह उत्पादरूप पर्याय उसके स्वभाव से पृथक् (नहीं है) - (उसे द्रव्य के साथ) स्वरूपभेद नहीं है। द्रव्य का स्वरूप और पर्याय का स्वरूप पृथक् है - ऐसा नहीं है। **स्वरूप से ही वैसा है (अर्थात् स्वयं उत्पादरूप से ही परिणत है);...** यह दृष्टान्त हुआ। सूक्ष्म बात है, भाई!

उसी प्रकार जिसने पूर्ण अवस्था प्राप्त की है... देखा? छह द्रव्यों में से कोई भी द्रव्य ने अपने से पूर्व की अवस्था प्राप्त की है। आहा...हा...! पूर्व की अवस्था कोई निमित्त से हुई है - ऐसा नहीं है। निमित्त है - ऐसा कहेंगे (अवश्य)। दूसरी वस्तु निमित्त है, परन्तु उस निमित्त से वह उपजती नहीं है; प्रत्येक द्रव्य की पर्याय स्वयं से उत्पन्न होती है, वह उसका स्वरूप है। उत्पाद उसका लक्षण है (और) द्रव्य उसका लक्ष्य है। उत्पाद से द्रव्य लक्ष्य में आता है; उत्पाद से, जो दूसरी वस्तु साथ थी, उसका वह लक्ष्य है और उसका यह लक्षण है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म (बात)!

प्रत्येक पदार्थ - आत्मा और परमाणु ने जो अपनी पूर्व अवस्था धारण की है - ऐसा कहा न? है? आहा...हा...! **जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है...** वह भी पर के कारण नहीं की है। आहा...हा...! **ऐसा द्रव्य भी जो कि उचित बहिरङ्ग साधनों के सान्निध्य...** पर्याय जो उत्पन्न होती है, उसे उचित बहिरङ्ग (अर्थात्) उसके योग्य बहिरङ्ग साधनों की सन्निधि (अर्थात्) हाजरी होती है। वहाँ दूसरी वस्तु की-निमित्त की हाजरी होती है। उसके **सद्भाव में अनेक प्रकार की बहुत सी अवस्थायें करता है।** (कौन?) द्रव्य। वह अवस्था, द्रव्य करता है। सूक्ष्म बात है, भाई!

अन्तरङ्ग साधनभूत स्वरूपकर्ता... आहा...हा...! जो द्रव्य पूर्व की अवस्था धारण करता है, वह अवस्था भी अपने स्वरूप कर्ता और साधन से हुई है। है? आहा...हा...! वह (द्रव्य) **अनेक प्रकार की बहुत अवस्थायें करता है, वह-अन्तरङ्ग साधन...** (अर्थात्) द्रव्य में स्वयं में ही स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण होने की सामर्थ्य है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय होती है, वह स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण साधन (से होती है।) अपने द्रव्य में ही कर्ता और साधन है। परद्रव्य उसका कर्ता और साधन नहीं है, तथापि निमित्त है। उसके योग्य उचित निमित्त होता है, तथापि अन्तरङ्ग साधन और अन्तरङ्ग कर्ता (वह द्रव्य स्वयं है।) पूर्व की पर्याय प्राप्त (होने में) और नयी (पर्याय) प्राप्त होने में स्वयं ही स्वरूपकर्ता और स्वरूपसाधन है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है!

प्रत्येक द्रव्य... आहा...हा...! एक दृष्टान्त (लेते हैं) – यह चश्मा ऐसा है। देखो! यह जो पूर्व की अवस्था है, (वह बदलकर) उसकी ऐसी नयी अवस्था हुई। अब उसे बहिरङ्ग उचित-योग्य (निमित्त) अंगुली है, परन्तु अंगुली उसकी कर्ता नहीं है। (चश्मा की अवस्था) ऐसे से ऐसे होती है, उसकी कर्ता अंगुली नहीं है। उस परमाणु में अपनी पर्याय होने का कर्तापना और साधनपना की अपनी सामर्थ्य है। आहा...हा...! समझ में आता है कुछ?

श्रोता : कर्ता और करणपना मूलभूत सिद्धान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है। प्रत्येक द्रव्य – आत्मा हो या परमाणु हो या धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्य भगवान ने देखे, (उनमें से कोई भी द्रव्य हो।), उन द्रव्यों ने जो पूर्व की अवस्था धारण की है, वह भी अपने स्वरूपकर्ता और स्वरूपसाधन से प्राप्त की है, निमित्त से नहीं; निमित्त हो, उचित-योग्य निमित्त हो, परन्तु उसकी पूर्व की जो अवस्था है, उसमें से व्यय होकर... है? आहा...हा...! (स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण के सामर्थ्यरूप स्वभाव द्वारा) **अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ...** है? वह द्रव्य नयी अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, पूर्व की जो अवस्था (प्राप्त हुई) है, उसका कर्ता और करण-साधन जीव है कि जो द्रव्य है, उसका निमित्त हो, परन्तु निमित्त उसका कर्ता नहीं है तथा वह पर्याय प्राप्त हुई, उसका साधन निमित्त नहीं है। आहा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बातें

हैं ! वास्तविक तत्त्व स्वयं-सिद्ध स्वतन्त्र है। पूर्व की अवस्था प्राप्त हुई है, उससे अनुगृहीत होने पर... आहा...हा... ! उस परमाणु में या आत्मा में नयी अवस्था होने में स्वरूपकर्ता और स्वरूपसाधनपने की सामर्थ्य होने से द्रव्य में नयी अवस्था उत्पन्न होती है। एक तो विषय सूक्ष्म, उसमें गुजराती ! आहा...हा... ! बापू ! तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है।

वीतराग-सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा और देखा, वैसा दूसरे किसी ने कहा नहीं और देखा नहीं; सर्वज्ञ के अलावा दूसरे में कहीं है नहीं; वह भी दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त कहीं ऐसी बात नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य... यह हाथ है न, देखो ! (इसकी अंगुली) ऐसी (टेड़ी) होती है, यह अवस्था है। पूर्व की (सीधी) अवस्था इसने प्राप्त की है और अब नयी अवस्था ऐसे होकर ऐसी (टेड़ी) होती है, वह नयी अवस्था धारण करता है, तो वह नयी अवस्था धारण होने में भले ही दूसरी अंगुली अनुकूल है, परन्तु उससे कर्ता-करण-साधन नहीं है। इस (ऐसी हुई अंगुली के) परमाणु इस पर्याय के कर्ता और पर्याय का करण-साधन है। ऐसी बात है !

लिखने की क्रिया (होती) है, (उसमें) कलम है, उस कलम को अंगुली छुई नहीं है और कलम जो ऐसे-ऐसे होती है, वह कलम की पर्याय पूर्व में जो प्राप्त थी, उसका कर्ता और करण वह कलम थी। कलम के परमाणु उसकी पूर्व की (पर्याय के) कर्ता और करण है और वह पर्याय ऐसी लिखने में बदलती है... आ...हा...हा... ! यह लिखने की पर्याय पूर्व की पर्याय से नयी उत्तर अवस्था हुई तो नयी अवस्था का होना, उसमें भले ही दूसरी का -अंगुली आदि का उचित निमित्त हो, परन्तु यह कलम चलती है, इसका कर्ता और करण-साधन इसके परमाणु हैं। आहा...हा... ! अंगुली उचित निमित्त है, इतना (मात्र) उपस्थिति है, इसके कर्ता, करण नहीं। आहा...हा... !

श्रोता : इसे राह तो देखना पड़ती है न !

पूज्य गुरुदेवश्री : बिलकुल प्रश्न ही नहीं है।

श्रोता : उसके लिये खड़ा रहना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिलकुल खड़ा नहीं रहना पड़ता। उसकी पर्याय होने के काल

में जब होती है, तब सामने अनुकूल निमित्त हो, परन्तु वह अनुकूल निमित्त है, वह कर्ता, करण-साधन हुआ – ऐसा नहीं है। बहुत कठिन काम!

परजीव की दया पलना हो, उसका आयुष्य और शरीर रहना हो, वह तो उसके अपने परमाणु की पर्याय और जीव की रहने की पर्याय का प्राप्य है। उसमें जीव रहता है, वह कर्म के कारण भी नहीं; आयुष्य के कारण भी नहीं; आयुष्य और कर्म उसमें उचित निमित्त है, परन्तु उस आयुष्य के कारण से आत्मा शरीर में रहा है – ऐसा नहीं है। ऐसी बात है। आत्मा जो इस शरीर में रहा है, उसकी जो पूर्व की रहने की पर्याय है, उसे जीव ने स्वयं प्राप्त की है और पश्चात् भी जो नयी उत्तर पर्याय होती है, उसका कर्ता और करण-साधन आत्मा है। उसे नयी पर्याय उत्पन्न होने में आयुष्य और कर्म निमित्त है तो उससे कर्ता, करण-साधन हुआ है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है। वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! अभी तो गड़बड़ चलती है। इससे होता है और उससे होता है और इससे होता है; निमित्त आवे तो निमित्त से होता है, निमित्त की राह देखनी पड़ती है!

मिट्टी के पिण्ड की पर्याय है। वह पिण्डरूप जो पर्याय मिट्टी में है, उसे प्राप्त है वह अपने कर्ता-करण से प्राप्त है। वह पिण्ड की अवस्था पलट कर घटरूप अवस्था होती है, उस घटरूप अवस्था का कर्ता और करण वे परमाणु हैं, कुम्हार नहीं। कुम्हार उचित निमित्त है, परन्तु कुम्हार उस घट की पर्याय का कर्ता और साधन नहीं है। समझ में आता है? ऐसी बात है!

श्रोता : पर के साथ सम्बन्ध तोड़ डालने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (सम्बन्ध) है ही नहीं; सम्बन्ध माना है, है कहाँ? आहा...हा...! इसे तो इसके द्रव्य-गुण-पर्याय के साथ सम्बन्ध है – ऐसा कहा न! आहा...हा...! पर के कारण कुछ होता है (- ऐसा नहीं है।) आहा...हा...!

गुरु कुछ भाषा द्वारा समझाते हैं, उस भाषा की पर्याय को प्राप्त (वे परमाणु हैं।) उन परमाणुओं से भाषा की पर्याय प्राप्त (होती) है, आत्मा से नहीं। आहा...हा...! और भाषा की पहली पर्याय वचनवर्गणारूप थी, वह वचनवर्गणा को प्राप्त थी, फिर भाषारूप

हुई, वह उत्तर अवस्था हुई, उसमें जीव की इच्छा उचित निमित्त है, परन्तु वह भाषा स्वयं के करण और कर्ता के साधन से हुई है, आत्मा से नहीं।

प्रश्न : वर्गणा में रजकण तो बहुत थे, इतने ही भाषारूप क्यों परिणमित हुए?

समाधान : एक-एक रजकण अपनी पर्याय को उत्पन्न करनेवाला कर्ता और करण है, दूसरे परमाणु के कारण नहीं – ऐसा है, प्रभु! एक-एक परमाणु पूर्व की पर्याय को प्राप्त है, वह भी स्वयं के कर्ता, करण की सामर्थ्य से और उसमें से उत्तर पर्याय नयी हुई, वह भी अपने कर्ता और करण-साधन से (हुई है।) उचित निमित्त (भले ही) हो, परन्तु निमित्त से नहीं हुई है। कुम्हार से घड़ा नहीं हुआ है; बुनकर ने वस्त्र नहीं बनाया है; स्त्री से रोटी नहीं हुई है; यह पेर चलते हैं, वे आत्मा से नहीं चलते, ये पैर के जो रजकण हैं, उनकी अवस्था ऐसी थी, (फिर) ऐसी हुई – यह नयी अवस्था धारण हुई, उस पैर की अवस्था का कर्ता, करण उस पैर के परमाणु हैं; आत्मा के कारण वह पैर चलता है (- ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है, प्रभु!

प्रश्न : जीव है, इसलिए चलते हैं न?

समाधान : बिलकुल नहीं – यही तो कहते हैं। जीव है तो जीव की अपनी पर्याय को प्राप्त जीव है। यह जो शरीर की पर्याय है, वह भी उसके स्वयं के कारण से शरीर की पर्याय है और वह पर्याय शरीरपने प्राप्त है। (शरीर) ऐसी गति करता है, तब वह नयी उत्तर पर्याय हुई, उस उत्तर पर्याय में उचित निमित्त भले आत्मा हो, परन्तु उससे वह चलने की पर्याय होती है – (ऐसा नहीं है) उसके कर्ता, करण वे परमाणु हैं। (उसके) कर्ता, करण आत्मा है - ऐसा बिलकुल नहीं है – ऐसी बात है! वीतराग मार्ग (ऐसा है!) अभी तो व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो और यह करो... चला है।

यहाँ तो कहते हैं कि (भगवान के समक्ष) चढ़ाने के लिए हाथ में ऐसे चावल रखते हैं, वह चावल की पहली पर्याय जो यहाँ थी और फिर ऐसे गयी, उस पर्याय को प्राप्त वे चावल के परमाणु हैं। (परमाणु के) कर्ता, करण से (वह) हुई है, अंगुली के कारण चावल भगवान के सामने गये हैं – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है, बापू! प्रभु! तेरी भिन्नता (ऐसी है), प्रत्येक द्रव्य की (ऐसी) भिन्नता है। आहा...हा...!

प्रत्येक द्रव्य... भगवान ने छह द्रव्य देखे - अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, एक आकाश। इन प्रत्येक द्रव्य की जो पूर्व पर्याय प्राप्त है, वह भी अपने कर्ता और करण – साधन से प्राप्त है और उसका व्यय होकर नयी उत्तर अवस्था को प्रत्येक द्रव्य धारण करता है, उसे उचित निमित्त भले ही हो, परन्तु वह उचित निमित्त उसका कर्ता और करण – साधन नहीं है। उस नयी अवस्था में उस-उस द्रव्य का कर्ता और करण-साधन उसका स्वभाव है। आहा...हा...! दुनिया से अलग है! आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) **अन्तरङ्ग साधनभूत स्वरूपकर्ता...** आहा...! परमाणु में से घट की पर्याय हुई, उसमें वह परमाणु स्वयं अन्तर (साधनभूत) स्वरूपकर्ता और स्वयं करण-साधन है; कुम्हार तो उचित निमित्त है, चाक निमित्त है परन्तु निमित्त से वह घट की पर्याय हुई नहीं है। आहा...हा...! ऐसा है।

पानी है, पानी! ऐसी प्यास लगी हो, उस पानी की अवस्था जो (पहले) दूसरी थी और ऐसी अन्दर गयी फिर दूसरी हुई। वह परमाणु की पर्याय प्राप्त थी, उसका स्वरूप कर्ता वह परमाणु था। इस हाथ के कारण पानी अन्दर आया – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वे पानी के परमाणु जो द्रव्य हैं, उनकी पूर्व पर्याय की प्राप्ति अपने स्वरूपकर्ता और साधन से है और ऐसे अन्दर जाने पर पानी की पर्याय बदलती है तो उस बदलती अवस्था का कर्ता-करण वह परमाणु है। आहा...हा...!

पानी है, वह गर्म होता है। गर्म, (उसमें) अग्नि उचित निमित्त है परन्तु उस उचित निमित्त से पानी गर्म नहीं होता। पानी की जो पहले ठण्डी अवस्था थी, उसे प्राप्त वह पानी-जल है और फिर (वह पानी) उष्ण अवस्था को प्राप्त हुआ, उसका कर्ता और करण उस पानी के परमाणु हैं, अग्नि नहीं। कुछ समझ में आता है? आहा...हा...! प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, उसे दूसरे तत्त्व की राह देखना पड़े (– ऐसा नहीं है।)

वह आया है न? बेन में (बहिनश्री के वचनामृत में) नहीं आया? कि द्रव्य उसे कहते हैं कि अपने कार्य के लिये परद्रव्य के साधन की राह नहीं देखना पड़ती। बेन के वचनामृत में आया है। तुम्हारे आया है न? बहिनश्री के वचनामृत (ग्रन्थ) लिया? उसमें

यह शब्द है कि प्रत्येक द्रव्य के कार्य के लिये परद्रव्य की राह नहीं देखना पड़ती। आहा...हा... ! यह सिद्धान्त है। है न ? इस दर्पण में (लिखा है) आहा...हा... ! द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसे अपनी पर्याय के कार्य के लिये परद्रव्य की राह नहीं देखना पड़ती। आहा...हा... ! अरे... ! वीतरागमार्ग ! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जाना और कहा है, किया नहीं है। पर का कुछ किया नहीं है, अपना किया है। आहा...हा... !

जैसे कि, आत्मा में पूर्व पर्याय की प्राप्ति मिथ्यात्व की हो, वह भी अपने कर्ता, करण से मिथ्यात्व की प्राप्ति है। दर्शनमोह का उदय हुआ, इसलिए यहाँ मिथ्यात्व है – ऐसा नहीं है। दर्शनमोह का उदय उचित निमित्त है, परन्तु उसके कारण यहाँ मिथ्यात्व होता है – ऐसा नहीं है। मिथ्यात्व होने में आत्मा के कर्ता और करण - साधन से मिथ्यात्व होता है। आहा...हा... ! अब, पूर्व की मिथ्यात्व की प्राप्ति है, उसमें से गुलाँट खाकर सम्यक् होता है – सम्यग्दर्शन ! उस सम्यग्दर्शन की पर्याय की प्राप्ति, दर्शनमोह का अभाव हुआ, इसलिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई है – ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय की प्राप्ति आत्मा के कर्ता, करण - साधन से सम्यग्दर्शन की पर्याय की प्राप्ति होती है। आहा...हा... ! ऐसा है। वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है, बापू ! आहा...हा... ! स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण (कहा है) आहा...हा... !

इसी प्रकार आत्मा में चारित्र की पर्याय होवे – वीतरागचारित्र ! दया, दान, व्रत के परिणाम हैं, वे कहीं चारित्र नहीं हैं, वे तो अचारित्र हैं। व्रत के परिणाम भी अचारित्र हैं; चारित्र तो उसे कहते हैं कि जो आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, उस ओर की सन्मुखता से उसमें – आनन्द में रमे/चरे, उसे चारित्र कहते हैं। उस चारित्र की पर्याय में चारित्रमोह का उदय है, उसका अभाव हुआ, इसलिए यहाँ चारित्र की पर्याय हुई – ऐसा नहीं है।

चारित्रमोह का अभाव उचित निमित्त है, परन्तु उसके कारण यहाँ चारित्र की पर्याय होती है – ऐसा नहीं है। पूर्व में अचारित्र की पर्याय को प्राप्त था, उसमें भी उसका स्वरूपकर्ता और करण आत्मा था। आहा...हा... ! और चारित्र की पर्याय को प्राप्त हुआ, उसका भी कर्ता और करण आत्मा है। महाव्रत आदि के परिणाम थे, इसलिए चारित्र की पर्याय हुई – ऐसा नहीं है। ऐसा जगत् से उलटा है, भाई !

आहा...हा... ! वीतरागमार्ग ! वीतराग के अलावा कहीं यह बात नहीं है। सर्वत्र सबने गप्प मारी है। तीर्थङ्कर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा (केवलज्ञान में) देखा है, वैसा वाणी द्वारा आया है। इसके अतिरिक्त कहीं सत्य बात नहीं है। आहा...हा... ! यह धर्म भी सच्चा और यह धर्म भी सच्चा – ऐसा नहीं है।

एक वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा अनन्त गुण का सागर है। उसकी अन्तर्दृष्टि – अनुभव होकर फिर स्वरूप में रमण करने को चारित्र कहते हैं। वह चारित्र की पर्याय उत्पन्न हुई, उसमें चारित्रमोह के कर्म के उदय का अभाव उचित निमित्त हो, परन्तु उसके कारण चारित्र की पर्याय हुई है – ऐसा नहीं है। चारित्र की पर्याय के स्वरूप का कर्ता, करण आत्मा है। आ...हा... ! ऐसा है भगवान ! आहा...हा... ! आचार्य ने तो बहत्तर गाथा में भगवान कहकर बुलाया है। सवेरे समयसार चलता है न ? भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का भरपूर प्रभु ! उसकी वर्तमान पर्याय को प्राप्त है, वह भी स्वयं से है। किसी कर्म के कारण है – ऐसा नहीं है और नयी पर्याय को प्राप्त होता है, उसमें भी कर्म के अभाव का निमित्त हो, परन्तु अभाव का निमित्त उस दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का कर्ता नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकारी वीतरागी पर्याय हुई, उसे जीव स्वयं अपने से प्राप्त करता है, उसका कर्ता और साधन आत्मा है। आहा...हा... ! उसे महाव्रत के परिणाम और शुभभाव था, इसलिए चारित्र हुआ – ऐसा नहीं है।

प्रश्न : अन्तरङ्ग साधनभूत कर्ता और करण कहा तो बाह्यकर्ता और करण भी होगा न ?

समाधान : नहीं, नहीं; स्वरूपकर्ता और करण अन्तरङ्ग है; बाह्य की चीज तो निमित्तमात्र है, वह स्वरूपकर्ता और करण नहीं है। 'अन्तर' शब्द पड़ा है न ? **उचित बहिरङ्ग साधनों की सन्निधि के** यह तो बहिरङ्ग साधन-निमित्त हुआ। **अनेक प्रकार की बहुत सी अवस्थायें करता है वह – अन्तरंगसाधनभूत स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण के सामर्थ्यरूप स्वभाव से अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ...** आहा...हा... ! **उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ वह उत्पाद से लक्षित होता है...** आहा...हा... ! वह नयी अवस्था जो हुई, उसके लक्षण से वह द्रव्य लक्षित होता

है। यह उत्पाद हुआ; इसलिए इसमें कर्म लक्षित होता है या कर्म का अभाव हुआ, ऐसा लक्षित होता है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! यह वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है, बापू!

भगवान तो महाविदेह में विराजमान हैं, प्रभु! सीमन्धरस्वामी भगवान! वहाँ से यह बात आयी है! कुन्दकुन्द आचार्य वहाँ प्रभु के पास गये थे। अभी (प्रभु) समवसरण में विराजमान हैं, धर्मकथा (चल रही है।) महाविदेह में प्रभु विराजमान हैं, पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़ पूर्व की आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष होते हैं। यह एक पूर्व है। ऐसे करोड़ पूर्व का प्रभु का आयुष्य है। अभी महाविदेह में विराजमान हैं। संवत् ४९ में कुन्दकुन्द आचार्य वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। आहा...हा...! साक्षात् तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान प्रभु महाविदेह क्षेत्र में अभी मनुष्यरूप में विराजमान हैं। आहा...हा...! उनकी ओम्ध्वनि सुनी थी। कुन्दकुन्द आचार्य प्रभु आठ दिन वहाँ रहे थे आहा...हा...! उनकी देह चार हाथ की, भगवान की देह पाँच सौ धनुष की! दो हजार हाथ ऊँची! लोग भी ऐसे ऊँचे। टिड्डी जैसे दिखें, टिड्डी! वह टिड्डी आती है न? टिड्डी कहलाती है न? चक्रवर्ती ने पूछा प्रभु यह टिड्डी जैसा मनुष्य कौन है? कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, आठ दिन वहाँ रहे। पाँच सौ धनुष का देह और ये चार हाथ के! प्रभु! यह टिड्डी जैसे कौन हैं? ऐसा चक्रवर्ती ने भगवान से पूछा। हे चक्रवर्ती! यह भरतक्षेत्र के कुन्दकुन्द नामक आचार्य हैं। आहा...हा...! ऐसी भगवान की वाणी निकली, आहा...हा...!

श्रोता : भगवान की वाणी तो ओम्कार निकलती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ओम् ही निकलती है। ओम् निकली, उसमें से ये लोग समझ जाते हैं। भगवान की वाणी ऐसी नहीं होती, भगवान की वाणी तो ओम् है, एकाक्षरी है। इच्छा के बिना वाणी निकलती है, वह एकाक्षरी है। जहाँ इच्छा है, वहाँ एकाक्षरी नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है। अभी तो खिचड़ी कर देते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को मदद करता है, सहायता करता है, दूसरे की सहायता हो तब इसमें कुछ हो (ऐसा मानते हैं)।

ये लकड़ी ऐसी ऊँची होती है, देखो! ऊँची होती है तो अंगुली के कारण ऊँची होती है – ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। इसकी पूर्व पर्याय ऐसी थी और फिर ऐसी हुई। इसकी

पर्याय का कर्ता, करण यह परमाणु है, अंगुली नहीं; अंगुली से ऊँची नहीं हुई। अंगुली उचित निमित्त है, परन्तु इससे कर्ता-करण नहीं हुआ। आहा...हा...! ऐसा है। बहुत अन्तर! वीतराग का मार्ग...!

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय स्वतन्त्र है, उसका कर्ता वह स्वयं है। यह भी अभी अपेक्षा है। पर्याय का कर्ता-द्रव्यस्वरूप कर्ता (है यह भी अपेक्षा है)। वस्तुत: तो प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने पर्याय को करती है। पर्याय कर्म, पर्याय कर्ता, पर्याय साधन, पर्याय अपादान, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अधिकरण है। छह द्रव्य में जो एक समय की पर्याय होती है, उस पर्याय के षट्कारक का परिणमन स्वयं से है, द्रव्य-गुण से भी नहीं। आहा...हा...! निमित्त से तो नहीं (परन्तु) द्रव्य-गुण से भी नहीं। एक समय की पर्याय षट्कारकरूप से (स्वयं परिणमति है।) पर्याय स्वयं कर्ता, पर्याय स्वयं कर्म-कार्य, पर्याय स्वयं करण-साधन, पर्याय स्वयं सम्प्रदान-पर्याय ने पर्याय के लिये पर्याय की; पर्याय से पर्याय हुई यह अपादान; पर्याय के आधार से पर्याय हुई यह अधिकरण। इस प्रकार एक समय की पर्याय में षट्कारक है। अनादि-अनन्त प्रत्येक द्रव्य की पर्याय इसी प्रकार होती है। आहा...हा...!

यहाँ तो पर्याय को लक्षण कहकर द्रव्य को लक्ष्य बनाना है न? इसलिए उसे स्वरूपकर्ता और स्वरूपसाधन कहा गया है। आहा...हा...! वरना तो प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक समय की अवस्था... आगे आयेगा – अपना उत्पादरूप जो पर्याय होती है, उसे ध्रुव और व्यय की अपेक्षा नहीं है। निमित्त की अपेक्षा तो नहीं (परन्तु ध्रुव और व्यय की अपेक्षा नहीं है) १०१ गाथा में आयेगा। १०१ – प्रवचनसार! यह तो अभी ९५वीं गाथा है। आहा...हा...!

अनन्त आत्माएँ और अनन्त परमाणु, अंगुल के असंख्यभाग में निगोद की अनन्त आत्माएँ हैं। लहसुन और प्याज में अंगुल के असंख्य भाग में निगोद की अनन्त आत्माएँ हैं। वे प्रत्येक आत्मा... आहा...हा...! अपनी वर्तमान पर्याय में षट्कारकरूप से परिणमती उसकी पर्याय उत्पन्न होती है। आहा...हा...! ऐसा सुनना कठिन पड़ता है। जिसकी पर्याय की उत्पत्ति के लिये द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं है, व्यय की अपेक्षा नहीं है, ध्रुव की अपेक्षा नहीं है; प्रत्येक द्रव्य की जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसे उसके द्रव्य

की और व्यय की भी अपेक्षा नहीं है तो निमित्त होवे तो होवे, यह बात है ही नहीं। निमित्त हो (भले ही परन्तु) उससे होती है – ऐसा तीन काल में नहीं है। आहा...हा...!

ऐसा भगवान चैतन्यस्वरूप! आहा...हा...! उसे जो सम्यग्दर्शन की धर्म की पर्याय होती है, सम्यग्दर्शन की – धर्म की शुरुआत / पहले धर्म की पर्याय होती है, वह पर्याय षट्कारक के परिणमन से सम्यग्दर्शन की पर्याय होती है। उस पर्याय को निश्चय से द्रव्य -गुण का भी आश्रय नहीं है। यहाँ तो लक्षण और लक्ष्य सिद्ध करना है, इसलिए सम्यग्दर्शन की जो पर्याय हुई, वह लक्षण है और उससे द्रव्य लक्ष्य होता है – इतना यहाँ सिद्ध करना है और उसके स्वरूप में भी यह है। वह-वह द्रव्य समकितरूप हुआ है, यह द्रव्य का स्वरूप है, वह कहीं पर के कारण समकित होता है – ऐसा नहीं है। कर्म के कारण या दया, दान, व्रत के परिणाम हुए, इसलिए समकित होता है – ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहा...हा...! बहुत कठिन! सम्पूर्ण दुनिया से विरुद्ध लगे, पागल जैसा लगे! वीतराग का मार्ग, बापा! जगत् को सुनने को नहीं मिला। आहा...हा...! व्रत पालन किये, यह किया और वह किया... धूल भी नहीं किया। परीषह सहन किया, इसमें क्या हुआ? परीषह तो बाहर की संयोगी वस्तु है, उसे सहन करने की पर्याय कोई इससे हुई है? आहा...हा...! एक आनन्द की पर्याय में समता हुई है, उसका कर्ता-कर्म-साधन तो उसका आत्मा है। आहा...हा...! कुछ समझ में आया?

यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर विराजमान हैं, उनकी यह वाणी है! यह तीन लोक के नाथ की वाणी है! आहा...हा...! यह कहते हैं – **स्वरूपकर्ता और स्वरूपकरण के सामर्थ्यरूप स्वभाव से अनुगृहीत होने पर, उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुअ वह उत्पाद से लक्षित होता है; किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूपभेद नहीं है...** उस-उस द्रव्य की वह पर्याय हुई, वह उसके स्वरूप से अलग है – ऐसा नहीं है। स्वरूप से ही ऐसी है।

और जैसे वही वस्त्र निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है... आहा...हा...! यह पूर्व की जो मलिन अवस्था थी, उसका व्यय हुआ, परन्तु वह व्यय लक्षण है और द्रव्य

लक्ष्य है। व्यय, कोई दूसरी चीज हुई अर्थात् पानी के कारण, डण्डे के कारण उसका (वस्त्र का) मलिनपना मिटा (ऐसा नहीं है)। वस्त्र की मलिनता मिटी है, वह मलिनता मिटकर निर्मलता हुई, वह पानी के कारण और डण्डे के कारण निर्मलता हुई है – ऐसा बिलकुल नहीं है। वह वस्त्र ही स्वयं निर्मल पर्यायरूप उत्पन्न होता हुआ, जिसे व्यय और ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! **मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है...** यहाँ व्यय (से लक्षित होता है ऐसा) कहा, पहले उत्पाद से (लक्षित होता है ऐसा) कहा था न? पहले उत्पाद से कहा था।

परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है... आहा...हा...! **उसी प्रकार वही द्रव्य भी...** प्रत्येक द्रव्य भी **उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और पूर्व अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है...** व्यय से वह द्रव्य लक्षित होता है। व्यय से दूसरी चीज (लक्षित नहीं होती)। ऊपर डण्डा पड़ा, इसलिए मलिनता गयी (और) निर्मलता हुई – ऐसा लक्षित नहीं होता, वहाँ लक्षण नहीं है। व्यय हुई है, वह द्रव्य का लक्षण है। आहा...हा...! ऐसी बात।

श्रोता : लक्षण, लक्ष्यभेद बताना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्षण इसका है और यह लक्ष्य है - यह द्रव्य लक्ष्य है। यह व्यय हुआ, उस लक्षण का लक्ष्य द्रव्य है। व्यय हुआ, उसके साथ (कोई) चीज थी, उसने व्यय किया - मलिनता का व्यय किया – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है। पूरी ९५ गाथा सूक्ष्म है। कल भी सूक्ष्म आया था। आहा...हा...! **व्यय से लक्षित होता है परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूपभेद नहीं है,...** व्यय तो उस द्रव्य का स्वरूप ही है। **वह स्वरूप से ही वैसा है...**

अब, ध्रुव का स्वरूप बताते हैं। **और जैसे...** पहले उत्पाद की बात की फिर व्यय की बात की अब ध्रुव की बात करते हैं। आहा...हा...! **और जैसे वही वस्त्र एक ही समय में निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ और टिकनेवाली ऐसी वस्त्रत्व अवस्था....** (वस्त्रत्व अर्थात् वस्तुपना) **से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है...** आहा...हा...! वस्त्र टिकता हुआ ध्रुव से

लक्षित होता है आहा...हा... ! है ? **परन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूपभेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है...** यह तो दृष्टान्त है।

इसी प्रकार वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ,... आत्मा में सम्यग्दर्शनपने की पर्यायरूप से उत्पन्न होता हुआ, आहा...हा... ! और **पूर्व अवस्था से व्यय होता हुआ,...** मिथ्यात्वपने से नाश होता हुआ **और टिकनेवाली ऐसी द्रव्यत्वअवस्था से ध्रुव रहता हुआ...** आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन की पर्याय लक्षण है (और) उसका लक्ष्य ध्रुव पर है। सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव है भूतार्थ है। (समयसार की) ११ वीं गाथा ! भूतार्थ त्रिकाली वस्तु ध्रुव है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय-लक्षण ध्रुव को-लक्ष्य को बताती है। आहा...हा... ! वह पर्याय, कर्म का क्षय हुआ और उपशम हुआ, यह बताती है – ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

चार घातिकर्म का नाश होने पर केवलज्ञान होता है – ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में कथन है, वह तो निमित्त का कथन है। चार घातिकर्म की पर्याय जो कर्मरूप थी, वह जब अकर्मरूप हुई, वह अपने स्वरूप से हुई है। यहाँ भगवान ने केवलज्ञान प्रगट किया, इसलिए उस कर्म की पर्याय को अकर्मरूप परिणमित होना पड़ा – ऐसा नहीं है और जब कर्म की पर्याय अकर्मरूप हुई, इसलिए यहाँ केवलज्ञान हुआ – ऐसा नहीं है। उस केवलज्ञान की पर्याय का उत्पाद, पूर्व की (पर्याय का) व्यय होने पर - चार ज्ञान, मोक्षमार्ग का व्यय होने पर जो केवलज्ञान की पर्याय मोक्षरूप हुई, उसका स्वरूपकर्ता और करण वह आत्मा है; वृजवृषभनाराचसंहनन मजबूत है और मनुष्यपना है, इसलिए केवलज्ञान हुआ है – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं। यह भगवान परमात्मा का कहा हुआ पन्थ है आहा...हा... ! तत्त्वार्थसूत्र में ऐसी भाषा आती है कि चार घातिकर्म क्षय होने पर केवलज्ञान होता है। यहाँ कहते हैं कि केवलज्ञान की पर्याय, जो पूर्व में चार ज्ञान की पर्याय थी, उसका व्यय हुआ, उस व्यय का कर्ता, कर्म भी आत्मा है और केवलज्ञान का उत्पाद हुआ उसका कर्ता-कर्म, करण-साधन भी आत्मा है। कर्म के कारण (केवलज्ञान) हुआ है, यह बात बिलकुल मिथ्या है। आहा...हा... !

श्रोता : जैन धर्म में तो कर्म की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन धर्म में तो आत्मा की बात है, कर्म की नहीं। अन्य लोग ईश्वरकर्ता कहते हैं, तब यह जैन कहते हैं कि हमारे विकार का कर्ता कर्म है और कर्म का अभाव हो तो हम मोक्ष जायें, यह तो इनका कर्ता जड़ ठहरता है। आहा...हा...! उन्होंने चैतन्य को कल्पित ईश्वरकर्ता ठहराया और इन्होंने जड़ को कर्ता ठहराया। अन्दर जड़-कर्म है, जब वह उदय में आता है, तब हमें विकार होता है और वह कर्म मिट जाता है तो हमारे विकार का अभाव होता है, यह बात बिलकुल मिथ्या है।

श्रोता : कर्म का अभाव तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण (अभाव होता है)। वह तो उनकी पर्याय में पूर्व पर्याय कर्मरूप थी, उसकी उत्तर पर्याय अकर्मरूप हुई उसका कर्ता, कर्म, करण - साधन, उसके परमाणु हैं। यहाँ केवलज्ञान हुआ, इसलिए वहाँ अकर्मरूप पर्याय हुई — ऐसा नहीं है। गहन विषय है, प्रभु! वीतराग परमात्मा का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। आ...हा...! लोगों ने बाहर से मान लिया है। आहा...हा...! ९५ गाथा में कितना (भर दिया है)! आहा...हा...!

इसी प्रकार वही द्रव्य भी... आत्मा या परमाणु आदि द्रव्य, **एक ही समय में उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ...** नयी अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, **पूर्व अवस्था से व्यय होता हुआ...** हुआ — पूर्व की अवस्था से अभाव होता हुआ, **टिकनेवाली ऐसी द्रव्यत्वअवस्था से...** देखा? अवस्था ली है! अवस्थ अर्थात् कायम टिकता है न? **द्रव्यत्वअवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है।...** भगवान आत्मा तो ध्रौव्य से ज्ञात होता है। आहा...हा...! तथा पर्याय से ध्रुव ज्ञात होता है? यहाँ तो ध्रुवपना जो है, यह जो ख्याल में आया, यह ध्रुवपना ख्याल में आया, यह ध्रौव्य लक्षण हैं, यह ध्रुव का लक्षण है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! तीन ज्ञान का स्वामी इन्द्र सुनने आवें, वह बात कैसी होगी? पहले देवलोक का शक्रेन्द्र है, वह एकावतारी है - एक भव में मोक्ष जानेवाला है। शक्रेन्द्र! सौधर्म इन्द्र! एक भव में मोक्ष जानेवाला! उसकी रानी है, वह एक भव में मोक्ष जानेवाली है, वह सभा में आवे, वह वाणी कैसी होगी? बापा! साधारण कथा-वार्ता होगी? आहा...हा...! कहते हैं कि **वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ,....** अपने से उत्पन्न होता हुआ, **पूर्व अवस्था से**

व्यय होता हुआ, और टिकनेवाली ऐसी द्रव्यत्वअवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है... आहा...हा...! जानता है ज्ञान, परन्तु यह ध्रौव्यपना बतलाता है ध्रुव को। ध्रौव्यपना ध्रुव को बतलाता है। जानती है पर्याय; ध्रुवपना कुछ नहीं जानता, ध्रुव तो ध्रुव है परन्तु यहाँ तो ध्रौव्यपना उसका लक्षण है – ऐसा पर्याय ने जाना और उस लक्षण से ध्रुव है – ऐसा पर्याय ने लक्ष्य किया। बहुत फेरफार है, भाई! आहा...हा...! नहीं समझ में आवे तो रात्रि में पूछना। रात्रि में (तत्त्वचर्चा का) समय है न? सवा सात से आठ - पौन घण्टा! चर्चा में पूछना, सूक्ष्म बात है, भाई! आहा...हा...!

ध्रौव्य से लक्षित होता है... क्या कहा? **द्रव्यत्वअवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है...** आहा...हा...! लक्षित तो पर्याय करती है परन्तु वह ध्रौव्यपना है, वह ध्रुव का लक्ष्य कराता है। यह ध्रौव्यपना जो है, वह लक्षण है और ध्रुव चीज है, वह लक्ष्य है – ऐसा पर्याय जानती है। आहा...हा...! ऐसा उपदेश! (बाहर में तो यह कहते हैं) विषयसेवन नहीं करना, रात्रि के आहार का त्याग करना, सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना... परन्तु अभी तत्त्व की दृष्टि के बिना सामायिक आयी कहाँ से? आहा...हा...!

तत्त्व स्वतन्त्र है प्रत्येक तत्त्व की एक समय की पर्याय क्रमबद्ध (होती है)। क्रमबद्ध! प्रत्येक द्रव्य में एक समय में जो पर्याय (होती है) वह क्रमबद्ध-क्रमसर होनेवाली है, आगे-पीछे नहीं। जहाँ जो पर्याय होनी है, वह होगी, उस पर्याय के लक्षण से द्रव्य लक्षित होता है। आहा...हा...! क्रमबद्ध का लेख थोड़ा आया है, 'जैन मित्र' में आया है थोड़ा सा आया है। थोड़ा साधारण, आहा...हा...!

यह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीन की व्याख्या हुई, अब गुण और पर्याय की व्याख्या (कहेंगे)। पहले कहा था न? है न इसमें? **उप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं,** इसकी व्याख्या हुई। अब **गुणवं च सपज्जायं,** की व्याख्या करते हैं। आहा...हा...! गुण पर्याय द्रव्यं, वह द्रव्य है। पहले उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह द्रव्य है (– ऐसा कहा था) आहा...हा...! **और जैसे वही वस्त्र विस्तारविशेषस्वरूप...** यह वस्त्र है न? इसमें गुण है। यह गुण है, वह विस्तार है। परमाणु में गुण है, वे ऐसे विस्तार (स्वरूप) हैं। विस्तारविशेष है। हैं न? **(शुक्लत्वादि) गुणों से लक्षित होता है...** यह सफेद है। इस सफेदाई से (लक्षित होता

है) श्वेतपना तो पर्याय है परन्तु उसके द्वारा लक्षित होता है। वरना श्वेतता तो पर्याय है और जो रंग है, वह उसका गुण है। (परमाणु में) जो रंग है, उसका गुण है और यह श्वेतता तो उसकी पर्याय है परन्तु समझाना है, इसलिए ऐसा लिया है। काली, सफेद, हरी, यह तो पर्याय है और रंग जो त्रिकाली परमाणु में है, वह गुण है। आहा...हा...! ऐसा है।

वस्त्र विस्तारविशेष... द्रव्य है, वह सामान्य है और उसके गुण हैं, वह उसका विशेष विस्तार है। आहा...हा...! वह वस्त्र **विस्तारविशेषोंस्वरूप (शुक्लत्वादि)...** शुक्लत्वादि **गुणों से...** है तो वह पर्याय (उसके द्वारा) **लक्षित होता है, किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूपभेद नहीं है,...** वस्त्र को, जो सफेद आदि गुण हैं, उनसे वह वस्त्र लक्षित होता है, तथापि उन गुण और द्रव्य में स्वरूपभेद नहीं है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म! **स्वरूप से ही वैसा है।**

इसी प्रकार वही द्रव्य भी विस्तारविशेषस्वरूप... प्रत्येक द्रव्य में विस्तार अनन्त गुण हैं – ऐसे विस्तार हैं। परमाणु है, उसमें भी अनन्त गुण हैं, आत्मा में भी अनन्त गुण हैं, एक धर्मास्तिकाय तत्त्व में भी अनन्त गुण हैं। एक कालाणु एक द्रव्य है, उसमें भी अनन्त गुण हैं। वस्तु है उसमें विस्तार विशेषगुण- विस्तारविशेष ऐसे एक साथ रहनेवाले गुण, विस्तार ऐसा (तिरछा) है। आहा...हा...! और पर्याय है, वह ऐसी (लम्बाई में) है। एक के बाद एक पर्याय आयत, एक-एक के बाद एक पर्याय (लम्बाई में) है। (पर्याय) क्रमसर होती है और गुण अक्रम – एक साथ रहते हैं। आहा...हा...! **द्रव्य भी विस्तारविशेषस्वरूप गुणों से लक्षित होता है; किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूपभेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।...** आहा...हा...!

और जैसे वही वस्त्र आयतविशेष... अब, पर्याय ली है। उस वस्त्र में एक के बाद एक... एक के बाद एक.... एक के बाद एक... पर्याय होती है। वह आयत अर्थात् लम्बाई स्वरूप है। कालरूप से - लम्बाईरूप से उसकी पर्याय होती है। उस **आयतविशेषस्वरूप पर्यायवर्ती (पर्यायस्थानीय) तन्तुओं से लक्षित होता है...** आहा...हा...! पर्यायवर्ती तन्तुओं से लक्षित होता है। तन्तुओं को पर्याय गिना है। **किन्तु उसका उन तन्तुओं के साथ स्वरूपभेद नहीं है,...** आहा...हा...! गुण को और द्रव्य को

स्वरूपभेद नहीं है। गुण लक्षण है, द्रव्य लक्ष्य है परन्तु लक्ष्य-लक्षण में स्वरूपभेद नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बातें! **उसी प्रकार वही द्रव्य भी...** वही द्रव्य – आत्मा या परमाणु, **आयतविशेष...** एक के बाद एक पर्यायरूपी विशेष। पहले गुणविशेष था। यह पर्यायविशेष है। आहा...हा...! आयत अर्थात् लम्बाई से कालक्रम से होनेवाली पर्याय। ऐसी **आयतविशेषस्वरूप पर्यायों से लक्षित होता है...** आहा...हा...! कौन? द्रव्य। वस्त्र भी उसकी पर्याय से लक्षित होता है। उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य उसकी वर्तमान पर्याय से लक्षित होता है। आहा...हा...! उसकी पर्याय स्वयं से है, उसमें स्वरूपभेद नहीं है। भेदरूप जो चीज है, उससे वह लक्षित नहीं होता। उसमें जो पर्याय है, उससे वह द्रव्य लक्षित होता है। तथापि उस गुण को, पर्याय को और द्रव्य को भेद नहीं है। आहा...हा...! यहाँ अभी यह अपेक्षा कहना है न? (इसलिए यह कहते हैं)। ऐसा कभी जिन्दगी में सुना नहीं होगा। आहा...हा...! तत्त्व की वस्तु ऐसी सूक्ष्म है, बापू! वास्तविक द्रव्य-गुण और पर्याय क्या है? और गुण तथा पर्याय वह द्रव्य है – यह क्या है? इसकी व्याख्या है। आहा...हा...!

उसी प्रकार वही द्रव्य भी आयतविशेषस्वरूप पर्यायों से लक्षित होता है... उसकी पर्याय - अवस्था से द्रव्य (लक्षित) होता है। दूसरा तत्त्व है, इसलिए वह लक्षित होता है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! आत्मा में सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई उस पर्याय से द्रव्य लक्षित होता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो मिथ्यादर्शन का अभाव हुआ – ऐसी अपेक्षा वहाँ लागू नहीं पड़ती। आहा...हा...! दर्शनमोह का अभाव हुआ, इसलिए सम्यग्दर्शन पर्याय ज्ञात होती है – ऐसा नहीं है। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, निर्मल वीतरागी आत्मज्ञान की पर्याय आत्मा को बतलाती है। आत्मा उसका लक्ष्य है और वह पर्याय उसका लक्षण है। अरे... अरे...! इसमें बात-बात में अन्तर है। है तो Logic, प्रभु ने तो युक्ति से सिद्ध किया है। मुनिराज दिगम्बर सन्त वनवासी थे। वनवास में रहकर उन्होंने टीकाएँ बनायी हैं। आहा...हा...! यह उसका स्वरूप ही है, स्वरूप से वह पृथक् नहीं है।

विशेष कहेंगे...

गाथा - ९६

अथ क्रमेणास्तित्वं द्विविधमभिदधाति; स्वरूपास्तित्वं सादृश्यास्तित्वं चेति। तत्रेदं स्वरूपास्तित्वाभिधानम् -

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं।। ९६।।

सद्भावो हि स्वभावो गुणैः स्वकपर्ययैश्चित्रैः।
द्रव्यस्य सर्वकालमुत्पादव्ययध्रुवत्वैः।। ९६।।

अस्तित्वं हि किल द्रव्यस्य स्वभावः, तत्पुनरन्यसाधननिरपेक्षत्वादनाद्यनन्ततया-हेतुकयैकरूपया वृत्त्या नित्यप्रवृत्तत्वाद्विभावधर्मवैलक्षण्याच्च भावभाववद्भावान्नानात्वेऽपि प्रदेशभेदाभावाद्द्रव्येण सहैकत्वमवलम्बमानं द्रव्यस्य स्वभाव एव कथं न भवेत्। तत्तु द्रव्यान्तराणामिव द्रव्यगुणपर्यायाणां न प्रत्येकं परिसमाप्यते। यतो हि परस्प-रसाधितसिद्धियुक्तत्वात्तेषामस्तित्वमेकमेव, कार्तस्वरवत्। यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कार्तस्वरात् पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण पीततादिगुणानां कुण्डलादिपर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैः पीततादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण गुणानां पर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुत्कैर्गुणैः पर्यायैश्च यदस्तित्व द्रव्यस्य स स्वभावः। यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा पीततादिगुणेभ्यः कुण्डलादिपर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वरस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः पीततादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा गुणेभ्यः पर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण द्रव्यस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमान-प्रवृत्तियुक्तैर्गुणैः पर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः। किंच - यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कार्तस्वरात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्याणां स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैः कुण्डलाङ्गद-पीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः, तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन

वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेणोत्पाद-व्ययध्रौव्याणां स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्ति-युक्तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्यदस्तित्वं द्रव्यस्य स स्वभावः। यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वरस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादित-निष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वोत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण द्रव्यस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः।।९६।।

एवं नमस्कारगाथा, द्रव्यगुणपर्यायकथनगाथा, स्वसमयपरसमयनिरूपणगाथा, सत्तादिलक्षणत्रय-सूचनगाथा चेति स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन **पीठिका**भिधानं प्रथमस्थलं गतम्। अथ प्रथमं तावत्स्वरूपास्तित्वं प्रतिपादयति - **सहावो हि** स्वभावः स्वरूपं भवति हि स्फुटम्। कः कर्ता। **सब्भावो** सद्भावः शुद्धसत्ता शुद्धास्तित्वम्। कस्य स्वभावो भवति। **दव्वस्स** मुक्तात्मद्रव्यस्य। तच्च स्वरूपास्तित्वं यथा मुक्तात्मना सकाशात्पृथग्भूतानां पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणां शेषजीवानां च भिन्नं भवति, न च तथा। कः सह। **गुणेहिं सगपज्जएहिं** केवलज्ञानादिगुणः किञ्चिदूनचरमशरीराकारादिस्वकपर्यायैश्च सह। कथंभूतैः। **चित्तेहिं** सिद्धगतित्वमतीन्द्रिय-त्वमकायत्वमयोगत्वमवेदत्वमित्यादिबहुभेदभिन्नैः। न केवलं गुणपर्यायैः सह भिन्नं न भवति। **उत्पादव्वयधुवत्तेहि** शुद्धात्मप्राप्तिरूपम क्षपर्यायस्योत्पादो रागादिविकल्परहितपरमसमाधिरूप-मोक्षमार्गपर्यायस्य व्ययस्तथा मोक्षमोक्षमार्गाधारभूतान्वयद्रव्यत्वलक्षणं ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यैश्च सह भिन्नं न भवति। कथम्। **सव्वकालं** सर्वकालपर्यन्तं यथा भवति। कस्मात्तैः सह भिन्नं न भवतीति चेत्। यतः कारणाद्गुणपर्यायास्तित्वेनोत्पादव्ययध्रौव्यास्तित्वेन च कर्तृभूतेन शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वं साध्यते, शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वेन च गुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यास्तित्वं साध्यत इति। तद्यथा-यथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः सुवर्णादभिन्नानां पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णस्य सद्भावः, तथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परमात्मद्रव्यादभिन्नानां केवलज्ञानादिगुणकिंचिदूनचरमशरीराकारादिपर्यायाणां सबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यस्य सद्भावः। यथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य सम्बन्धि यदस्तित्वं स एव पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां स्वभावो भवति, तथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः केवलज्ञानादिगुणकिंचिदूनचरमशरीराकारपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य मुक्तात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव केवलज्ञानादिगुणकिंचिदूनचरमशरीराकारपर्यायाणां स्वभावो ज्ञातव्यः। अथेदानीमुत्पादव्ययध्रौव्याणामपि द्रव्येण सहाभिन्नास्तित्वं कथ्यते। यथा स्वकीयद्रव्यादिचतुष्टयेन सुवर्णादभिन्नानां कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायविनाशसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णसद्भावः, तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन परमात्मद्रव्यादभिन्नानां मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधारभूत-

परमात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यसद्भावः। यथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्याय-व्ययसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायव्ययतदुभय धारभूतसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां स्वभावः, तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य परमात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्याय-व्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां स्वभाव इति। एवं यथा मुक्तात्मद्रव्यस्य स्वकीयगुण-पर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह स्वरूपास्तित्वाभिधानमवान्तरास्तित्वमभिन्नं व्यवस्थापितं तथैव समस्तशेषद्रव्याणामपि व्यवस्थापनीयमित्यर्थः ।।९६।।

अब, अनुक्रम से दो प्रकार का अस्तित्व कहते हैं। स्वरूप-अस्तित्व और सादृश्य-अस्तित्व। इनमें से यह स्वरूपास्तित्व का कथन है -

सद्भाव द्रव्य-स्वभाव है, वह विविध गुण-पर्यायमय।
उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्यमय, लक्षण कहा है काल त्रय॥

अन्वयार्थ : [सर्वकालं] सर्व काल में **[गुणैः]** गुण तथा **[चित्रैः स्वकपर्यायैः]** अनेक प्रकार की अपनी पर्यायों से **[उत्पादव्ययध्रुवत्वैः]** और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से **[द्रव्यस्य सद्भावः]** द्रव्य का जो अस्तित्व है, **[हि]** वह वास्तव में **[स्वभावः]** स्वभाव है।

टीका : अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है; और वह (अस्तित्व) अन्य साधन से निरपेक्ष[१] होने के कारण अनादि-अनन्त होने से तथा अहेतुक[२], एकरूप वृत्ति[३] से सदा ही प्रवर्तता होने के कारण विभावधर्म से विलक्षण होने से, भाव और भाववानता[४] के कारण अनेकत्व होने पर भी प्रदेशभेद न होने से द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ, द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न हो? (अवश्य होवे।) वह अस्तित्व - जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रत्येक में समाप्त

---

१. अस्तित्व अन्य साधन की अपेक्षा से रहित - स्वयंसिद्ध है इसलिए अनादि-अनन्त है।
२. अहेतुक = अकारण, जिसका कोई कारण नहीं है ऐसी।
३. वृत्ति = वर्तन; वर्तना वह; परिणति। (अकारणिक एकरूप परिणति से सदाकाल परिणमता होने से अस्तित्व विभावधर्म से भिन्न लक्षणवाला है।)
४. अस्तित्व तो (द्रव्य का) भाव है और द्रव्य भाववान् है।

नहीं हो जाता, क्योंकि उनकी सिद्धि परस्पर होती है, इसलिए (अर्थात् द्रव्य-गुण और पर्याय एक दूसरे से परस्पर सिद्ध होते हैं इसलिए - यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते इसलिए) उनका अस्तित्व एक ही है - सुवर्ण की भाँति।

जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव से सुवर्ण[१] से जो पृथक् दिखाई नहीं देते; कर्ता-करण-अधिकरणरूप से पीतत्वादिगुणों के और कुण्डलादिपर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान सुवर्ण के अस्तित्व से जिनकी उत्पत्ति होती है - ऐसे पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादिपर्यायों से जो सुवर्ण का अस्तित्व है, वह सुवर्ण का स्वभाव है; उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से जो द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देते; कर्ता-करण-अधिकरणरूप[२] से गुणों के और पर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान द्रव्य के अस्तित्व से जिनकी उत्पत्ति होती है - ऐसे गुणों और पर्यायों से जो द्रव्य का अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से सुवर्ण से भिन्न न दिखाई देनेवाले पीतत्वादिक और कुण्डलादिक का अस्तित्व, वह सुवर्ण का ही अस्तित्व है, क्योंकि पीतत्वादिक के और कुण्डलादिक के स्वरूप को सुवर्ण ही धारण करता है, इसलिए सुवर्ण के अस्तित्व से ही पीतत्वादिक की और कुण्डलादिक की निष्पत्ति-सिद्धि होती है; सुवर्ण न हो तो पीतत्वादिक और कुण्डलादिक भी न हों, इसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से द्रव्य से भिन्न नहीं दिखाई देनेवाले गुणों और पर्यायों का अस्तित्व, वह द्रव्य का ही अस्तित्व है, क्योंकि गुणों और पर्यायों के स्वरूप को द्रव्य ही धारण करता है, इसलिए द्रव्य के अस्तित्व से ही गुणों की और पर्यायों की निष्पत्ति होती है, द्रव्य न हो तो गुण और पर्यायें भी न हों। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

अथवा, जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से जो[३] पीतत्वादि गुणों से और कुण्डलादि पर्यायों से पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्ता-करण-अधिकरणरूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादिपर्यायों से जिसकी निष्पत्ति होती है - ऐसे सुवर्ण का, मूलसाधनपने से उनसे[१] निष्पन्न होता हुआ, जो

१. पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि पर्यायें।

२. द्रव्य ही गुण-पर्यायों का कर्ता (करनेवाला), उनका करण (साधन) और उनका अधिकरण (आधार) है; इसलिए द्रव्य ही गुण-पर्याय का स्वरूप धारण करता है।

३. जो = जो सुवर्ण।

अस्तित्व है, वह स्वभाव है; उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से गुणों से और पर्यायों से जो पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्ता-करण-अधिकरणरूप[२] से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान गुणों और पर्यायों से जिसकी निष्पत्ति होती है - ऐसे द्रव्य का, मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (पीतत्वादिक से और कुण्डलादिक से भिन्न न दिखाई देनेवाले सुवर्ण का अस्तित्व, वह पीतत्वादिक और कुण्डलादिक का ही अस्तित्व है, क्योंकि सुवर्ण के स्वरूप को पीतत्वादिक और कुण्डलादिक ही धारण करते हैं, इसलिए पीतत्वादिक और कुण्डलादिक के अस्तित्व से ही सुवर्ण की निष्पत्ति होती है, पीतत्वादिक और कुण्डलादिक न हों तो सुवर्ण भी न हो; इसी प्रकार गुणों से और पर्यायों से भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्य का अस्तित्व, वह गुणों और पर्यायों का ही अस्तित्व है, क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को गुणों और पर्यायें ही धारण करती हैं, इसलिए गुणों और पर्यायों के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है। यदि गुणों और पर्यायें न हो तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

(जिस प्रकार द्रव्य का और गुण-पर्याय का एक ही अस्तित्व है, ऐसा सुवर्ण के दृष्टान्तपूर्वक समझाया; उसी प्रकार अब सुवर्ण के दृष्टान्तपूर्वक ऐसा बताया जा रहा है कि द्रव्य का और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का भी एक ही अस्तित्व है।)

जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से, सुवर्ण से जो[३] पृथक् नहीं दिखाई देते, कर्ता-करण-अधिकरणरूप[४] से कुण्डलादिउत्पादों के, बाजूबंधादिव्ययों के और पीतत्वादिध्रौव्यों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान सुवर्ण के अस्तित्व से जिनकी निष्पत्ति होती है - ऐसे कुण्डलादि-उत्पाद, बाजूबंधादि-व्यय और पीतत्वादि-ध्रौव्यों से जो सुवर्ण का अस्तित्व है, वह (सुवर्ण का) स्वभाव है; उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से जो द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देते; कर्ता-करण-अधिकरणरूप से उत्पाद-

१. उनसे = पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से। (सुवर्ण का अस्तित्व निष्पन्न होने में उपजने में, या सिद्ध होने में मूलसाधन पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि पर्यायें हैं।)

२. गुण-पर्यायें ही द्रव्य की कर्ता, करण और अधिकरण है; इसलिए गुण-पर्यायें ही द्रव्य का स्वरूप धारण करती हैं।

३. जो = जो कुण्डलादि उत्पाद, बाजूबंधादि व्यय और पीतादि ध्रौव्य।

४. सुवर्ण ही कुण्डलादि-उत्पाद, बाजूबंधादि-व्यय और पीतत्वादि ध्रौव्य का कर्ता, करण तथा अधिकरण है; इसलिए सुवर्ण ही उनका स्वरूप धारण करता है।(सुवर्ण की कुण्डलादिरूप से उत्पन्न होता है, बाजूबंधादिरूप से नष्ट होता है और पीतत्वादिरूप से अवस्थित रहता है।)

व्यय-ध्रौव्यों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान द्रव्य के अस्तित्व से जिनकी निष्पत्ति होती है - ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से जो द्रव्य का अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से द्रव्य से भिन्न दिखाई न देनेवाले उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों का अस्तित्व है, वह द्रव्य का ही अस्तित्व है क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों के स्वरूप को द्रव्य ही धारण करता है, इसलिए द्रव्य के अस्तित्व से ही उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों की निष्पत्ति होती है। यदि द्रव्य न हो तो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भी न हों। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

अथवा जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से कुण्डलादि-उत्पादों से बाजूबंधादि-व्ययों से और पीतत्वादिध्रौव्यों से जो पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्ता-करण-अधिकरणरूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान कुण्डलादि-उत्पादों, बाजूबंधादिव्ययों और पीतत्वादिध्रौव्यों से जिसकी निष्पत्ति होती है - ऐसे सुवर्ण का, मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ, जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जो पृथक् दिखाई नहीं देता, कर्ता-करण-अधिकरणरूप[१] से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जिनकी निष्पत्ति होती है - ऐसे द्रव्य का मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (उत्पादों से, व्ययों से और ध्रौव्यों से भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्य का अस्तित्व वह उत्पादों, व्ययों और ध्रौव्यों का ही अस्तित्व है; क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ही धारण करते हैं, इसलिए उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यों के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हों तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।)

भावार्थ - अस्तित्व के और द्रव्य के प्रदेशभेद नहीं है; और वह अस्तित्व अनादि-अनन्त है तथा अहेतुक एकरूप परिणति से सदा परिणमित होता है, इसलिए विभाव-धर्म से भी भिन्न प्रकार का है; ऐसा होने से अस्तित्व द्रव्य का स्वभाव ही है।

गुण-पर्यायों का और द्रव्य का अस्तित्व भिन्न नहीं है; एक ही है; क्योंकि गुण-

१. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्य के कर्ता, करण, और अधिकरण हैं, इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्य के स्वरूप को धारण करते हैं।

पर्यायें द्रव्य से ही निष्पन्न होती हैं, और द्रव्य, गुण-पर्यायों से ही निष्पन्न होता है; और इसी प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का और द्रव्य का अस्तित्व भी एक ही है, क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य से ही उत्पन्न होते हैं, और द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से ही उत्पन्न होता है।

इस प्रकार स्वरूपास्तित्व का निरूपण हुआ॥ ९६॥

प्रवचन नं. ९५ **दिनाङ्क ०५ जून १९७९**

सद्भाव द्रव्य-स्वभाव है, वह विविध गुण-पर्यायमय।
उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्यमय, लक्षण कहा है काल त्रय॥

क्या कहते हैं? **अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है...** प्रत्येक आत्मा या प्रत्येक परमाणु; भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। छह द्रव्य - आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। इन प्रत्येक द्रव्य का अस्तित्व अर्थात् होनापना वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है। द्रव्य स्वभाववान् है और अस्तित्व उसका स्वभाव है। आहा...हा...!

आत्मा - उसका अस्तित्व - होनापना, उसका स्वभाव है और आत्मा स्वभाववान् है। आत्मा का होनापना अपने गुण और पर्याय से है। परद्रव्य के कारण आत्मा का होनापना नहीं है। यह आत्मा है अन्दर - सच्चिदानन्द प्रभु! उसका होनापना-अस्तित्व, वह उसका स्वभाव है। द्रव्य का होनापना-अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है और द्रव्य है, वह स्वभाववान् है। आहा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह प्रवचनसार है - भगवान की दिव्यध्वनि! प्रवचनसार! कुन्दकुन्दाचार्य!

अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है और वह (अस्तित्व) अन्य साधन से निरपेक्ष होने से... आहा...हा...! आत्मा का होनापना (वह उसका स्वभाव है) और यह परमाणु है - यह (हाथ) एक वस्तु नहीं है। इसके पॉइन्ट करते-करते अन्तिम का परमाणु रहे, वह भी द्रव्य है। वह द्रव्य भी अपने अस्तित्व से है। दूसरे के अस्तित्व से उसका अस्तित्व है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! प्रत्येक रजकण या प्रत्येक कर्म का

परमाणु अपने अस्तित्व से है। आत्मा है, वह उसके अस्तित्व से वह आत्मा है परन्तु उसके अस्तित्व से कर्म का अस्तित्व है - ऐसा नहीं है।

इस शरीर का होनापना है, यह शरीर परमाणुओं का पिण्ड है, उसका अस्तित्व है, वह उसका - परमाणु का स्वभाव है। उसका होनापना आत्मा के कारण नहीं है। अन्दर आत्मा जो है, उसका होनापना-उसका अस्तित्व, उसके द्रव्य का स्वभाव है। उसमें यह शरीर आदि जड़ हैं, उनका होनापना-अस्तित्व वह परमाणु का स्वभाव है। उसका होनापना आत्मा के कारण है और उसके होनेपने से आत्मा की अस्ति है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है।

(ऐसा अस्तित्व) **अनादि-अनन्त होने से...** भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं, उसमें आत्मा और परमाणु (अथवा) प्रत्येक का होनापना अनादि-अनन्त है। आहा...हा...! 'है' उसकी आदि क्या? और 'है' उसका अन्त क्या? प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा अनादि-अनन्त स्वयं से 'है'। **अहेतुक, एकरूप वृत्ति से...** है? (मूल शास्त्र में नीचे फुटनोट में अर्थ दिया है) अहेतुक अर्थात् अकारण है। आत्मा है, उसके अस्तित्व को कोई कारण नहीं है, कोई कर्ता नहीं है - कोई ईश्वरकर्ता नहीं है; दूसरा द्रव्य भी कारण नहीं है। आहा...हा...! आत्मा का होनापना और उस परमाणु का होनापना स्वयं अस्तित्व से है। वह द्रव्य है, दूसरे के अस्तित्व से - हयाति से दूसरा द्रव्य है, ऐसा नहीं है। आहा...हा...! है? **अहेतुक, एकरूप वृत्ति...** (वृत्ति अर्थात्) वर्तन करना; परिणति (अकारणिक एकरूप परिणति से सदाकाल परिणमता होने से...) क्या कहते हैं?

जो आत्मा है, शरीर है, कर्म है - ऐसे अनन्त परमाणु हैं, अनन्त आत्माएँ हैं, वे अपने अस्तित्व स्वभाव से परिणमते हैं, उनका परिणमन किसी पर के कारण होता है - (ऐसा नहीं है)। आहा...हा...! है? **एकरूप वृत्ति से सदा ही प्रवर्तता होने से...** होने से, आहा...हा...! आत्मा भी सत्ता-अस्तित्त्व (स्वभाव से है)। उसका अस्तित्व अनादि-अनन्त है और वह अनादि-अनन्त उसका जो परिणमन है, वह स्वत: है। अस्तित्वगुण का परिणमन-पर्याय (स्वत: है)। अस्तित्व वह गुण है और आत्मा उसका धारक गुणी-भाववान है और अस्तित्वगुण की पर्याय स्वयं से होती है। उस

अस्तित्व का होनापना अपने से परिणमता है। वह दूसरे के कारण परिणमता है ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भगवान!

यह तो प्रवचनसार! ज्ञेय अधिकार है! जगत् के जो अनन्त ज्ञेय हैं, उन अनन्त ज्ञेयों का अस्तित्व है, वह अस्तित्व उन द्रव्यों का स्वभाव है, उसका होनापना वह द्रव्य का स्वभाव है। उसका होनापना पर के कारण है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! **एकरूप वृत्ति से सदा ही प्रवर्तता होने के कारण विभावधर्म से विलक्षण...** है। क्या कहते हैं? 'है', जो 'है' ऐसा अस्तित्व स्वभाव है। उसमें विभावधर्म नहीं है। 'है' उसका विभावधर्म क्या? दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि है, उनमें उनका विभाव होता है परन्तु अस्तित्व – 'है' ऐसा जो द्रव्य का अस्तित्वस्वभाव है, उसकी परिणति में विभावधर्म नहीं होता। आहा...हा...! अस्तित्व अर्थात् सत्तागुण जो है, उसमें विभावधर्म नहीं होता। कुछ समझ में आता है?

इस आत्मा में अस्तित्वगुण है, वह द्रव्य का स्वभाव है और उस अस्तित्व का परिणमन होता है – पर्याय होती है, अस्तित्वस्वभाव, स्वभाववान द्रव्य और उसका परिणमन – पर्याय, परन्तु उसका परिणमन विभावरूप कभी नहीं होता। अस्तित्वगुण का विभावरूप परिणमन नहीं होता। 'है' उसका विभावरूप (परिणमन) अर्थात् (क्या?) 'है' वह 'नहीं' रूप से परिणमेगा? आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। आहा...हा...!

यहाँ तो अभी आगे वहाँ तक कहेंगे कि देखो! **भाव और भाववानता के कारण अनेकत्व होने पर भी...** आत्मा-भाववान का अस्तित्व है, इस जड़ परमाणु का भी अस्तित्व है, कर्म का भी कर्म में अस्तित्व है। किसी के अस्तित्व के कारण किसी का अस्तित्व है – ऐसा नहीं है। अपने अस्तित्व के कारण अपना द्रव्यस्वभाव है आहा...हा...! और वह अस्तित्वगुण जब परिणमता है, वह परिणमता है, तब हीनरूप परिणमता है (ऐसा कोई कहे तो) उसका अर्थ क्या? विभावरूप परिणमता है (उसका अर्थ क्या?) 'है' वह तो 'है' रूप से परिपूर्णता से स्वयं परिणमता है। आहा...हा...! **भाव और भाववानता के कारण अनेकत्व होने पर भी...** (अर्थात्) अस्तित्व और अस्तित्व का धारक द्रव्य – ऐसा अनेकपना होने पर भी वस्तु अनेक नहीं है – प्रदेशभेद नहीं है। अस्तित्वगुण के प्रदेश

अलग और द्रव्य के प्रदेश अलग - ऐसा नहीं है। उस अस्तित्व (स्वभाव) और आत्मा के प्रदेश एक ही हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! यह सब गाथा ही सूक्ष्म है। आहा...हा...!

प्रदेशभेद न होने से द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ... आत्मा वस्तु है और परमाणु है, उनका होनापन का गुण **द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ, द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न हो ?...** वह तो उसका स्वभाव ही है। आहा...हा...! परमाणु का भी अस्तित्व, स्वभाव है। आत्मा का भी अस्तित्व, स्वभाव है। आहा...हा...! **वह अस्तित्व - जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त हो जाता है...** क्या कहते हैं ? अस्तित्व नाम का जो गुण है, वह प्रत्येक द्रव्य में समाप्त हो जाता है। एक-एक अस्तित्वगुण प्रत्येक द्रव्य में वहाँ समाप्त हो जाता है। ऐसा अस्तित्वगुण अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में (भिन्न-भिन्नरूप से समाप्त हो जाता है - ऐसा नहीं है)। (अर्थात्) द्रव्य में पूर्ण अस्तित्व रहता है, गुण में पूर्ण अस्तित्व रहता - ऐसा नहीं है; द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों होकर पूरा अस्तित्व है। क्या कहा ? यह तो सूक्ष्म बात है, भाई!

जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है - ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव और भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (जो) दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान परमात्मा महाविदेह में विराजामान हैं, वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। इसकी भी बहुतों को शंका होती है कि महाविदेह में गये थे, यह बात अविश्वसनीय है। आहा...हा...! शास्त्र में पाठ है, पञ्चास्तिकाय की संस्कृत टीका है, उसमें पाठ है। देवसेनाचार्य द्वारा रचित दर्शनसार नामक पुस्तक / ग्रन्थ है, उसमें पाठ है। जहाँ अष्टपाहुड़ अन्त में समाप्त करते हैं, वहाँ भी पाठ है कि कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। समझ में आया कुछ ? वहाँ जाकर आठ दिन रहे थे। दिगम्बर सन्त! आठ दिन बाद यहाँ आये, फिर शास्त्र बनाये। इन शास्त्रों को बनाये हुए दो हजार वर्ष हुए हैं, फिर एक हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्य हुए। कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य हुए, उनकी यह टीका है। आहा...हा...! यह सब दिगम्बर सन्तों की बात है - ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। आहा...हा...!

जो अस्तित्व है; जैसे प्रत्येक द्रव्य का होनापना उसके द्रव्य में पूरा-पूरा समाहित

हो जाता है, इसी प्रकार आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय में - एक-एक में - द्रव्य में पूर्ण अस्तित्व, गुण में पूर्ण और पर्याय में पूर्ण (अस्तित्व है) - ऐसा नहीं है, तीनों में होकर एक पूर्ण अस्तित्व है। है इसमें देखो न! **वह अस्तित्व - जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार - द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रत्येक में समाप्त नहीं हो जाता...** आहा...हा...!

क्योंकि उनकी सिद्धि परस्पर होती है, इसलिए... (अर्थात्) द्रव्य की सिद्धि गुण-पर्याय से और गुण-पर्याय की सिद्धि द्रव्य से (होती है)। आहा...हा...! क्या कहते हैं? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु की जो वर्तमान पर्याय है, उसकी सिद्धि उसके द्रव्य के कारण है। उस पर्याय की उत्पत्ति उसके द्रव्य के कारण है। दूसरे द्रव्य के कारण दूसरे की पर्याय की उत्पत्ति होवे - ऐसा तीन काल में नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : इसका अर्थ की काम ही नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम कर सकता ही नहीं। क्या करे? घट की उत्पत्ति में मिट्टी स्वयं उत्पत्ति कारण है; उसकी उत्पत्ति में कुम्हार कारण है - ऐसा नहीं है।

श्रोता : निमित्तकारण तो है?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त भले हो। होवे उससे कौन इन्कार करता है? परन्तु उससे उत्पन्न नहीं होता; निमित्त हो। यहाँ तो यह सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक द्रव्य में उसका अस्तित्व पूरा समा जाता है। इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में एक-एक में अस्तित्व समा जाता है - ऐसा नहीं है। तीन होकर एक अस्तित्व है - ऐसी बात है, भाई! यह तो भगवान की वाणी है। आहा...हा...! दिगम्बर सन्त! आचार्य! वहाँ से आये और यह (शास्त्र बनाया) है। बापू! ऐसी बात कहीं अन्यत्र नहीं है।

वह अस्तित्व - जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में... प्रत्येक द्रव्य में उसका अस्तित्व पूरा हो जाता है। **उसी प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रत्येक में समाप्त नहीं हो जाता क्योंकि उनकी सिद्धि परस्पर होती है, इसलिए...** आत्मद्रव्य की सिद्धि उसके गुण-पर्याय से होती है और गुण-पर्याय की सिद्धि उसके द्रव्य से होती है। सिद्धि अर्थात् साबित होता है। आहा...हा...!

यह शरीर है-यह रजकण इनमें अस्तित्व इनका गुण है और उस अस्तित्व की यह पर्याय है। इन गुण और पर्याय में एक-एक में इसका अस्तित्व पूरा नहीं होता। ये तीनों द्रव्य-गुण-पर्याय होकर उसका अस्तित्व एक ही है। है? उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में अस्तित्व का (एकपना है।) गुण-पर्याय के कारण उसके द्रव्य की सिद्धि है, और द्रव्य की सिद्धि के कारण, गुण-पर्याय की सिद्धि है। समझ में आता है? प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, कोई किसी के द्रव्य का कुछ करे - ऐसा तीन काल में नहीं है। आहा...हा...!

यह शरीर जो ऐसा चलता है, वह उसके अस्तित्वगुण की पर्याय से ऐसे... ऐसे... चलता है, आत्मा से यह शरीर ऐसे चलता है - (ऐसा) तीन काल में नहीं है। (सभी) तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं, उनकी श्रद्धा का लोगों को पता नहीं है। वे खिचड़ी करते हैं - एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को ऐसा करता है और दूसरे तत्त्व को वैसा करता है - (ऐसा मानते हैं।) आहा...हा...!

यहाँ तो यह कहते हैं कि **उनकी सिद्धि...** अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय की सिद्धि; प्रत्येक वस्तु का द्रव्य अर्थात् कायमी पदार्थ; गुण अर्थात् उसकी शक्ति; पर्याय अर्थात् उसकी अवस्था की **सिद्धि परस्पर होती है इसलिए...** गुण-पर्याय के कारण द्रव्य की सिद्धि और द्रव्य की सिद्धि के कारण गुण-पर्याय की सिद्धि, इनकी सिद्धि के लिये पर की सिद्धि की आवश्यकता है - ऐसा नहीं है। आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय की सिद्धि में गुण-पर्याय के कारण द्रव्य की सिद्धि है और द्रव्य के कारण गुण-पर्याय की सिद्धि है। परन्तु शरीर के द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण आत्मा की सिद्धि है और आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण शरीर की सिद्धि है - ऐसा नहीं है।

श्रोता : नाड़ी बन्द हो जाये तो जीव चला जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण वह पर्याय (जाती है)। वह जड़ की पर्याय है, नाड़ी चलती है, वह जड़ की पर्याय है, नाड़ी बन्द हो, वह जड़ की पर्याय है।

श्रोता : परन्तु जीव चला गया न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जीव जाये कहाँ? वह अपना अस्तित्व द्रव्य-गुण-पर्याय में रखकर यहाँ से चला गया है। द्रव्य उसकी अपनी पर्याय को सिद्ध करता है। ऐसी

(नाड़ी बन्द हो गयी उसके) कारण यहाँ से उसकी पर्याय गयी है – ऐसा नहीं है। शरीर छूटा इसलिए यहाँ से आत्मा निकल गया – ऐसा नहीं है। यह निकलने की पर्याय की सिद्धि उसके द्रव्य से होती है। निकलने की पर्याय की सिद्धि शरीर और आयुष्य से नहीं होती। यह उसकी आयु पूर्ण हो गयी, इसलिए आत्मा यहाँ से निकला – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! आत्मा की यहाँ से निकलने की पर्याय, उसके द्रव्य के कारण सिद्ध होती है। द्रव्य उसका कर्ता, करण है। आहा...हा...! आयुष्य के कारण आत्मा अन्दर रहता है – ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! अभी तो यह तत्त्व की बात ही पूरी गुम हो गयी है। बाहर की क्रियाकाण्ड लग गये हैं, तत्त्व क्या है ? – (इसका पता नहीं और) खिचड़ा कर डाला है। आहा...हा...!

श्रोता : खिचड़ा बहुत मीठा लगता है!

पूज्य गुरुदेवश्री : खिचड़े में कंकड़ डालो तो खिचड़ा अच्छा नहीं लगता। इसी प्रकार एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलावे तो वह खिचड़ा अच्छा नहीं होता। वह तो मिथ्यात्व है। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) **(अर्थात् द्रव्य-गुण और पर्याय एक दूसरे से परस्पर सिद्ध होते हैं इसलिए – यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते इसलिए)...** नहीं होते। द्रव्य नहीं हो तो गुण-पर्याय भी नहीं होते; गुण-पर्याय नहीं हो तो द्रव्य भी नहीं होता। दूसरा द्रव्य नहीं हो तो यह गुण-पर्याय नहीं हों – ऐसा नहीं है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उसके द्रव्य से है, उसकी पर्याय पर से नहीं है। आहा...हा...! आत्मा में जो राग-द्वेष की पर्याय होती है, वह पर्याय, गुण और द्रव्य की सिद्धि करते हैं। यह द्रव्य है, उसकी सिद्धि गुण-पर्याय से (होती है।) राग-द्वेष हैं, इस पर्याय से द्रव्य की सिद्धि है। ये राग-द्वेष कर्म के कारण हुए हैं – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! यह राग और द्वेष की पर्याय – चारित्रगुण की विपरीत पर्याय (होती है।) यह पर्याय, गुण और द्रव्य की सिद्धि करते हैं कि यह आत्मा है और यह आत्मा उन गुण और पर्याय की सिद्धि करता है। उनके कारण आत्मा है। आहा...हा...! आत्मा में जो विकार होता है, वह कर्म के कारण विकार होता है – ऐसा नहीं है। इसके कारण विकार की पर्याय नहीं है, विकार की पर्याय और गुण से द्रव्य

की सिद्धि है और द्रव्य के कारण गुण-पर्याय की सिद्धि है। आहा...हा...! कठिन काम! यह तो कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है (कहकर) जगत् को मार दिया है।

श्रोता : लघु वय से यह सीखे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लघु वय से सीखे हैं - बात सच्ची है। यहाँ (तो हम) छोटी उम्र से ही यह सीखे हैं। (संवत्) १९७१ से कि कर्म से विकार नहीं होता, ६४ वर्ष पहले! प्रत्येक द्रव्य की विकृत अवस्था का होनापना - उसकी सिद्धि उसके द्रव्य के कारण है और विकार की पर्याय की सिद्धि उसके द्रव्य के कारण है, उसकी सिद्धि से द्रव्य की सिद्धि और द्रव्य की सिद्धि से पर्याय की सिद्धि है परन्तु पर्याय में विकार है, इसलिए उसकी सिद्धि कर्म के कारण है - ऐसा नहीं है। बहुत कठिन काम है! समझ में आता है? भाषा तो सादी है, परन्तु भाई! वीतराग का भाव-तत्त्व तो ऐसा है! आहा...हा...! अभी तो आगे बहुत आयेगा। **उनका अस्तित्व एक ही है - सुवर्ण की भाँति।**

जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव से सुवर्ण से जो पृथक् दिखाई नहीं देते... है? जो अर्थात् पीलापन आदि गुण, पीलापन गुण और कुण्डलादि पर्याय। वह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से स्वर्ण से पृथक् देखने में नहीं आते। **कर्ता-करण-अधिकरणरूप से पीतत्वादिगुणों के और कुण्डलादिपर्यायों के स्वरूप को धारण करके...** आहा...हा...! क्या कहते हैं? यह कुण्डलादि जो पर्यायें होती हैं, उनका कर्ता वह स्वर्ण है। वे कुण्डलादि पर्यायें होती हैं, उनका करण-साधन सुवर्ण है, उनका कर्ता सोनी है और हथौड़ा साधन है - ऐसा नहीं है। ऐसी बात है। क्या कहा? देखो!

जैसे द्रव्य, क्षेत्र काल या भाव से सुवर्ण से जो... अर्थात् उसके गुण और पर्यायें **पृथक् दिखाई नहीं देते; कर्ता-करण-अधिकरणरूप से पीतत्वादिगुणों के...** आहा...हा...! यह सोना जो है... यह मिट्टी लो! इसमें जो घड़ा होता है, वह पर्याय है और उसमें अन्दर जो वर्ण-गंध-रस-स्पर्श है, वे गुण हैं। तो उन गुण-पर्यायों का कर्ता उनकी मिट्टी है। आहा...हा...! उस घड़े की पर्याय और वर्ण-गंध-गुण का कर्ता द्रव्य है, मिट्टी, द्रव्य कर्ता है, कुम्हार नहीं। आहा...हा...! यह गाथाएँ तो ऊँची हैं। **कर्ता-करण-**

अधिकरण... (ऐसा कहा है)। देखा ? सोने का पीलापन आदि गुण और कुण्डलादि पर्यायों का कर्ता सोना; उनका साधन सोना और उनका आधार सोना है। वे कुण्डलादि पर्यायें हुई, वे नीचे एरन है न एरन ? लोहे की! उसके आधार से हुई है – ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। उन कुण्डलादि पर्यायों का कर्ता, करण और आधार उनका द्रव्य-सुवर्ण है। सुवर्ण है, वह कुण्डलादि पर्यायों का कर्ता-करण और साधन है। उने कुण्डलादि पर्यायों का कर्ता सोनी और हथौड़ी आदि है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : छोटेपन से ऐसा सीखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटेपन से कहाँ से (सीखे होंगे ?) (छोटेपन में तो) वकालात लेने के लिए पढ़े थे। उस पढ़ाई में वकालात की और वकालात में फिर दूसरों को जिताया – ऐसा अभिमान किया। यह तो दृष्टान्त है। (बाकी दूसरे भी जो) दुकान पर बैठते हैं, तब क्या (होता है) ? यह आत्मा है, वह तो अपने गुण-पर्याय का कर्ता है और यह दुकान में बैठा, यह पैसा दिया या माल दिया अथवा माल लिया, उसका कर्ता आत्मा है ही नहीं। अरे रे... ! यह बात कैसे बैठे ? कहीं तत्त्व की खबर नहीं है और इसे धर्म-समकित हो जाये!! आहा...हा...! **पीतत्वादिगुणों के और कुण्डलादिपर्यायों के स्वरूप को धारण करके...** कौन ? **प्रवर्तमान सुवण के अस्तित्व से जिनकी उत्पत्ति होती है...** सोने के कारण... सोना है, उसके कारण पीलापन आदि गुण और कुण्डल की पर्याय का आधार है। सोना है वह पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि (पर्याय का) कर्ता है। सोना है वह पीलास आदि गुण और कुण्डल पर्याय का साधन है। आहा...हा...! **ऐसे पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादि पर्यायों से जो सुवर्ण का अस्तित्व है...** आहा...हा...! यह पीलापन आदि गुण और कुण्डलादि पर्यायें हैं, वह सुवर्ण का अस्तित्व है। वह तो **सुवर्ण का अस्तित्व है,** वह सुवर्ण का स्वभाव है... आहा...हा...! पीलासपने और कुण्डल की पर्यायपने होना यह सुवर्ण का स्वभाव है। आहा...हा...! सुवर्णकार ने कुण्डल की पर्याय की – (ऐसा) तीन काल में भगवान के मार्ग में नहीं है। अज्ञानी (विपरीत) मानकर मिथ्यात्व का सेवन करता है। आहा...हा...! उसका द्रव्य – सुवर्ण जो है, (कुण्डलादि पर्यायरूप हुआ है) आहा...हा...!

इसी प्रकार रोटी लो। रोटी! आटे की जो रोटी होती है, उस रोटी की पर्याय का कर्ता, साधन और आधार आटा है। उस रोटी की पर्याय का कर्ता स्त्री है या उसका बेलन है, वह कर्ता, करण नहीं है, कठिन काम है। **उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से जो द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देते...** पहले सुवर्ण का बात की थी, अब समस्त पदार्थों की (बात करते हैं।) **द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, या भाव से जो द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देते, कर्ता-करण-अधिकरणरूप से...** कौन? द्रव्य। अपने गुण-पर्याय का कर्ता द्रव्य; गुण-पर्याय का साधन द्रव्य; और गुण-पर्याय का आधार द्रव्य। आहा...हा...! नव तत्त्व है, प्रभु! छह द्रव्य हैं, वे भिन्न-भिन्न हैं। किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य से होवे - ऐसा अस्तित्व नहीं है। आहा...हा...! अमृतचन्द्राचार्य ने बहुत सूक्ष्म बात सिद्ध की है।

कर्ता-करण-अधिकरणरूप से गुणों के... (अर्थात्) वह द्रव्य के गुण, अर्थात् जैसे आत्मा के ज्ञान-दर्शन-आनन्दगुण और उनकी वर्तमान मतिश्रुत आदि (ज्ञान की पर्याय) उन गुण और पर्याय का कर्ता वह आत्मा है; उन गुण और पर्याय का साधन भी आत्मा है; उन गुण और पर्याय का आधार भी आत्मा है। आहा...हा...! है या नहीं अन्दर? देखो न?

कर्ता-करण-अधिकरणरूप से गुणों के और पर्यायों के स्वरूप को धारण करके... (कौन?) द्रव्य। प्रत्येक द्रव्य अपने त्रिकाल रहनेवाले गुणों और वर्तमान होनेवाली अवस्था-पर्याय, उस पर्याय और गुण का कर्ता-करण और आधार वह द्रव्य है। आहा...हा...! यह अंगुली है, वह ऐसे होती है, वह उसकी पर्याय है और उसमें वर्ण-गंध-रस गुण हैं। वे वर्ण-गंध-रस-गुण और उस पर्याय का आधार उसका परमाणु है। वह पर्याय ऐसे-ऐस चलती है, उसका कर्ता वह परमाणु है। आत्मा उसका कर्ता नहीं है - ऐसा कहते हैं।

भगवान अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त, कुन्दकुन्दाचार्य की (गाथा की) टीका करते हैं। भगवान के पास से (सुनकर आने के बाद) शास्त्र बनाये। शास्त्र में ऐसा कहते हैं - प्रभु तो ऐसा कहते हैं, भाई! आहा...हा...! बहुत दृष्टान्त आवें, तब समझना हो। **ऐसे**

गुणों और पर्यायों से जो द्रव्य का अस्तित्व है... लो, है ? ऐसे गुण और उनकी अवस्था से द्रव्य का होनापना है, उसका **वह स्वभाव है।..** आहा...हा... ! यह लकड़ी है, वह ऐसे-ऐसे होती है, यहाँ पड़ी है (फिर) ऐसी (सीधी) हुई, वह अवस्था पलटी है। उस अवस्था का कर्ता वे परमाणु हैं, उस अवस्था का कर्ता अंगुली नहीं, आत्मा नहीं, आत्मा की इच्छा नहीं। प्रत्येक द्रव्य - वस्तु के गुण और पर्याय का कर्ता उसका वह द्रव्य है, वह द्रव्य उसका करण अर्थात् साधन है और द्रव्य उसका आधार है परन्तु उस पर्याय का कर्ता दूसरा द्रव्य है - ऐसा मानना मिथ्यात्व, भ्रम, अज्ञान है। आहा...हा... ! कोष्ठक में लिया है। **(द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से सुवर्ण से भिन्न न दिखाई देनेवाले पीतत्वादिक और कुण्डलादिक का अस्तित्व वह सुवर्ण का ही अस्तित्व है क्योंकि पीतत्वादिक के और कुण्डलादिक के स्वरूप को सुवर्ण ही धारण करता है,...)** इस कुण्डल की पर्याय, कड़े की पर्याय को सुवर्ण धारण करता है। आहा...हा... ! उस पर्याय का कर्ता सुवर्ण है। आहा...हा... !

अक्षर पड़ते हैं न ऐसे अक्षर, ये अक्षर परमाणु की पर्याय है। इन अक्षर के जो परमाणु हैं उनका वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुण है और अक्षर है वह उनकी पर्याय है। उन गुण और पर्याय का कर्ता उसका परमाणु है। लिखनेवाला कहता है कि मैं यह अक्षर लिखता हूँ और कर्ता हूँ तो यह मिथ्यात्वभाव है। आहा...हा... ! है ?

क्योंकि पीतत्वादिक के और कुण्डलादिक के स्वरूप को सुवर्ण ही धारण करता है, इसलिए सुवर्ण के अस्तित्व से ही पीतत्वादिक की और कुण्डलादिक की निष्पत्ति-सिद्धि होती है; सुवर्ण न हो तो पीतत्वादिक और कुण्डलादिक भी न हों, इसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से द्रव्य से भिन्न नहीं दिखाई देनेवाले... वस्तु से पृथक् गुण और पर्याय देखने में नहीं आते। आहा...हा... ! **वह द्रव्य का ही अस्तित्व है...** उनमें कायम रहनेवाले गुण और वर्तमान पर्याय का आधार और कर्ता तो वह द्रव्य है। आहा...हा... ! यहाँ तो कहते हैं कि मैं पर की दया पालन कर सकता हूँ, यह बात मिथ्यात्व है। आहा...हा... ! क्योंकि पर की पर्याय है और पर के गुण हैं, वह तो उसके द्रव्य के कारण हैं, वह बचा है, वह पर्याय उसके द्रव्य के कारण है। यह कहता

है मैंने बचाया - ऐसी पर की पर्याय को मैंने किया, यह मान्यता अत्यन्त मिथ्यादृष्टि की है। आहा...हा...! ऐसा है।

पाँच-पचास हजार रुपये - नोट दान में दिये तो कहता है कि इन नोट के जो परमाणु हैं, उनके कारण वहाँ पर्याय ऐसी हुई है। उस पर्याय का आधार - जाने का आधार उसके परमाणु हैं परन्तु दूसरा व्यक्ति ऐसा कहता है कि मैंने यह पैसा दिया, यह अत्यन्त भ्रम और अज्ञान है। कहो, ऐसा है? **द्रव्य न हो तो गुण और पर्यायें भी न हों।...** यदि वह वस्तु न हो तो उसके गुण और पर्यायें भी न हों **ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।** आहा...हा...!

अथवा, जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से, जो पीतत्वादि गुणों से और कुण्डलादि पर्यायों से पृथक् नहीं दिखाई देता; कर्ता-करण-अधिकरणरूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके... आहा...हा...!

प्रश्न : गुण-पर्याय से सुवर्ण?

समाधान : गुण-पर्याय से सुवर्ण है। गुण-पर्याय वस्तुतः सुवर्ण का कर्ता है, सूक्ष्म बात है। द्रव्य अपने गुण-पर्याय का कर्ता-करण और अधिकरण, उसी प्रकार गुण-पर्याय द्रव्य के कर्ता-करण और अधिकरण हैं। अरे...रे...! ऐसी बात कहाँ? (सुनने को मिले) यह तो भेदज्ञान की बात है, प्रभु! प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्याय से परिणमित होता है। उस पर्याय का आधार उसका द्रव्य है। वह पर्याय दूसरा द्रव्य करे - ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहा...हा...! ऐसी बात। क्या कहते हैं?

जैसे द्रव्य से क्षेत्र से, काल से, या भाव से जो पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से पृथक् दिखाई नहीं देता, कर्ता-करण-अधिकरणरूप से सुवर्ण के स्वरूप को... ये पीलास आदि गुण और कुण्डलादि पर्याय सुवर्ण के स्वरूप को धारण कर रखते हैं। आहा...हा...! है? **सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से जिसकी निष्पत्ति होती है...** (जिसकी अर्थात्) द्रव्य की। उसके गुण और पर्याय कर्ता है, उससे वह द्रव्य सिद्ध होता है। आहा...हा...! है? नीचे फुटनोट में है। पीतत्वादिगुणों और कुण्डलादि पर्यायों से

(सुवर्ण का अस्तित्व निष्पन्न होने में उपजने में, या सिद्ध होने में मूलसाधन पीतत्वादि गुण और कुण्डलादि पर्यायें हैं।) आहा...हा...!

सुवर्ण लो, रोटी लो, पानी लो, पानी। आहा...हा...! जल! ऐसे जो (मुँह में) डलता है, वह जल की अवस्था और जल के परमाणुओं के गुणों से परमाणु का अस्तित्व है आहा...हा...! अथवा उस पानी का अस्तित्व उसके गुण और उसकी जो पर्याय होती है उसका आधार वह द्रव्य है। आहा...हा...! दूसरा कहता है कि मैंने पानी पिया और लिया, इस पानी का कार्य मैंने किया (यह मिथ्या मान्यता है।)

श्रोता : पानी का बर्फ बनाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बर्फ कौन बनावे, प्रत्येक पर्याय और गुण उस द्रव्य के कारण हैं। आहा...हा...! ऐसा है, बापू! वीतरागमार्ग ऐसा सूक्ष्म है। निश्चय और सत्य ही यह है, दूसरा व्यवहार है – ऐसा कहना वह तो कथनमात्र है; वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहा...हा...!

घड़ा कुम्हार ने बनाया, यह तो कथनमात्र की भाषा है, वरना घड़े की पर्याय और परमाणु के गुणों का आधार उस मिट्टी के परमाणु हैं, उन मिट्टी के परमाणुओं से घड़े की पर्याय हुई है, कुम्हार से नहीं। आहा...हा...! जगत् को ऐसा कठिन पड़ता है परन्तु क्या हो ? परमात्मा जिनेश्वरदेव यह बात करते हैं। आहा...हा...!

उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से गुणों से और पर्यायों से जो पृथक् दिखाई नहीं देता, कर्ता-करण-अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके... आहा...हा...! क्या कहते हैं ? वस्तु है, उसके गुण और पर्याय का कर्ता-करण-साधन और आधार द्रव्य है। अब, यहाँ गुलाँट खाता है कि गुण और पर्याय, वह द्रव्य की कर्ता, गुण और पर्याय, वह द्रव्य का करण साधन तथा गुण और पर्याय द्रव्य का आधार – ऐसी बात है, भाई! यह तो वीतराग-त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने ज्ञान में देखा – जैसा स्वरूप है, वैसा वर्णन किया। आहा...हा...! यहाँ तो (अभी यह मानते हैं कि) मैं उसका कर दूँ, उसे सुखी कर दूँ, दूसरे को दुःखी कर दूँ।

श्रोता : एक-दूसरे को एक-दूसरे की मदद करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : मदद कौन करे ? मदद की पर्याय किसे कहना ? आहा...हा... ! कठिन बात है, भाई !

यहाँ तो गुण-पर्याय का कर्ता आत्मा या द्रव्य (है - ऐसा पहले कहा) परन्तु अब द्रव्य का कर्ता, करण और आधार उसके गुण और पर्यायें हैं (ऐसा कहते हैं।) अरस-परस लिया है आहा...हा... ! कितनों ने ही तो जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा। जैन में जन्म लिया परन्तु जैन परमेश्वर का क्या कहना है ? (इसका पता नहीं है) दूसरे की मदद करो, भूखे को आहार दो, प्यासे को पानी दो ! यहाँ कहते हैं कि कौन दे ? सुन तो सही ! जिस परमाणु की अवस्था जिस क्षण में होती है, वह अवस्था और गुण उस द्रव्य के हैं; वह द्रव्य उनका कर्ता है और द्रव्य का कर्ता भी वह गुण और पर्याय है। गुण और पर्याय वह द्रव्य की कर्ता, द्रव्य का करण और द्रव्य का आधार है। वह पर्याय, द्रव्य का आधार ! आहा...हा... ! ऐसा है। फुरसत नहीं मिलती, बनियों को तो व्यापार के कारण फुरसत नहीं मिलती पूरे दिन पाप का धन्धा ! स्त्री-पुत्रादिक को सम्हालना और ब्याज पैदा करना और पैसा कमाना, उसमें धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं है। आहा...हा... !

यहाँ तो तत्त्व की बात है। एक परमाणु के गुण और पर्याय का आधार वह परमाणु है। यह लकड़ी जो है वह इस पुस्तक के आधार से रहा है - ऐसा नहीं है यह कहते हैं। उसकी पर्याय और गुण का आधार उसका द्रव्य है और उस गुण पर्याय के आधार से वह द्रव्य है। क्या कहा ? यह लकड़ी ऐसी (पुस्तक के आधार से रही है ?) (तो कहते हैं कि) नहीं; यह अपनी पर्याय और गुण के आधार से वह द्रव्य है और वह गुण और पर्याय कर्ता और द्रव्य उसका कार्य है। वस्तु ऐसी है, बापा ! आहा...हा... ! यह शीश पैन है देखो ! ऐसी ऊँची होती है, कहते हैं कि वह तो इसकी पर्याय है और इसके वर्ण, गंध, रस, गुण हैं, उन गुण और पर्याय का कर्ता वे परमाणु हैं और वे गुण-पर्याय कर्ता हैं और द्रव्य उनका कार्य है, आहा...हा... ! कुछ समझ में आया।

पहले यह कहा था कि सुवर्ण के गुण और पर्याय का कर्ता, करण वह द्रव्य है। कर्ता, साधन और आधार (वह द्रव्य है।) फिर यह कहा कि पीलास गुण और कुण्डल की पर्याय, वह द्रव्य की कर्ता, करण और आधार है। इस प्रकार प्रत्येक आत्मा और परमाणु हैं, उनके गुण और पर्याय कर्ता हैं और द्रव्य से उनकी सिद्धि होती है तथा उस द्रव्य

की सिद्धि उसके गुण-पर्याय से होती है। गुण-पर्याय की सिद्धि उसके द्रव्य की सिद्धि से होती है – ऐसी बात है। ज्ञेय अधिकार है, यह सम्यग्दर्शन का अधिकार है। पहला ज्ञान अधिकार ९२ गाथा में पूरा हुआ (और) ९३ से २०० (गाथा) तक ज्ञेय अधिकार है।

भगवान ने केवलज्ञान में ज्ञेय देखे। जितने अनन्त ज्ञेय हैं-ज्ञान में ज्ञात – ऐसी वस्तुएँ हैं, उस प्रत्येक वस्तु की शक्ति अर्थात् गुण और वर्तमान अवस्था, उस-उस द्रव्य को सिद्ध करते हैं अर्थात् कर्ता, करण, गुण-पर्याय है। द्रव्य के गुण-पर्याय कर्ता, करण और आधार हैं और उसके गुण-पर्याय का कर्ता, (करण) और आधार वह द्रव्य है। (ऐसा) अरस-परस है। है या नहीं इसमें? ऐसा मार्ग है, भाई!

भगवान ने अनन्त द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्माएँ अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय (और) एक आकाश। इन प्रत्येक द्रव्य की जो वर्तमान पर्याय होती है, उस पर्याय का आधार उसका द्रव्य है। वह पर्याय परद्रव्य से होती है, यह बात तीन काल में नहीं है। आहा...हा...! इसी प्रकार वह पर्याय द्रव्य की कर्ता, करण और आधार है। द्रव्य तो गुण-पर्याय का कर्ता-करण और आधार है परन्तु गुण-पर्याय, उस द्रव्य के कर्ता, करण – साधन हैं। उनसे द्रव्य है, आहा...हा...! अनजान व्यक्ति को तो ऐसा लगता है कि वीतराग का मार्ग ऐसा होगा!?

श्रोता : आप क्या कहते हो यह पकड़ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमेश्वर तीन लोक के नाथ जिनेश्वर महाविदेह में विराजमान हैं, सीमन्धर प्रभु! उनकी यह वाणी है।

कहते हैं... आहा...हा...! यह होंठ हिलते हैं न? यह पर्याय है। यह पर्याय इन परमाणुओं की है और इन परमाणुओं में रंग, गंध, रस, इनके गुण हैं। उन गुण और पर्याय से वह द्रव्य सिद्ध होता है अर्थात् गुण और पर्याय द्रव्य के कर्ता, करण और आधार हैं तथा उन परमाणुओं के गुण और यह पर्याय होती है, उसका कर्ता (करण) आधार द्रव्य है। पागल जैसी बातें लगती हैं! पूरे दिन ऐसा करते हैं, पूरे दिन हम कर सकते हैं, यह सब करते हैं। भाई! तुझे पता नहीं है! तत्त्व की-वस्तु की कैसी स्थिति-मर्यादा है। उसका तुझे पता नहीं है और तेरी विपरीत मान्यता है, वह तो मिथ्यात्व है। आहा...हा...!

जब अज्ञानी सामायिक करने बैठता है, तब णमो अरहन्ताणं... णमो सिद्धाणं... बोलता है। तो कहते हैं कि णमो अरहन्ताणं की जो भाषा हुई, वह पर्याय है और उन परमाणुओं में गुण है, उन गुण और पर्यायों का कर्ता परमाणु है, आत्मा नहीं। णमो अरहन्ताणं भाषा का कर्ता आत्मा नहीं है। समझ में आता है? उसी प्रकार णमो अरहन्ताणं (बोलने का) विकल्प उत्पन्न हुआ, उस विकल्प का कर्ता और साधन, वह जीवद्रव्य है। उस विकल्प का कर्ता कोई कर्म है और बोलने का हुआ, इसलिए वह विकल्प हुआ - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! भगवान की बातें (अज्ञानी को) पागल जैसी लगती हैं। दुनिया पागल है, एक द्रव्य-दूसरे द्रव्य की पर्याय को करे (ऐसा माननेवाला) बड़ा पागल है। आहा...हा...!

दूसरे दुःखी हैं, उन्हें मदद तो कर सकते हैं या नहीं? नहीं? तब क्या दुःखी देखकर बैठे रहना? भाई! तुझे पता नहीं है, सामनेवाला जीव दुःखी होता है, वह तो उसके राग और अज्ञान के कारण दुःखी है; उसे प्रतिकूल संयोग है, इसलिए दुःखी है - ऐसा नहीं है। प्रतिकूल संयोग की पर्याय और उसके गुण का आधार उसके परमाणु हैं और उसे जो दुःख होता है, उस दुःख की पर्याय और गुण का आधार उसका आत्मा है। आहा...हा...! अरे रे...! यह कैसे बैठे? यही कहते हैं।

कर्ता, करण, अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके... देखा! आत्मा में या परमाणु में यह जो गुण हैं और आत्मा की पर्याय या परमाणु की (जो पर्याय है), उस गुण-पर्याय का आधार-उसके कारण द्रव्य है - उसके आधार से द्रव्य है। उस द्रव्य का वह गुण-पर्याय कर्ता है, द्रव्य का वह साधन है और द्रव्य का वह आधार है। पर्याय, वह द्रव्य का आधार है! पर्याय, द्रव्य के आधार से होती है और पर्याय का आधार द्रव्य है। आहा...हा...! पर्याय के आधार से द्रव्य है और द्रव्य के आधार से पर्याय है। आहा...हा...! भगवान ने जो अनन्त द्रव्य देखें हैं, उनमें प्रत्येक द्रव्य के गुण और पर्याय का कारण उसका द्रव्य है और उसके गुण और पर्याय, द्रव्य के कारण हैं, अर्थात् द्रव्य को सिद्ध करने में कारण हैं। यह तो समझ में आ सके - ऐसा है, भाई! आहा...हा...! यह तो वीतराग की कॉलेज है! परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की कॉलेज में तो पहले कितनी

भाषा कुछ समझी हुई हो तो यह समझ में आये, वरना तो यह समझ में नहीं आती। आहा...हा...!

भगवान की पूजा के समय स्वाह... स्वाह... भाषा होती है। कहते हैं कि वह भाषा की पर्याय उसके परमाणु से हुई है, आत्मा से नहीं। आहा...हा...! ऐसी जो स्वाह (करने की) हाथ की पर्याय हुई है; उसका आधार उसके परमाणु हैं, आत्मा नहीं। यह बात किस प्रकार बैठे? यह तो वीतराग केवली परमात्मा का मूल तत्त्व है और जहाँ मूल तत्त्व का ही पता नहीं, वहाँ उसे समकित और धर्म कैसा? आहा...हा...!

ऐसे द्रव्य का मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ... आहा...हा...! क्या कहा? **गुणों और पर्यायों से जिसकी निष्पत्ति होती है...** (किसकी?) द्रव्य की। **ऐसे द्रव्य का मूल साधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ...** आहा...हा...! जो परमाणु है और आत्मा द्रव्य है, उसके गुण-पर्याय हैं, वह उसका मूलसाधन है, उन्हें पर साधन नहीं है। आहा...हा...! यह पृष्ठ फिरता है। यह पृष्ठ परमाणुओं का है - पुद्गल-स्कन्ध है। इस स्कन्ध की यह पर्याय है, इस पर्याय का कर्ता यह स्कन्ध है। इस अंगुली के कारण यह ऊँचा हुआ है - ऐसा नहीं है। वरना अनन्त द्रव्य पृथक् नहीं रह सकते। आहा...हा...! ऐसी बात है। यहाँ तो जहाँ हो वहाँ मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... मैंने लिखा... और मैंने पत्र बनाया और मैंने यह किया... (ये सब) मिथ्या अभिमान है। आहा...हा...!

ऐसे द्रव्य का मूलसाधनपने... ऐसी भाषा ली है। देखा? आहा...हा...! सोने में पीलास गुण और पर्याय मूलसाधन लिया था न? इसी प्रकार इसके गुण और पर्याय मूल साधन हैं। आहा...हा...! द्रव्य तो पर्याय का कर्ता-करण-साधन है परन्तु पर्याय और गुण उसका साधन है (अर्थात्) द्रव्य को सिद्ध करने का साधन है। आहा...हा...! यह पर्याय हुई, वह दूसरा एक द्रव्य थाए इसलिए यह दूसरा द्रव्य पर्याय सिद्ध करता है - ऐसा नहीं है। दूसरे द्रव्य की पर्याय उस द्रव्य के कारण हुई है और इस द्रव्य की पर्याय इस द्रव्य के कारण हुई है और इस मूल साधन (ऐसे) गुण और पर्याय से द्रव्य सिद्ध होता है। दूसरों के गुण-पर्याय से उनका द्रव्य सिद्ध होता है और इसके गुण-पर्याय से आत्मा का (द्रव्य) सिद्ध होता है। आहा...हा...!

मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (पीतत्वादिक से और कुण्डलादिक से भिन्न न दिखाई देनेवाले सुवर्ण का अस्तित्व वह पीतत्वादिक और कुण्डलादिक का ही अस्तित्व है, क्योंकि सुवर्ण के स्वरूप को पीतत्वादिक और कुण्डलादिक ही धारण करते हैं, इसलिए... सुवर्ण को पीलास (गुण) और कुण्डलादिक पर्याय धारण करते हैं, कहते हैं आहा...हा...! है? **पीतत्वादिक और कुण्डलादिक के अस्तित्व से ही सुवर्ण की निष्पत्ति होती है; पीतत्वादिक और कुण्डलादिक न हों तो सुवर्ण भी न हो; इसी प्रकार गुणों से और पर्यायों से भिन्न न दिखाई देनेवाले...** द्रव्य... द्रव्य...! वह-वह द्रव्य अर्थात् वस्तु उसके गुण अर्थात् त्रिकाली शक्तियाँ-भाव और उनकी वर्तमान होनेवाली अवस्था (ऐसे) **गुणों से और पर्यायों से भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्य का अस्तित्व वह गुणों और पर्यायों का ही अस्तित्व है..** द्रव्य का अस्तित्व वह गुण और पर्यायों का ही अस्तित्व है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! और गुण-पर्याय का अस्तित्व, वह द्रव्य के कारण है। अरस-परश है। आहा...हा...!

दूसरे द्रव्य के कारण दूसरे द्रव्य में कुछ होता है - ऐसा वीतरागमार्ग में नहीं है। दूसरे का द्रव्य दूसरे को कुछ करे तो जगत् का ईश्वरकर्ता माननेवाले हैं वैसा जैन में रहनेवाले हैं। एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की (पर्याय को) करती है, वे जैन में रहनेवाले सब मिथ्यादृष्टि हैं; जैसे, ईश्वर कर्ता माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। इसी प्रकार जैन के सम्प्रदाय में रहनेवाले एक द्रव्य-दूसरे द्रव्य की पर्याय को करता है - ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि जैन नहीं हैं। आहा...हा...! ऐसा कठिन काम है। बापा! सूक्ष्म बात है!

क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को गुणों और पर्यायें ही धारण करती हैं, इसलिए... आहा...हा...! पहले यह कहते थे कि गुण और पर्याय को द्रव्य धारण करता है, अब कहते हैं कि गुण और पर्याय द्रव्य को धारण करते हैं, समझ में आया कुछ? (इस प्रकार) **द्रव्य की निष्पत्ति होती है, गुणों और पर्यायें न हो तो द्रव्य भी न हो - ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है।**

भाषा हो-होंठ हिलें, शरीर चले, कलम चले, यह सब पर्यायें उनके परमाणु की

पर्याय है। यह आत्मा वह पर्याय करता है - ऐसा तीन काल में नहीं है। आत्मा बोलता है, उस बोलने की पर्याय का कर्ता आत्मा है, यह त्रिकाल झूठ है - ऐसी बातें हैं। गुणों और पर्यायों द्रव्य का आधार है और द्रव्य, गुण और पर्यायों का आधार है; अरस-परस है। द्रव्य है, उसका कर्ता-करण-साधन गुण-पर्यायें हैं और उन गुण-पर्यायों का कर्ता-करण-अधिकरण द्रव्य है। आहा...हा... ! क्या भगवान की शैली ! वीतराग के सिवाय यह कहीं नहीं है। जिनेश्वरदेव, वह भी दिगम्बर धर्म में यह बात आयी है; अन्यत्र कहीं नहीं है। दूसरी सर्वत्र सब में गड़बड़ चलाया है, दिगम्बर के नाम धरानेवाले भी गड़बड़ चलाते हैं।

ऐसा अस्तित्व वह द्रव्य का स्वभाव है। विशेष कहेंगे....

प्रवचन नं. ९६ **दिनाङ्क ०६ जून १९७९**

प्रवचनसार गाथा ९६। कोष्ठक में आया है न ? १८५ पृष्ठ पर है। कोष्ठक में है। **(जिस प्रकार द्रव्य का और गुण-पर्याय का एक ही अस्तित्व है...)** प्रत्येक पदार्थ -द्रव्य जो है, उसका (और) गुण-पर्याय का अस्तित्व एक ही है। गुण-पर्याय का अस्तित्व अलग और द्रव्य का अस्तित्व अलग - ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! **(ऐसा स्वर्ण के दृष्टान्तपूर्वक समझाया...)** कल आया था। **(उसी प्रकार अब द्रव्य का और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का भी एक ही अस्तित्व है...,)** यह तो गुण-पर्याय में भेद किये हैं, गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय तथा ध्रुव। पर्याय में उत्पाद-व्यय आये, ध्रुव में गुण आये। **(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का भी एक ही अस्तित्व है, ऐसा सुवर्ण के दृष्टान्तपूर्वक बताया जा रहा है)**।

(जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, या भाव से सुवर्ण से जो...) (जो अर्थात्) जो कुण्डल आदि उत्पाद, बाजूबंध आदि व्यय और पीलास आदि ध्रुव। **जो पृथक् नहीं दिखाई देते...** सोने से उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव अलग दिखाई नहीं देते। है ? **पृथक् दिखाई नहीं देते, कर्ता-करण-अधिकरणरूप से...** आहा...हा... ! सुवर्ण की जो यह कुण्डल अवस्था होती है और गुण रहते हैं, उसका कर्ता द्रव्य है। सुवर्ण में से उत्पाद-व्यय पर्याय होती है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहा है (अर्थात्) यहाँ उत्पाद-व्यय की बात है।

पहले गुण-पर्याय का लिया था, सुवर्ण में से जो गहनों की पर्याय होती है, उसका उत्पादक सुवर्ण-सोना है, सुवर्णकार नहीं। आहा...हा...!

प्रश्न : हथौड़ा और ऐरन के बिना होता है ?

समाधान : हथौड़ा और ऐरन उसका (अपना) काम नहीं करते ? हथौड़ा की पर्याय है, उसका कर्ता उसका द्रव्य है। हथौड़ा जो ऐसे-ऐसे होता है, उस पर्याय का कर्ता उसका द्रव्य है। आहा...हा...!

कुण्डलादि उत्पादों के, बाजूबंधादि व्ययों के और पीतत्वादि ध्रौव्यों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान सुवर्ण के अस्तित्व से जिनकी निष्पत्ति... सुवर्ण की अस्ति से ही वे गुण और पर्यायें हैं। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय और ध्रुव। यह सुवर्ण की जो कुण्डल की अवस्था होती है, पहले बाजूबंध का पर्याय हो उसका व्यय होता है और पीतत्वादि ध्रुव रहते हैं, उसका कर्ता, करण-साधन सुवर्ण है। **ऐसे कुण्डलादि उत्पाद, बाजूबंधादि व्यय...** (अर्थात्) अवस्था, पूर्व की अवस्था का व्यय **और पीतत्वादि ध्रौव्यों से जो सुवर्ण का अस्तित्व है, वह सुवर्ण का स्वभाव है...** इस सुवर्ण का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप रहना, उसका कर्ता-करण वह सुवर्ण है। वह सुवर्ण का स्वभाव है। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहा...हा...! ज्ञेय अधिकार है न! यह समकित का वास्तविक अधिकार है। आहा...हा...!

उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, या भाव से जो द्रव्य से पृथक् दिखाई नहीं देते, कर्ता-करण-अधिकरणरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान... है ? द्रव्य स्वयं ही उसकी पर्याय की उत्पत्ति का कर्ता-करण और अधिकरण है। आहा...हा...! (इस प्रकार प्रवर्तमान द्रव्य के अस्तित्व से) **जिनकी निष्पत्ति होती है, ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जो द्रव्य का अस्तित्व है, वह स्वभाव है। (द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, या भाव से द्रव्य से भिन्न दिखाई न देनेवाले उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों का अस्तित्व है, वह द्रव्य का ही अस्तित्व है; क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों के स्वरूप को द्रव्य ही धारण करता है, इसलिए...)** वह सोना ही तीनों को धारण करता है। आहा...हा...! **(द्रव्य के अस्तित्व से ही उत्पाद, व्यय**

और ध्रौव्यों की निष्पत्ति होती है यदि द्रव्य न हो तो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भी न हों - ऐसा अस्तित्व, वह द्रव्य का स्वभाव है..) भाषा तो सादी है परन्तु (भाव तो गहरे हैं) आहा...हा...!

अथवा जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से कुण्डलादि उत्पादों से बाजूबंधादि व्ययों से पीतत्वादि ध्रौव्यों से जो पृथक् दिखाई नहीं देता, कर्ता-करण-अधिकरणरूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान कुण्डलादि उत्पादों बाजूबंधादि व्ययों और पीतत्वादि ध्रौव्यों से जिसकी निष्पत्ति होती है... (जिसकी अर्थात्) द्रव्य की; **ऐसे सुवर्ण का, मूल साधनपने से...** आहा...हा...! **उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है। उसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जो पृथक् दिखाई नहीं देता...** आहा...हा...! **कर्ता-करण-अधिकरणरूप से...** आहा...हा...! यह द्रव्य जो है, उसकी उत्पाद-पर्याय है (वह उसका कर्ता है।) वे पर्याय उसका कर्ता हैं, द्रव्य कर्ता! पहले द्रव्य उसका कर्ता है - ऐसा लिया था। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का द्रव्य कर्ता है। (यहाँ कहते हैं कि) यह उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य द्रव्य के कर्ता हैं।

यदि उत्पाद की पर्याय बाहर न हो तब तो द्रव्य का कर्तापना नहीं रहता। इसमें बात समझ में आती है ? द्रव्य की एक-एक पर्याय अनादि-अनन्त है। उसमें वर्तमान पर्याय प्रगट न हो तो पर्याय में द्रव्य का जो कर्ता, करणपना है, वह नहीं रहता। कुछ समझ में आता है ? आहा...हा...! इस प्रकार बात सिद्ध की है। भूत और भविष्य की पर्यायें तो द्रव्य में शक्तिरूप रही है परन्तु वर्तमान पर्याय है, वह यदि द्रव्य में मिल जाये तो पर्याय, द्रव्य का कर्ता है, यह भी नहीं रहता। आहा...हा...! समझ में आया कुछ ?

जो इसकी पर्याय होती है, (दृष्टान्तरूप से) सुवर्ण की कुण्डल (पर्याय) हुई, वह पर्याय यदि प्रगट न हो तो सुवर्ण का कर्तापना वह पर्याय है, वह पर्यायकर्ता न रहे तो द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...! है ? **कर्ता-करण-अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके...** पहले सुवर्ण की बात थी। अब, यहाँ प्रत्येक पदार्थ की बात है। **कर्ता-करण-अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप धारण करके...** वस्तु है, उसके

उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य - ये तीन द्रव्य के कर्ता हैं। आहा...हा...! द्रव्य की सिद्धि इस उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से होती है। आहा...हा...! बहुत सिद्धान्त! यदि प्रगट पर्याय न हो और वर्तमान पर्याय भी अन्दर (मिल) जाये तो द्रव्य को (सिद्ध करनेवाली) उत्पादपर्याय (स्वयं) कर्ता-करण-साधनपने नहीं रहते, तब तो द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। कुछ समझ में आया? आहा...हा...! सम्पूर्ण द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता क्योंकि उत्पाद है वह कर्ता है, प्रगट पर्याय जो है, वह द्रव्य की कर्ता है; प्रगट पर्याय है, वह द्रव्य का करण-साधन है; प्रगट पर्याय है, वह द्रव्य का अधिकरण है - आधार है, तीन करण लिये हैं। आहा...हा...! भाषा जरा (कठिन) है परन्तु समझ में आवे ऐसा है।

श्रोता : मूल साधन कहा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मूल साधन है। वहाँ ऐसा शब्द प्रयोग किया है। पहले दूसरे प्रकार से बात की थी कि द्रव्य उनका कारण है। यह तो (कहते हैं कि) उत्पाद-व्यय-ध्रुव द्रव्य का मूल साधन है - ऐसा शब्द प्रयोग किया है, भाई! द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का साधन है, वहाँ तक साधारण बात की थी। आहा...हा...! धीमे से, धीरे से समझना प्रभु! यह तो (वीतराग का) मार्ग है।

जो वस्तु है वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की कर्ता, करण और अधिकरण है, यह साधारण बात की है परन्तु यहाँ जो द्रव्य है, उसमें यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो तो उत्पाद-व्यय ध्रौव्य, द्रव्य के कर्ता हैं, वह द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...! यह वेदान्तवादी पर्याय को नहीं मानते। (ऐसा कहते हैं कि) पर्याय नहीं, (मात्र) द्रव्य! परन्तु पर्याय नहीं होती। भाई! एक प्रगटरूप पर्याय नहीं हो तो वह पर्याय, द्रव्य की कर्ता है - (वह सिद्ध नहीं होता)।

श्रोता : द्रव्य को सिद्ध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय द्रव्य को सिद्ध करती है। द्रव्य, द्रव्य को सिद्ध नहीं करता; पर्याय, द्रव्य को सिद्ध करती है। आहा...हा...! कठिन बात है। यह तो उसमें आया है अनित्य, नित्य का निर्णय करता है। भाई! चिद्विलास में! आहा...हा...! ऐसे जो अनन्त द्रव्य हैं, उनकी वर्तमान पर्याय प्रगट न हो और उस पर्यायरहित द्रव्य हो अथवा वर्तमान

पर्याय अन्दर में गयी हो तो वह पर्याय, द्रव्य की कर्ता-करण साधन और अधिकरण है (और वही न हो) तो द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...! कुछ समझ में आया? वेदान्त प्रगट पर्याय को मानते ही नहीं, अकेला ध्रुव (मानते हैं)। आहा...हा...! परन्तु वह ध्रुव है, उसे सिद्ध करनेवाला कौन? ध्रुव, ध्रुव को सिद्ध करता है? उसकी जो पर्याय है – उत्पाद-व्यय की जो पर्याय है, वह उसे सिद्ध करती है। 'यह द्रव्य है' उसे उत्पाद-व्यय सिद्ध करते हैं। जो प्रगट पर्याय है, वह द्रव्य को सिद्ध-साबित करती है।

दूसरे प्रकार से कहें तो यह तो अस्तित्वगुण की व्याख्या ली है परन्तु जो सम्पूर्ण पूर्णानन्द प्रभु है, जो पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान आदि अखण्ड एक द्रव्यस्वरूप है, उसकी पर्याय से, उसकी सिद्धि होती है अर्थात् पर्याय से उसका निर्णय होता है।

श्रोता : पुत्र से पिता की सिद्धि होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुत्र, पिता कुछ नहीं है; किसी के पुत्र-पुत्री हैं ही नहीं। आहा...हा...! यहाँ तो आत्मा के अथवा प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद-व्यय और ध्रुव न होवे तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तो द्रव्य को सिद्ध करते हैं। यदि उसमें उत्पाद-पर्याय न हो, व्यय पर्याय न हों, ध्रौव्य न हो तो द्रव्य को सिद्ध करनेवाला (कोई) नहीं रहता। आहा...हा...! वेदान्त, सर्वव्यापक मानकर पर्याय को उड़ा देता है। प्रगट पर्याय है, वह प्रगट परिणमन है ही नहीं – ऐसा मानता है। कुछ समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित हैं) धीमे से (समझना)। यह तो अध्यात्म तत्त्व की सूक्ष्म बात है, प्रभु! इस वर्तमान पर्याय में, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि की पर्याय प्रगट न हो तो वह पर्याय, द्रव्य को सिद्ध करती है, वह तो रहता नहीं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। नीचे है, देखो! 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्य के कर्ता...' है, नीचे फुटनोट है। आहा...हा...! अरे! उत्पाद की पर्याय प्रगट न हो तो द्रव्य को सिद्ध नहीं करे। अरे! पूर्व की पर्याय का व्यय न हो तो द्रव्य को सिद्ध नहीं करे और उसमें कायम रहनेवाला ध्रौव्यपना है, वह न हो तो ध्रुव सिद्ध नहीं होता। ध्रुवपना अर्थात् उसका सत्त्वपना, वह ध्रौव्य ऐसा आया है न! भाई! ध्रौव्य, ध्रुव को सिद्ध करता है। ध्रौव्यपना कर्ता है, वह ध्रुव का कर्ता है, ध्रुव का ध्रौव्यकर्ता है। ध्रुव का ध्रौव्य ही साधन

है, ध्रुव का ध्रौव्य ही अधिकरण है – ऐसी बात है! ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को समझने में (कठिन पड़ता है) आहा...हा...! (वेदान्त) निश्चयाभासी हो गये हैं। वेदान्त हैं, उन्होंने प्रगट पर्याय को नहीं माना है। कुछ समझ में आता है? श्रीमद् ने कहा है कि पर्याय को नहीं माना है, इसलिए वेदान्त निश्चयाभासी है, श्रीमद् में है।

इसमें तो क्या कमी (होगी)? प्रवचनसार में क्या वस्तु (का वर्णन किया है)! ओ...हो...हो...! यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट न हो तो वह पर्याय, द्रव्य को सिद्ध करती है, (यह बात नहीं रहती।) वह द्रव्य सिद्ध नहीं हो सकता, आहा...हा...! सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की पर्याय, सम्यक्‌चारित्र की पर्याय प्रगट परिणमन में बाह्य उत्पादरूप न हो तो वह द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। उस पूर्व की पर्याय का व्यय न हो तो वह द्रव्य सिद्ध नहीं होता और ध्रौव्यपना न हो तो भी द्रव्य सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...! गजब बात है! दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है!! आहा...हा...! थोड़े में भी इतना अधिक समाहित कर दिया है... इतना समाहित कर दिया है! आहा...हा...! ऐसी बात (सम्प्रदाय के) बत्तीस सूत्र में (कहीं पढ़ने को नहीं मिलती)। इकत्तीस हजार श्लोक, वर्षों वर्ष, एक-दो महिने पढ़ते परन्तु यह बात नहीं, बापा! आहा...हा...!

यह वस्तु तो अन्तर पूर्ण अखण्ड परमात्मस्वरूप है, यदि उसकी पर्याय न हो तो उसे सिद्ध करने का साधन नहीं रहा। तब तो द्रव्य भी सिद्ध नहीं होता है। आहा...हा...! यदि द्रव्य न हो तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सिद्धि नहीं होती। यह बात पहले आ गयी है। अब यहाँ (कहते हैं कि) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो तो द्रव्य सिद्ध नहीं होता। समझ में आता है न? भाषा तो सादी है परन्तु (भाव गम्भीर है)। इसी प्रकार भूत और भविष्य की पर्यायें वर्तमान में नहीं हैं परन्तु वर्तमान की पर्याय वर्तमान में प्रगट न हो और अन्दर में हो तो वह द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। (वर्तमान पर्याय को नहीं माननेवाले) निश्चयभासी हैं, मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! ऐसी बात है, भाई! कुछ समझ में आता है? बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! आहा...हा...!

द्रव्य तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का कर्ता, साधन और आधार है, (यह तो) ठीक, परन्तु यह तो उत्पाद की पर्याय कर्ता, करण-साधन और अधिकरण है; ऐसे ही व्यय भी

कर्ता, साधन और अधिकरण; ऐसे ही ध्रौव्य भी कर्ता, साधन और अधिकरण है। इसका ? द्रव्य का। आहा...हा... ! यहाँ तो ऐसा ख्याल में आया कि जो ध्रुव त्रिकाली सच्चिदानन्दप्रभु पूर्ण है, उसकी पर्याय वहाँ झुकती है, तब यह द्रव्य है - ऐसा उसे सिद्ध होता है। भाई ! (क्या) कहा समझे ? वर्तमान में द्रव्य (जानने में) न आवे तो द्रव्य है - ऐसा सिद्ध कहाँ से हुआ ? द्रव्य है - ऐसा आया कहाँ से ? आहा...हा... ! धीरे से समझना। यदि प्रगट परिणमन-पर्याय न हो तो यह द्रव्य है, ऐसा जाना किसने ? द्रव्य तो ध्रुव है, उसमें जानने की क्रिया तो है नहीं। कुछ समझ में आया ? परिणमन है, वह द्रव्य को सिद्ध करता है। आहा...हा... ! (वेदान्त यह कहता है कि) वह तो अकेला ध्रुव है, जाओ ! आहा...हा... ! यहाँ यह कहते हैं। सूक्ष्म बात है भाई !

यह प्रभु पूर्ण आनन्द और पूर्ण अखण्डानन्द द्रव्य प्रभु की दृष्टि होने पर... आहा...हा... ! वह दृष्टि की पर्याय, द्रव्य को सिद्ध करती है, द्रव्य को झुकती है। आहा...हा... ! वह व्यय है, वह भी द्रव्य को सिद्ध करता है। आहा...हा... ! भले ही व्यय हो गया परन्तु सत् था न ! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत् है तो व्यय भी सत् है। आहा...हा... ! वह पूर्व की अवस्था व्यय हुई, वह भी द्रव्य को सिद्ध करती है। व्यय कर्ता, साधन और अधिकरण होकर द्रव्य को सिद्ध करता है। आहा...हा... !

जिस प्रकार उत्पाद की पर्याय कर्ता होकर, साधन होकर, अधिकरण होकर, प्रगट पर्याय द्रव्य को सिद्ध करती है, उसी प्रकार प्रगट पर्याय गयी... आहा...हा... ! वह व्यय भी द्रव्य को सिद्ध करता है। देखो तो सही ! आहा...हा... ! वह व्यय कर्ता, व्यय साधन-करण और अधिकरण - ऐसे तीन बोल (कहे हैं।) छह कारक में से तीन कारक लिये हैं। यहाँ कर्मकारक, अपादानकारक और सम्प्रदान (कारक) तीन (कारक) नहीं लिये हैं। आहा...हा... ! वरना यहाँ तो पर्याय द्रव्य को सिद्ध करती है - ऐसा कहा है न ? वरना तो पर्याय जो है, वह षट्कारकरूप से परिणमति पर्याय उत्पन्न होती है, आहा...हा... ! परन्तु यहाँ तो पर्याय से द्रव्य सिद्ध करना है। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पाद है और वह पर्याय, द्रव्य की कर्ता, द्रव्य का करण-साधन और अधिकरण है। वह समकित की प्रगट पर्याय, द्रव्य की कर्ता, द्रव्य की करण, और द्रव्य का अधिकरण है। आहा...हा... ! इसमें एक न्याय बदले तो पूरा तत्त्व बदल जाता है। आहा...हा... ! समझ में आता है कुछ ?

कर्ता-करण-अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके... देखो! कौन? उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य; **कर्ता-करण-अधिकरणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जिसकी निष्पत्ति होती है...** आहा...हा...! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत् आहा...हा...! उन उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से द्रव्य की सिद्धि होती है, तब उसका द्रव्य लक्ष्य में आता है। यहाँ आत्मा पर उतारा है इसलिए (ऐसा कहा है।) दूसरे में तो कुछ लक्ष्य में आवे ऐसा नहीं है। दूसरे में तो उसकी पर्याय, उत्पाद-व्यय और ध्रुव द्रव्य को सिद्ध करते हैं इतना, परन्तु वे द्रव्य को सिद्ध करते हैं यह जाननेवाला आत्मा है। क्या कहा यह? दूसरे जो अनन्त जड़द्रव्य हैं, उनके उत्पाद-व्यय और ध्रुव द्रव्य के कर्ता, करण - साधन हैं। वे द्रव्य कुछ जानते हैं? वह जड़ जानता है? आहा...हा...! यह जाननेवाला तो भगवान ज्ञान है। वह ज्ञान ऐसा जानता है कि यह उत्पाद-व्यय और ध्रुव है, वे द्रव्य के कर्ता-करण और अधिकरण हैं - ऐसा ज्ञान जानता है। इस प्रकार अपना ज्ञान भी, जो वर्तमान पर्याय प्रगट है - समकित की, ज्ञान की, शान्ति की इत्यादि की, यह उत्पादपर्याय है, वह कर्ता साधन-करण है और अधिकरण द्रव्य का है। आहा...हा...!

श्रोता : मिथ्यात्व के व्यय से द्रव्य सिद्ध होता है।

समाधान : उत्पाद-व्यय और ध्रुव से द्रव्य सिद्ध होता है। मिथ्यात्व का व्यय हुआ, समकित की उत्पत्ति हुई और ध्रुवरूप से रहा, ये तीनों द्रव्य को सिद्ध करते हैं। ठीक पूछा, (क्योंकि) व्यय मिथ्यात्व का है न! मिथ्यात्व का व्यय, समकित की उत्पत्ति-प्रगट पर्याय की उत्पत्ति और प्रगट पर्याय थी, उसका व्यय और ध्रुव का ध्रौव्यपना - उसका भाव - ये तीनों ही कर्ता, करण और अधिकरण द्रव्य को सिद्ध करते हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म... सूक्ष्म! बनियों को व्यापार-धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती।

श्रोता : इससे सिद्ध होते हैं, द्रव्य से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध होते हैं और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से द्रव्य सिद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध होते हैं... आहा...हा...! और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से द्रव्य सिद्ध होता है। अभी यह अधिकार है। पहला दूसरा

अधिकार दूसरा गया। पहला अधिकार द्रव्य से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध होते हैं - ऐसा गया। फिर इस अधिकार में अब उत्पाद-व्यय-ध्रुव से (द्रव्य सिद्ध होता है - ऐसा कहते हैं।) उत्पाद-व्यय-ध्रुव कर्ता है। इस कर्ता का कार्य दिखता है, भले ही कर्म नहीं लिया परन्तु वह कर्ता, द्रव्य को सिद्ध करता है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात। आहा...हा...!

सम्यग्दर्शन होने पर उस पर्याय का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय और कायम ऐसे ध्रुवपने का भाव - ध्रौव्यभाव, ये तीनों कर्ता-करण और अधिकरण द्रव्य को साबित करते हैं। आहा...हा...! जिसे उत्पाद की पर्याय प्रगट नहीं है, उसे द्रव्य ही सिद्ध नहीं हुआ। आहा...हा...! समझ में आया कुछ? वेदान्त की लाईन हो गयी! जिसे प्रगट पर्याय है, एक समय की पर्याय प्रगट है, वह प्रगट पर्याय द्रव्य को सिद्ध करती है। यदि पर्याय प्रगट नहीं हो तो द्रव्य को सिद्ध कौन करे? आहा...हा...! समझ में आया कुछ?

कर्ता-करण-अधिकारणरूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके... 'द्रव्य के स्वरूप को धारण करके' (ऐसा कहा!) उत्पाद में द्रव्य के स्वरूप को धारण किया, व्यय ने द्रव्य के स्वरूप को धारण किया, ध्रौव्य ने द्रव्य के स्वरूप को - ध्रुव को धारण किया। आहा...हा...! अन्दर की बातें बहुत सूक्ष्म हैं, बापू! आहा...हा...! अमृतचन्द्राचार्य ने गाथा में ऐसी टीका निकाली है। आहा...हा...! कि कुन्दकुन्दाचार्य को यह कहना है और भगवान के पास भी यही सुना है! भगवान के पास भी यह सुना, कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक में यह है, इसकी टीका करके यह दोहन करते हैं कि इसका यह भाव है। आहा...हा...!

ऐसा सुना हो कि उत्पाद, कर्ता और द्रव्य उसका कार्य? आहा...हा...! पर्याय न हो तो द्रव्य है - ऐसा जाना किसने? (यहाँ) आत्मा की (बात की है) दूसरे को (उत्पाद पर्याय है) परन्तु उसमें जानपना नहीं है। दूसरे का अस्तित्व तो है (परन्तु उसमें भी) उत्पाद उसका कर्ता और द्रव्य उसका कार्य है - ऐसा यह ज्ञान जानता है। आ...हा...! अर्थात् क्या? कि यह शरीर आदि की पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय उसके परमाणु को सिद्ध करती है - ऐसा ज्ञान जानता है। आहा...हा...! क्या कहा, समझ में आया? यह भाषा बोली जाती है। यह भाषा की पर्याय है, वह उत्पाद है, पूर्व की वर्गणा का व्यय है और

ध्रुवपना (कायम है)। इस भाषा के उत्पाद-व्यय और ध्रुव इसके परमाणु-द्रव्य को सिद्ध करते हैं - ऐसा जानता कौन है? ज्ञान। इस भाषा को तो पता भी नहीं है कि क्या है? वस्तु का स्वरूप ऐसा है परन्तु उसका ज्ञान किसे है? आहा...हा...! यह व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, इसमें समय (बिताया है।)

यहाँ तो यह लिया है, भाई! ऐसा लिया है न? अस्तित्वधर्म विभावरूप से परिणमित नहीं होता। अस्तित्व को विभाव भी क्या? 'है' उसका विभाव क्या? कम हो जाता है? 'है' वह विकृत हो जाता है? विकृत हो जाये अर्थात् विपरीत हो जाता है? है न? पहले आ गया है। कहाँ आया है? (श्रोता - टीका की शुरुआत में) टीका की शुरुआत में! (अस्तित्व) **अनादि-अनन्त होने से तथा अहेतुक एकरूप वृत्ति से सदा प्रवर्तमान होने से विभावधर्म से विलक्षण होने से...** अस्तित्व है - सत् है, उसमें विभाव क्या आयेगा? अस्तित्व में विभाव आये तो विपरीत हो गया? अस्तित्व विपरीत हो जाये? विपरीत अर्थात् ('नहीं' - ऐसा) होगा? अस्तित्व 'नहीं' - ऐसा हो जाता है? आहा...हा...! क्या कहा यह?

अस्तित्व नाम का जो गुण है, वह विभावरूप नहीं होता, क्योंकि 'है' उसे विभावरूप होना अर्थात् क्या? 'है' उसे विपरीतरूप होना? अर्थात् 'नहीं' ऐसा होना? आहा...हा...! ज्ञान आदि दूसरे गुण निमित्ताधीन होकर विभावरूप से परिणमते हैं परन्तु यह अस्तित्व नाम का गुण है... 'है' वह 'है', वह विभावरूप से 'नहीं' ऐसा होगा? विभावरूप होवे उसका अर्थ यह हुआ कि 'है' वह घट गया। आहा...हा...! 'है' उसमें घटे क्या बड़े क्या? आहा...हा...! अब वे पचास पण्डित इकट्ठे होकर यह कहते थे कि 'एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय नहीं करता - ऐसा माने, वह दिगम्बर नहीं है' अरे... प्रभु! क्या कहना? भाई ऐसा विरोध करने के लिये ऐसा होता है? अभी ऐसा कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय है - ऐसा नहीं मानते, निमित्त को बिलकुल कर्ता नहीं मानते - ऐसा कहते हैं तो बात तो सही है। निमित्त है - ऐसा मानते हैं परन्तु (निमित्त से कुछ होता है ऐसा मानें) तो निमित्त का मानना व्यर्थ गया। निमित्त है किसलिए? (ऐसा वे लोग कहते हैं) परन्तु यह तो दूसरी वस्तु है, दूसरी वस्तु है, वह दूसरी वस्तु का कुछ करती है - उसके उत्पाद को (करती

है ऐसा नहीं है।) वह उत्पाद तो द्रव्य करता है, उसके उत्पाद से द्रव्य की सिद्धि है, निमित्त के उत्पाद से द्रव्य की सिद्धि है ? आहा...हा... ! ऐसा है। भाषा तो सादी है, प्रभु ! धीरे-धीरे समझ में आये ऐसा है, नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है।

नैरोबी में मन्दिर का मुहूर्त हुए बारह महीने हुए हैं। ज्येष्ठ शुक्ला ग्यारह को मुहूर्त हुआ था। पन्द्रह लाख (खर्च करके) दिगम्बर मन्दिर (बनाते हैं।) अफ्रीका में दिगम्बर जैन मन्दिर दो हजार वर्ष में कभी नहीं था, दूसरा देश हो तो वहाँ फिर भी हो परन्तु यह तो अभी बनता है। देश (काल) ऐसा होवे तो सभी देश में मन्दिर थे परन्तु अभी यह स्थिति है, अनार्य जैसा देश हो गया है। आहा...हा... !

(यहाँ कहते हैं) **कर्ता-करण-अधिकरण के रूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके...** आहा...हा... ! प्रवर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों से जिसकी निष्पत्ति होती है... (अर्थात्) द्रव्य की (निष्पत्ति) **ऐसे द्रव्य का मूल साधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ...** आहा...हा... ! देखा ! मूलसाधन शब्द का प्रयोग किया है। उसमें प्रयोग नहीं किया था, किसमें ? द्रव्य से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं, वहाँ मूल साधनपने से नहीं था। क्योंकि उसमें द्रव्य तो है उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपने कर्ता है। साधन यह है - उत्पाद-व्यय-ध्रुव से द्रव्य है, वह साधन है। मूलसाधन शब्द पहले में नहीं था। जो द्रव्य है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप होता है, वह मूलसाधन है - ऐसा नहीं था। इसमें न्याय समझ में आता है ? यहाँ मूलसाधन (कहा है) क्योंकि मूलसाधन तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, वह द्रव्य को सिद्ध करने का साधन है। आहा...हा... ! आचार्य ने गजब काम किया है न ! आहा...हा... ! यह बात उस दिन हुई थी। उस दिन पढ़ा था, तब हुई थी।

मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ जो अस्तित्व है... वस्तु है, उसका होनापना, उसका मूलसाधन उत्पाद-व्यय और ध्रुव है आहा...हा... ! उससे वह द्रव्य सिद्ध होता है, इसलिए मूलसाधन तो वह है। अब जो पर्याय को ही नहीं मानता तो मूलसाधन ही नहीं रहा। आहा...हा... ! द्रव्य को सिद्ध करने के लिये, द्रव्य का अनुभव करने को प्रगट पर्याय है, वह नहीं तो (मूलसाधन तो) नहीं रहा। ये लोग वहाँ तक कहते हैं न कि आत्मा का अनुभव क्या ? (आत्मा और अनुभव) यह तो द्वैत हो गया। आत्मा का अनुभव क्या ?

आत्मा है, बस! यहाँ कहते हैं कि है उसका जो पर्याय में अनुभव होता है, तब यह 'है' ऐसा उसके ख्याल में आता है।

कारणपरमात्मा है... आहा...हा...! भगवान त्रिकाली आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, सनातन सत्य ध्रुव है, उस तरफ ज्ञान गये बिना, उस तरफ श्रद्धा गये बिना, यह कारण परमात्मा नित्य ध्रुव है - ऐसा निर्णय कौन करेगा? आहा...हा...! 'लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ तोड़ी सकल जग द्वन्द फंद नित आतम ध्याओ' आहा...हा...! भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप है, द्रव्य स्वरूप पूर्ण है, उसे पर्याय सिद्ध करती है। पर्याय से उस द्रव्य की उत्पत्ति होती है। सिद्ध करती है, अर्थात् उत्पत्ति करती है - (ऐसा कहा जाता है।) द्रव्य को है, वह है।

श्रीमद् ने (छह पद के पत्र में) कहा है न कि श्रद्धा होने पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, अर्थात् केवलज्ञान तो था परन्तु श्रद्धा हुई, तब उसे केवलज्ञान है - ऐसा भरोसा आया। आहा...हा...! एक पत्र में है।

ऐसे द्रव्य का मूलसाधनपने से... पहले (कहा उसने) करण में साधन तो आया था। क्या कहा? भाई! समझ में आया? कर्ता-करण-अधिकरण (कहा उसमें) साधन तो आया था, फिर यह विशेष साधन है कि जो द्रव्य है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव का कर्ता, करण, साधन और अधिकरण है, इसकी अपेक्षा उत्पाद-व्यय और ध्रुव यह द्रव्य का साधन है, यह मूलसाधन है। आहा...हा...! इसके द्वारा पता पड़ता है। द्रव्य से पता पड़ता है? आहा...हा...! ऐसी बातें! ऐसा तत्त्व सूक्ष्म! लो, दूसरे तो भक्ति करो, दान करो, भगवान की पूजा करो, रथ निकालो, पञ्च कल्याणक करो - (यह सरल था।) करो... करो...! इसमें तो मिथ्यात्व है, सुन तो! कुछ करने की बुद्धि ही मिथ्यात्व है। अर..र..र..र...! गजब बात है बापू! शुभभाव हो कि ऐसा होवे परन्तु वह शुभभाव विकृत है, उससे आत्मा की सिद्धि नहीं होती। यह आत्मा ऐसा है - ऐसा विकृत स्वभाव से सिद्ध नहीं होता। उसका अविकृत निर्मल स्वभाव है, आहा...हा...! श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आदि की जो निर्मल पर्याय है, उससे द्रव्य का भान होता है; इसलिए उसे द्रव्य है - ऐसा मूलसाधन उत्पाद-व्यय-ध्रुव को कहा है।

उत्पाद-व्यय का साधन द्रव्य है। वहाँ मूलसाधन नहीं कहा, भाई? क्या कहा? कि वस्तु है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव की कर्ता-करण-साधन और (अधिकरण है – ऐसा कल आ गया है।) परन्तु वहाँ मूलसाधन शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यहाँ मूलसाधन (कहा है) करण तो आ गया है – साधन तो आ गया है। कर्ता कहा है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, वे द्रव्य के कर्ता, द्रव्य का स्वरूप धारण करते हैं; द्रव्य के स्वरूप को बतलाते हैं, वह सम्पूर्ण उत्पाद-व्यय-ध्रुव से बतलाते हैं तो कहते हैं कि वह तो मूलसाधन है। आहा...हा...!

यदि यह उत्पाद-व्यय की पर्याय न होवे तो कार्य (किसमें होगा) ? कार्य तो उसमें होता है और उस कार्य में इसकी सिद्धि होती है। त्रिकाली भगवान चिदानन्द परमात्मा विराजमान है, भगवान पूर्ण स्वरूप से विराजमान है, अनन्त-अनन्त गुण के पूर्णरूप से द्रव्य प्रभु विराजमान हैं। जिसे कारणपरमात्मा कहो, पञ्चम भाव कहो, ज्ञायक कहो, भूतार्थ कहो। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय और ध्रुव द्रव्य को (सिद्ध करते हैं) यहाँ तो अपने को आत्मा में उतारना है न, हाँ! यह है तो सबमें परन्तु दूसरे कहाँ जानते हैं? यह द्रव्य का मूलसाधन है। इसे दूसरे जड़-द्रव्य जानते हैं? आहा...हा...! जड़ के लिए साधन तो यही है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव द्रव्य की सिद्धि करने का साधन है परन्तु उसे कहाँ पता है? पता करनेवाला- जाननेवाला तो भगवान आत्मा है आहा...हा...! मेरे उत्पाद-व्यय और ध्रुव से (मेरा) द्रव्य है और दूसरे के उत्पाद-व्यय-ध्रुव के कारण उसका द्रव्य है। आहा...हा...! ऐसी बात होवे (इसलिए) सोनगढ़ की (बात) एकान्त है – ऐसा बेचारे कहते हैं। तत्त्व का पता नहीं है, जिन्दगी चली जाती है, बापा! आहा..हा...! अरे..! अनादि अनन्त काल में बीच में यह एक (मनुष्य का) भव आया। यह भव, भव का अभाव करने के लिए है। आहा...हा...!

श्रोता : तब ही भव सफल हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : तभी उसे मनुष्य (कहा जाता है)। 'ज्ञायक इति मनुष्य' – मनुष्य उसे कहते हैं कि जो जानने का कार्य करे। आहा...हा...! वह किसे जानने का कार्य करे? द्रव्य को। आहा...हा...! और वह जो समकित दर्शन, ज्ञान आदि की पर्याय उत्पन्न हुई, वह द्रव्य को सिद्ध करने का मूल साधन है। आहा...हा...! इसमें कहीं अन्तर पड़े तो सम्पूर्ण तत्त्व में गड़बड़ हो जाती है। समझ में आया कुछ?

मूलसाधनपने से उनसे निष्पन्न होता हुआ... अर्थात् उत्पाद-व्यय और ध्रुव से मूलसाधन से निष्पन्न होता हुआ द्रव्य का **जो अस्तित्व है, वह स्वभाव है...** अस्तित्व, वह द्रव्य का स्वभाव है। आहा...हा...! **(उत्पादों से, व्ययों से और ध्रौव्यों से...)** ध्रौव्यों (ऐसा कहा है) हाँ! **(भिन्न न दिखाई देनेवाले द्रव्य का अस्तित्व वह उत्पादों, व्ययों और ध्रौव्यों का ही अस्तित्व है...)** ध्रौव्य का, ध्रुव का नहीं। ध्रौव्य-ध्रुवपना है, वह द्रव्य को ध्रुव को सिद्ध करता है। आहा...हा...! ध्रौव्यपना है, वह ध्रुव को सिद्ध करता है। आहा...हा...! ऐसी बात।

(क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ही धारण करते हैं इसलिए...) आहा...हा...! द्रव्य के स्वरूप को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यों, ध्रौव्य, हाँ! **(ध्रौव्य ही धारण करते हैं, इसलिए उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यों के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है...)** आहा...हा...! सन्तों ने थोड़े से शब्दों में भी जगत् को द्रव्य की प्रसिद्धि मूलसाधनरूप से की है। आहा...हा...!

इस प्रकार आत्मा की भी निर्मल, सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि की पर्याय और मिथ्यात्व का व्यय, यह सब मूलसाधनरूप से द्रव्य को सिद्ध करते हैं। 'है' उसकी प्राप्ति। 'है' उसका निर्णय यह करते हैं। 'है' उसका निर्णय उत्पाद-व्यय और ध्रुव करते हैं। आहा...हा...! कुछ समझ में आया? सूक्ष्म पड़े तो थोड़ा रात्रि में पूछना। रात्रि में तो कोई प्रश्न करते नहीं। आहा...हा...! **(उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यों के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य न हो...)** आहा...हा...! **(तो द्रव्य भी न हो...)** आहा...हा...! यदि प्रगट पर्याय न हो तो द्रव्य ही न हो, आहा...हा...! **(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो तो द्रव्य भी न हो - ऐसा अस्तित्व, वह द्रव्य का स्वभाव है।)**

भावार्थ : अस्तित्व के और द्रव्य के प्रदेशभेद नहीं है... अस्तित्व के (अर्थात्) 'है' ऐसे स्वभाव के और द्रव्य के प्रदेशभेद नहीं हैं। वे अस्तित्व और द्रव्य - दोनों एक ही प्रदेश में हैं **और वह अस्तित्व अनादि-अनन्त...** आया है न? पहले आ गया है। टीका की शुरुआत में दूसरी लाइन, देखो, है न? **अनादि-अनन्त होने से...** आहा...हा...! अनादि-अनन्त अस्तित्व होने से **अहेतुक...** अनादि-अनन्त है, उसका हेतु क्या?

आहा...हा... ! और यहाँ उत्पाद-व्यय को मूलसाधन कहा परन्तु वह तो मूलसाधन 'है' - ऐसा निर्णय करने को कहा है। आहा...हा... ! कितना Logic डाला है, न्याय से (बात की है) । लोग मध्यस्थ होकर शास्त्र का आशय क्या है, यह नहीं समझते और गड़बड़ करके उलटे-सीधे अर्थ खड़े करते हैं। आहा...हा... ! (फिर ऐसा कहते हैं कि) सोनगढ़ का सिद्धान्त एकान्त है। एकान्त... एकान्त... ऐसा कहने का जैनधर्म में बहुत सहज हो गया है। अरे भगवान! बापू!

निर्मलपर्याय द्रव्य को पहुँचती है, या विकारीपर्याय द्रव्य को पहुँचती है ? आहा...हा... ! यह तो अपने आ गया है। निर्मलपर्याय द्रव्य को पकड़ती है। वहाँ राग है, इसलिए वह साधन नहीं है। ऐसा इसमें पहले आ गया है। आहा...हा... ! भगवान महाप्रभु ! एक समय में परमात्मस्वरूप ही प्रभु है। परमात्मस्वरूप विपरीत, हीन-न्यून-अधिक नहीं है, उसकी सम्यग्दर्शन की पर्याय, ज्ञान की पर्याय में वह अनादि-अनन्त है - ऐसा सिद्ध होता है। यहाँ टीका में तो अस्तित्वगुण की बात की है परन्तु यहाँ तो आत्मा (पर उतारा है) आहा...हा... !

अनादि-अनन्त है तथा अहेतुक एकरूप परिणति से सदा परिणमित होता है... है न ? देखा ! एकरूप परिणति, ध्रुव द्रव्यरूप रहना - ऐसा नहीं। **एकरूप परिणति से सदा परिणमित होने से...** है... है... है... है... है... है... है... है... इसरूप ही वह परिणमता है। द्रव्य-गुण-पर्याय इन सबका अस्तित्व एक ही है। आहा...हा... ! भाई ! हमें धर्म करना है, (उसमें) इस बात को (समझकर क्या करना है ?) परन्तु बापू! तुझे धर्म करना है तो धर्म करनेवाला कौन है ? धर्म, पर्याय है या द्रव्य है ? और किस द्रव्य के आश्रय से पर्याय होती है ? - इसकी खबर बिना तुझे धर्म होगा कहाँ से ? आहा...हा... !

श्रोता : धर्म स्वयं ही पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय परिणमति है, वह धर्म है परन्तु वह सम्यग्दर्शनरूप परिणमति है, वह द्रव्य को सिद्ध करती है कि यह अंश है, वह सम्पूर्ण द्रव्य का है।

एकरूप परिणति से सदा परिणमित होने के कारण विभावपरिणति से भी भिन्न प्रकार का है... अस्तित्वगुण है, उसमें विभाव क्या ? आहा...हा... ! है, उसमें विभाव क्या ? है, उसमें से 'नहीं' ऐसा होवे तो विभाव हो, परन्तु 'नहीं' ऐसा होगा ही कहाँ

से ? आहा...हा... ! अस्तित्वगुण **विभावधर्म से भी भिन्न प्रकार का है – ऐसा होने से अस्तित्व, द्रव्य का स्वभाव ही है।** आहा...हा... !

गुण-पर्यायों का और द्रव्य का अस्तित्व भिन्न नहीं है; एक ही है क्योंकि गुण-पर्यायें द्रव्य से ही निष्पन्न होती है और द्रव्य, गुण-पर्यायों से ही निष्पन्न होता है। द्रव्य, गुण-पर्याय से निष्पन्न होता है। क्या कहा यह ? **गुण-पर्यायों का और द्रव्य का अस्तित्व भिन्न नहीं है; एक ही है। क्योंकि गुण-पर्यायें, द्रव्य से ही निष्पन्न होती है...** एक बात! **और द्रव्य, गुण-पर्यायों से ही निष्पन्न होता है...** दूसरी बात संक्षिप्त की। आहा...हा... ! **और इसी प्रकार** (अर्थात्) जैसे गुण-पर्यायों का कहा, उसी प्रकार **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों का और द्रव्य का अस्तित्व ही एक ही है...** उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का अस्तित्व और द्रव्य का (अस्तित्व) एक ही है। **क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य से ही उत्पन्न होते हैं...** आहा...हा... ! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य से ही उत्पन्न होते हैं और द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से ही उत्पन्न होता है। आहा...हा... ! तत्त्वज्ञान, वीतराग का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा है, जैसा स्वरूप है, वैसा कहा है। उन्होंने किसी दूसरे द्रव्य का कुछ किया नहीं है। कहा है, उसका भी किया नहीं है आहा...हा... ! कहने की भाषा को भी उन्होंने किया नहीं है। आहा...हा... ! तथापि निमित्त से ऐसा कहते हैं कि उन्होंने जाना, वैसा कहा। आहा...हा... ! कहनेवाले की भाषा की पर्याय को जड़ को सिद्ध करती है, वह कोई भगवान को सिद्ध नहीं करती कि यह भगवान की भाषा है। आहा...हा... ! भाषा के गुण-पर्याय, भाषा के परमाणु को सिद्ध करते हैं और भाषा का उत्पाद-व्यय और ध्रुव, भाषा के परमाणु को सिद्ध करते हैं – ऐसा है।

इस प्रकार स्वरूप अस्तित्व का निरूपण हुआ... स्वरूप अस्तित्व (अर्थात्) एक-एक वस्तु अपने स्वरूप से अस्तित्व (धरती है)। ऐसा निर्णय किया।

गाथा - ९७

इदं तु सादृश्यास्तित्वाभिधानमस्तीति कथयति -

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं।। ९७।।

इह विविधलक्षणानां लक्षणमेकं सदिति सर्वगतम्।
उपदिशता खलु धर्मं जिनवरवृषभेण प्रज्ञप्तम्।। ९७।।

इह किल प्रपञ्चितवैचित्र्येण द्रव्यान्तरेभ्यो व्यावृत्य वृत्तेन प्रतिद्रव्यं सीमानमासूत्रयता विशेषलक्षणभूतेन च स्वरूपास्तित्वेन लक्ष्यमाणानामपि सर्वद्रव्याणामस्तमितवैचित्र्यप्रपञ्चं प्रवृत्य वृत्तं प्रतिद्रव्यमासूत्रितं सीमानं भिन्दत्सदिति सर्वगतं सामान्यलक्षणभूतं सादृश्यास्तित्वमेकं खल्ववबोधव्यम्। एवं सदित्यभिधानं सदिति परिच्छेदनं च सर्वार्थपरामर्शि स्यात्। यदि पुनरिदमेवं न स्यात्तदा किंचित्सदिति किंचिदसदिति किंचित्सच्चासच्चेति किंचिदवाच्यमिति च स्यात्। तत्तु विप्रतिपिद्धमेव। प्रसाध्यं चैतदनोकहवत्। यथा हि बहूनां बहुविधानामनोकहानामात्मीयात्मीयस्य विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं, सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्थापितमेकत्वं तिरियति, तथा बहूनां बहुविधानां द्रव्याणामात्मीयात्मीयस्य विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं, सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिना सदित्यस्य भावेनोत्थापितमेकत्वं तिरियति। यथा च तेषामनोकहानां सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति, तथा सर्वद्रव्याणामपि सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिना सदित्यस्य भावेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति।।९७।।

अथ सादृश्यास्तित्वशब्दाभिधेयां महासत्तां प्रज्ञापयति - इह **विविहलक्खणाणं** इह लोके प्रत्येकसत्ताभिधानेन स्वरूपास्तित्वेन विविधलक्षणानां भिन्नलक्षणानां चेतनाचेतनमूर्तामूर्तपदार्थानां **लक्खणमेगं तु** एकमखण्डलक्षणं भवति। किं कर्तृ। **सदिति** सर्वं सदिति महासत्तारूपम्। किंविशिष्टम्। **सव्वगयं** संकरव्यतिकरपरिहाररूपस्वजात्यविरोधेन शुद्धसंग्रहनयेन सर्वगतं सर्वपदार्थव्यापकम्। इदं केनोक्तम्। **उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं** धर्मं वस्तुस्वभावसंग्रहमुपदिशता

खलु स्फुट जिनवरवृषभेण प्रज्ञप्तमिति। तद्यथा-यथा सर्वे मुक्तात्मनः सन्तीत्युक्ते सति परमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादभरितावस्थलोकाकाशप्रमितशुद्धा-संख्येयात्मप्रदेशैस्तथा किंचिदूनचरम-शरीराकारादिपर्यायैश्च संकरव्यतिकरपरिहाररूपजातिभेदेन भिन्नानामपि सर्वेषां सिद्धजीवानां ग्रहणं भवति, तथा 'सर्वं सत्' इत्युक्ते संग्रहनयेन सर्वपदार्थानां ग्रहणं भवति। अथवा सेनेयं वनमिदमित्युक्ते अश्वहस्त्यादिपदार्थानां निम्बाम्रादिवृक्षाणां स्वकीयस्वकीयजातिभेदभिन्नानां युगपद्ग्रहणं भवति, तथा सर्वं सदित्युक्ते सति सादृश्यसत्ताभिधानेन महासत्तारूपेण शुद्धसंग्रहनयेन सर्वपदार्थानां स्वजात्यविरोधेन ग्रहणं भवतीत्यर्थः।।९७।।

अब, यह (नीचे अनुसार) सादृश्य-अस्तित्व का कथन है -

विविध लक्षण मध्य 'सत्' - यह एक लक्षण सर्वगत।
'वस्तु-स्वभाव ही धर्म है' - यह वचन हैं जिनवरवृषभ॥

अन्वयार्थ : [धर्म] धर्म का **[खलु]** वास्तव में **[उपदिशता]** उपदेश करते हुए **[जिनवरवृषभेण]** जिनवरवृषभ[१] ने **[इह]** इस विश्व में **[विविधलक्षणानां]** विविध लक्षणवाले (भिन्न-भिन्न स्वरूपास्तित्ववाले सर्व) द्रव्यों का **[सत् इति]** 'सत्' ऐसा **[सर्वगतं]** सर्वगत[२] **[लक्षणं]** लक्षण (सादृश्यास्तित्व) **[एकं]** एक **[प्रज्ञप्तम्]** कहा है।

टीका : इस विश्व में, विचित्रता को विस्तारित करते हुए (विविधता अनेकता को दिखाते हुए), अन्य द्रव्यों से व्यावृत्त[३] रहकर प्रवर्तमान, और प्रत्येक द्रव्य की सीमा को बाँधते हुए ऐसे विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्व से (समस्त द्रव्य) लक्षित होते हैं, फिर भी सर्व द्रव्यों का, विचित्रता के विस्तार को अस्त करता हुआ, सर्व द्रव्यों में प्रवृत्त होकर रहनेवाला, और प्रत्येक द्रव्य की बँधी हुई सीमा की अवगणना करता हुआ, 'सत्' ऐसा जो सर्वगत सामान्यलक्षणभूत सादृश्यास्तित्व है, वह वास्तव में एक ही जानना चाहिए। इस प्रकार 'सत्' ऐसा कथन और 'सत्' ऐसा ज्ञान सर्व पदार्थों का परामर्श[४] करनेवाला है। यदि वह ऐसा (सर्वपदार्थपरामर्शी) न हो तो कोई पदार्थ, सत् (अस्तित्ववाला) कोई असत् (अस्तित्वरहित), कोई सत् तथा असत् और कोई अवाच्य होना चाहिए, किन्तु वह

---

१. जिनवरवृषभ = जिनवरों में श्रेष्ठ; तीर्थङ्कर।
२. सर्वगत = सबमें व्यापनेवाला।
३. व्यावृत्त = पृथक्; अलग; भिन्न।
४. परामर्श = स्पर्श; विचार; लक्ष; स्मरण।

तो विरुद्ध ही है, और यह ('सत्' ऐसा कथन और ज्ञान के सर्वपदार्थपरामर्शी होने की बात) तो सिद्ध हो सकती है, वृक्ष की भाँति।

जैसे बहुत से, अनेक प्रकार के वृक्षों को अपने-अपने विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाले अनेकत्व को, सामान्य लक्षणभूत सादृश्यदर्शक[१] वृक्षत्व से उत्पन्न होनेवाला एकत्व तिरोहित[२] (अदृश्य) कर देता है, इसी प्रकार बहुत से, अनेक प्रकार के द्रव्यों को अपने-अपने विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाले अनेकत्व को, सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक 'सत्' पने से ('सत्' ऐसे भाव से, अस्तित्व से, 'है' पने से) उत्पन्न होनेवाला एकत्व तिरोहित कर देता है। और जैसे उन वृक्षों के विषय में सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक वृक्षत्व से उत्पन्न होनेवाले एकत्व से तिरोहित होने पर भी, (अपने-अपने) विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाला अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान रहता है, (बना रहता है, नष्ट नहीं होता); उसी प्रकार सर्व द्रव्यों के विषय में भी सामान्यलक्षणभूत सादृश्यपूर्वक 'सत्' पने से उत्पन्न होनेवाले एकत्व से तिरोहित होने पर भी (अपने-अपने) विशेषलक्षणभूत स्वरूपास्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाला अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान रहता है।

[बहुत से (संख्यापेक्षा से अनेक) और अनेक प्रकार के (अर्थात् आम्र, अशोकादि) वृक्षों का अपना-अपना स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है, इसलिए स्वरूपास्तित्व की अपेक्षा से उनमें अनेकत्व है, परन्तु वृक्षत्व जो कि सर्व वृक्षों का सामान्यलक्षण है और जो सर्व वृक्षों में सादृश्य बतलाता है, उसकी अपेक्षा से सर्व वृक्षों में एकत्व है। जब इस एकत्व को मुख्य करते हैं, तब अनेकत्व गौण हो जाता है; इसी प्रकार बहुत से (अनन्त) और अनेक (छह) प्रकार के द्रव्यों का अपना-अपना स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है इसलिए स्वरूपास्तित्व की अपेक्षा से उनमें अनेकत्व है, परन्तु सत्पना (अस्तित्वपना 'है' ऐसा भाव) जो कि सर्व द्रव्यों का सामान्य लक्षण है और जो सर्वद्रव्यों में सादृश्य बतलाता है, उसकी अपेक्षा से सर्वद्रव्यों में एकत्व है। जब इस एकत्व को मुख्य करते हैं, तब

१. सादृश्य = समानत्व। २. तिरोहित = तिरोभूत; आच्छादित; अदृश्य।

अनेकत्व गौण हो जाता है। और इस प्रकार जब सामान्य सत्पने को मुख्यता से लक्ष्य में लेने पर सर्व द्रव्यों के एकत्व की मुख्यता होने से अनेकत्व गौण हो जाता है, तब भी वह (समस्त द्रव्यों का स्वरूप-अस्तित्व सम्बन्धी) अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान ही रहता है।]

(इस प्रकार सादृश्य अस्तित्व का निरूपण हुआ) ॥ ९७ ॥

प्रवचन नं. ९६ का शेष **दिनाङ्क ०६ जून १९७९**

अब सादृश्य अस्तित्व (कहते हैं।) अर्थात् है... है... सभी हैं न? ये है, ये सब 'है' इस अपेक्षा से सादृश्य अस्तित्व। सब एक हैं - ऐसा नहीं परन्तु जैसा आत्मा है, वैसे अनन्त आत्मा हैं, वैसे अनन्त परमाणु हैं, धर्मास्ति है, कालाणु है - यह सादृश्य अस्तित्व हैं, समान है। 'है'-पने की अपेक्षा समान है - ऐसा कहना है। है सब, परन्तु 'है'-पने से सब समान हैं। आहा...हा...! अब ९७ गाथा।

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं।। ९७।।

विविध लक्षण मध्य 'सत्' - यह एक लक्षण सर्वगत।
'वस्तु-स्वभाव ही धर्म है' - यह वचन हैं जिनवरवृषभ॥

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं - है... है... है... है... सबका एक लक्षण है। परमाणु भी है, धर्मास्तिकाय है, आत्मा है, आकाश है, 'है' इसमें कौन 'नहीं' - ऐसा होगा? है वह महासत्ता की अपेक्षा से सादृश्य है (सभी) 'हैं' ऐसा। आहा...हा...!

'वस्तु-स्वभाव ही धर्म है' - यह वचन हैं जिनवरवृषभ - इसका थोड़ा अन्वयार्थ लेते हैं। थोड़ा समय है न?

अन्वयार्थ - धर्म का वास्तव में उपदेश करते हुए जिनवर वृषभ ने... (जिनवर वृषभ अर्थात्) जिनवरों में श्रेष्ठ, तीर्थङ्करों में **इस विश्व में विविध लक्षणवाले...** भले

ही चैतन्यलक्षणवाला आत्मा, जड़ लक्षणवाले परमाणु आदि इस प्रकार विविध लक्षणवाले भले ही हों **विविध लक्षणवाले भिन्न-भिन्न स्वरूप अस्तित्ववाले सर्व द्रव्यों का सत् ऐसा...** आहा...हा... ! भले ही उनके लक्षण भिन्न हों परन्तु 'है' में तो सर्वगत सब आ जाता है। 'है'! **सत् ऐसा सर्वगत...** (सर्वगत अर्थात्) सर्व में व्यापक **लक्षण (सादृश्य-अस्तित्व) एक कहा है...** सत् 'है' इस अपेक्षा से एक कहा है। सब हैं न? दो हैं ऐसा है कुछ? एक है और दूसरा नहीं है अथवा एक है और दूसरा कम है, एक सत् पूरा है और एक सत् कम है - ऐसा है कुछ? सब सत् पूर्ण हैं। पूर्ण स्वरूप अस्तित्व में एक-एक अस्तित्व की व्याख्या की और इस सादृश्य अस्तित्व में सब हैं, उनकी व्याख्या की। आहा...हा... !

टीका - इस विश्व में, विचित्रता को विस्तारित करते हुए (विविधता-अनेकता को दिखाते हुए) अन्य द्रव्यों से व्यावृत्त रहकर... (अर्थात्) अन्य द्रव्यों से पृथक् छूटा हुआ , भिन्न रहकर, आहा...हा... ! **प्रवर्तमान और प्रत्येक द्रव्य की सीमा को बाँधते हुए ऐसे विशेष लक्षणभूत स्वरूप अस्तित्व से (समस्त द्रव्य)...** सत् का स्वरूप - लक्षण भिन्न-भिन्न है, यह तो ठीक है। उसके द्वारा **लक्षित होते हैं फिर भी...** प्रत्येक द्रव्य अपने लक्षण से भिन्न-भिन्न, दूसरे से भिन्न सिद्ध होने पर भी, **सर्व द्रव्यों का विचित्रता के विस्तार को अस्त करता हुआ...** आहा...हा... ! ज्ञान के लक्षण से आत्मा ज्ञात होता है, जड़ के लक्षण से (जड़ ज्ञात होता है)। यह सब स्वरूप अस्तित्व भले हो परन्तु इन सबकी **विचित्रता के विस्तार को अस्त करता हुआ...** (अर्थात्) भिन्न-भिन्न नहीं परन्तु 'है', बस! सभी 'है'। आहा...हा... !

सर्व द्रव्यों का, विचित्रता के विस्तार को अस्त करता हुआ, सर्व द्रव्यों में प्रवर्त होकर रहनेवाला और प्रत्येक द्रव्य की बँधी हुई सीमा की अवगणना करता हुआ... (अर्थात्) भिन्न-भिन्न नहीं गिनता ऐसा। **सत् ऐसा जो सर्वगत सामान्यलक्षणभूत सादृश्यास्तित्व है, वह वास्तव में एक ही जानना चाहिए...** 'है' इसरूप से जानना चाहिए। भले ही प्रत्येक का लक्षणभेद है परन्तु 'है' में कोई भेद नहीं है।

विशेष कहेंगे...

प्रवचन नं. ९७ **दिनाङ्क ०७ जून १९७९**

प्रवचनसार गाथा ९७ वें चलती है। पहला पैराग्राफ हो गया है, दूसरा पैराग्राफ। सादृश्य अस्तित्व सिद्ध करते हैं, अर्थात् क्या? कि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप के अस्तित्व से पर से भिन्न है। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप के अस्तित्व से - द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों से पर से भिन्न है परन्तु स्वयं आत्मा भी है-स्व है और दूसरे सब पदार्थ भी हैं। ऐसी सादृश्य सत् की अपेक्षा से अनेकपना है, इसीलिए भिन्न है, वह लक्ष्य में नहीं रहता। एक सत् है... है... है... है... है... सभी द्रव्य है। संग्रहनय से - सादृश्यदृष्टि से (सभी द्रव्य है) कितने ही कहते हैं कि महासत्ता एक अलग गुण है (परन्तु) ऐसा नहीं है। सभी होकर एक महासत्ता है - ऐसा नहीं है परन्तु है... है... है... यह सादृश्य अस्तित्वपना है। एकपना अलग भी है और है... है... इसमें सादृश्यपने में सब आ जाता है। उसमें अनेकपना अलग है, वह ढँक जाता है। यह बात! वस्तु की स्थिति (ऐसी) है।

प्रश्न : अनेकपना अनेकरूप रहता है, किस प्रकार ढँक जाता है?

समाधान : (इसमें) ऐसा है कि वस्तुरूप से स्वरूप अस्तित्व है, वह भिन्न-भिन्न है परन्तु जैसा स्वयं 'है' वैसे सभी 'है' इस अपेक्षा से सादृश्य अस्तित्व से संग्रहनय की दृष्टि से सभी एक है - ऐसा कहा जाता है। है... है... है... है... इस अपेक्षा से। सभी एक हो जाते हैं - ऐसा नहीं। अन्य वेदान्त आदि में तो यह कहते हैं कि महासत्ता सर्व व्यापक वस्तु है, एक ही है - ऐसा यहाँ नहीं कहना है। यहाँ तो प्रत्येक वस्तु है, वह अपने स्वरूप से है, पर स्वरूप से नहीं - ऐसा अनेकपना होने पर भी स्वयं है, दूसरे हैं - ऐसा 'है'पने में अनेकपना लक्ष्य में नहीं आता। 'है'पने में सब है - ऐसा लक्ष्य में आता है। आहा...हा...! यह मार्ग है।

जैसे बहुत से अनेक प्रकार के वृक्षों को... बहुविध - अनेक प्रकार के अनेक वृक्षों को; दो शब्द प्रयोग किये हैं न? **बहुत से** और **अनेक प्रकार के** अनेक प्रकार के आम के वृक्ष, पीपल के वृक्ष इत्यादि को **अपने-अपने विशेष लक्षणभूत...** प्रत्येक वृक्ष अपने-अपने मुख्य-विशेष अलग लक्षणभूत **स्वरूप अस्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न**

होनेवाले... अपना स्वरूप अस्तित्व है, उससे ज्ञात होनेवाले **उत्पन्न होनेवाले अनेकत्व को...** यह जो अनेकपना है, उसे **सामान्यलक्षणभूत...** है... है... है... (इस अपेक्षा से सामान्य है।) वन में ऐसे आम के वृक्ष हों, दूसरे बबूल के वृक्ष हों, पीपल के वृक्ष हों - इस प्रकार एक-एक का भिन्नपना है, तथापि सब में वृक्षपना है - इस अपेक्षा से सभी एक हैं। एक होते हैं, अर्थात् सभी वस्तुएँ एक नहीं होती परन्तु है... है... है... 'है'पने में एकपना कहा जाता है। आहा...हा...! ऐसा है।

यहाँ यह बात नहीं लेना है कि यह आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय से अनेक है, तथापि उसकी दृष्टि करना है एक पर - यह यहाँ नहीं लेना है। कुछ समझ में आया? यह आत्मा द्रव्य है, गुण है और पर्याय है - ऐसा अनेक है, तथापि दृष्टि का विषय है, वह अनेक नहीं है। सम्यग्दर्शन का विषय एक त्रिकाली ध्रुव है। पर्याय है, वह ध्रुव का लक्ष्य करती है। पर्याय को भी सिद्ध किया। पर्याय, एकपना त्रिकाल है, उसकी दृष्टि करके उसका स्वीकार करती है। इसमें पर्याय की सिद्धि हुई - पर्याय है। पर्याय भिन्न है और उसका विषय त्रिकाल (स्वभाव) भी भिन्न है - ऐसा यहाँ नहीं (कहना है।)

यहाँ तो प्रत्येक द्रव्य का स्वरूप स्व से है - द्रव्य-गुण-पर्याय से है। द्रव्य-गुण-पर्याय से है; इसी प्रकार सभी पदार्थ भी द्रव्य-गुण-पर्याय से है। है... है... है... है... है... - ऐसे एकपने में स्वरूप अस्तित्व का एकपना लक्ष्य में नहीं आता है, अर्थात् तिरोभूत हो जाता है। बनियों को ऐसी बात (समझना...)!

श्रोता : परन्तु बनिया बुद्धिवाला भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिवाले सब ठीक हैं। बनिये को जैनधर्म-सम्प्रदाय हाथ आया है न! आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) वृक्षपना एक-एक है, वह भिन्न है परन्तु सभी वृक्षों को एक साथ कहें तो सबका वृक्षपना एक है, तथापि एक में अनेकपना ढँक जाता है। ढँकने पर भी अनेकपना - वृक्ष का वृक्षपना अलग रहता है। आहा...हा...! कुछ समझ में आया? आहा...हा...! यहाँ तो सब चित्त एकाग्र हुआ कि भगवान आत्मा अनन्त गुण का एकरूप स्वरूप है, उसमें गुण हैं, गुणी हैं और पर्याय हैं - ये तीन है यह अनेक है, तथापि सत्...

सत्... रूप से यह एक हैं और इस प्रकार एक होने पर भी, वर्तमान पर्याय है, वह त्रिकाल परमार्थस्वरूप पूर्णानन्द के नाथ अखण्ड परमेश्वर का स्वीकार करती है।

यह (समयसार की) ३२० गाथा में आया है न! ध्यातापुरुष (ऐसा ध्याता है कि) जो सकल निरावरण प्रभु एक अखण्ड कहा, वहाँ अखण्ड एक द्रव्य लेना; यहाँ एक लेना है वह द्रव्य-गुण-पर्याय का एकपना है, वह एक लेना और दूसरे सब होकर सत् हैं, उनमें एकपना लेने पर, वहाँ अनेकपना ढँक जाता है।

यहाँ जो स्वरूप का एकपना है (वह लेना) सम्यग्दर्शन है पर्याय, और उसमें श्रद्धा नाम का गुण भी त्रिकाल, और द्रव्य भी त्रिकाल, तीनों हैं; तथापि पर्याय खण्ड-खण्ड ज्ञान को ध्यान में नहीं लेती। आहा...हा...! पर्याय अखण्ड ज्ञायकभाव को लक्ष्य में, दृष्टि में लेती है, तब उसे वास्तविक पूर्ण सत् अपना एकपना सम्यग्दर्शन में भासित होता है। वह अलग है और यह (चलते विषय में कहते हैं वह) अलग है।

यह तो प्रत्येक द्रव्य में द्रव्य-गुण-पर्याय है, उस स्वरूप अस्तित्व से दूसरे सभी अस्तित्व अलग हैं। स्वरूप से अपना होनापना अलग है परन्तु 'है' ऐसे सादृश्य सत् के कारण 'है' ऐसे एकपने के लक्ष्य से अनेक का जो पृथक् एक-एक स्वरूप अस्तित्व है, वह वहाँ ढँक जाता है - ऐसा मार्ग! कभी ऐसा सादृश्य अस्तित्व सुना नहीं होगा। आहा...हा...!

वह कहते हैं। **सादृश्यदर्शक लक्ष्यत्व से उत्पन्न होनेवाला एकत्व तिरोहित (अदृश्य कर देता है)...** है... है... है... है... जड़ है; चैतन्य है... आहा... हा...! भव्य जीव है, अभव्य जीव है, पर्याय है, पूर्ण है, द्रव्य है परन्तु यह है... है में सबके सादृश्य 'है'पने में एकपना जो भिन्न है, वह ढँक जाता है। है? **एकत्व तिरोहित - अदृश्य कर देता है...** है... है... ऐसा जो एकत्व, वह भिन्नस्वरूप का अस्तित्व है, उसे वह ढँक देता है। आहा...हा...! यह तो वीतराग द्वारा कथित तत्त्व क्या है, उसकी वास्तविक स्थिति की श्रद्धा करायी है। दूसरे अन्यमत में अन्य प्रकार से कहते हों तो ऐसा स्वरूप नहीं है। कुछ समझ में आता है? आहा...हा...!

उसी प्रकार (अर्थात्) इस वृक्ष की तरह। जिस प्रकार यह वृक्ष में कहा **उसी**

प्रकार बहुत से अनेक प्रकार के द्रव्यों को अपने-अपने विशेष लक्षणभूत स्वरूप अस्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाले अनेकत्व को... (अर्थात्) भिन्न-भिन्न है ऐसा अनेकपना। अपने स्वरूप अस्तित्व के कारण अनेक है, उस अनेकत्व को **सामान्य लक्षणभूत सादृश्य दर्शक...** (सादृश्य अर्थात् समानपना) है... है... है... है... इस अपेक्षा से समानपना है। आहा...हा...! उस **सादृश्यदर्शक सत्पने से (सत् ऐसे भाव से अस्तित्व से हेयपने) उत्पन्न होनेवाला एकत्व...** है... है... सब है; यह **उत्पन्न होनेवाला एकत्व तिरोहित कर देता है...** (अर्थात्) अनेक को तिरोहित करता है। एक-एक भिन्न-भिन्न है, उसे वह ढँक देता है - ऐसा है। भाषा तो सादी है परन्तु अब वस्तु तो (जो है वह है।) परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जिस प्रकार वस्तु का स्वरूप (देखा है, वैसा कहा है।) भिन्न भी है और है... है... रूप से सादृश्यपने सब एक है। एक में अनेकपना ढँक जाता है, तथापि एक में अनेकपना भिन्न नहीं है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

और जैसे उन वृक्षों के विषय में सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक... सामान्य लक्षण - है... है... है... - ऐसा। **वृक्षत्व से उत्पन्न होनेवाले एकत्व से तिरोहित होने पर भी...** एक-एक वृक्ष का स्वरूप; बहुत वृक्ष है... है... है... ऐसी एकपने की अपेक्षा से एक वृक्ष का भिन्नपना ढँक गया होने पर भी **(अपने-अपने) विशेष लक्षणभूत स्वरूप अस्तित्व के अवलम्बन से उत्पन्न होनेवाला अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान रहता है...** आहा...हा...! क्या कहा? है... है... है... है... यह कहा, तथापि इसमें अनेकपना जो भिन्न है वह स्पष्टरूप से प्रकाशित है। वह ढँक गया, इसलिए भिन्न-भिन्न नहीं है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! **(बना रहता है नष्ट नहीं होता) उसी प्रकार...** यह वृक्ष का दृष्टान्त दिया।

उसी प्रकार सर्वद्रव्यों के विषय में भी सामान्यलक्षणभूत सादृश्यदर्शक सत्... है... है... है... है... है... है... यह सामान्यलक्षण है। आहा...हा...! (ऐसा) **सत्पने से उत्पन्न होनेवाले एकत्व से...** सर्व द्रव्यों के सम्बन्ध में भी अनेकपना वहाँ तिरोहित होने पर भी **(अपने-अपने) विशेष लक्षणभूत स्वरूप अस्तित्व के अवलम्बन से...** प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने स्वरूप अस्तित्व के अवलम्बन से, **उत्पन्न होता**

हुआ अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान होता है... एक... एक... एक... सत्... सत्... सत्... से कहा इसलिए एकपना जो अलग है, वह नष्ट हो जाता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वीतराग का ऐसा मार्ग है। कोई एक ही सर्व व्यापक कहता है, तब कोई एकान्त अनेक है (ऐसा मानता है) परन्तु अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, उसे नहीं मानता है। छह द्रव्य हैं, उसे नहीं जानता। एक चैतन्य से और पाँच अचेतन हैं, वे 'है' अपेक्षा से सब सत् में समाहित होते हैं परन्तु सत् में एकपने होने पर भी अनेकपना-भिन्न द्रव्य है, उसका अस्तित्व नष्ट नहीं होता। आहा...हा...! इस प्रकार वस्तु की स्थिति जिस प्रकार है, उस प्रकार से सिद्ध करते हैं।

[बहुत से (संख्यापेक्षा से अनेक) और अनेक प्रकार के (अर्थात् आम्र, अशोकादि) वृक्षों का अपना-अपना स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है, इसलिए स्वरूपास्तित्व की अपेक्षा से उनमें अनेकत्व है,... वृक्षगत अनेकपना। प्रत्येक वृक्षगत अनेकपना... अनेकपना अलग अलग है। **परन्तु वृक्षत्व जो कि सर्व वृक्षों का सामान्यलक्षण है...** वृक्षपना, बस! यह भी वृक्ष, यह भी वृक्ष - इस अपेक्षा से **और जो सर्व वृक्षों में सादृश्य बतलाता है, उसकी अपेक्षा से सर्व वृक्षों में एकत्व है। जब इस एकत्व को मुख्य करते हैं...** है... है... है... है... उसे मुख्य करते हैं, **तब अनेकत्व गौण हो जाता है;...** तब उसे भिन्न-भिन्न वस्तु गौण हो जाती है। बनिये को यह सब समझने के लिये फुरसत कब मिले? यह प्रवचनसार है! भगवान की दिव्यध्वनि का मक्खन है। आहा...हा...!

श्रोता : समझ सके तो बनिये ही समझ सकते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझें तो वे समझें। आहा...हा...! दूसरे को मिला कहाँ हैं? आहा...हा...!

इसी प्रकार बहुत से (अनन्त) और अनेक (छह) प्रकार के द्रव्यों का... देखा? बहुत और छह प्रकार के - बहुविध है न? (इन सभी) **द्रव्यों का अपना-अपना स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न है, इसलिए स्वरूपास्तित्व की अपेक्षा से उनमें अनेकत्व है,...** प्रत्येक द्रव्य अलग-अलग है। **परन्तु सत्पना (अस्तित्वपना, 'है' ऐसा भाव)...**

होने से, अर्थात् यह भी अस्तिपने है, यह भी अस्तिपने है, यह भी अस्तिपने है, यह है... यह है... यह है... ऐसा भाव, **जो कि सर्व द्रव्यों का सामान्य लक्षण है और जो सर्वद्रव्यों में सादृश्य बतलाता है उसकी अपेक्षा से सर्वद्रव्यों में एकत्व है।...** इस अपेक्षा से सभी द्रव्यों में एकपना है। आहा...हा...! छहों द्रव्य है – ऐसा (कहते हैं)। स्वरूप अस्तित्व से एक-एक द्रव्य भिन्न है परन्तु है... है... है... है... (ऐसे) सादृश्य लक्षण में छहों द्रव्य समाहित हो जाते हैं।

जब इस एकत्व को मुख्य करते हैं, तब अनेकत्व गौण हो जाता है।... है... है... है... है... ऐसा जब सत् का एकपना करते हैं, तब जो भिन्न-भिन्न चीज है, वह गोण हो जाती है, अभाव नहीं होता। आहा...हा...! जैसे (समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में पर्याय को अभूतार्थ कहा है न? यह अभूतार्थ कहा परन्तु गौण करके अभूतार्थ कहा है। पर्याय नहीं है – ऐसा नहीं है आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय प्रगट है, तीनों काल में प्रत्येक द्रव्य की वर्तमान पर्याय प्रगट... प्रगट... प्रगट... है। समझ में आया कुछ? तथापि पर्याय को अभूतार्थ कहा है अर्थात् नहीं है। इस प्रकार गौण करके 'नहीं' कहा है। अभाव करके 'नहीं' ऐसा नहीं कहा है। आहा...हा...! ग्यारहवीं गाथा! अर्थ में स्पष्टीकरण (किया है) पर्याय को झूठी कहोगे तो वेदान्त हो जाता है। यह पर्याय तो है, प्रत्येक द्रव्य की प्रगट पर्याय है। जैसे द्रव्य है, गुण है, वैसे ही पर्याय भी है।

श्रोता : पर्याय न होवे तो जाने कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय स्वयं ही जाननेवाली है। कार्य तो पर्याय में होता है, द्रव्य-गुण में कहीं कार्य नहीं होता। अनित्य, वह नित्य का निर्णय करता है; नित्य का निर्णय नित्य नहीं करता। आहा...हा...! वहाँ पर्याय को नहीं है ऐसा कहा है, वह गौण करके कहा है, पर्याय का अभाव करके नहीं। इसी प्रकार यहाँ पर सब है... है... है... है... एकपना कहा, उसमें एक-एक (स्वरूप अस्तित्व की) बात गौण रहती है। उस गौण का अभाव हो जाता है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा है। **इस एकत्व को मुख्य करते हैं, तब अनेकत्व गौण हो जाता है।**

और इस प्रकार जब सामान्य सतूपने को मुख्यता से लक्ष्य में लेने पर...

(अर्थात्) है... है... है... है... है... है... है... सभी द्रव्य 'है' ऐसे लक्ष्य में लेने पर **सर्व द्रव्यों के एकत्व की मुख्यता होने से अनेकत्व गौण हो जाता है,...** जैसे वृक्ष में अनेकपना गौण हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्य में भी अनेकपना, है... है... इसमें गौण हो जाता है। वह वृक्ष का दृष्टान्त दिया है। **तब भी वह (समस्त द्रव्यों का स्वरूप-अस्तित्व सम्बन्धी) अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान ही रहता है।]...** आहा...हा...! सब है... है... है... इस प्रकार सादृश्य लक्षण बताया, तथापि उसका एक-एकपने का स्वरूप भिन्न प्रकाशमान रहता है। उसका द्रव्य उसके गुण और उसकी पर्याय स्पष्टरूप से प्रकाशमान रहते हैं। आहा...हा...! ऐसा सुन न हो। छह द्रव्य कहते हैं परन्तु द्रव्य क्या? 'है' उसकी अपेक्षा से छह द्रव्य एक कहलाते हैं परन्तु प्रत्येक द्रव्य का स्वरूप भिन्न है, उसका प्रकाशमानपना कहीं जाता नहीं है। है... है... रूप से सबको सादृश्य कहा, इसलिए अपनी जाति जो भिन्न है, उसका कहीं नाश नहीं होता। वह तो गौणरूपपने कहा है आहा...हा...! आज की भाषा कठिन है। **अनेकत्व स्पष्टतया प्रकाशमान ही रहता है।]...** लो।

इस प्रकार सादृश्य अस्तित्व का निरूपण हुआ। है... है... है... है... इस अपेक्षा से सादृश्यपने का कथन किया। आहा...हा...! आचार्यों ने इतनी टीका करके एक-एक वाक्य की टीका की है। मुनि हैं! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा के अनुभव में हैं परन्तु उस समय विकल्प आया है, वह दुःखरूप है, उस पर लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य तो द्रव्य पर है; तथापि उस प्रकार का विकल्प और उस समय की जानने की पर्याय यह सब है। आहा...हा...! कुछ समझ में आया? अब ९८ वीं (गाथा)।

गाथा - ९८

अथ द्रव्यैर्द्रव्यान्तरस्यारम्भं द्रव्यादर्थान्तरत्वं च सत्तायाः प्रतिहन्ति -

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा।
सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ।।९८।।

द्रव्यं स्वभावसिद्धं सदिति जिनास्तत्त्वतः समाख्यातवन्तः।
सिद्धं तथा आगमतो नेच्छति यः स हि परसमयः।।९८।।

न खलु द्रव्यैर्द्रव्यान्तराणामारम्भः सर्वद्रव्याणां स्वभावसिद्धत्वात्। स्वभावसिद्धत्वं तु तेषामनादिनिधनत्वात्। अनादिनिधनं हि न साधनान्तरमपेक्षते। गुणपर्यायात्मानमात्मनः स्वभावमेव मूलसाधनमुपादाय स्वयमेव सिद्धसिद्धिमद्भूतं वर्तते। यत्तु द्रव्यैरारभ्यते न तद्द्रव्यान्तरं, कादाचित्कत्वात् स पर्यायः, द्व्यणुकादिवन्मनुष्यादिवच्च। द्रव्यं पुनरनवधि त्रिसमयावस्थायि न तथा स्यात्। अथैवं यथा सिद्धं स्वभावत एव द्रव्यं, तथा सदित्यपि तत्स्वभावत एव सिद्धमित्यवधार्यताम्, सत्तात्मनात्मनः स्वभावेन निष्पन्ननिष्पत्तिमद्भावयुक्तत्वात्। न च द्रव्यादर्थान्तरभूता सत्तोपपत्तिमभिप्रपद्यते यतस्तत्समवायात्तत्सदिति स्यात्। सतः सत्तायाश्च न तावद्युतसिद्धत्वेनार्थान्तरत्वं, तयोर्दण्डदण्डिवद्युतसिद्धस्यादर्शनात्। अयुतसिद्धत्वेनापि न तदुपपद्यते। इहेदमिति प्रतीतेरुपपद्यत इति चेत् किंनिबन्धना हीहेदमिति प्रतीतिः। भेदनिबन्धनेति चेत् को नाम भेदः। प्रादेशिक अताद्भाविको वा। न तावत्प्रादेशिकः, पूर्वमेव युतसिद्धत्वस्यापसारणात्। अताद्भाविकश्चेत् उपपन्न एव, यद्द्रव्यं तन्न गुण इति वचनात् अयं तु न खल्वेकान्तेनेहेदमिति प्रतीतेर्निबन्धनं, स्वयमेवोन्मग्ननिमग्नत्वात्। तथा हि-यदैव पर्यायेणार्प्यते द्रव्यं तदैव गुणवदिदं द्रव्यमयमस्य गुणः, शुभ्रमिदमुत्तरीयमयमस्य शुभ्रो गुण इत्यादिवदताद्भाविको भेद उन्मज्जति। यदा तु द्रव्येणार्प्यते द्रव्यं तदास्तमित-समस्तगुणवासनोन्मेषस्य तथाविधं द्रव्यमेव शुभ्रमुत्तरीयमित्यादिवत्प्रपश्यतः समूल एवाताद्भाविको भेदो निमज्जति। एवं हि भेदे निमज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिर्निमज्जति। तस्यां निमज्जत्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्वं निमज्जति। ततः समस्तमपि द्रव्यमेवैकं भूत्वावतिष्ठते। यदा तु भेद उन्मज्जति, तस्मिन्नुन्मज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिरुन्मज्जति, तस्यामुन्मज्ज-त्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्वमुन्मज्जति, तदापि तत्पर्यायत्वेनोन्मज्जज्जलराशेर्जलकल्लोल इव

द्रव्यान्न व्यतिरिक्तं स्यात्। एवं सति स्वयमेव सद्द्रव्यं भवति। यस्त्वेवं नेच्छति स खलु परसमय एव द्रष्टव्यः ।।९८।।

अथ यथा द्रव्यं स्वभावसिद्धं तथा तत्सदपि स्वभावत एवेत्याख्याति - **दव्वं सहावसिद्धं** द्रव्यं परमात्मद्रव्यं स्वभावसिद्धं भवति। कस्मात्। अनाद्यनन्तेन परहेतुनिरपेक्षेण स्वतः सिद्धेन केवलज्ञानादिगुणाधारभूतेन सदानन्दैकरूपसुखसुधारसपरमसमरसीभावपरिणतसर्वशुद्धात्म-प्रदेशभरितावस्थेन शुद्धोपादानभूतेन स्वकीयस्वभावेन निष्पन्नत्वात्। **यच्च** स्वभावसिद्धं न भवति तद्द्रव्यमपि न भवति। द्व्यणुकादिपुद्गलस्कन्धपर्यायवत् मनुष्यादिजीवपर्यायवच्च। **सदिति** यथा स्वभावतः सिद्धं तद्द्रव्यं तथा सदिति सत्तालक्षणमपि स्वभावत् एव भवति, न च भिन्नसत्तासमवायात्। अथवा यथा द्रव्यं स्वभावतः सिद्धं तथा तस्य योऽसौ सत्तागुणः सोऽपि स्वभावसिद्ध एव। कस्मादिति चेत्। सत्ताद्रव्ययोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि दण्डदण्डिवद्भिन्नप्रदेशाभावात्। **इदं** के कथितवन्तः। **जिणा तच्चदो समक्खादा** जिनाः कर्तारः तत्त्वतः सम्यगाख्यातवन्तः कथितवन्तः **सिद्धं तह आगमदो** सन्तानापेक्षया द्रव्यार्थिकनयेनानादिनिधनागमादपि तथा सिद्धं **णेच्छदि जो सो हि परसमओ** नेच्छति न मन्यते य इदं वस्तुस्वरूपं स हि स्फुटं परसमयो मिथ्यादृष्टिर्भवति। एवं यथा परमात्मद्रव्यं स्वभावतः सिद्धमवबोद्धव्यं तथा सर्वद्रव्याणीति। अत्र द्रव्यं केनापि पुरुषेण न क्रियते। सत्तागुणोऽपि द्रव्याद्भिन्नो नास्तीत्यभिप्रायः ।।९८।।

अब, द्रव्यों से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति होने का और द्रव्य से सत्ता का अर्थान्तरत्व[1] होने का खण्डन करते हैं। (अर्थात् ऐसा निश्चित करते हैं कि किसी द्रव्य से अन्य द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती और द्रव्य से अस्तित्व कोई पृथक् पदार्थ नहीं है) -

है द्रव्य सिद्ध स्वभाव से अरु, 'सत्' है यह जिनवर कहे।
है सिद्ध आगम से अरु, नहीं माने जिव परसमय वे॥

अन्वयार्थ : [**द्रव्यं**] द्रव्य [**स्वभावसिद्धं**] स्वभाव से सिद्ध और [**सत् इति**] (स्वभाव से ही) 'सत्' है, ऐसा [**जिनाः**] जिनेन्द्रदेव ने [**तत्त्वतः**] यथार्थतः [**समाख्यातवन्तः**] कहा है; [**तथा**] इस प्रकार [**आगमतः**] आगम से [**सिद्धं**] सिद्ध है; [**यः**] जो [**न इच्छति**] इसे नहीं मानता [**सः**] वह [**हि**] वास्तव में [**परसमयः**] परसमय है।

---

१. अर्थान्तरत्व = अन्य पदार्थपना।

टीका : वास्तव में द्रव्यों से द्रव्यान्तरों की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सर्व द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं। (उनकी) स्वभावसिद्धता तो उनकी अनादिनिधनता से है; क्योंकि अनादिनिधन[१] साधनान्तर की अपेक्षा नहीं रखता। वह गुणपर्यायात्मक ऐसे अपने स्वभाव को ही-जो कि मूल साधन है उसे -धारण करके स्वयमेव सिद्ध हुआ वर्तता है।

जो द्रव्यों से उत्पन्न होता है, वह तो द्रव्यान्तर नहीं है, कादाचित्कपने[२] के कारण पर्याय है; जैसे – द्विअणुक इत्यादि तथा मनुष्य इत्यादि। द्रव्य तो अनवधि (मर्यादारहित) त्रिसमय-अवस्थायी (त्रिकालस्थायी) होने से उत्पन्न नहीं होता।

अब, इस प्रकार – जैसे द्रव्य स्वभाव से ही सिद्ध है उसी प्रकार '(वह) सत् है' ऐसा भी उसके स्वभाव से ही सिद्ध है, ऐसा निर्णय हो; क्योंकि सत्तात्मक ऐसे अपने स्वभाव से निष्पन्न हुए भाववाला है (– द्रव्य का 'सत् है' ऐसा भाव द्रव्य के सत्तास्वरूप स्वभाव का ही बना हुआ है)।

द्रव्य से अर्थान्तरभूत सत्ता उत्पन्न नहीं है (नहीं बन सकती, योग्य नहीं है) कि जिसके समवाय से वह (द्रव्य) 'सत्' हो। (इसी को स्पष्ट समझाते हैं) :-

प्रथम तो सत्[३] से सत्ता[४] की युतसिद्धता[५] से अर्थान्तरत्व नहीं है, क्योंकि दण्ड और दण्डी की भाँति उनके सम्बन्ध में युतसिद्धता दिखाई नहीं देती। (दूसरे) अयुतसिद्धता से भी वह (अर्थान्तरत्व) नहीं बनता। 'इसमें यह है (अर्थात् द्रव्य में सत्ता है)' ऐसी प्रतीति होती है, इसलिए वह बन सकता है – ऐसा कहा जाय तो (पूछते हैं कि) 'इसमें यह है' ऐसी प्रतीति किसके आश्रय (-कारण) से होती है ? यदि ऐसा कहा जाय कि भेद के

1. अनादिनिधन = आदि और अन्त से रहित। (जो अनादि-अनन्त हो, उसकी सिद्धि के लिये अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है।)
2. कादाचित्क = कदाचित् - किसी समय हो ऐसा; अनित्य।
३. सत् = अस्तित्ववान् अर्थात् द्रव्य।
४. सत्ता = अस्तित्व (गुण)।
५. युतसिद्ध = जुड़कर सिद्ध हुआ; समवाय से = संयोग से सिद्ध हुआ। [जैसे, लाठी और मनुष्य के भिन्न होने पर भी लाठी के योग से मनुष्य 'लाठीवाला' होता है, इसी प्रकार सत्ता और द्रव्य के अलग होने पर भी सत्ता के योग से द्रव्य 'सत्तावाला' ('सत्') हुआ है - ऐसा नहीं है। लाठी और मनुष्य की भाँति सत्ता और द्रव्य अलग दिखाई ही नहीं देते। इस प्रकार 'लाठी' और 'लाठीवाले' की भाँति 'सत्ता' और 'सत्' के सम्बन्ध में युतसिद्धता नहीं है।]

आश्रय से (अर्थात् द्रव्य और सत्ता में भेद होने से) होती है तो, वह कौन सा भेद है? प्रादेशिक या अताद्भाविक? प्रादेशिक[१] तो है नहीं, क्योंकि युतसिद्धत्व पहले ही रद्ध (नष्ट, निरर्थक) कर दिया गया है, और यदि अताद्भाविक[२] कहा जाय तो वह उपपन्न ही (ठीक ही) है, क्योंकि ऐसा (शास्त्र का) वचन है कि 'जो द्रव्य है वह गुण नहीं है।' परन्तु (यहाँ भी यह ध्यान में रखना कि) यह अताद्भाविक भेद 'एकान्त से इसमें यह है' ऐसी प्रतीति का आश्रय (कारण) नहीं है, क्योंकि वह (अताद्भाविक भेद) स्वयमेव उन्मग्न[३] और निमग्न[४] होता है। वह इस प्रकार है - जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त कराई जाय (अर्थात् जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त करती है-पहुँचती है, इस प्रकार पर्यायार्थिकनय से देखा जाय) तब ही - 'शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है' इत्यादि की भाँति 'गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है' इस प्रकार अताद्भाविक भेद उन्मग्न होता है; परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त कराया जाय (अर्थात् द्रव्य को द्रव्य प्राप्त करता है - पहुँचता है, इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय से देखा जाय), तब जिसके समस्त गुणवासना के उन्मेष[५] अस्त हो गये हैं, ऐसे उस जीव को - 'शुक्लवस्त्र ही है' इत्यादि की भाँति - 'ऐसा द्रव्य ही है' इस प्रकार देखने पर समूल ही अताद्भाविक भेद निमग्न होता है। इस प्रकार भेद के निमग्न होने पर उसके आश्रय से (कारण से) होती हुई प्रतीति निमग्न होती है। उसके निमग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना निमग्न होता है, इसलिए समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है। और जब भेद उन्मग्न होता है, वह उन्मग्न होने पर उसके आश्रय (कारण) से होती हुई प्रतीति उन्मग्न होती है, उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना उन्मग्न होता है, तब भी (वह) द्रव्य के पर्यायरूप से

---

१. द्रव्य और सत्ता में प्रदेशभेद नहीं है; क्योंकि प्रदेशभेद हो तो युक्तसिद्धत्व आये, जिसको पहले ही रद्द करके बताया है।

२. द्रव्य वह गुण नहीं है और गुण वह द्रव्य नहीं है - ऐसे द्रव्य-गुण के भेद को (गुण-गुणी-भेद को) अताद्भाविक (तद्रूप न होनेरूप) भेद कहते हैं। यदि द्रव्य और सत्ता में ऐसा भेद कहा जाय तो वह योग्य ही है।

३. उन्मग्न होना = ऊपर आना; तैर आना; प्रगट होना (मुख्य होना)।

४. निमग्न होना = डूब जाना (गौण होना)।

५. गुणवासना के उन्मेष = द्रव्य में अनेक गुण होने के अभिप्राय की प्रगटता; गुणभेद होनेरूप मनोवृत्ति के (अभिप्राय के) अंकुर।

उन्मग्न होने से – जैसे जलराशि से जलतरंगें व्यतिरिक्त नहीं हैं (अर्थात् समुद्र से तरंगें अलग नहीं हैं) उसी प्रकार – द्रव्य से व्यतिरिक्त नहीं होता।

ऐसा होने से (यह निश्चित हुआ कि) द्रव्य स्वयमेव सत् है। जो ऐसा नहीं मानता वह वास्तव में 'परसमय' (मिथ्यादृष्टि) ही मानना॥ ९८॥

प्रवचन नं. ९७ का शेष **दिनाङ्क ०७ जून १९७९**

अब, ९८ (गाथा) **अब द्रव्यों से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति होने का...** (अर्थात्) एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य की उत्पत्ति होती है, **और द्रव्य से सत्ता का अर्थान्तरत्व...** और उस-उस द्रव्य की सत्ता उससे अलग होने का खण्डन करते हैं। ...यह क्या कहा? दो बात की – एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य की उत्पत्ति का खण्डन करते हैं और द्रव्य से सत्ता भिन्न है – इसका भी खण्डन करते हैं। द्रव्य है, उसकी सत्ता (उससे) अभिन्न है। सत्ता भिन्न है और द्रव्य भिन्न है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

इन सब महिलाओं को भोजनादि से निवृत्ति नहीं मिलती। फुरसत मिले और सुनने जाये तो (ऐसा कहते हैं कि) सामायिक करो, प्रौषध करो... हो गया... परन्तु तत्त्व क्या है? तत्त्व के अस्तित्व की मर्यादा क्या है? (उसका भान नहीं होता) आहा...हा...! एक समय की पर्याय की मर्यादा एक समयमात्र; गुण की मर्यादा त्रिकाल और द्रव्य की मर्यादा त्रिकाल, तथापि है... है कि अपेक्षा से तो सब है। 'है' में सबमें 'है' – ऐसा आ जाता है। सभी 'है' इसमें सब आ जाता है परन्तु यह 'है' ऐसा एकपना आने पर भी उसके द्रव्य का भिन्नपना-अनेकपना है, वह कहीं नष्ट नहीं होता। वह अनेकपना स्पष्ट प्रकाशमान रहता है। आहा...हा...!

अब, यहाँ द्रव्य की सत्ता, द्रव्य से अलग है, इसका खण्डन करते हैं। क्या कहा? एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य की उत्पत्ति होती है – (इसका खण्डन करते हैं।) आहा...हा...! हाँ; द्रव्य से उत्पत्ति होती है परन्तु पर्याय की होती है; द्रव्य से उत्पत्ति होती है परन्तु पर्याय की होती है। द्रव्य से दूसरे द्रव्य की उत्पत्ति होती है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! **द्रव्यों से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति होने का और द्रव्य से सत्ता का अर्थान्तरत्व...** पृथक्पना **होने**

का खण्डन करते हैं।... (अर्थात् ऐसा निश्चित करते हैं कि किसी द्रव्य से अन्य द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती और द्रव्य से अस्तित्व कोई पृथक् पदार्थ नहीं है)

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा।
सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ।। ९८।।

है द्रव्य सिद्ध स्वभाव से अरु, 'सत्' है यह जिनवर कहे।
है सिद्ध आगम से अरु, नहीं माने जिव परसमय वे॥

द्रव्य सत्स्वरूप ही है। आहा...हा... ! एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य की उत्पत्ति मानें, वह भी मिथ्यादृष्टि है और एक द्रव्य की सत्ता उससे भिन्न है – ऐसा माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। कुछ समझ में आया ?

प्रश्न : परमेश्वर ने सबको पैदा किया, यह मिथ्या है ?

समाधान : कौन कहे ? (आगे) कहेंगे। द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय की उत्पत्ति करता है। अपनी पर्याय की उत्पत्ति करता है परन्तु वह द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति करता है – ऐसा नहीं है। दूसरे द्रव्य की उत्पत्ति तो नहीं करता परन्तु दूसरे द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति नहीं करता – ऐसा है।

टीका : वास्तव में द्रव्यों से... अर्थात् वस्तुओं से। **द्रव्यान्तरों...** अर्थात् अन्य द्रव्यों की **उत्पत्ति नहीं होती...** क्या कहा ? वास्तव में जो वस्तु है, उससे अन्य वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती। द्रव्यान्तर, अर्थात् इस द्रव्य से अन्य द्रव्य की उत्पत्ति नहीं होती। आहा...हा... ! ईश्वर कर्ता तो नहीं परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है (– ऐसा कहते हैं।) आहा...हा... ! अकर्तापना तो वहाँ तक सिद्ध किया है.. आहा...हा... ! कि यह द्रव्य स्वयं पर्याय का कर्ता है, यह भी नहीं। आहा...हा... ! वहाँ तक सिद्ध किया है। पर की पर्याय का कर्ता तो नहीं परन्तु द्रव्य स्वयं (अपनी) पर्याय का कर्ता भी नहीं है। पर्याय, पर्याय से होती है और पर्याय, पर्याय की कर्ता, करण है। आहा...हा... ! ऐसा स्वरूप !

भगवान आत्मा, परमात्मस्वरूप से विराजमान है, पूर्ण स्वरूप, परमात्मस्वरूप, अखण्ड, अनन्त शक्तियों की अखण्डता का तत्त्व है। आहा...हा... ! परन्तु उस तत्त्व में

गुण, द्रव्य से अलग है, सत्ता अलग है – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! यहाँ पर्याय, द्रव्य से अलग है, यह भी नहीं लेना है। यहाँ तो मात्र पर से भिन्न कराना है न ? आहा...हा... ! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' दूसरी जगह (समयसार) ३२० गाथा में ऐसा कहते हैं कि मोक्ष की पर्याय और निर्जरा की पर्याय को भी द्रव्य नहीं करता। आहा...हा... ! वह दो के बीच की (बात है)। यह तो दूसरे के साथ की (भिन्नपने की बात है)। आहा...हा... ! यह एक (आत्म) तत्त्व शरीर के तत्त्व को उत्पन्न करे या शरीर की पर्याय को उत्पन्न करे – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म !

वास्तव में द्रव्यों से द्रव्यान्तरों की... द्रव्यान्तर, अर्थात् अन्य द्रव्य की। **उत्पत्ति नहीं होती।** पिता से पुत्र नहीं होता ? इस पिता से पुत्र हुआ, यह इसकी माँ से पुत्र हुआ – ऐसा तो कहते हैं ? सब गप्प है। आहा...हा... ! इसने इतने पैसे पैदा किये, इसने इतने मकान बनाये, इस प्रकार एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का नहीं करता ?

श्रोता : कल भक्ति में तो आया था की आप स्वाध्याय मन्दिर लाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो लिखा है। करे कौन कहते हैं ? आहा...हा... ! यहाँ तो जंगल था, आप आने के बाद यह सब हुआ, इसलिए आपसे हुआ ! ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! (भक्ति में गाना) यह तो निमित्त की बातें हैं। आहा...हा... ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को दूसरे क्षेत्र से खींच लावे – ऐसा भी नहीं है। आहा...हा... ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को नया बनावे – ऐसा भी नहीं है। उस द्रव्य की पर्याय को बनावे ऐसा भी नहीं है। उसी प्रकार वह द्रव्य दूसरे द्रव्यों, दूसरे क्षेत्र में होवें, वहाँ से खींचकर यहाँ लाता है – ऐसा भी नहीं है।

क्योंकि सर्व द्रव्य स्वभाव सिद्ध है... अपना स्व-भाव... स्व-भाव (से सिद्ध है।) प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव (से सिद्ध है।) परमाणु, आत्मा, कालाणु,... आहा...हा... ! वे अपने स्वभाव से सिद्ध हैं, वे पर के कारण सिद्ध नहीं हैं। आहा...हा... ! **(उनकी) स्वभाव सिद्धता तो उनकी अनादिनिधनता से है...** आहा...हा... ! प्रत्येक द्रव्य का स्वाभाविक सिद्धपना अनादि-अनन्तपने के कारण है। आहा...हा... ! पुत्र में पिता की झलक आती है – (ऐसा कहते हैं)। इसके पिता से पुत्र हुआ – ऐसा नहीं है ? उसकी

झलक आवे, इसकी तरह कोई किसी के द्रव्य से कोई किसी की द्रव्यपर्याय उत्पन्न हो – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! यह तो समझाना हो तब व्यवहार से समझाते हैं।

यह तो बहिन ने नहीं लिखा ? कि पिता की झलक पुत्र में आती है, अर्थात् वीतरागभगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की झलक मुनिपने में आती है। ऐसा आया है न ? बात यह सिद्ध की है आहा...हा.. ! पिताजी के शरीर, आकार, वाणी इत्यादि की झलक पुत्र में दिखती है। है स्वतन्त्र, परन्तु दिखती है। इसी प्रकार त्रिलोकनाथ वीतराग प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग का बिम्ब पर्याय में (दिखता है।) आहा...हा... ! उस मुनिपने में वीतरागी पिताजी की झलक दिखती है। आहा...हा... ! है स्वयं से; उनके शरीर की पर्याय शरीर की पर्याय से है परन्तु यह वीतराग का भाव परमात्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की झलक मुनि की दशा में दिखती है। आहा...हा... ! शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... जहाँ राग की प्रेरणा और विकल्प का जहाँ स्थान नहीं है – ऐसे मुनिपने का–वीतराग स्वभावानुसार उसका नमूना दिखे, यह मुनि ! आहा...हा... ! जिनकी श्रद्धा वीतरागी, जिनका ज्ञान वीतरागी, जिनका चारित्र वीतरागी ! आहा...हा... ! यह सब वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ धर्मपिता की झलक है – ऐसा कहा जाता है। हुआ है स्वयं से; ऐसे ही हुए हैं, शान्तमुनि ऐसे दिखते हैं, अकेला पञ्चम भाव, आहा...हा... ! जैसे परमात्मा को अकेला परमात्मस्वभावभाव परिणमन में प्रगट हुआ है – ऐसा ही पञ्चम भाव, क्षायिकभाव मुनिराज को पर्याय में आता है। पञ्चम भाव में से पर्याय में क्षायिकभाव (आता है)। पारिणामिकभाव का यह परिणमन वीतरागी परिणमन है।

भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है तो उसकी पर्याय में वीतरागता की झलक आती है। आहा...हा... ! राग और पञ्च महाव्रत का राग, वह उनकी झलक नहीं है। आहा...हा... ! उसका अंश चौथे (गुणस्थान में) भी आता है। वीतराग दृष्टि है न ? आहा...हा... ! मुनिपना वह तो मानो भगवान के विशिष्ट पुत्र ही हों ! मानों वीतराग का उत्तराधिकार मिला हो ! आहा...हा... !

श्रोता : गौतम को भगवान का पुत्र कहा जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा जाता है। 'सर्वज्ञपुत्र' कहा है, गौतम सर्वज्ञपुत्र हैं, वह

इस अपेक्षा से। आहा...हा...! सर्वज्ञ की झलक - अन्तर में चार ज्ञान प्रगट हुए, वीतरागीदशा! शरीर में वीतरागी बिम्ब ऐसा ढल गया! आहा...हा...! 'उपशमरस बरसै रे प्रभु तेरे नयन में...' आहा...हा...! जिनकी आँख में, शरीर में उपशमरस! जैसा उपशमरस भगवान को है, वैसा उपशमरस मुनि को है। बापू! यह कोई अलौकिक बातें हैं। आहा...हा...!

पञ्चम भाव त्रिलोकनाथ महासत्-सत्ता! सब होकर महासत्ता - ऐसा नहीं परन्तु स्वयं महासत्ता, अर्थात् महा-अस्तिरूप पदार्थ का जहाँ स्पर्श नहीं है, उसका आदर नहीं है, उसका आश्रय नहीं है, वहाँ तो वीतरागभाव की शुरुआत भी नहीं है। आहा...हा...! क्या कहते हैं ? यह भगवान का वीतरागभाव है, इसलिए इससे दूसरे मुनियों में वीतरागभाव आता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

सर्व द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं, (उनकी) स्वभावसिद्धता को उनकी अनादि-निधनता से है... यह तो अनादि-अनन्त जिनस्वरूप है। आहा...हा...! परमाणु भी अनादि-अनन्त स्वभावसिद्ध है, कालाणु भी अनादि-अनन्त स्वभावसिद्ध है, आहा...हा...! जातिरूप से छह द्रव्य कहे परन्तु संख्यारूप से अनन्त हैं। वे अनन्त, अनादि-अनन्त (स्वभाव से) स्वयं हैं।

क्योंकि अनादिनिधन साधनान्तर की अपेक्षा नहीं रखता... क्या कहते हैं ? जो चीज अनादि अनन्त है, (अर्थात्) आदि और अन्तरहित है, वह अनादि-अनन्त होता है, उसकी सिद्धि के लिये अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! बहिन के शब्द में (बहिनश्री के वचनामृत में) तो आया है न ? द्रव्य के कार्य के लिये अन्य द्रव्य के साधन की राह नहीं देखनी पड़ती है। आहा...हा...! द्रव्य उसे कहते हैं कि उसके कार्य के लिये अन्य द्रव्य की राह नहीं देखनी पड़ती। आहा...हा...! उस अन्य द्रव्य के कारण ऐसा कार्य प्रगट होता है - ऐसा नहीं है। उसका अस्तित्व तो अनादि-अनन्त है और अनादि-अनन्त के आश्रय से जो दशा प्रगट हुई, वह भी उसका अपना सत् है। वह पर के कारण उत्पन्न होता है - ऐसा नहीं है; क्योंकि (जैसे) वस्तु अनादि-अनन्त, द्रव्य और गुण है, वैसे ही पर्याय अनादि-अनन्त है। भले ही एक समय की स्थिति हो परन्तु यह अनादि-

अनन्त पर्याय है... है... है... है... है... है... उसे कोई उत्पत्ति का कारण नहीं है। आहा...हा...! जैसे वस्तु अनादि-अनन्त; गुण अनादि-अनन्त; पर्याय भी क्रमसर में अनादि-अनन्त है। आहा...हा...! ऐसे अनादि-अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय को पर की अपेक्षा नहीं होती। आहा...हा...! तत्त्व को समझे बिना यूँ ही ऊपर से एकान्त है... एकान्त है... ऐसा कह देना (इसमें) बड़ा उत्तरदायित्व है, प्रभु! यह सब चला जाएगा, कुछ नहीं रहेगा। आहा...हा...! अकेला छोड़कर चला जायेगा; अकेला है, वह अकेला ही रहेगा।

वस्तुतः तो शुभाशुभभाव किये होंगे, उसके परमाणु बँधे होंगे, वे परमाणु भी स्वयं के कारण आत्मा के साथ आयेंगे, आत्मा के कारण से नहीं। आहा...हा...! यह क्या कहा? शुभ-अशुभभाव हुए, उसके परमाणु बँधे, वे निमित्त हैं; परमाणु, परमाणु से है। आता है न? पद्मनन्दिपञ्चविंशति में आता है - कर्म स्वयं से जाता है, साथ आता है, वह आत्मा से नहीं। पद्मनन्दि(पञ्चविंशति में) आता है। आहा...हा...! आत्मा के कारण कर्म साथ आता है - ऐसा नहीं है। भिन्न द्रव्य है न? दूसरे द्रव्य के कारण दूसरा द्रव्य वहाँ खिंचकर आता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! थोड़े शब्दों में बहुत भरा है... बहुत भरा है...।

यहाँ कहते हैं कि **अनादिनिधन साधनान्तर की अपेक्षा नहीं रखता...** जो अनादि-अनन्त है; निधन अर्थात् अन्त नहीं, आदि और अन्त रहित है, उसे साधनान्तर (अर्थात्) दूसरे साधन की अपेक्षा नहीं होती। साधनान्तर - अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखता। आहा...हा...! भगवान आत्मा, पूर्ण गुण का धाम, उसके कार्य में - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कार्य में किसी साधनान्तर की उसे आवश्यकता नहीं है। जैसे द्रव्य-गुण को साधनान्तर की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार ऐसी पर्याय को भी अन्य साधनान्तर की आवश्यकता नहीं है। आ...हा...हा...!

गुण-पर्यायात्मक ऐसे अपने स्वभाव को ही... (अर्थात्) द्रव्य-वस्तु, उसकी शक्ति और अवस्थास्वरूप ऐसे अपने स्वभाव को; देखो! स्वभाव कहा। गुण और पर्याय को भी स्वभाव कहा। इसमें तो विकारी पर्याय भी स्वभाव कहा है। इसमें कुछ समझ में आया? आत्मा में गुण त्रिकाल है और पर्याय वर्तमान है। यह पर्याय विकृत हो या अविकृत हो परन्तु वह स्वयं इसका स्वभाव है। आहा...हा...! कोई कहता है कि यह विभाव है, वह

निमित्त से नहीं होता हो तो स्वभाव हो जायेगा... परन्तु प्रभु सुन! वह पर्याय भी इसका स्वभाव है। आहा...हा...! बैठना कठिन! है (पाठ में) ? **गुणपर्यायात्मक ऐसे अपने स्वभाव को ही - जो कि मूल साधन है...** देखा? आहा...हा...! पहले आया था न? मूल साधन! गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय और ध्रुव, द्रव्य को सिद्ध करने का मूल साधन है - ऐसा यहाँ कहते हैं कि अपना जो गुण-पर्यायस्वरूप जो स्वभाव है, वह मूल साधन है। **उसे - धारण करके स्वमेव सिद्ध हुआ वर्तता है...** ऐसा उपदेश! इसमें करना भी क्या? ऐसा कहते हैं कि पर का नहीं किया जा सकता। तेरी पर्याय भी तुझसे होती है यह भी वस्तुत: तो उसका भी कर्ता निश्चय से तो नहीं है परन्तु पर्याय तेरी है और अन्य (द्रव्य से) नहीं होती इसलिए तुझसे होती है - ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

ओ...हो...हो...! क्या वीतरागमार्ग! अरे...! परमात्मा को भी श्रद्धना, बापू! आहा...हा...! तीन लोक के नाथ तीर्थङ्कर! इसके गुण और अनन्त पर्याय होती है - ऐसा जगत् में एक द्रव्य है। ऐसे अनन्त सिद्ध है, ऐसे लाखों केवली हैं, बापू! इनकी श्रद्धा (वह कोई अलौकिक है।) ऐसे ही मानना, वह अलग बात है। आहा...हा...! ऐसे अनन्त सिद्ध अपने द्रव्य-गुण और पर्याय से, पूर्ण पर्याय से प्रभु विराजमान हैं, वह उनका अस्तित्व है। उनकी पर्याय को दूसरे साधनान्तर की भी आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! ऐसे भगवान सर्वज्ञ विराजमान हैं, केवली विराजमान हैं, सिद्ध विराजमान हैं, आहा...हा...! ऐसा ही तेरा आत्मा है, प्रभु! आहा...हा...! तेरी निर्मल पर्याय की प्राप्ति के लिये साधनान्तर की आवश्यकता नहीं है - भिन्न साधन की आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! निर्मल पर्याय का साधन कहना हो तो वह अपना द्रव्य है, स्वयं का द्रव्य है, आहा...हा...! यह तो आ गया न? कर्ता-करण-अधिकरण यह आ गया न? गुण-पर्याय, द्रव्य का कर्ता-करण है और द्रव्य, गुण-पर्याय का कर्ता-करण और अधिकरण है। आहा...हा...! थोड़ी बात परन्तु गजब काम किया है न! आहा...हा...! ऐसा कब मिले? भाई!

आहा...हा...! एक आत्मा अनन्त गुण का स्वामी! अरे...! निगोद में अनन्त आत्माएँ हैं परन्तु एक-एक आत्मा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड है। पर्याय की नजर मत कर क्योंकि उस पर्याय की नजर छोड़कर जब द्रव्यदृष्टि की है,

तब पर को भी तू पर्याय से मत देख, उसका द्रव्य देख। आहा...हा...! वह भगवानस्वरूप है। ये निगोद के अनन्त जीव परमात्मस्वरूप है। आहा...हा...! उनके अस्तित्व में इस प्रकार से है। उनका ऐसा अस्तित्व दूसरे द्रव्य की अपेक्षा नहीं रखता। आहा...हा...! बहुत समाहित कर दिया है! इसमें तो बहुत समाहित कर दिया है। आहा...हा...! प्रभु का विरह भुलाया है, सन्तों ने ऐसी स्पष्टता कर दी है। आहा...हा...!

क्या कहा? **गुणपर्यायात्मक ऐसे अपने स्वभाव को ही जो कि मूल साधन है, उसे - धारण करके...** प्रत्येक द्रव्य **स्वमेव...** स्वयं ही **सिद्ध हुआ वर्तता है।** स्वयमेव - स्वयं ही अपनी अस्ति का सिद्धपना वर्तता है। आहा...हा...!

जो द्रव्यों से उत्पन्न होता है वह तो द्रव्यान्तर नहीं है... देखो! अब आया, जो द्रव्य से उत्पन्न होता है, वह अन्य द्रव्य, अन्य गुण और अन्य पर्याय नहीं है। आहा...हा...! **कदाचित्कपने के कारण पर्याय है...** यह देखो आया? आहा...हा...! द्रव्य से उत्पन्न होती है (ऐसा) यदि कहो तो उस द्रव्य से पर्याय उत्पन्न होती है। आहा...हा...! दूसरे की पर्याय और द्रव्य-गुण तो नहीं परन्तु वह द्रव्य अपनी पर्याय को उत्पन्न करता है। द्रव्य-गुण - उत्पन्न करता है ऐसा तुम्हें सिद्ध करना हो तो यह द्रव्य, पर्याय को उत्पन्न करता है। आहा...हा...! अन्दर फाठ... फाठ... प्याला फटे! भिन्न-भिन्न... आहा...हा...! जैसे पर्वत में बिजली गिरे और दो भाग पड़ जायें; उसी प्रकार यहाँ अन्दर दो भाग पड़ जाते हैं। आहा...हा...! प्रभु तू उत्पन्न करे तो अपनी पर्याय, हाँ! और उस पर्याय की उत्पत्ति करने पर द्रव्य पर दृष्टि होती है। इसलिए उसकी पर्याय की उत्पत्ति निर्मल होती है। आहा...हा...! द्रव्य है, ऐसा न माने, उसे तो पर्याय, ध्रुव से होती है परन्तु उसे द्रव्य है और यह द्रव्य से पर्याय हुई - ऐसी सत्ता की श्रद्धा कहाँ है? आहा...हा...! इसमें समझ में आया? आहा...हा...! क्या कहा यह? जिसे द्रव्य है - ऐसा जहाँ जँचा, उस द्रव्य से उत्पन्न हो, वह द्रव्यान्तर नहीं है। दूसरे द्रव्य की पर्याय और दूसरा द्रव्य नहीं है। **कदाचित्कपने के कारण...** आहा...हा...! कदाचित्क (अर्थात्) किसी समय हो ऐसा - अनित्य है न यह? पर्याय तो कदाचित्क होती है न? एक पर्याय... एक पर्याय... उस-उस समय होती है। आहा...हा...! वह पर्याय सदा

ही होती है – ऐसा नहीं। वह कदाचित्क होती है, होवे तब होती है – ऐसी अनन्त पर्यायें हैं। आहा...हा...! यह अन्यमती सुने तो (ऐसा लगे कि) यह क्या लगा रखी है ? यह कैसा जैनधर्म ! बापू ! मार्ग अलग है, भाई !

प्रभु ! सबकी सत्ता का स्वीकार करके तेरे द्रव्य का स्वीकार होवे तो द्रव्य में से पर्याय होती है। उस पर्याय से पर्याय नहीं होती, द्रव्य में से (पर्याय) होती है। राग से नहीं होती–पर से नहीं होती; द्रव्य में से द्रव्यान्तर (नहीं होता)। तुम्हें उत्पत्ति कहना हो तो उस पर्याय की उत्पत्ति होती है। आहा...हा...! कुछ समझ में आया।

जैसे – द्विअणुक इत्यादि तथा मनुष्य इत्यादि... यह दो अणु-परमाणु, तीन परमाणु उत्पन्न हों, वह द्रव्य की पर्याय हुई। वह उनके द्रव्य की पर्याय है। मनुष्यपना हुआ तो यह परमाणु जड़ की पर्याय है। यह मनुष्यपना उत्पन्न हुआ है, वह जड़ की पर्याय है। कदाचित्क है। यह पर्याय सदा यही की यही रहेगी – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! बहुत लिखा है ! दो परमाणु, तीन परमाणु, वह अनन्त परमाणु की उत्पत्ति उस-उस द्रव्य से होती है। आहा...हा...! दूसरे आत्मा से नहीं।

यह जो अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध बनता है, वह परमाणु से उत्पन्न हुई यह पर्याय है, आत्मा से उत्पन्न हुई नहीं। आहा...हा...! **द्विअणुक इत्यादि तथा मनुष्य इत्यादि...** पर्याय, हाँ ! कदाचित्क होती है और किसलिए किसी समय (होती है)। पर्याय कहीं सदा नहीं होती, (अर्थात्) वही की वही पर्याय सदा नहीं होती, वही की वही पर्याय कदाचित्क अर्थात् जिस समय हो, उस समय वहाँ होती है – ऐसा। कदाचित्क का अर्थ पर्याय तो सदा होती है परन्तु वह पर्याय कदाचित्क है अर्थात् उस समय की हो तब होती है। आहा...हा...! बहुत समा दिया है ! बहुत समा दिया है !! प्रभु ! ओ...हो...! द्विअणुक और मनुष्य इत्यादि – भाषा इत्यादि।

द्रव्य तो अनवधि (मर्यादारहित) त्रिसमय अवस्थायी... है। त्रिसमय - अवस्थायी ! क्या कहते हैं ? पर्याय है, वह तो कदाचित्क उत्पन्न होती है। यह वस्तु है, वह तो त्रिकाल है, भाई ! ऐसा कहाँ था कहीं ? आहा...हा...! क्या तत्त्व की सूक्ष्मता की स्थिति ! आहा...हा...! **द्रव्य तो अनवधि...** (है।) उत्पन्न होता है, वह तो पर्याय है; वह कदाचित्क

है अर्थात् उस समय में वह होती है, वह पर्याय सदा वही की वही होती है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

अब, इस प्रकार जैसे द्रव्यस्वभाव से ही सिद्ध है, उसी प्रकार वह सत् है – ऐसा भी उसके स्वभाव से ही सिद्ध है... आहा...हा...! सत् है, वह कहीं द्रव्य से उत्पन्न हुआ नया सत् है – ऐसा नहीं है। द्रव्य है, वैसे सत् भी है। आहा...हा...! **ऐसा निर्णय हो...** जैसे द्रव्य है, वैसे सत् – सत्ता है। वह भी ऐसा का ऐसा है, ऐसा निर्णय हो **क्योंकि सत्तात्मक ऐसे अपने स्वभाव से निष्पन्न हुआ भाववाला है... (द्रव्य का सत् है ऐसा भाव द्रव्य के सत्तास्वरूप स्वभाव का भी बना हुआ है)...** यह तो उसका स्वभाव ही है। यह स्वभाव और द्रव्य दोनों अलग नहीं हैं। आहा...हा...! द्रव्य से सत्तास्वभाव उत्पन्न हुआ है – ऐसा नहीं है। द्रव्य से सत् गुण खड़ा हुआ है – ऐसा नहीं है। जैसे द्रव्य अनादि-अनन्त है, वैसे ही सत् भी उसके साथ अभेद है। आहा...हा...!

विशेष कहेंगे।

प्रवचन नं. ९८ **दिनाङ्क ०८ जून १९७९**

(प्रवचनसार) ९८ वें गाथा। १९२ (पृष्ठ) **प्रथम तो...** यहाँ से है न? **सत् से सत्ता की युतसिद्धता से अर्थान्तरत्व नहीं है...** क्या कहते हैं? जो द्रव्य है, द्रव्य; सत् अर्थात् द्रव्य। उससे सत्ता नाम का गुण उसका **युतसिद्धता से...** (अर्थात्) द्रव्य और सत्ता को सम्बन्ध हुआ – ऐसा उसमें नहीं है। **युतसिद्धता से अर्थान्तरत्व नहीं है...** (उसका) दृष्टान्त देंगे। क्या कहा समझ में आया? सत् है (अर्थात्) द्रव्य है। आत्मा, परमाणु आदि (कोई भी) द्रव्य। उसकी जो सत्ता है, वह **अर्थान्तरत्व नहीं है...** (अर्थात्) सत् अलग और सत्ता अलग; द्रव्य अलग और सत्ता अलग – ऐसा नहीं है।

क्योंकि दण्ड और दण्डी की भाँति उनके सम्बन्ध में युतसिद्धता दिखाई नहीं देती... लकड़ीवाला मनुष्य – (ऐसा कहने पर) लकड़ी और मनुष्य दोनों भिन्न हैं। लकड़ी से मनुष्य ऐसे युतसिद्ध, अर्थात् दूसरी चीज से उसे सिद्ध किया गया, इस प्रकार सत् में (द्रव्य में) उसकी सत्ता इस तरह नहीं है। 'लकड़ीवाला मनुष्य' ऐसे 'सत्तावाला

सत्' ऐसा नहीं है – ऐसी बात है। वस्तु की स्थिति का वर्णन (करते हैं।) यह तो ज्ञान कराते हैं। आश्रय किसका करना है ? – यह अन्त में (कहेंगे।) यह तो वस्तुस्थिति क्या है ? (वह कहते हैं।)

जैसे दण्ड और दण्डी दो अलग वस्तु हैं... हैं न ? **दण्ड और दण्डी की भाँति उनके सम्बन्ध में युतसिद्धता...** अर्थात् सम्बन्धवाला। **दिखाई नहीं देती...** लकड़ी वह दण्ड (और) दण्डी (मनुष्य) दोनों भिन्न हैं। वे युतसिद्ध (अर्थात्) उनके संयोगसम्बन्ध से बात की गयी। संयोगसम्बन्ध ! आहा...हा... ! इसी तरह आत्मा या प्रत्येक वस्तु और उसकी सत्ता – इस प्रकार नहीं है। सत्ता, सत्स्वरूप ही है, सत्... सत्... सत्... सत्तास्वरूप ही है। कुछ समझ में आया ? आहा...हा... ! ऐसी बात है।

(दूसरे) अयुतसिद्धता से भी वह (अर्थान्तरत्व) नहीं बनता। इसमें यह है (अर्थात् द्रव्य में सत्ता है) ऐसी प्रतीति होती है, इसलिए वह बन सकता है – ऐसा कहा जाये तो... अब इसके दो प्रकार करते हैं। क्या कहते हैं ? अयुतसिद्ध (अर्थात्) दण्ड और दण्डी की तरह नहीं परन्तु अयुतसिद्ध (अर्थात्) सत् है वह सत्ता है, सत् है वह सत्तावाला है और सत्ता है वह सत् है – ऐसा। **इसमें यह है (अर्थात् द्रव्य में सत्ता है) ऐसी प्रतीति होती है, इसलिए वह बन सकता है – ऐसा कहा जाये तो (पूछते हैं कि) 'इसमें यह है'...** (अर्थात्) सत् में सत्ता है – ऐसी। **प्रतीति किसके आश्रय से (– कारण से)** होती है ?... द्रव्य में सत्ता है – वस्तु में सत्ता है – ऐसा तू किसके आश्रय से कहना चाहता है ? सूक्ष्म है (परन्तु) Logic से बात है। **(द्रव्य में सत्ता है) ऐसी प्रतीति होती है, इसलिए वह बन सकता है...** ऐसा तू कहना चाहे **तो (पूछते हैं कि) 'इसमें यह है' ऐसी प्रतीति किसके आश्रय से (– कारण से) होती है ? यदि ऐसा कहा जाये कि भेद के आश्रय से (अर्थात् द्रव्य और सत्ता में भेद होने से होती है)...** सत् और सत्ता में भेद के कारण ऐसी (प्रतीति होती) है ?

यदि ऐसा कहा जाये तो (पूछते हैं कि) वह कौन सा भेद है ? प्रादेशिक या अताद्भाविक... सत् द्रव्य है और सत्ता – दोनों के प्रदेशभेद हैं या दोनों में अतद्भाव है ? सत्ता, वह सत् नहीं और सत्, वह सत्ता नहीं – इतना अतद्भाव है परन्तु तू इनके प्रदेशभेद कहता हो तो इस प्रकार (वस्तुस्थिति) नहीं है। यह तो वीतराग द्वारा कथित तत्त्व अन्यत्र

कहीं नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कथित सत्, वह सत्ता से सत् है - युतसिद्ध है - ऐसा नहीं है। सत्ता, सत् दोनों एक ही है परन्तु हम पूछते हैं कि तू सत् और सत्ता अयुतसिद्ध कहता है तो उनका भेद किस प्रकार (करता है?) प्रदेशभेद से अयुतसिद्ध है? या अतद्‌भाव से अयुतसिद्ध है। है?

प्रादेशिक तो है नहीं क्योंकि युतसिद्धत्व पहले ही रद्द (नष्ट, निरर्थक) कर दिया गया है।... आहा...हा...! द्रव्य और सत्ता के प्रदेश अलग हैं - ऐसा नहीं है। अरे...! ऐसी बातें! बनिये को फुरसत नहीं मिलती। सत् - छह द्रव्य; ये द्रव्य (और) सत्ता तू भेद से कहता हो तो किस प्रकार? प्रदेशभेद से या अतद्‌भाव भेद से? प्रदेशभेद से (तू कहता हो तो) हम पहले से ही रद्द करते आये हैं कि सत्-द्रव्य और सत्ता के प्रदेश अलग नहीं हैं।

प्रश्न : इतना सब समझना है?

समाधान : यह वस्तुस्थिति है। जिस प्रकार वस्तु है, उस प्रकार नहीं जानें तो संशय और विपरीतता हो जाती है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने (जैसा देखा वैसा कहा है)। यह ज्ञेय अधिकार है और ज्ञेय अधिकार, वह ज्ञान प्रधानरूप से सम्यग्दर्शन का विषय है। आहा...हा...! जो वस्तु जिस प्रकार है, उस प्रकार उसे ज्ञान में आनी चाहिए। आहा...हा...! यह तो कहा कि बनिये को फुरसत कहाँ है? ऐसा निर्णय करने का समय कहाँ है? कमाना और एक-दो घण्टे सुनने जाना... हो गया...! यहाँ तो भगवान वस्तु को Logic से-न्याय से सिद्ध करते हैं। आहा...हा...! आहा...हा...!

सत् द्रव्य है, सत्ता है और द्रव्य है - इस प्रकार यदि तू भेद कहता हो तो वह भेद प्रदेशभेद से है? या अतद्‌भाव से भेद है? (यदि तू) प्रदेशभेद से (भेद कहता हो तो उसका तो) हम निषेध करते आये हैं। आहा...हा...!

श्रोता : प्रादेशिक भेद और अताद्‌भाविक भेद - दोनों शब्दों से अनजान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो धीरे-धीरे कहते हैं। वहाँ अन्दर लड़कों को मैंने कहा था कि आज सूक्ष्म आयेगा, तुम्हारे बाप-दादाओं ने नहीं सुना होगा।

श्रोता : था ही कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : था ही नहीं। आहा...हा...!

कहते हैं कि भगवान सर्वज्ञ तीर्थङ्कर ने जो पदार्थ जाने हैं, उन पदार्थों की स्थिति क्या है ? उसमें यहाँ यह कहते हैं कि द्रव्य सत् है, वह द्रव्य सत् है – अस्तिवाला है तो उस सत्ता के कारण अस्तिवाला है ? या सत्तासहित अस्तिवाला है ? सत् और सत्ता में प्रदेशभेद है ? या अयुतसिद्ध है ? अर्थात् इससे जुड़ान नहीं है; सत्, सत्तास्वरूप ही है। सत्ता, सत्स्वरूप ही है। आहा...हा... ! परन्तु (यदि तू) प्रदेशभेद कहता हो तो नहीं है परन्तु **अताद्भाविक कहा जाये तो...** अतद्भाव है न ? (मूल शास्त्र में फुटनोट में अर्थ लिखा है) द्रव्य वह गुण नहीं है और गुण वह द्रव्य नहीं है – ऐसे द्रव्य-गुण के भेद को (गुण-गुणी के भेद को) अतद्भाविक भेद (तद्रूप न होनेरूप) भेद... अर्थात् सत् है, वह सत्तारूप नहीं है, सत्ता है, वह सत्रूप नहीं है, ऐसा गुण-गुणी का भेद है। आहा...हा... ! द्रव्य और सत्ता में ऐसा भेद कहा जाये तो वह योग्य ही है परन्तु तू ऐसा कहता हो कि सत्ता का सम्बन्ध हुआ, इसलिए सत्-द्रव्य है तो ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा सुनना, लो !

श्रोता : यह तो पण्डितों के लिए है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जिसे पदार्थ समझना हो और पदार्थ की प्रतीति करना हो, उसके लिए है। ज्ञेय अधिकार सम्यग्दर्शन का अधिकार है। ९२ वीं गाथा तक ज्ञान का अधिकार था, यह दर्शन का अधिकार है। (इस अधिकार को) आचार्य जयसेन ने दर्शन का अधिकार कहा है। पहले (वस्तु) कैसी है, यह जाने तो सही ! आहा...हा... ! फिर आश्रय किसका करना ? यह प्रश्न बाद का है परन्तु वस्तु कैसी है ? – यह फिर सत् और सत्ता के भेद का आश्रय करना – ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

अतद्भाव होने पर भी (अर्थात्) जो सत् है, वह सत्ता नहीं है और सत्ता है, वह सत् नहीं है। सत्-द्रव्य है, वह गुण-सत्ता नहीं है और सत्ता-गुण है, वह (सत्) द्रव्य नहीं है। इसमें कुछ समझ में आया ? सत्ता, गुण है और सत् द्रव्य है परन्तु वह द्रव्य और गुण अतद्भाव से है अवश्य कि द्रव्य है, वह गुण नहीं और गुण है, वह द्रव्य नहीं परन्तु इनके प्रदेशभेद हैं – गुण के प्रदेश-क्षेत्र अलग है और द्रव्य के (अलग हैं) – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! है ? **अतद्भाविक कहा जाये तो वह...** ठीक है। धीरे से समझे तो समझ में आवे ऐसा है। भाषा कोई ऐसी (कठिन) नहीं है।

सत्ता और 'है' - वह सत्ता-गुण और सत् - द्रव्य को जुड़ान हुआ, इसलिए वह सत्ता है - ऐसा नहीं है परन्तु सत् और सत्ता में द्रव्य, वह गुण नहीं है और गुण, वह द्रव्य नहीं है, इस अपेक्षा से सत् और सत्ता के बीच अतद्भाव कहा जाता है। समझ में आया कुछ ?

कहते हैं कि द्रव्य है, वह सत् है तथा वैसे ही सत्ता है परन्तु उस सत्ता के कारण द्रव्य का जुड़ान होकर सत्ता है - ऐसा नहीं है। युतसिद्ध नहीं है (अर्थात्) सम्बन्ध सिद्ध नहीं है - संयोगसिद्ध नहीं है। द्रव्य-सत् और सत्ता को संयोगसिद्ध सम्बन्ध नहीं है। दण्ड और दण्डी को संयोगसिद्ध सम्बन्ध है, इस प्रकार सत्ता को और सत् को संयोगसिद्ध सम्बन्ध नहीं है परन्तु स्वभाव में द्रव्य और गुण - ऐसा अतद्भाव है।

श्रोता : यह तो न्याय शास्त्रों की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान का मार्ग-न्याय तो ऐसा है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है। यह तो धीमे-धीमे कहते हैं, भाई! यह (बात) तुम्हारी बहियों में कहीं नहीं आती और तुम्हारे बाप-दादा ने कभी सुनी नहीं होगी। यह बात थी ही नहीं! आहा...हा... ! हमारे बाप-दादा ने कभी नहीं सुनी थी! आहा...हा... ! यह बात ही (नहीं थी), बापू!

(यहाँ पर) कहते हैं प्रभु! वस्तु की मर्यादा किस प्रकार है ? द्रव्य है, वह सत्ता है परन्तु द्रव्य-गुण की सत्ता एकमेक है। सत्ता अलग है और सत् - द्रव्य अलग है - ऐसा सम्बन्ध होकर सत्ता (और) सत् नहीं है। आहा...हा... ! परन्तु अतद्भावरूप से है। द्रव्य है, वह गुण नहीं है और गुण है, वह द्रव्य नहीं है। इस प्रकार अतद्भावरूप से उन्हें भेद है परन्तु सत्ता भिन्न और सत्-द्रव्य भिन्न है और उनके संयोग से यह (द्रव्य है) - ऐसा नहीं है। ऐसा होवे तो प्रदेश (भेद) हो जाये परन्तु प्रदेशभेद नहीं है। आहा...हा... ! ऐसी बात है। कठिन लगे! स्थानकवासी को तो कुछ अभ्यास ही नहीं होता। वे तो (ऐसा ही कहते हैं) यह सामायिक करो, प्रौषध करो और प्रतिक्रमण करो... आहा... ! श्वेताम्बर में टीका में कुछ होता है परन्तु इस स्थिति से नहीं। आहा...हा... !

जगत् के अनन्त द्रव्य हैं, उन अनन्त द्रव्यों में सत्ता का उनके साथ सम्बन्ध है। स्वभावसम्बन्ध है, संयोगसम्बन्ध नहीं। आहा...हा... ! क्या कहा समझे ? द्रव्य और सत्ता

को स्वभावसम्बन्ध है, संयोगसम्बन्ध नहीं। आहा...हा... ! **अताद्भाविक कहा जाये तो वह उपपन्न ही (ठीक ही) है क्योंकि जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है...** द्रव्य तो अनन्त गुण का पिण्ड है। गुण है उस एक-एक में नामभेद-संज्ञाभेद है। आहा...हा... ! वाच्यभेद है न ? गुण को गुण कहना और (द्रव्य को) द्रव्य कहना; **ऐसा (शास्त्र का) वचन है।**

परन्तु (यहाँ भी यह ध्यान रखना कि) यह अताद्भाविक भेद एकान्त से इसमें यह है... आहा...हा... ! एकान्त से सत् में सत्ता है - ऐसा नहीं है। सत्, वह तो सत्तास्वरूप ही है। **एकान्त से इसमें यह है - ऐसी प्रतीति का आश्रय-कारण नहीं है...** एकान्त से सत्, सत्ता ही है - ऐसा नहीं है। सत्-द्रव्य और सत्ता-गुण इतना भेद अन्दर है। अताद्भाविक कहा है फिर भी इतना भेद है। कुछ समझ में आया ? आहा...हा... ! कल का भी सूक्ष्म था, आज का भी सूक्ष्म है। हमारे धर्म करना है, (इसमें इसका) क्या काम ? धर्म करना है परन्तु धर्म क्या चीज है ? धर्मी के साथ धर्म का कुछ प्रदेशभेद है ? धर्मी और धर्म की पर्याय दो के बीच प्रदेशभेद है ? (यह समझे बिना धर्म नहीं होता)। अभी यह बात सिद्ध करनी है। हाँ ! निश्चय से तो पर्याय और द्रव्य के प्रदेशभेद हैं, वह दूसरी बात है। (समयसार) संवर अधिकार ! यहाँ तो वस्तु की स्थिति सिद्ध करनी है।

द्रव्य है, वही सत्ता है, वह गुणरूप है; गुण है, वह द्रव्यरूप है - ऐसा अतद्भाव सम्बन्ध भले ही नामभेद से कहो परन्तु सत्ता अलग थी और सत्-द्रव्य के साथ जुड़ गयी, तब उसका सत्, सत्ता हुई - ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! इसका अर्थ यह है कि सत्तागुण को लक्ष्य में नहीं लेना। इस सत्ता गुण का धारक सत् है, उसे लक्ष्य में लेना।

श्रोता : ज्ञान दोनों का करना, आश्रय एक का करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान करना अलग वस्तु है परन्तु वस्तु तो त्रिकाल सत्तारूप से जो सत् है, एकरूप सत् है, उसे गुण-गुणी का अतद्भाव है, वह भी लक्ष्य में - दृष्टि में नहीं लेना है। आहा...हा... !

श्रोता : समयसार से भी यह कठिन आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : (समयसार की) वह कथनी दर्शनप्रधान है। यह ज्ञानप्रधान कथन है। ऐसे ही नियमसार में लो तो (ऐसा लिखते हैं कि) मैंने अपनी भावना के

लिए बनाया है। यह कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ ऐसा कहते हैं कि वास्तविक आत्मा किसे कहना कि पर्यायरहित जो त्रिकाल है, उसे वास्तव में आत्मा कहना। आहा...हा...! मैंने अपनी भावना के लिए बनाया है। आहा...हा...! वस्तुत: आत्मा किसे कहना? इसमें क्षायिकभाव भी नहीं है। आहा...हा...! उदयभाव-रागभाव और उपशमभाव तो कहीं रह गये। आहा...हा...!

यहाँ तो (यह कहना है कि) वस्तु और सत्ता दोनों के प्रदेश भिन्न है – ऐसा नहीं है। उनके नामभेद / संज्ञाभेद है, इसलिए अतद्भाव है परन्तु अतद्भाव होने पर भी एकान्त से यह अलग ही है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! **अताद्भाविक भेद एकान्त से इसमें यह है...** यह भेद एकान्त से है, ऐसा नहीं है। (ऐसा भेद) **प्रतीति का आश्रय (कारण नहीं है) क्योंकि वह (अताद्भाविक भेद) स्वयंमेव उन्मग्न और निमग्न होता है...** भाषा देखो! आहा...हा...!

आत्मा अथवा द्रव्य और सत्ता; सत् और सत्ता (दोनों के बीच) अतद्भाव है अवश्य; द्रव्य है, वह गुण नहीं है और गुण है, वह द्रव्य नहीं है। युतसिद्ध नहीं किन्तु अयुतसिद्ध अतद्भाव है। वह अताद्भाविक भेद भी दो प्रकार से है। **स्वयमेव उन्मग्न और निमग्न होता है...** कौन? अताद्भाविक भेद उन्मग्न अर्थात् ऊपर आना, तैर आना, प्रगट होना। निमग्न अर्थात् डूब जाना, गौण होना, माने क्या?

जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त करायी जाये... आहा...हा...! द्रव्य को जब पर्याय से देखा जाये आहा...हा...! **जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त करायी जाये (अर्थात् जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त करती है – पहुँचती है, इस प्रकार पर्यायार्थिकनय से देखा जाये) तब ही-शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है इत्यादि की भाँति गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है।...** ऐसा कहा जाता है। पर्यायनय से देखो तो गुणवाला द्रव्य है – ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...! अकेला न्याय भरा है! यह किसी दिन सुना है या नहीं वहाँ? भाई! आहा...हा...!

यहाँ तो परमात्मा स्वयं (ऐसा कहते हैं कि) सत् है और सत्ता है – ऐसा द्रव्य (और) गुण का भेद पड़ा, वह अतद्भाव (भेद है)। अतद्भाव को भी दो दृष्टियों से देखा

जाता है। पर्याय से देखे... आहा...हा...! है? **द्रव्य को पर्याय प्राप्त करायी जाये (अर्थात् जब द्रव्य को पर्याय प्राप्त करती है - पहुँचती है, इस प्रकार पर्यायार्थिकनय से देखा जाये) तब ही-शुक्ल यह वस्त्र है,...** शुक्ल यह वस्त्र है (ऐसा कहा है।) शुक्ल वस्त्र ही है - ऐसा नहीं। पर्यायनय है न? आहा...हा...! धीमे से (समझना)। आज का विषय ऐसा है। इसके व्यापार में कहीं सुना नहीं जाता। उपाश्रय से सुना नहीं जाता, मन्दिर में जाये तो भी सुनने नहीं मिलता। अरे...! दिगम्बर में जाये तो अभी कहाँ ठिकाना है? व्रत करो, प्रतिमा धारो... यह छोड़ो और वह छोड़ो और यह छोड़ो (कहते हैं)। अरे...! प्रभु! वस्तु की मर्यादा किस प्रकार है यह जाने बिना द्रव्य का आश्रय (किस प्रकार लेगा)? आहा...हा...!

एक विचार तो आया था कि ज्ञान प्रधान कथन में २४२ (गाथा में) आता है न? ज्ञेय-ज्ञायक की प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है, यह ज्ञानप्रधान कथन है। परन्तु यह दर्शन की स्थिति करने के बाद जो ज्ञान है, उसके ज्ञान के विषय की बात की है। वह रह गया मस्तिष्क में, कुछ आया था। उस दर्शन में तो प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय भी नहीं है। आहा...हा...! जिसमें अविकारी पर्याय भी नहीं है, वह ज्ञायक सम्यग्दर्शन का विषय है। आहा...हा...! अन्दर से कुछ आया था, रह गया।

श्रोता : ज्ञातृत्व की और ज्ञेयतत्त्व की प्रतीति...।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आ गया, यह बात तो की है। (समयसार की) १७ वीं गाथा में ऐसा कहा है न कि पहले आत्मा को जानना। वहाँ पहले ज्ञान लिया। ज्ञान में आत्मा अखण्ड है - ऐसा जानना, उसकी प्रतीति करना। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि सत् और सत्ता दोनों के बीच अतद्भाव है, क्योंकि गुणी और गुण; द्रव्य और गुण इस अपेक्षा से अतद्भाव है परन्तु एकान्त से अतद्भाव नहीं है। आहा...हा...! उसका भेद पर्यायनय से देखें... आहा...हा...! है? **तब ही-शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है...** देखा! यह वस्त्र है-श्वेत यह वस्त्र है और यह इसका श्वेत गुण है। **इत्यादि की भाँति गुणवाला यह द्रव्य है...** जब पर्यायनय से जानना हो, तब इस प्रकार जानता है। आहा...हा...!

अतद्भावभेद होने पर भी... अर्थात् क्या ? कि गुण है, वह द्रव्य नहीं है और द्रव्य है, वह गुण नहीं है – ऐसा अतद्भाव होने पर भी, वह अतद्भाव भी दो दृष्टि से दिखता है। जब उसे पर्यायदृष्टि से देखना हो तो **शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है इत्यादि की भाँति गुणवाला यह द्रव्य है...** पर्याय दृष्टि से कहना हो तो गुणवाला यह द्रव्य है (ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...! भेद पड़ा न! वह पर्याय हुई न ? **गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है...** यह पर्यायनय से भेद हुआ। आहा...हा...! है ? **इस प्रकार अताद्भाविकभेद उत्पन्न होता है...** (अर्थात्) यह अतद्भाविकभेद प्रगट होता है। आहा...हा...! उन्मग्न है न! अर्थात् ऊपर आना।

परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त कराया जाये... (अर्थात्) द्रव्य, वह द्रव्य है। सत् है, वह सत्तास्वरूप ही सत् है, उसमें भेद नहीं है आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। बनियों को (यह मिला)। यह तो प्रवचनसार है।

श्रोता : दूसरे सब तो बनियों से बुद्धि में कम हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सही है, भाग्यशाली है न! बनियों को जैनधर्म मिला और उन्हें सुनने मिलता है। आहा...हा...! (दूसरों को तो वह सुनने को भी नहीं मिलता।) गीता में तो कहते हैं कि ईश्वर कर्ता है, ईश्वर सब करता है। एक जगह ऐसा कहते हैं कि ईश्वर सब करता है। एक जगह गीता के पृष्ठ १२३ पर एक श्लोक है कि मैं कर्ता नहीं हूँ, मैंने किसी का कुछ नहीं किया, मैं किसी का कुछ नहीं करता – ऐसा एक श्लोक है। यह पूरी बात ही अलग है। मैं परमात्मा सर्वत्र हूँ। कामदेव में भी परमात्मा हूँ, विषयवासना में परमात्मा हूँ। आहा...हा...! ऐसा वहाँ है।

यह तो परमात्मा सर्वज्ञदेव का (कहा हुआ है) आहा...हा...! जैसी वस्तु अनन्त-अनन्त है और अनन्त में भी गुण-गुणी का भेद (कहा है), वह तो पर्यायनय से अतद्भाव – गुण-गुणी का भेद कहते हैं। आहा...हा...! है ? **गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है, इस प्रकार अताद्भाविक भेद उन्मग्न होता है...** पर्यायनय से-भेददृष्टि से (भेद दिखता है)। **परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त कराया जाये...** आहा...हा...! जब वस्तु को वस्तुरूप से प्राप्त कराया जाये, आहा...हा...! **(अर्थात् द्रव्य को द्रव्य प्राप्त**

करता है-पहुँचता है)... द्रव्य को द्रव्य प्राप्त करता है और पहुँचता है **(इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय से देखा जाये) तब जिसके समस्त गुणवासना के उन्मेष अस्त हो गये हैं...** आहा...हा... ! गुणवासना (के उन्मेष अर्थात्) द्रव्य में अनेक गुण होने के झुकाव का (अभिप्राय का) प्राकट्य; द्रव्य में अनेक गुण होने के अभिप्राय का प्राकट्य, गुण भेद होनेरूप मनोवृत्ति के अभिप्राय का अंकुर। आहा...हा... ! है ? (ऐसा गुणभेद) निमग्न हो जाता है-अस्त हो जाता है। गुणी है, गुणवाला है-यह द्रव्य की दृष्टि करने पर, द्रव्य को देखने पर यह भेद अस्त हो जाता है। भाषा तो सादी है, धीरे-धीरे कहा जाता है। आहा...हा... ! अधिकार आवे वह आयेगा न ! मौके पर भाग्य से ही सुनने के समय आया - ऐसा कहो न ! आहा...हा... !

तीन लोक का नाथ, उनकी प्रवचनधारा, आहा...हा... ! कहते हैं कि द्रव्य-गुण में नामभेद और संज्ञाभेद होने से उन्हें अतद्भाव कहा जाता है। अतद्भाव में भी दो प्रकार है, उसे पर्याय से देखें तो यह द्रव्य, गुणवाला है और यह गुणवाला यह द्रव्य है। इसका यह गुण है - ऐसा अताद्भाविक भेद उप्पन्न होता है - ऐसा है। आहा...हा... ! यह भाग्यशाली को कान में पड़े ऐसा है। बापा ! आहा...हा... !

अतद्भाव करके कहा, भले ही प्रदेशभेद नहीं है - द्रव्य को (और) गुण को प्रदेशभेद नहीं है परन्तु द्रव्य और गुणा (ऐसा) नामभेद पड़ा, इसलिए इतना अतद्भाव है परन्तु वह अतद्भाव भी दो प्रकार से देखने में आता है। जब पर्यायनय से देखें तो वह अतद्भाव है, द्रव्य का गुण है और गुण का यह द्रव्य है, परन्तु द्रव्यार्थिक (नय से) देखों तो इस गुण का यह द्रव्य है - ऐसा भेद वहाँ नहीं है। आहा...हा... ! है ? **समस्त गुणवासना के उन्मेष अस्त हो गये हैं - ऐसे उस जीव को शुक्ल वस्त्र ही है...** पहले में **शुक्ल यह वस्त्र है...** ऐसा था। **शुक्ल यह वस्त्र है...** यह द्रव्य से देखें तो **शुक्ल वस्त्र ही है इत्यादि की भाँति पैसा द्रव्य ही है...** गुणवाला द्रव्य है - ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! द्रव्य ही ऐसा है, द्रव्यार्थिक (नय से) देखने पर द्रव्य ही ऐसा है। आहा...हा... ! समझ में आता है या नहीं ? धीमे-धीमे तो कहा जाता है। वहाँ कलकत्ता में कहीं मिले ऐसा नहीं है (इन भाई ने) फिर निवृत्ति ली है। भाग्यशाली !

यह तो भगवान तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान से निकली हुई वाणी है। पदार्थ का स्वभाव यह है ओ...हो...! कहते हैं कि द्रव्य और गुण में अतद्भाव कहा जाता है क्योंकि गुण, वह द्रव्य नहीं है (और द्रव्य, वह गुण नहीं है) इस प्रकार अतद्भाव कहा जाता है परन्तु इस अतद्भाव में भी देखने की दो दृष्टि है। (१) पर्याय से देखा जाये तो गुणवाला द्रव्य है (२) द्रव्यार्थिकनय से देखें तो द्रव्य है। ऐसा है, भगवान! आहा...हा...! क्या हो? जगत् को अटकने के साधन अनेक हैं।

यहाँ कहते हैं कि द्रव्यार्थिक (नय से) देखने पर गुणवाला द्रव्य भी नहीं; गुणवाला द्रव्य (ऐसा कहने पर तो) पर्यायनय से भेद पड़ गया। वह अतद्भाव भले ही कहा आहा...हा...! परन्तु वह द्रव्य ही है, आहा...हा...! है? **ऐसा द्रव्य ही है, इस प्रकार देखने पर समूल ही अताद्भाविक भेद निमग्न होता है...** अस्त (होता है) अतद्भाव दिखाई नहीं देता। आहा...हा...! धीमे... धीमे... कहा जाता है। बात जरा ऐसी सूक्ष्म है, बनियों को व्यापार में ऐसा नहीं आता। यह तो Logic है, वकीलात में आता है। वकीलात में यह नहीं आया हो परन्तु जरा न्याय (आते हैं) आहा...हा...! बहुत सादी भाषा में तत्त्व को (निरूपित किया है)।

सत् है, प्रभु! और उसमें सत्ता का गुण है, वह गुण और सत् - ऐसे दो नामभेद पड़े, इस अपेक्षा से अतद्भाव है। गुण, वह द्रव्य नहीं है, द्रव्य वह गुण नहीं है। परन्तु गुण और गुणी का संयोग सम्बन्ध हुआ है - युतसिद्ध सम्बन्ध है, वह तो त्रिकाल में नहीं है। जिससे दो के प्रदेशभेद हैं - ऐसा नहीं है। जो प्रदेश सत्ता के हैं, वही प्रदेश सत् के हैं। जो प्रदेश सत् के हैं, वे ही प्रदेश सत्ता के हैं। आहा...हा...! युतसिद्ध तो नहीं-संयोगसिद्ध तो नहीं। सत्ता को (और) सत् को संयोगसिद्ध सम्बन्ध है यह तो नहीं परन्तु दोनों में अतद्भाव है - गुण, वह द्रव्य नहीं है और द्रव्य, वह गुण नहीं है - ऐसे अतद्भाव को देखने में दो दृष्टि है। आहा...हा...! बहिनों-लड़कियों को यह सब समझ में आता है या नहीं? पकड़ में आता है या नहीं? आहा...हा...! भाषा तो सादी है परन्तु वस्तु तो यह है। कहते हैं कि द्रव्य जो सत् है... सत् कहो या द्रव्य कहो (दोनों एकार्थ हैं) इनकी सत्ता को प्रदेशभेद नहीं है अर्थात् युतसिद्ध नहीं है अर्थात् गुण, गुणी के साथ जुड़ गये; सत्ता, सत् के साथ जुड़ी हुई

है – ऐसा नहीं है (परन्तु) जो सत् है, उसे गुण और द्रव्य ऐसे दो नामभेद पड़े, इस अपेक्षा से अतद्भाव है अवश्य। सत्-द्रव्य के और गुण के बीच अतद्भाव है अवश्य, युतसिद्धपना नहीं-प्रदेशभेदपना नहीं। आहा...हा...! अतद्भाव को भी दो प्रकार से देखा जाता है। आहा...हा...! गजब बात है न? पर्यायदृष्टि से देखें तो अतद्भाव उन्मग्न होता है – दिखता है – भेद है और द्रव्यदृष्टि से देखें तो अतद्भाव-गुण और गुणी-भेद है – ऐसा अतद्भाव अस्त हो जाता है – निमग्न हो जाता है। दो नदी हैं न नदी? उन्मग्न और निमग्न नाम की दो नदी है। उन्मग्न (नदी में) जो कुछ वस्तु गिरे, वह ऊपर लाती है। लोहा गिरे तो भी ऊपर लाती है! और निमग्न (नदी) ऐसी चीज है कि उसमें हलके से हलका वस्त्र गिरे तो भी उसे तल में ले जाती है। वहाँ नदियाँ हैं, उन्मग्न, निमग्न नदी।

इसी प्रकार यहाँ पर्यायदृष्टि से अतद्भाव को देखें तो 'वह गुणवाला द्रव्य है' ऐसी नजर पड़े – ऐसा भेद लक्ष्य में आता है। आहा...हा...! परन्तु जब उसे द्रव्य से देखो तो वह भेद निमग्न हो जाता है। अतद्भाव का भेद भी वहाँ अस्त हो जाता है। अकेला द्रव्य स्वरूप है, आहा...हा...! छहों द्रव्य की बात है, हाँ! यह तो बहुत सूक्ष्म बात है बापा! यह तो बाप-दादा ने कभी कहीं सुनी न हो! आहा...हा...! यह कॉलेज तो कोई अलग प्रकार का है। अभी तो धर्म के सम्प्रदाय के नाम में भी यह नहीं है। यह करो और व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करो, दान दो, दया पालो – ऐसी बातें आती हैं। वह तो राग और अज्ञानभाव है-कर्ताभाव है। आहा...हा...!

यहाँ तो (कहते हैं कि) इसमें निर्विकारी सत्ता गुण जो है और द्रव्य निर्विकार है आहा...हा...! सत्तागुण निर्विकारी है; सत् द्रव्य है, वह निर्विकारी है और इतना भेद करना, वह पर्यायनय से देखने में आता है। आहा...हा...! भेददृष्टि से देखने में आवे तो (इतना भेद है) परन्तु यह भेद नहीं देखो-आत्मा है, द्रव्य-वस्तु है, तब उसका भेद वहाँ अस्त हो जाता है। दृष्टि के विषय में द्रव्य है, वहाँ भेद लक्ष्य में नहीं आता। आहा...हा...! कैसी बात सिद्ध की है?

श्रोता : कभी अभेद-कभी भेद?

समाधान : कभी भेद किस अपेक्षा से? अतद्भाव-गुण और गुणी इतना भेद है।

यह पर्यायनय से देखने में आवे तो भेद है। भेददृष्टि से कहो, पर्यायदृष्टि से कहो (सब एक ही है) परन्तु त्रिकालवस्तु है भगवान आत्मा और परमाणु आदि प्रत्येक द्रव्य; इस द्रव्य से देखो तो यह द्रव्य ही है। अतद्भावपना वहाँ अस्त हो जाता है। आहा...हा...! युतसिद्ध तो है नहीं अर्थात् जैसे लकड़ीवाला मनुष्य... उस लकड़ी के संयोग से मनुष्य को लकड़ीवाला कहा – ऐसे सत्तावाला द्रव्य ऐसा नहीं है। सत्ता नाम का गुण और सत् (दोनों का) जुड़ान होकर सत् हुआ है – ऐसा नहीं है परन्तु गुण और गुणी ऐसा भेद अतद्भावरूप से नामभेद से भेद है, संज्ञाभेद से भेद है, तथापि उस भेद को भी पर्यायदृष्टि से देखे तो भेद उत्पन्न (होता है) दिखता है; द्रव्यदृष्टि से (देखें तो) भेद अस्त हो जाता है। आहा...हा...!

प्रश्न : इसका काम क्या है ?

समाधान : इसका काम सम्यग्दर्शन का है। सत् वस्तु भगवान परिपूर्ण आत्मा की दृष्टि कर तो तुझे सत् हाथ आयेगा, तब तुझे शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा। इसके बिना आनन्द और शान्ति प्राप्त हो – ऐसा नहीं है। क्रिया कष्ट, उपवास और दान आदि देकर मन्दिर बनाकर, यात्रा करके मर जाये, लाख यात्रा कर और करोड़ रुपये खर्च कर। उसमें कहीं आत्मा की शान्ति नहीं है और धर्म नहीं है।

ओ...हो...हो...! बात तो Logic से है परन्तु बनियों को व्यापार के कारण समय नहीं मिलता। जापान का एक बड़ा इतिहासविद् हुआ है! जापान का बड़ा इतिहासविद्!! ६७ वर्ष की उम्र है। मेरी अपेक्षा से तो छोटी उम्र (कहलाती है)। उसके एक लड़का है, उसे भी रस है। उसने ऐसा कहा कि जैनधर्म अर्थात् क्या ? जैनधर्म अर्थात् आत्मा का अनुभव करना-अनुभूति वह (जैनधर्म)। ऐसा कहकर फिर यह कहा कि ऐसा जैनधर्म बनियों को मिला और बनिये व्यापार के कारण निवृत्त नहीं होते कि क्या वस्तु है ? कैसे है ? इसका निर्णय करने का भी उन्हें अवकाश नहीं है। पूरे दिन व्यापार-धन्धा और स्त्री-पुत्रादिक को प्रसन्न रखना, छह-आठ घण्टे सो जाना... अर...र...र...! मित्रों में दो-चार घण्टे गप्प मारना, (इसमें) ऐसा समय चला जाता है। उसने 'जापानेवाले' ने यह लिखा है कि धर्म तो अनुभूति है। द्रव्य जो वस्तु है वह अभेद है, उसका अनुभव वह जैनधर्म है।

जैनधर्म कोई पक्ष नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं, वाड़ा नहीं, वस्तु का स्वरूप है। वस्तु भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड – ऐसा भेद करना यह भी पर्यायनय से है। आहा...हा... ! वह अनन्त गुणस्वरूप ही प्रभु अन्दर में है, भगवत् स्वरूप है, कैसे बैठे ? दो बीड़ी ठीक से पीवे तब तो भाईसाहब को लैट्रीन उतरे ! ऐसे तो अपलक्षण; अब उसे आत्मा ऐसा है यह बताना ! आहा...हा... !

(यहाँ कहते हैं कि) **समस्त गुणवासना के उन्मेष अस्त हो गये हैं – ऐसे उस जीव को –शुक्लवस्त्र ही है इत्यादि की भाँति – ऐसा द्रव्य ही है...** अस्तिवान द्रव्य ही है। अस्तिवान सत् और अस्तिवाली सत्ता – ऐसा भेद उसमें नहीं दिखता। आहा...हा... ! उसमें गुणभेद नहीं दिखता, पर्यायभेद की तो बात ही कहाँ करना ? आहा...हा... ! बहुत अद्भुत मार्ग, भाई ! धीमे-धीमे कहा जाता है। वीतराग का मार्ग और सन्तों ने-दिगम्बर सन्तों ने... आहा...हा... ! अरे... ! करुणा करके जगत् का उपकार किया है।

प्रभु ! तू एक बार सुन ! कहते हैं प्रभु तू आत्मा है न ! और वस्तु है न सत्ता है। उसमें एक अस्तित्व गुण भी है या नहीं ? तू अस्तिवाला सत् है तो उसमें अस्तिवाला एक गुण है या नहीं ? इतना गुण और गुणी का भेद भी, दृष्टि द्रव्य ऊपर पड़ने पर वह भेद दिखाई नहीं देता। आहा...हा... ! कुछ समझ में आया ? यह कोई कथा-वार्ता नहीं है, यह तो तत्त्व –वस्तु क्या है और उसमें भेद-अभेद कैसे कहे जाते हैं (उसकी बात है)। आहा...हा... !

सत्ता है वह गुण है, वह इस गुणी का है – ऐसा अतद्भाव है अवश्य, परन्तु उस अतद्भाव को भी देखने की दो दृष्टियाँ हैं। उसे पर्याय की भेददृष्टि से देखे तो 'यह गुण, गुणी का है' ऐसा कहा जाता है। आहा...हा... ! परन्तु वस्तु है अखण्डानन्द प्रभु ! एकरूप चिदानन्द ! अनन्त गुण का एकरूप प्रभु ! आहा...हा... ! उसे देखने पर **ऐसा द्रव्य ही है...** है ? **इस प्रकार देखने पर समूल ही अताद्भाविक भेद निमग्न होता है...** आहा...हा... ! नाश हो जाता है। वहाँ भेद नहीं रहता। आहा...हा... !

अरे... बापा ! यह वस्तु (कार्य) करने योग्य है। यह मनुष्यपना चला जायेगा बापू (पश्चात्) कहाँ जाकर उत्पन्न होगा ? कहीं भान नहीं है। पशु में और कौवे-कुत्ते में, गाय

में-भैंस में अवतार लेगा। अरे...रे... बापू! यह तत्त्व है, जब तक इसकी दृष्टि नहीं हो, वहाँ तक इसके जन्म-मरण नहीं मिटते। आहा...हा...! आहा...हा...! आज त्रयोदशी है, आज परमागम मन्दिर की तिथि है। सवेरे किसी ने पूजा का याद नहीं किया। मैंने कहा प्रात:काल में कुछ करेंगे, आज त्रयोदशी है न? श्रावण शुक्ल त्रयोदशी को पाँच वर्ष हुए। चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ मकान को (मन्दिर को) सवा पाँच वर्ष हुए। यह छब्बीस लाख रुपये का मकान है। अकेला संगमरमर का! उद्‌घाटन के समय छब्बीस हजार लोग आये थे। ग्यारह लाख का खर्च और छब्बीस लाख यह! सैंतीस लाख! आहा...हा...! यहाँ तो त्रयोदशी है और आज ऐसी बात आयी। आहा...हा...!

प्रभु! तू कोई एक चीज है या नहीं? जैसे यह जड़-मिट्टी आदि है - ऐसे ही अन्दर में चैतन्यवस्तु है या नहीं? वस्तु है तो उसमें बसे हुए अनन्त गुण हैं या नहीं? वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त... अनन्त... शक्ति-गुण बसे हों। अब ये अनन्त गुण बसे हैं, वह 'गुणवाला द्रव्य' कहना... आहा...हा...! वह भी पर्यायदृष्टि से अतद्‌भाव है। आहा...हा...! यह दृष्टि भी आदरणीय नहीं है, आहा...हा...! त्रिकाली द्रव्य-वस्तु है, प्रभु अनादि -अनन्त सत् है, उसकी आदि क्या? सत् है उसका अन्त क्या? सत् है उसमें भेद क्या? आहा...हा...! समझ में आवे ऐसा है? मार्ग तो कठिन है। यह तो यहाँ सब खड़े थे, इन लड़कों को कहा कि आज विषय सूक्ष्म है। कहा था या नहीं सबको? कि विशेष सूक्ष्म है, ध्यान रखना।

आत्मा अन्दर है, प्रभु! यह तो हड्डी, चमड़ा, जड़-मिट्टी, राख होगी। प्रभु अन्दर चैतन्य शाश्वत् तत्त्व है। आहा...हा...! अनुत्पन्न अविनाश नाशरहित वस्तु अन्दर है उसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... तीनों शक्तियाँ - ज्ञान, दर्शन, आनन्द (आदि) अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं परन्तु कहते हैं कि वह शक्ति और शक्तिवान्-यह द्रव्य शक्तिवाला है इतना भेद भी अभी पर्यायनय से है। आहा...हा...! उस शक्तिस्वरूप ही सम्पूर्ण आत्मा है एकरूप चिदानन्द प्रभु अन्दर है अरे...! परन्तु कहाँ सुनने को मिलता है? क्या करना? दुनिया अन्धी, ऐसे के ऐसे जगत् के मोह में चले जाते हैं। आहा...हा...! मनुष्य होकर कहाँ जाये?

सबेरे वह कहा नहीं था ? दो-तीन परमाणु का (कहा था) वह दृष्टान्त क्यों दिया ? कि द्रव्य की पर्याय का दृष्टान्त नहीं देते। भाई! ९३ वीं (गाथा में) आया था न कि समानजातीय और असमानजातीय पर्याय किसे कहना ? तब कहते हैं कि दो-तीन परमाणु - द्रव्य इकट्ठे होते हैं, वह समानजातीय द्रव्यपर्याय कहलाती है। समानजातीय द्रव्यपर्याय (कहलाये) उसमें एक-एक आत्मा की और एक-एक परमाणु की पर्याय द्रव्यपर्याय नहीं ली है। वह दृष्टान्त इसमें दिया है जो वहाँ दिया - ऐसा यहाँ दिया है। वहाँ असमानजातीय में देव पहले दिया था। यहाँ असमानजातीय में मनुष्य (लिया है) यह मनुष्य है न इसलिए। आहा...हा...!

अन्दर आत्मा और यह (शरीर) जड़। यह तो जड़-मिट्टी-धूल है, वह असमानजातीय है, एक जाति नहीं। परमाणु, वह परमाणु है। वे कोई एक नहीं है, वे तो अनन्त रजकण-Point है। सब इकट्ठे होकर बना है, वह समानजातीय - परमाणु-परमाणु एक जाति के जड़ हैं। भगवान आत्मा और जड़ दोनों असमानजाति के हैं। आहा...हा...! ऐसी द्रव्यपर्याय का दृष्टान्त दिया। आहा...हा...!

इस प्रकार भेद के निमग्न होने पर उसके आश्रय से (-कारण से) होती हुई प्रतीति निमग्न होती है... आहा...हा...! क्या कहते हैं ? प्रभु! आत्मा जो त्रिकाली सत् वस्तु है, उसमें जो सत्ता नाम का गुण है, अस्तिपन नाम की शक्ति है, उस शक्ति को और इसको भेद से देखें तो पर्याय में से भेद है परन्तु जब वस्तु ही सम्पूर्ण है... आहा...हा...! ऐसा जब देखें तब अतद्भाव निमग्न हो जाता है। तब 'गुण, गुणी का है' और 'गुणी का यह गुण है' - यह भाव नष्ट हो जाता है। आहा...हा...! पर्याय की तो बात ही क्या करना! आहा...हा...! ऐसी बात है! आहा...हा...!

इस प्रकार 'उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्' (कहा जाता है) परन्तु कहते हैं कि उत्पाद-व्ययवाला यह द्रव्य है (यह भेद हुआ।) यह इसके उत्पाद-व्यय हैं; यहाँ गुण की बात ली है परन्तु यह अतद्भाव है, पर्याय और आत्मा को संयोग सम्बन्ध है, एक न्याय से संयोग सम्बन्ध कहा है। अरे...रे...! कहाँ गया वापस लो! पञ्चास्तिकाय! वस्तु जो त्रिकाल नित्य रहनेवाली प्रभु है, उसमें जो निर्मल पर्याय होती है, वह भी संयोग से है।

उसका त्रिकाली स्वभाव नहीं है, वह तो संयोग से उत्पन्न होती है और वियोग से व्यय होती है। आहा...हा...! इसमें समझ में आया? भाई! यह शरीर और आत्मा का संयोग है, वह तो कहीं रह गया। वह तो अलग (बात है) यहाँ तो आत्मा में जो पर्याय होती है, वह पर्याय है तो एक समय की; वह संयोगसम्बन्ध है, वह स्वभावसम्बन्ध नहीं है, त्रिकाल रहनेवाली नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

जो आत्मा है, उसमें जो त्रिकाल रहनेवाले ज्ञान-दर्शन-गुण हैं - ऐसा जो भेद वह नहीं है। अब यहाँ तो पर्याय है, उसे संयोगी कहा है। उत्पन्न होती है और व्यय होती है, अवस्था नयी होती है और पुरानी जाती है। नयी होती है, उसे संयोग कहा और पुरानी (जाती है), उसे वियोग कहा। संयोग और वियोग उसकी पर्याय में आया। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा...! कहाँ तक खेंचना है!? आहा...हा...! **वह (प्रतीति) निमग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थातन्तरपना निमग्न होता है...** अयुतसिद्धत्व नाश हो जाता है। **इसलिए समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है...** द्रव्य-वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... जिसमें गुणभेद भी नहीं है।

विशेष कहेंगे...

प्रवचन नं. ९९		**दिनाङ्क ०९ जून १९७९**

(प्रवचनसार) ९८-गाथा। कल चली थी। भाई कहते हैं फिर से लो। आज हिन्दी (मुमुक्षु) आये थे। बारीक-सूक्ष्म बात कल चली थी। यहाँ से लो। बीच में है न? **द्रव्य से अर्थान्तरभूत सत्ता उत्पनन नहीं है...** है? **द्रव्य से अर्थान्तरभूत सत्ता उत्पन्न नहीं है...** कल तो चला है, आज हिन्दी में (चलेगा)। क्या कहते हैं? भगवान 'कुन्दकुन्द आचार्य' ने 'प्रवचनसार' बनाया। भगवान की दिव्यध्वनि का सार बनाया। तत्त्व सूक्ष्म है। ९८ गाथा यहाँ से चलेगी।

द्रव्य अर्थात् वस्तु। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। भगवान जिनेश्वर प्रभु के ज्ञान में जाति से छह द्रव्य (और) संख्या से अनन्त (द्रव्य आये)। प्रत्येक द्रव्य अर्थात्

वस्तु **द्रव्य से अर्थान्तरभूत सत्ता...** (अर्थात्) द्रव्य सत् है, उसका सत्ता नाम का गुण है, वह भिन्न नहीं है। आहा...हा...! आत्मा है, वह सत् है – द्रव्य (है)। उसमें सत्ता नाम का गुण है, वह भिन्न नहीं है। सत्ता और सत् द्रव्य एक है। आहा...हा...! है ? **अर्थान्तरभूत...** अर्थात् द्रव्य से भिन्न ऐसी **सत्ता उत्पन्न नहीं है...** अर्थान्तरभूत का अर्थ यह है।

द्रव्य जो वस्तु है, उसमें सत्ता नाम का जो गुण है, वह द्रव्य से अन्य चीज नहीं है। अन्य चीज उत्पन्न नहीं है। **(नहीं बन सकती, योग्य नहीं है) कि जिसके समवाय से वह (द्रव्य) 'सत्' हो।** समवाय (अर्थात्) सम्बन्ध। द्रव्य जो सत् है, उसका सत्ता गुण है इस सत्ता गुण के सम्बन्ध से – संयोग से द्रव्य है, ऐसा नहीं। वस्तु जो भगवान आत्मा और परमाणु है वह सत् है – द्रव्य है। उसमें सत्ता नाम का गुण (है), वह द्रव्य से अन्य नहीं है, द्रव्य से अभिन्न है। सूक्ष्म बात है, भाई! इस समय तो सब गड़बड़ चलती है। बाहर का करो, ये करो... तत्त्व क्या है, वस्तु किस प्रकार से है (इसका भान नहीं)। **जिसके समवाय से वह (द्रव्य) 'सत्' हो। (इसी को स्पष्ट समझाते हैं)** – दृष्टान्त कहेंगे।

प्रथम तो सत् से सत्ता की युतसिद्धता से अर्थान्तरण नहीं है,... सत् अर्थात् द्रव्य-पदार्थ, छहों द्रव्य, सत् से सत्ता नाम गुण। उसकी युतसिद्धता। युतसिद्धता अर्थात् सम्बन्ध। जैसे लकड़ी का सम्बन्ध लकड़ीवाले के साथ है, ऐसा सत्ता और सत् द्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं है। यह Logic तो सूक्ष्म है, बापू! 'कुन्दकुन्द आचार्य' भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह बनाया है। सूक्ष्म तत्त्व है और यह तत्त्व वास्तविक है, ऐसा अभेद न माने तो मिथ्यादृष्टि है – ऐसा कहेंगे-परसमय कहेंगे।

सत् से... (अर्थात्) द्रव्य से **सत्ता की...** नाम गुण की **युतसिद्धता...** (अर्थात्) दो का सम्बन्ध। **अर्थान्तरत्व नहीं है,...** सत्ता भिन्न है और सत् द्रव्य भिन्न है और उसका संयोग हुआ – ऐसा है नहीं। समझ में आता है ?

क्योंकि दण्ड और दण्डी की भाँति... दण्ड और दण्डी (में) दण्ड भिन्न है और दण्डी भिन्न है। दण्ड से दण्डी कहने में आता है। ऐसा सत्ता से द्रव्य है, ऐसा नहीं है। आहा...हा...! (ऐसा हो) तो दो पदार्थ हो गये। सत्ता भिन्न पदार्थ हो गयी और द्रव्य भिन्न पदार्थ हो गया। सूक्ष्म बात है, बापू! सूक्ष्म बात! सम्यग्दर्शन का विषय अखण्ड अभेद है, यह बतलाते हैं।

प्रश्न : धर्म करना हो, उसमें यह किस काम का ?

समाधान : धर्म-सम्यग्दर्शन करना हो तो उसका द्रव्य जो है और उसका गुण है उसकी भेददृष्टि भी छोड़नी पड़ेगी। द्रव्यदृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन होगा। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! लोगों को व्यापार-धन्धे के आड़े दरकार नहीं। भगवान क्या कहते हैं ? और क्या चीज है ? आ...हा...!

यहाँ कहते हैं कि **सत् से सत्ता की युतसिद्धता से अर्थान्तरत्व नहीं है, क्योंकि दण्ड और दण्डी की भाँति...** लकड़ी और लकड़ीवान - ये दो भिन्न चीज हैं। ऐसे आत्मा द्रव्य है और उसका सत्तागुण भिन्न है, ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वस्तु तो ऐसी है, भाई ! यह परमाणु-मिट्टी-धूल है, जड़ धूल (है) वह परमाणु भी द्रव्य है और उसका सत्तागुण उससे भिन्न है, लकड़ी और लकड़ीवाले की भाँति (भिन्न है), ऐसा नहीं है। सत्ता सत् की ही चीज है, सत्ता सत् के साथ अभेद है। आहा...हा...! ऐसा, भगवान 'कुन्दकुन्द आचार्य' जगत् के सामने घोषित करते हैं। आ...हा...! **क्योंकि दण्ड और दण्डी की भाँति उनके सम्बन्ध में युतसिद्धता दिखाई नहीं देती।** दो चीज भिन्न हो और पीछे से सम्बन्ध हुआ हो, इस प्रकार सत्-द्रव्य और सत्ता-गुण दोनों भिन्न हैं बाद में समवाय-संयोग होता है, ऐसा दिखाई नहीं देता। आहा...हा...! है ?

(दूसरे)... अब दूसरी बात (करते हैं)। **अयुतसिद्धता से भी वह (अर्थान्तरत्व) नहीं बनता।** आहा...हा...! कहते हैं कि उसका सम्बन्ध नहीं है, फिर भी आत्मा द्रव्य-वस्तु है और उसका सत्तागुण (है)। गुणी और गुण भिन्न हैं, ऐसा कथन आता है, फिर भी गुणी से गुण भिन्न नहीं है। वह तो कथनमात्र कहने में आता है। गुणी-आत्मा उसका सत्ता नाम का गुण (दोनों) अभिन्न हैं। आहा...हा...! धन्धेवालों को फुरसत नहीं, सारा दिन पूरी दुनिया के पाप के धन्धा (करता रहता है), उसमें ऐसी भगवान की वाणी (समझनी) !

सत् और सत्ता, द्रव्य और सत्ता भिनन नहीं है। भिन्न तो है नहीं परन्तु अयुतसिद्धता से भिन्न कहना भी व्यवहार है। है ? क्या कहते हैं ? देखो ! **अयुतसिद्धता से भी वह (अर्थान्तरत्व) नहीं बनता।** भले ही पर के साथ सत्ता का-सत् का सम्बन्ध नहीं। सत्ता

सत् है, ऐसे अयुतसिद्ध-संयोग बिना कहने में आता है परन्तु उससे अर्थान्तर (अर्थात्) सत् द्रव्य से सत्ता भिन्न है, ऐसा नहीं होता। प्रभु तो Logic से बात करते हैं। सूक्ष्म बात है, बापू! आ...हा...! कल तो अपने चल गया है, आज तो भाई ने (कहा फिर से लो, इसलिए लेते हैं)।

यह (शरीर) तो परमाणु-मिट्टी है। भगवान आत्मा अरूपी चैतन्य है। अन्दर जड़कर्म भिन्न चीज है। कर्म के परमाणु जो है वह द्रव्य है और द्रव्य में सत्ता नाम का गुण है। इस सत्ता गुण का परमाणु के साथ सम्बन्ध हुआ-संयोग हुआ तो ऐसा हुआ, ऐसा नहीं। अब कहते हैं कि, संयोग तो नहीं है, परन्तु शास्त्र में ऐसा आता है कि द्रव्य है सो गुण नहीं है तो ऐसा अयुतसिद्धसम्बन्ध, संयोगसम्बन्ध नहीं लेकिन अयुतसिद्ध अर्थात् '(गुण) है वह उसमें है' ऐसे अचुतसिद्धता में भी द्रव्यान्तर नहीं होता। उसमें द्रव्य से सत्ता भिन्न है, ऐसा सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...!

सत्ता नाम का गुण (है) और सत् अर्थात् प्रभु-आत्मा सत् द्रव्य (है)। उससे अयुतसिद्धता से सत्ता का सम्बन्ध नहीं है, ऐसा अर्थ हो, फिर भी अयुतसिद्धता से भिन्नता सिद्ध नहीं होती। आहा...हा...! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो 'प्रवचनसार' (है)! 'कुन्दकुन्द आचार्य'! दिगम्बर सन्त! (ऐसा) कहीं है नहीं। दिगम्बर सन्त के अलावा यह बात कहीं नहीं है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी में भी नहीं है क्योंकि वे तो बाद में निकले हैं। यह तो अनादि सनातन (चला आ रहा है)। तीन लोक के नाथ परमात्मा 'सीमन्धर स्वामी' महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ आठ दिन गये थे। संवत् - ४९! 'कुन्दकुन्द आचार्य'! आठ दिन (वहाँ) रहकर, यहाँ आकर यह (प्रवचनसार) बनाया है और यह टीका बनाई है - 'अमृतचन्द्राचार्य' ने। मूल श्लोक 'कुन्दकुन्द आचार्य' (के हैं)। 'अमृतचन्द्राचार्य' एक हजार वर्ष पहले हुए हैं। दिगम्बर सन्त! उन्होंने यह टीका बनाई है। जगत् को, सत् क्या है? सत् कैसी चीज है? (उसकी) प्रसिद्ध के लिये (यह टीका बनाई है)।

परमाणु का सत् और उसकी सत्ता भिन्न नहीं है। इसी तरह आत्मा सत् द्रव्य और उसकी सत्ता संयोग से तो नहीं परन्तु संयोग बिना 'यह द्रव्य (है) और यह गुण (है)' ऐसे भी भिन्न अर्थान्तर-भिन्न सत्ता नहीं होती। आत्मा से उसकी सत्ता, सत् से सत्ता भिन्न नहीं होती।

आहा...हा... ! द्रव्य-वस्तु जो अन्दर है, उसकी सत्ता, संयोग से तो सिद्ध नहीं होती परन्तु 'यह गुण इस द्रव्य का है' - ऐसी अयुतसिद्धता भी यथार्थ में नहीं है। आहा...हा... ! है ?

इसमें यह है (अर्थात् द्रव्य में सत्ता है) 'वस्तु है उसमें सत्ता है, अस्तिपन का गुण है' **ऐसी प्रतीति होती है, इसलिए वह बन सकता है, - ऐसा कहा जाय...** (ऐसा) कोई प्रश्न करे... आहा...हा... ! कि द्रव्य में सत्ता है। गुणी द्रव्य में गुण है, ऐसा कहने में आता है तो **ऐसा कहा जाय तो (पूछते हैं कि) 'इसमें यह है' ऐसी प्रतीति किसके आश्रय (-कारण) से होती है ?** आहा...हा... ! भगवान आत्मा सत् द्रव्य है और उसमें सत्ता गुण है, वह अर्थान्तर नहीं है, परन्तु अयुतसिद्धपना से वह कैसे सिद्ध होता है ? आहा...हा... ! है ?

यदि ऐसा कहा जाय कि भेद के आश्रय से... सत्ता गुण है और द्रव्य गुणी है - द्रव्य है – तो द्रव्य और सत्ता (दो है) ऐसा भेददृष्टि से कहने में आता है। ऐसा यदि आप कहो तो भगवान 'कुन्दकुन्द आचार्य' कहते हैं कि, **वह कौन सा भेद है?** आहा...हा... ! भगवान आत्मा सत् द्रव्य और सत्ता गुण का भेद संयोग से तो सिद्ध नहीं हुआ परन्तु अयुतसिद्धता से भेद है कि यह द्रव्य है, गुण नहीं, तो यह भेद आप किस प्रकार से कहते हो ? आ...हा...हा... ! सूक्ष्म बात है, भाई ! Logic है। है ? **ऐसी प्रतीति किसके आश्रय (- कारण से) होती है ? यदि ऐसा कहा जाय कि, भेद के आश्रय से...** द्रव्य है (और) सत्ता गुण है। गुण है, वह गुण है और सत् द्रव्य है - ऐसे भेद के आश्रय से हम कहते हैं, ऐसा कहते हैं - (तो हम प्रश्न पूछते हैं कि) **वह कौन सा भेद है ? प्रादेशिक या अताद्भविक ?** क्या कहते हैं ? बहुत सूक्ष्म बात, बापू ! कहते हैं कि सत् जो द्रव्य-वस्तु है और सत्ता गुण है - दोनों में प्रदेशभेद है ? प्रदेशभेद है ? अंशभेद है या अभेद है ? ऐसी धर्म की बातें कभी (सुनी न हो)। आ...हा...हा... ! वीतरागमार्ग-जिनेश्वरमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू ! लोगों को अभ्यास नहीं है (और) बाहर में क्रियाकाण्ड में जोड़ दिये। व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो... वह तो सब राग की क्रिया है।

श्रोता : एक यात्रा रह गई।

पूज्य गुरुदेवश्री : यात्रा भी राग है, वहाँ कहाँ धर्म है ? 'गिरनार' की यात्रा करे या 'सम्मेदशिखर' की करे। परद्रव्य की यात्रा में राग है। आहा...हा... !

यहाँ तो सत् और सत्ता, द्रव्य और सत्ता अभिन्न है – यह सिद्ध करना है। परद्रव्य तो भिन्न है। इस आत्मा से शरीर भिन्न है, भगवान भिन्न हैं, मन्दिर भिन्न हैं, प्रतिमा भिन्न हैं। आ...हा...हा... ! उसकी बात तो यहाँ कहते नहीं, वह तो भिन्न है ही; परन्तु अपना स्वभाव जो द्रव्य है, उसमें सत्ता नाम का जो गुण है, वह अभेद है या भेद है ? (तो कहते हैं कि) संयोग से तो भेद नहीं। लकड़ी से (लकड़ीवाला) हुआ, दण्ड से दण्डी हुआ इस तरह सत्ता से सत् हुआ, ऐसा तो नहीं है, परन्तु सत्ता नाम का गुण है और सत् नाम का द्रव्य है, ऐसा तो भेद है। वह संयोगसिद्ध सम्बन्ध नहीं हुआ। अयुतसिद्धता (से भेद है) तो अयुतसिद्धता के भेद का आश्रय क्या है ? यह कहते हैं।

यदि प्रादेशिकभेद कहो (अर्थात्) द्रव्य जो वस्तु है, उसके प्रदेश और सत्ता गुण के प्रदेश भिन्न हैं, ऐसा कहो तो ऐसा है नहीं। आहा...हा... ! है ? **प्रादेशिक तो है नहीं,...** आ...हा...हा... ! है ? नीचे (मूल शास्त्र में अर्थ दिया) है। 'द्रव्य और सत्ता में प्रदेशभेद नहीं है; क्योंकि प्रदेशभेद हो तो युतसिद्धत्व आये, जिसको पहले ही रद्द करके बताया है।' आहा...हा... ! जैसे दण्ड से दण्डवाला (है), ऐसा संयोग (द्रव्य और सत्ता के बीच) हो तो ऐसा है नहीं। दण्ड के प्रदेश भिन्न हैं और दण्डी के (प्रदेश) भिन्न हैं। दोनों के प्रदेश भिन्न हैं – क्षेत्र भिन्न हैं। ऐसे प्रदेशभिन्न हैं ? सत् द्रव्य और सत्ता गुण के क्या प्रदेशभेद हैं ? (तो कहते हैं कि) प्रदेशभेद है नहीं। प्रदेशभेद को तो (पहले ही) रद्द करके बताया है। ऐसी बात है। है ?

श्रोता : ऐसा सूक्ष्म समझने में कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कही हुई (है), इनके अलावा कहीं है नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर! जिन्होंने एक समय में तीन काल–तीन लोक देखे। उन्होंने पदार्थ की (जो) स्थिति देखी, ऐसा कहा। ऐसी चीज जिनेश्वर के अलावा कहीं है नहीं। वेदान्त (कहता है) एक सर्वव्यापक आत्मा है; वैशेषिक (में भी नहीं), अरे... ! श्वेताम्बर स्थानकवासी में है नहीं। (जिन्हें) जैन कहते हैं, उसमें भी यह चीज है नहीं। आहा...हा... ! और दिगम्बर में है तो (उनकी) समझ में है नहीं। कोई दरकार नहीं; पैसे कमाना, भोग करना, खाना–पीना, एक–आध घण्टा मिले तो भगवान की

पूजा कर ले (या) यात्रा करे। धूल में वहाँ धर्म नहीं है। भगवान की लाख-करोड़ पूजा कर तो भी राग है, वह धर्म नहीं है।

प्रश्न : हमें भगवान की पूजा करनी या नहीं करनी?

समाधान : वह आता है, दूसरी बात है। अशुभभाव से बचने को शुभभाव आये, परन्तु वह हेय है। आहा...हा...! ऐसी बात है, प्रभु! यह तो वीतरागमार्ग (है)। बापू! जिसे इन्द्र, गणधर भगवान के पास सुनते हैं!! वह बात कैसी होगी!! इन्द्र जो है – शकरेन्द्र! पहले देवलोक-सुधर्मदेवलोक के इन्द्र-शकरेन्द्र एकावतारी (हैं)! एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। सुधर्मदेवलोक के इन्द्र भगवान के पास सुनने जाते हैं! उनकी रानी एकभवतारी (हैं)! हजारों रानियों में से एक रानी एक भव में मोक्ष जानेवाली हैं! वे भगवान के पास सुनने जाते हैं। तीन ज्ञान के धनी तो वे स्वयं हैं। भगवान की वह बात कैसी होगी!! आ...हा...हा...! दया पालो, व्रत करो... वह तो कुम्हार भी कहते हैं। आहा...हा...! बापू! तत्त्व की बात बहुत अलग है। आहा...हा...!

(यहाँ) क्या कहा? **प्रादेशिक तो है नहीं, क्योंकि युतसिद्धत्व पहले ही रद्द (नष्ट, निरर्थक) कर दिया गया है,...** अर्थात् भिन्न सत्ता और भिन्न द्रव्य, उसका तो पहले से ही निषेध करते आये हैं, नष्ट करते आये हैं। आहा...हा...! **और यदि अताद्भाविक कहा जाय...** आ...हा...हा...! गुण है, वह गुणी नहीं और गुणी है, वह गुण नहीं – ऐसा शास्त्र में आये यह, अतद्भाव से कहने में आता है। (मूल शास्त्र में अताद्भाविक का अर्थ नीचे है) 'द्रव्य वह गुण नहीं है और गुण वह द्रव्य नहीं है, – ऐसे द्रव्य-गुण के भेद को (गुण-गुणी-भेद को) अताद्भाविक (तद्रूप न होनेरूप) भेद कहते हैं। यदि द्रव्य और सत्ता में ऐसा भेद कहा जाय तो वह योग्य ही है।' इतना व्यवहार से योग्य है, परन्तु उसमें भी भेद है। आहा...हा...!

यदि अताद्भाविक कहा जाय तो वह उपपन्न ही (ठीक ही) है, क्योंकि ऐसा (शास्त्र का) वचन है कि 'जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है।' भगवान वीतराग दिगम्बर सन्तों के शास्त्र में ऐसा (कहा है कि) (जो) द्रव्य (है), वह गुण नहीं (है)। आहा...हा...! आत्मा द्रव्य है, वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान गुण है और आत्मा गुणी है। तो गुण

है वह गुणी नहीं और गुणी है, वह गुण नहीं – ऐसा शास्त्र में आता है। अब, उसमें भी और विचार करते हैं। आ...हा...हा...! ऐसा मार्ग!

सम्यग्दर्शन क्या चीज है (इसकी खबर नहीं)। सम्यग्दर्शन पर के कारण से तो उत्पन्न नहीं होता। देव-गुरु-शास्त्र से तो उत्पन्न नहीं होता; पुण्य अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति से भी उत्पन्न नहीं होता; पर्याय के लक्ष्य से भी समकित उत्पन्न नहीं होता; गुण-गुणी के भेद के लक्ष्य से भी समकित नहीं होता। आहा...हा...! अभेद चिदानन्द प्रभु! अखण्डानन्द प्रभु! पूर्णानन्द अभेद एकरूप (स्वरूप की) दृष्टि करने से समकित होता है। उसकी तो खबर नहीं। अभेद क्या, भेद क्या उसकी कुछ खबर नहीं और (कहते हैं कि) हम जैन हैं! अजैन को जैन मानते हैं। आहा...हा...! जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ 'सीमन्धर' प्रभु तो समवसरण में विराजते हैं, वही यह वाणी है। आहा...हा...! परन्तु लोगों को अभ्यास नहीं।

श्रोता : समझना कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे आत्मा की पड़ी है (कि) अरे...रे...! अनन्त काल से यह परिभ्रमण (चल) रहा है, चौरासी लाख (योनि) के अवतार! एक सम्यग्दर्शन के बिना! आ...हा...हा...! अनन्त... अनन्त... चौरासी लाख योनि के अवतार, एक-एक योनि में अनन्त अवतार! बापू! नरक के दुःख तूने सुने नहीं है, भाई! आहा...हा...! नीचे नारकी (रहते हैं, उस) नरक के दुःख! प्रभु! तू वहाँ अनन्त बार गया। अनादि काल से तूने अनन्त भव किये। सातवीं नरक के तैंतीस सागर के अननत भव किये। उसके एक अन्तर्मुहूर्त का दुःख प्रभु ऐसा कहते हैं कि बापू! तुझ से सुना नहीं जायेगा। आहा...हा...! उसके अन्तर्मुहूर्त का दुःख करोड़ भव और करोड़ जीभ से भी हम नहीं कह पायेंगे। इतने दुःख तूने सहन किये हैं। (एक) आत्मज्ञान और समकित के बिना! आहा...हा...! बाकी तो व्रत और तप की क्रिया तो अनन्त बार (की)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' – मुनिव्रत धारण किया, दिगम्बर साधु हुआ, पंच महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण (पाले), वह तो राग है। आस्रव है, दुःख है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' सुख

नहीं मिला। पञ्च महाव्रत में सुख नहीं है, पञ्च महाव्रत के परिणाम दु:ख हैं। ऐसा तो कौन माने? वह दु:ख है। राग है, आस्रव है (वह) दु:ख है। आहा...हा...!

एक आत्मा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अभेद चीज! जिसकी दृष्टि में गुण-गुणी का भेद भी नहीं। आहा...हा...! वह अन्त में कहेंगे - इस प्रकार (जो) अभेद को नहीं माने, वह परसमय मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो जैन में रहा हो! अन्त में कहेंगे। है न आखिर में? अन्तिम पंक्ति है। **ऐसा होने से (यह निश्चित हुआ कि) द्रव्य स्वयमेव सत् है। जो ऐसा नहीं मानता, वह वास्तव में 'परसमय' मिथ्यादृष्टि ही मानना।** आ...हा...हा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

तेरी महानता की क्या बात करें, नाथ! तू अन्दर कौन है? आ...हा...हा...! अनन्त... अनन्त... गुणों का भण्डार, प्रभु! अन्दर आत्मा में अनन्त... अनन्त... गुण (हैं)। ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, आनन्द अनन्त, अस्तित्व अनन्त, वस्तुत्व अनन्त, जीवतर अनन्त, कर्ता अनन्त, कर्म अनन्त, करण अनन्त... आ...हा...हा...! सुख अनन्त, वीर्य अनन्त... ऐसे अनन्त... अनन्त... गुण की शक्तियाँ (विद्यमान हैं)। जिनकी अनन्तता का अन्त नहीं है - ऐसे अनन्त गुण का रूप तेरा है, प्रभु! आहा...हा...! आहा...हा...! उसकी अन्तरदृष्टि हुए बिना धर्म का / सम्यग्दर्शन भाव नहीं प्रगट होगा, प्रभु! मरकर भी लाख क्रियाकाण्ड कर न! यात्रा, भक्ति, पूजा, दान और दया - ये सब राग की-क्लेश की क्रिया है। अर...र...र...!

यहाँ राग तो नहीं, यहाँ तो उसका गुण जो है, पर्याय की तो बात (ही नहीं करते), पर्याय की बात बाद में करेंगे (कि) पर्याय है। आ...हा...हा...! यहाँ तो प्रभु आत्मा या परमाणु या छह द्रव्य अनन्त हैं, (उन) प्रत्येक द्रव्य की सत्ता-गुण और सत् है, वह द्रव्य (है), दोनों अभेद हैं। आहा...हा...! सत्ता नाम का गुण और सत् द्रव्य के साथ उसका संयोग हुआ, लकड़ीवाले को जैसे लकड़ी का (संयोग हुआ) - ऐसे नहीं। अब कहते हैं कि शास्त्र में ऐसा आया है... देखो! आया न? देखो! **क्योंकि ऐसा (शास्त्र का) वचन है...** क्या? **जो द्रव्य है, वह गुण नहीं** है? द्रव्य नाम वस्तु भगवान! उसमें सत्ता नाम का गुण (है)। यह द्रव्य है, वह गुण नहीं - ऐसा शास्त्र में व्यवहार से कहा है। आहा...हा...!

परन्तु (यहाँ भी यह ध्यान में रखना कि)... परन्तु यहाँ भी ध्यान में रखना। आ...हा...हा... ! क्या ? **यह अताद्‌भाविक भेद 'एकान्त से इसमें यह है' ऐसी प्रतीति का आश्रय (कारण) नहीं है,...** द्रव्य में सत्ता है, ऐसा एकान्त नहीं। आ...हा...हा... ! द्रव्य स्वयं ही सत्‌रूप-सत्तारूप है। आहा...हा... ! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग धर्म बहुत सूक्ष्म! दुनिया में कहीं नहीं है। (जिसके पास) है, उसे खबर नहीं। सम्प्रदाय में जन्म लिया (लेकिन) व्यापार-धन्धा करना, स्त्री-पुत्र को सम्भालना, इसमें ऐसे ही जिन्दगी (निकाल दी)। बाईस घण्टे (में) छह-सात घण्टे सो जाये, दो-चार घण्टे स्त्री-पुत्र को राजी रखे, दो-तीन बार खाना खाये उसमें दो घण्टे चले जायें, (दिन हो गया पूरा), उसमें एकाध घण्टा सुनने जाये तो उसे ऐसा (सुनने) मिले कि व्रत करो, उपवास करो, तप करो और यात्रा करो। आहा...हा... ! ऐसी उसे मिथ्यादृष्टि की बातें (सुनने) मिले। आ...हा...हा... !

प्रभु! वह राग तो तेरे में है नहीं, परन्तु सत् द्रव्य जो है, उसमें सत्ता नाम का गुण है। यह गुण है, वह गुणी नहीं, ऐसा शास्त्र का वचन है। यह अतद्‌भाव (की) अपेक्षा बराबर है परन्तु अतद्‌भाव में भी एकान्त नहीं। आहा...हा... ! समझ में आता है ? **क्योंकि वह (अताद्‌भाविक भेद) स्वयमेव उन्मग्न और निमग्न होता है।** आहा...हा... ! क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा या परमाणु आदि जो द्रव्य हैं उसमें सत्ता गुण (है)। यह गुण है वह गुणी नहीं और गुणी है वह गुण नहीं, ऐसा कहा है। परन्तु वह अतद्‌भाव युतसिद्ध तो नहीं (है)। (अर्थात्) गुण और गुणी का संयोगसिद्ध तो नहीं (है)। परन्तु गुण है वह गुणी नहीं और गुणी है वह गुण नहीं (ऐसा) अतद्‌भाव है सही। परन्तु उस अतद्‌भाव में भी एकान्त नहीं (है)। आहा...हा... ! क्या एकान्त नहीं ?

(अताद्‌भाविक भेद) स्वयमेव उन्मग्न और निमग्न होता है। वह इस प्रकार है - जीव द्रव्य को पर्याय प्राप्त कराई जाय... आ...हा...हा... ! वस्तु में गुण है वह भेद (है)। भेद है, उसे पर्याय कहा जाये तो पर्यायभेद से अतद्‌भाव बाहर दिखता है, उन्मग्न (होता है)। पर्यायदृष्टि से-भेददृष्टि से कहो तो आत्मा और सत्ता गुण में पर्यायदृष्टि से-भेददृष्टि से अतद्‌भाव दिखाई देता है। आहा...हा... ! अरे...रे... ! ऐसा प्रभु का मार्ग! प्रभु

तो महाविदेह में विराजते हैं। समवसरण में धर्मसभा में इन्द्र जाते हैं, बाघ और शेर सभा में जाते हैं। बापू! ऐसी बातें कैसी होगी, भाई! आहा...हा...!

सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा तो कहते हैं कि गुणी है वह गुण नहीं, ऐसा शास्त्रवचन है, इसलिए वह अतद्भाव कहने में आता है, परन्तु अब अतद्भाव में भी दो दृष्टि से देखने में आता है। आ...हा...हा...! अर्थात् आत्मा सत् द्रव्य है और सत्ता गुण है। ऐसा अतद्भाव(रूप) व्यवहार कहने में आया है परन्तु इस अतद्भाव में भी दो अपेक्षा है। आहा...हा..! क्या (अपेक्षा है) ? कि **जीव द्रव्य को पर्याय प्राप्त कराई जाय (अर्थात् जीव द्रव्य को पर्याय प्राप्त करती है - पहुँचती है इस प्रकार पर्यायार्थिकनय से देखा जाय) तब ही - 'शुक्ल यह वस्त्र है,...)'** पर्यायनय से - भेदनय से देखो तो **शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है** शुक्लत्व यह वस्त्र है और इसका शुक्लत्व गुण है **इत्यादि की भाँति 'गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है', इस प्रकार अताद्भाविक भेद उन्मग्न होता है;...** अताद्भाविक भेद बाहर में में दिखने में आता है। आहा...हा...! ऐसी वाणी!

क्या कहते हैं ? कि भगवान आत्मा! यहाँ तो सत्ता (गुण) लिया है, बाकी तो प्रत्येक गुण... आ...हा...हा...! वस्तु जो अन्दर भिन्न प्रभु है, उसमें अनन्त गुण हैं। तो गुण है वह गुणी नहीं और गुणी है, वह गुण नहीं - ऐसा शास्त्र का वचन है। इस अपेक्षा से अतद्भाव कहने में आता है। परन्तु अतद्भाव (को) भी देखने की दो दृष्टि हैं। आहा...हा...! जीव द्रव्य को भेद (से) पहुँचना है (अर्थात्) भेद से देखो तो अतद्भाव (अर्थात्) गुण है वह गुणी नहीं। किसकी भाँति ? है, देखो! है ? **'शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है' इत्यादि की भाँति 'गुणवाला यह द्रव्य है,...'** शुक्ल यह वस्त्र है, इस प्रकार गुणवाला यह द्रव्य है। आहा...हा...! ऐसे भेददृष्टि से-पर्यायदृष्टि से-व्यवहारदृष्टि से कहने में आता है। आ...हा...हा...! ऐसा है, प्रभु! अनजाने आदमी को (नया लगे)। प्रभु का मार्ग, बापू! 'वीरनो मार्ग छे शूरानो, कायरना त्यां काम नथी' ऐसे तो अनन्त बार जैन में (जन्म लिया), अनन्त बार दिगम्बर साधु हुआ, मुनिव्रत धारण करके अनन्त बार नववीं ग्रैवेयक गया। आहा...हा...! परन्तु अन्तर चीज (क्या है, उसे जाना नहीं)।

शास्त्र में गुण और गुणी को भिन्न कहा है फिर भी उसे भेददृष्टि से – पर्यायनय से देखो तो (जैसे) 'शुक्ल यह वस्त्र है' जैसे 'गुणवाला यह द्रव्य है' 'गुणवाला यह द्रव्य (है), शुक्ल यह वस्त्र (है)' यह व्यवहारनय से-पर्यायनय से कहने में आता है। आ...हा...हा...! पर्यायनय क्या और द्रव्यनय क्या? (इसकी खबर नहीं)। फुरसत कहाँ है जगत् को? सारा दिन धन्धा-व्यापार (से फुरसत नहीं), घण्टे-दो घण्टे (सुनने) जाये (और जो सुने उसे) जय नारायण (कहकर निकल जाय)। उसका विचार करने का समय कहाँ है? अरे... प्रभु! यह तो वीतराग का मार्ग (है)।

प्रश्न – भगवान की गद्दी पर बैठकर कहे तो सच ही सच बोले न, उसमें विचार क्या करना?

समाधान – वर्तमान में तो सब भान बिना का चल रहा है। अभी तो पण्डित और साधु ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि व्रत करो, तप करो, उपवास करो, त्याग करो। (लेकिन) किसका त्याग? व्रत करो और उपवास करो – दोनों राग की क्रिया है। ऐसे व्रत और तप तो अनन्त बार किये हैं। प्रतिमा धारण करो... प्रतिमा तो राग है।

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है। ये गुणवाला गुणी है, ऐसा भेद भी पर्यायनय से कहने में आता है। 'शुक्ल-सफेद यह वस्त्र है' सफेद! 'सफेद यह वस्त्र है।' है? **गुणवाला यह द्रव्य है** आहा...हा...! 'शुक्ल यह वस्त्र है' ऐसे '**गुणवाला द्रव्य है, यह इसका गुण है', इस प्रकार अताद्भाविक भेद उन्मग्न होता है;...** अतद्भाव (अर्थात्) गुण है वह गुणी नहीं और गुणी है, वह गुण नहीं। – ऐसा अतद्भाव बाह्य में प्रसिद्धि में दिखने में आता है। आहा...हा...! सब इससे भी आगे की बात करते हैं। भाषा तो सादी है, प्रभु! परन्तु मार्ग तो जो है सो है, दूसरा कहाँ से लाये? आ...हा...! करोड़पति के लिये सोना करना हो तो चार आना में सोना हो जाय? सोना क्या कहते हैं? शेलु (– कीमती वस्त्र) बनाओ! ऐसे यह बात तो बापू! ऐसी (कीमती) है, उसे आसान बनाओ! (ऐसा कहे तो) कैसे आसान (बनाये)? विपरीत करके बनायें? आ...हा...! (जगत को) कहाँ पड़ी है, बापू! अरे...रे...! अनन्त काल से रगड़ता है, दुःखी है, करोड़ोपति, अरबोंपति बेचारे भिखारी हैं। आत्मा में अनन्त लक्ष्मी पड़ी है, उसकी तो दरकार नहीं है

और बाहर की धूल माँगता है कि धूल लाओ, इज्जत लाओ, कीर्ति लाओ, स्त्री लाओ! बड़े भिखारी हैं, उद्योगपति बड़े भिखारी हैं। यहाँ तो यह बात है। अन्तर भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु! बादशाह! अन्दर अनन्त गुण का नाथ है, उसमें तो ढूँढने जाता नहीं, अन्दर जाता नहीं कि अन्दर क्या चीज है? और बाहर में ये लाओ... ये लाओ... ये लाओ... ये लाओ... (करके भीख माँगता है)। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) **'गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है', इस प्रकार अताद्भाविक भेद...** दिखने में आता है। उन्मग्न अर्थात् जानने में आये, परन्तु वह तो व्यवहार हुआ। **परन्तु अब द्रव्य को प्राप्त कराया जाय...** आ...हा...हा...! वस्तु को वस्तु प्राप्त कराई जाय, भेद नहीं। अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु!... आहा...हा...! जिसमें राग तो नहीं, पर्याय भी नहीं और गुणभेद भी नहीं। ऐसा अभेद; भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थङ्कर कहते हैं, ऐसा अभेद भगवान आत्मा है! है?

द्रव्य को द्रव्य प्राप्त कराया जाय (अर्थात् द्रव्य को प्राप्त करता है - पहुँचता है इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय से देखा जाय),... आ...हा...हा...! अतद्भाव युतसिद्ध तो नहीं। दण्ड और दण्डी की भाँति; लकड़ी और लकड़ीवान (की भाँति) सत्ता और सत् द्रव्य (नहीं है) परन्तु गुण और गुणी दोनों भिन्न हैं, ऐसा शास्त्रवचन है, परन्तु उस अतद्भाव को देखने की भी दो दृष्टि है। यदि उसे पर्यायदृष्टि से देखो तो 'गुणवाला यह (द्रव्य) है, यह गुण (द्रव्य का) है' ऐसा (भेद) उन्मग्न अर्थात् जानने में-देखने में आता है। आ...हा...हा...! है? **उन्मग्न होता है;...** उन्मग्न का अर्थ - वह मुख्य(रूप से) ख्याल में आता है। गुणवाला (वह) गुण; गुण वह गुणवाला ('गुणवाला यह द्रव्य') ऐसी भेददृष्टि से अतद्भाव को देखें तो वहाँ यह अतद्भाव पर्यायदृष्टि से भिन्न देखने में आता है। गुण और गुणी (ऐसा भेद) पर्यायदृष्टि से-व्यवहारदृष्टि से (देखने में आता है)। ऐसी बात बनिये को-व्यापारी को मिले! (जिसे) व्यापार से फुरसत नहीं मिले, उसमें ऐसी बात का निर्णय करने कब जाये? आहा...हा...!

अरे...रे...! जिन्दगी चली जा रही है, भाई! देह की स्थिति (पूरी होने का) जो समय है, उसके समीप जा रहा है। जितना समय जा रहा है, (वह मृत्यु के समीप जा रहा

है)। देह की स्थिति कब पूरी होनेवाली है, वह निश्चित है। जितने दिन जा रहे हैं, उतने मृत्यु के समीप जा रहे हैं। आ...हा...हा... ! उसमें करना यह है, ऐसी सुध नहीं आये (तो) पशु ऐसा अवतार है। भले ही अरबोंपति हों, उद्योगपति हों और लोगों में प्रशंसा होती हो... ओ...हो...हो... !

परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त कराया जाय... आहा...हा... ! द्रव्य को द्रव्य प्राप्त (करे) अर्थात् द्रव्य पर जब दृष्टि पड़े। (अर्थात्) सत्ता गुण (है) और द्रव्य गुणी (है) ऐसा भेद भी निकालकर वस्तु अखण्ड है, उसमें दृष्टि पड़े। ओ...हो...हो... ! **परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त कराया जाय (अर्थात् द्रव्य को द्रव्य प्राप्त करता है-पहुँचता है, इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय से देखा जाय), तब जिसके समस्त गुणवासना के उन्मेष अस्त हो गये हैं...** आ...हा...हा... ! क्या कहते हैं ? परमाणु और (दूसरे) द्रव्य तो ठीक है। यहाँ तो भगवान आत्मा ! ज्ञान गुण है और आत्मा गुणी है – ऐसा अतद्भाव (है), क्योंकि (गुण-गुणी का भेद है), ऐसा शास्त्र का वचनव्यवहार है कि आत्मा ज्ञान है, ज्ञान आत्मा है परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि अतद्भाव को भेददृष्टि-पर्यायदृष्टि से देखें तो गुणी द्रव्य (है) और गुण ज्ञान (है), ऐसा (भेद) उन्मग्न (नाम) नजर में आता है। परन्तु वह दृष्टि छोड़कर... आ...हा...हा... ! द्रव्यार्थिकनय से देखो... आ...हा...हा...हा... ! वस्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर है। गुण से गुणी और गुणी का गुण, ऐसा विचार भी छोड़कर... आ...हा...हा... ! भाषा समझ में आती है, न भैया ? हिन्दी ! हमारी तो गुजराती भाषा है।

यहाँ तो सत्ता की बात है। परन्तु 'ज्ञान वह आत्मा और आत्मा वह ज्ञान' ऐसा गुण-गुणी का भेद अतद्भावरूप से पर्यायदृष्टि से व्यवहारनय से पहुँचने में-देखने में आता है, परन्तु निश्चयदृष्टि से-द्रव्यार्थिक (नय की) दृष्टि से द्रव्य अर्थात् वस्तु पूर्णानन्द का नाथ (है) उसकी दृष्टि से देखने से... आ...हा...हा... ! है ? **(द्रव्यार्थिकनय से देखा जाय), तब जिसके समस्त गुणवासना के उन्मेष अस्त हो गये हैं...** आ...हा...हा...हा... ! यह ज्ञान है, दर्शन है और आनन्द है ये सब भेद, द्रव्य की दृष्टि से देखने से अस्त हो जाते हैं। भेद नाश हो जाता है। आहा...हा... ! ऐसी वाणी ! क्या करना ? प्रभु ! आहा...हा... ! भगवान का तो विरह हुआ, प्रभु वहाँ रह गये परन्तु उनकी वाणी आयी। 'कुन्दकुन्द

आचार्य' दिगम्बर सन्त! भावलिङ्गी सन्त! अनुभवी, चारित्रवन्त! आनन्द के भाव में (रमनेवाले) चारित्रवन्त! मात्र क्रियाकाण्ड, २८ मूलगुण (पाले), वह कोई साधुपना नहीं है। पञ्च महाव्रत पाले वह कोई साधुपना नहीं है। आहा...हा...! साधुपना तो (कोई अलौकिक बात है)!

अन्दर अभेद चिदानन्द प्रभु! 'ज्ञान वह आत्मा', ऐसा गुणभेद भी निकालकर अखण्ड आत्मद्रव्य पर दृष्टि पड़ने से सम्यग्दर्शन-प्रथम में प्रथम धर्म की शुरुआत होती है। आहा...हा...! भाषा समझ में आत है न, भैया? आपकी बहुत हिन्दी नहीं आती है। साधारण-साधारण आती है। आहा...हा...!

(गुणवासना के) उन्मेष अस्त हो गये हैं... क्या कहते हैं? कि सत्ता है वही सत् है। ऐसा सत्ता और सत् का अतद्भाव भेददृष्टि से लक्ष्य में आते थे, परन्तु अभेददृष्टि करने से यह सत्ता और सत् एक ही चीज है। सत् पर दृष्टि देने से-द्रव्य पर दृष्टि देने से 'इस द्रव्य का यह गुण' यह बात अस्त हो जाती है, यह बात दृष्टि में रहती नहीं। आ...हा...हा...! ऐसा मार्ग (है)! दिगम्बर मुनियों केवलज्ञानी के आड़तिया हैं। केवलज्ञानी परमात्मा ने जो कहा उसका अनुभव किया और अनुभव करके चारित्र में-आनन्द में (रहकर), अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करके यह बात कही है। आ...हा...हा...! यह बात दिगम्बर संतों के अलावा अन्य कहीं नहीं है। आहा...हा...! कहीं भी सत्य बात (नहीं है)। यहाँ तक ले गये! आ...हा...हा...!

सत्ता गुण और द्रव्य सत् (है), यह भी व्यवहारनय से कहने में आया। आ...हा...! पर्यायदृष्टि से देखो तो वह (भेद) उन्मग्न अर्थात् बाहर में दिखने में आता है परन्तु यदि द्रव्यदृष्टि से देखो तो (वह भेद) निमग्न हो जाता है। गुण-गुणी का भेद अस्त हो जाता है। आ...हा...हा...! है?

प्रश्न : गुण अस्त हो जाते हैं तो क्या गुण रहित हो जाता है।

समाधान : दृष्टि में गुण रहते नहीं। गुण और गुणी का भेद दृष्टि में रहता नहीं। गुण तो गुण में है। अभेद में भेद नहीं दिखता। भेद है, परन्तु भेद नहीं दिखता। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन में अभेद पर दृष्टि होने से अन्तर (में) अनन्त गुण हैं परन्तु गुण का भेद

सम्यग्दर्शन के विषय में नहीं। आ...हा...हा...हा... ! दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप और यात्रा तो राग (है) । यह तो कोई सम्यग्दर्शन में विषय ही नहीं, वह तो कोई धर्म ही नहीं... आ...हा...हा... ! परन्तु आत्मा-सत् और यह सत्ता - ऐसा भेद भी विकल्प (है) और पर्याय नय के विषय से बाहर (दिखने में आता) है। आ...हा...हा... !

श्रोता : द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय का क्या काम है, धर्म कैसे हो यह बताइये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका काम यह है कि (जब तक) भेद पर लक्ष्य रहेगा, तब तक राग की एकता नहीं टूटेगी। राग और पर्याय पर भी लक्ष्य रहेगा तब तक राग और स्वभाव की एकता टूटती नहीं। एकता रहती है, वह अनादि काल का मिथ्यात्व है। आ...हा...हा...हा... ! यह आत्माराम की बात है ! आहा...हा... ! भाई ने तो फिर से लेने को कहा था। कल तो कहा था कि बहनों, माताओं को यह समझ में आता है या नहीं ? भाषा तो सादी है, माता ! आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं - है तो छहों द्रव्य की बात, परन्तु उसमें आत्मद्रव्य की बात करनी, यह मुख्य है न ? आहा...हा... ! आत्मा में 'यह गुण है और यह गुणी है' - ऐसा अतद्भाव व्यवहारनय से कहने में आया है, परन्तु इस अतद्भाव को भेददृष्टि से देखो तो 'यह शुक्ल वस्त्र है' ऐसे 'यह गुणवाला गुणी है' - ऐसा व्यवहार से देखने में आता है। आहा...हा... ! निश्चय से अन्तर में देखे (तो) भगवान आत्मा ! पूर्णानन्द का नाथ ! जहाँ गुण-गुणी का भेद भी नहीं; पर्यायदृष्टि की तो बात ही नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, प्रभु ! सूक्ष्म पड़े लेकिन क्या हो ? जो चीज है सो है। आ...हा...हा... ! वर्तमान में गड़बड़ बहुत चली है, इसलिए यह बात ऐसी लगे कि यह तो बहुत सूक्ष्म... सूक्ष्म... सूक्ष्म... है। परन्तु तू सूक्ष्म ही है, प्रभु ! आ...हा...हा... !

अतद्भाव को भी दो दृष्टि से देखने को कहते हैं। आहा...हा... ! यह गुणी गुणवाला है और यह गुण गुणी के हैं, ऐसा जो अतद्भाव(रूप) भाव (है) वह भी पर्यायदृष्टि-भेददृष्टि - व्यवहार से देखो तो वह उन्मग्न है-देखने में आवे। परन्तु द्रव्यदृष्टि से देखो तो वह निमग्न है। गुण-गुणी का भेद दृष्टि में से नाश हो जाता है। ऐसी बात है।

शुक्लवस्त्र ही है आया न ? **इत्यादि की भाँति – 'ऐसा द्रव्य ही है'** गुण है, यही गुणी है और सत्ता है वही सत् है – ऐसा नहीं। द्रव्य ही है। **इस प्रकार देखने पर समूल ही अताद्भाविक भेद निमग्न (होता है)।** (अर्थात्) भेदभाव नाश हो जाता है। भेदभाव लक्ष्य में रहते नहीं। आ...हा...हा... ! ऐसी एक-एक गाथा ! यह 'प्रवचनसार'! प्रवचन = 'प्र' यानी विशेषरूप वचन – दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि ! ध्वनि यानी आवाज और दिव्य माने 'प्र'। यह तो तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि है ! 'सीमन्धर' भगवान समवसरण में विराजते हैं। उनकी दिव्यध्वनि आठ दिन सुनी। 'कुन्दकुन्द आचार्य'! दिगम्बर सन्त ! (उन्होंन) यहाँ आकर (कहा कि) परमात्मा ऐसा कहते हैं। दुनिया मानो न मानो उसके साथ क्या सम्बन्ध ? दिगम्बर सन्त ! 'नागा बादशाह से आघा' समाज को ठीक पड़े या नहीं पड़े, समाज में सन्तुलन रहे या नहीं रहे, उसकी कोई दरकार नहीं। मार्ग ऐसा है ! आहा...हा.... ! क्या कहा ?

'शुक्लवस्त्र ही है' इत्यादि की भाँति – 'ऐसा द्रव्य ही है' गुण है, गुणी है; गुणी का गुण है, ऐसा नहीं। **इस प्रकार देखने पर समूल ही अताद्भाविक भेद...** नाश हो जाता है। आ...हा...हा... ! कल तो यह सब चल गया है। **इस प्रकार भेद के निमग्न होने पर...** देखा ? 'गुणी के गुण और गुण गुणी का' ऐसा भेद भी लक्ष्य में न लेना। आहा...हा... ! (भेद के निमग्न होने पर) **उसके आश्रय से (कारण से) होती हुई निमग्न होती है।** यह गुणी और उसका सत्ता गुण – ऐसी प्रतीति अभेददृष्टि करने से नाश हो जाती है। आ...हा...हा...हा... !

इसलिए समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है। लो ! पर्याय नहीं, गुण-गुणी का भेद नहीं। आ...हा...हा...हा... ! ये लड़कों को समझ में आता है या नहीं ? आहा...हा... ! **उसके निमग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना निमग्न होता है,...** अर्थात् उसमें भेदपना दिखने में नहीं देता। **इसलिए समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है।** आहा...हा... ! समस्त एक द्रव्यस्वरूप भगवान आत्मा (होकर रहता है)। यहाँ तो छहों द्रव्य की बात है, परन्तु तात्पर्य तो वीतरागता बतलानी है न ! चार अनुयोग में कोई भी बात करने में वीतरागता तात्पर्य है। तो वीतरागता कैसे उत्पन्न हो ? एक अभेद दृष्टि करने से

वीतरागता प्राप्त हो - उत्पन्न हो। गुण-गुणी की भेददृष्टि से भी वीतरागता उत्पन्न (नहीं होती)। आ...हा...हा...! समझ में आता है?

भगवान तो अन्दर केवलज्ञान का कन्द है न! केवलज्ञान का कन्द! एक समय में केवलज्ञान ले सके इतनी सामर्थ्य है!! आहा...हा...! ऐसे प्रभु को अभेदरूप से देखना, उसे यहाँ यथार्थदृष्टि कहने में आता है। आ...हा...!

और जब भेद उन्मग्न होता है, वह उन्मग्न होने पर उसके आश्रय (कारण) से होती हुई प्रतीति उन्मग्न होती है, उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना... (अर्थात्) भेदपना **उन्मग्न होता है, तब भी (वह) द्रव्य के पर्यायरूप से उन्मग्न होने से,...** आहा...हा...! **वह द्रव्य के पर्यायरूप से उन्मग्न होने से - जैसे जलराशि से जलतरंगे व्यतिरिक्त नहीं हैं...** आहा...हा...! **(अर्थात् समुद्र से तरंगे अलग नहीं हैं) उसी प्रकार - द्रव्य से व्यतिरिक्त नहीं होता।** दृष्टि अभेद पर पड़ी तो उसकी सत्ता भिन्न है - ऐसा नहीं रहा। सत्ता और सत् एक ही हो गया। द्रव्य से व्यतिरिक्त-भिन्न नहीं रहा। आ...हा...हा...! यहाँ तक आया था न? ये दो पंक्तियाँ नहीं चली थी। आ...हा...!

अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना उन्मग्न होता है, तब भी (वह) द्रव्य के पर्यायरूप से उन्मग्न होने से,... द्रव्य को सम्यग्दर्शन की पर्याय से देखो तो यह पर्याय है सही। यह पर्याय है, पर्याय नहीं है - ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय अभेददृष्टि से (देखो) तो यह पर्याय है सही। जल के तरंग (जल) से व्यतिरिक्त नहीं; वैसे सम्यग्दर्शन की पर्याय द्रव्य से भिन्न नहीं। उसकी पर्याय उसमें है। क्योंकि 'यह (द्रव्य) अभेद है', यह निर्णय तो पर्याय से करना है न? द्रव्य से निर्णय नहीं होता, द्रव्य तो ध्रुव है। पर्याय से निर्णय करना है तो पर्याय उत्पन्न होती है। जैसे जल से तरंग भिन्न नहीं (है) वैसे पर्याय द्रव्य से भिन्न नहीं है, अभेद हो गई। आहा...हा...! अभेद होने पर भी वहाँ पर्याय है। पर्याय द्रव्य में एकमेक नहीं हुई। सम्यग्दर्शन की पर्याय में अभेद दृष्टि में आया तो पर्याय में द्रव्य आया नहीं और पर्याय द्रव्य में अभेद नहीं हुई। आहा...हा...! पर्याय, पर्यायरूप रहकर अभेद की दृष्टि (करती है)। अभेद की दृष्टि होने से द्रव्य का जितना सामर्थ्य है, इतना

पर्याय में (जानने में) आया। पर्याय में द्रव्य आया नहीं। द्रव्य तो द्रव्यरूप ही रहा, पर्याय पर्यायरूप रही। आहा...हा...! समझ में आया?

ऐसा होने से (यह निश्चित हुआ कि) द्रव्य स्वयमेव सत् है। आहा...हा...! पर्याय में ख्याल में आया। द्रव्य से द्रव्य ख्याल में आता है? पर्याय में (ख्याल में) आता है न? **जो ऐसा नहीं मानता वह वास्तव में 'परसमय' (मिथ्यादृष्टि) ही मानना।** आहा...हा...! ऐसा लिया! पाठ है कि नहीं? मूल पाठ! '**परसमओ**' ९८ (गाथा में) पाठ है। अभेद को उस प्रकार से नहीं माने तो पर्याय में उसे मिथ्यादृष्टिपना है। अभेद को माने तब अन्दर से पर्याय में सम्यग्दर्शन होता है। आहा...हा...! इसके बिना सम्यग्दर्शन (होता नहीं)। धर्म की पहली सीढ़ी-शुरुआत तब होती है, इसके बिना होती नहीं।

विशेष कहेंगे...

प्रवचन नं. १०० **दिनाङ्क १० जून १९७९**

'प्रवचनसार' ९८ - गाथा। अन्तिम पैराग्राफ फिर से लेते हैं। **और जब भेद उन्मग्न होता है,...** वहाँ से। अन्तिम पैराग्राफ है न? (अन्तिम) पाँच पंक्ति। कल दूसरा अर्थ हो गया, दृष्टि अन्दर गई थी तो द्रव्य ऊपर पर्याय, ऐसा हो गया।

यहाँ क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है। सत् अर्थात् द्रव्य जो है द्रव्य, आत्मा आदि छहों द्रव्य, वे सत् हैं और उसमें सत्ता नाम का गुण है, वह अतद्भावरूप से भिन्न है। अतद्भावरूप से अर्थात् गुण (है), वह द्रव्य नहीं और द्रव्य (है), वह गुण नहीं (है)। उसे दो दृष्टि से देखने में आया - ऐसा कहते हैं।

अब, यह सत् द्रव्य है और सत्ता गुण है - ऐसा भेद पर्यायदृष्टि से देखने से यह अतद्भाव भिन्न भासित होता है परन्तु द्रव्यदृष्टि से देखो तो सत् और सत्ता भिन्न नहीं दिखते - (भेद) निमग्न हो जाता है। द्रव्यदृष्टि से देखो तो सत् और सत्ता दोनों निमग्न अर्थात् एक हो जाता है, भिन्न नहीं रहते, ऐसी बात है। पर्यायदृष्टि से देखो... यहाँ तो बात लेनी है।

जब भेद उन्मग्न होता है,... है? **जब भेद उन्मग्न होता है, वह उन्मग्न होने पर**

उसके आश्रय (कारण) से होती हुई प्रतीति... (अर्थात्) ज्ञान-ख्याल में आता है कि सत् द्रव्य है, सत्ता गुण है। ऐसी पर्यायदृष्टि से देखने से ऐसा ख्याल में आता है। **उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना उन्मग्न होता है,...** क्या कहते हैं ? (अयुतसिद्धत्वजनित) भिन्न पदार्थ(पना) - (अर्थान्तरपना) निमग्न नहीं हो जाता। सत् से सत्ता भिन्न है, यह उन्मग्न हो जाता है। द्रव्य है, वह सत्ता है, ऐसा उन्मग्न अर्थात् बाहर में दिखने में आता है कि सत् द्रव्य है, वह सत्ता है। ऐसी सूक्ष्म बात है।

उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना उन्मग्न होता है, तब भी (वह) द्रव्य के पर्यायरूप से उन्मग्न होने से,... तब सत् द्रव्य है और सत्ता गुण है, उसकी भेददृष्टि से देखो तो भी **जैसे जलराशि से जलतरंगे व्यतिरिक्त नहीं...** जैसे जल की राशि से जल का तरंग अलग नहीं है। ऐसे पर्यायदृष्टि से देखो तो भी सत् से सत्ता भिन्न नहीं है। सत् से सत्ता भिन्न है, अभिन्न नहीं। भेददृष्टि से देखो तो जल से जैसे तरंग भिन्न है - व्यतिरिक्त है, वैसे सत् से सत्ता भिन्न है। ऐसी सूक्ष्म बात है। बनिये को व्यापार से (फुरसत नहीं)।

वस्तु है... है... यह द्रव्य (है) और उसमें सत्ता है, यह गुण (है) परन्तु सत्ता और द्रव्य द्रव्यदृष्टि से देखने से तो भेद निमग्न हो जाता है - भेद दिखने में आता नहीं है, परन्तु पर्यायदृष्टि से देखो तो सत् द्रव्य और सत्ता गुण (ऐसा भेद) उन्मग्न होता है - ख्याल में आ जाता है - ऊपर (आ जाता है)। आ...हा...! और ख्याल में आने के कारण से द्रव्य से सत्ता भिन्न है। अन्दर पर्यायदृष्टि से देखे तो द्रव्य से सत्ता भिन्न है। आहा...हा...! ऐसी बात है। समझ में आया ?

ख्याल में तो ये आया था - 'नियमसार' में एक श्लोक है कि आत्मा अभिन्न है, अभेद है तो उसमें सत् द्रव्य और सत्ता (गुण) भिन्न-भिन्न दृष्टि में नहीं आना चाहिए, (क्योंकि) उसमें भी विकल्प उठते हैं। द्रव्य जो त्रिकाल है, एकरूप है - ऐसी दृष्टि में जो कोई विकल्प उठते हैं तो आचार्य 'पद्मप्रभमलधारिदेव' कहते हैं कि ऐसा विकल्प जो उत्पन्न होता है, ऐसे भेदबुद्धिवाले की मुक्ति होगी कि नहीं, अरहन्त के मत में कौन जाने ? क्या कहा ?

भगवान आत्मा! गुण और गुणी अभेद है। अभेद में गुण का भेद का विकल्प उठे तो कहते हैं कि उसकी मुक्ति होगी कि नहीं? अरहन्त के मत में कौन जाने? अर्थात् अरहन्त के मत में, भेद का विकल्प उठा हो, उसकी मुक्ति होगी नहीं। समझ में आया? 'नियमसार' पुस्तक है न? उसमें है। आत्मा एकस्वरूप, अनन्त गुण का एकरूप, अभेद है।

यहाँ तो ज्ञान कराना है तो पर्यायदृष्टि से देखो तो भी सत् और सत्ता व्यतिरिक्त है। द्रव्य है, उससे सत्ता व्यतिरिक्त है। भिन्न ज्ञान कराया है, परन्तु ध्यान में जब अभेददृष्टि होती है... आहा...हा...! तो 'द्रव्य में सत्ता भिन्न है', ऐसा पर्यायनय से जो दिखता है, यह अन्तरदृष्टि करने से 'द्रव्य में सत्ता भिन्न है', ऐसा भासित नहीं होता। द्रव्य और सत्ता अभिन्न है, एकाकार है, ऐसी अन्तर में दृष्टि करना, यह सम्यग्दर्शन का कारण है। आहा...हा...! दया, दान, व्रत, भक्ति से तो सम्यग्दर्शन नहीं होता; पर्याय के लक्ष्य से भी नहीं होता, परन्तु यहाँ गुण-गुणी का भेद कहा कि पर्यायदृष्टि से देखो तो सत्ता भिन्न नहीं, व्यतिरिक्त नहीं है, अलग नहीं है। पर्यायदृष्टि से भी (भिन्न नहीं)! आहा...हा...!

यहाँ तो अन्दर जब तत्त्व की दृष्टि चलती है... आ...हा...! तब तो द्रव्य जो वस्तु सत् है और उसका सत्ता गुण है, वह भेद भी निमग्न हो जाता है। अभेद पर दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन होता है। आहा...हा...! समझ में आया?

ऐसा होने से (यह निश्चित हुआ कि)... आखिर की दो (पंक्ति)। **द्रव्य स्वयमेव सत् है।** द्रव्य स्वयमेव सत् है। **जो ऐसा नहीं मानता वह वास्तव में 'परसमय' मिथ्यादृष्टि ही मानना।** आहा...हा...! द्रव्य स्वयमेव सत् है। स्वयमेव सत्! सत्ता और सत् भिन्न है, इसलिए द्रव्य सत् नहीं - ऐसा नहीं। स्वयमेव सत् है। सत्ता के कारण से स्वयमेव सत् है - ऐसा नहीं। आहा...हा...! ऐसा विचार (करने की) बनिये को फुरसत नहीं। आहा...हा...!

(नियमसार) में तो ऐसे लिया है - अरहन्त के मत में - वीतराग त्रिलोकनाथ के मत में अभेददृष्टि में जो भेद-विकल्प आदि उत्पन्न होता है... आहा...हा...! या पर्याय पर लक्ष्य जाता है या गुण-गुणी के भेद पर लक्ष्य जाता है तो अरहन्त के मत में उसकी मुक्ति होगी कि नहीं कौन जाने? उसका अर्थ यह है कि अरहन्त के मत में उसकी मुक्ति होगी नहीं। आ...हा...! समझ में आया? ९८ (गाथा समाप्त हुई)।

गाथा - ९९

अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वेऽपि सद्द्रव्यं भवतीति विभावयति -

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो।।९९।।

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः।
अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः।।९९।।

इह हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति द्रव्यम्। स्वभावस्तु द्रव्यस्य ध्रौव्योत्पादोच्छेदैक्यात्मक-परिणामः। यथैव हि द्रव्यवास्तुनः सामस्त्येनैकस्यापि विष्कम्भ-क्रमप्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः प्रदेशाः, तथैव हि द्रव्यवृत्तेः सामस्त्येनैकस्यापि प्रवाहक्रमप्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः परिणामाः। यथा च प्रदेशानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनो विष्कम्भक्रमः, तथा परिणामानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनः प्रवाहक्रमः। यथैव च ते प्रदेशाः स्वस्थाने स्वरूपपूर्वरूपाभ्यामुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकवास्तु-तयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहारध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति, तथैव ते परिणामाः स्वावसरे स्वरूपपूर्वरूपाभ्या-मुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहार-ध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति। यथैव च य एव हि पूर्वप्रदेशोच्छेदनात्मको वास्तुसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकवास्तुतयातदुभयात्मक इति; तथैव य एव हि पूर्वपरिणामोच्छेदात्मकः प्रवाहसीमान्तः, स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतयातदुभयात्मक इति। एवमस्य स्वभावत एव त्रिलक्षणायां परिणामपद्धतौ दुर्ललितस्य स्वभावानतिक्रमात्त्रिलक्षणमेव सत्त्वमनुमोदनीयम्; मुक्ताफलदामवत्। यथैव हि परिगृहीतद्राघिम्नि प्रलम्बमाने मुक्ताफलदामनि समस्तेष्वपि स्वधामसूच्चकासत्सु मुक्ताफलेषूत्तरोत्तरेषु धामसूत्तरोत्तरमुक्ताफलानामुदयनात्पूर्वपूर्वमुक्ता-फलानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य सूत्रकस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति, तथैव हि परिगृहीतनित्यवृत्तिनिवर्तमाने द्रव्ये समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववसरेषूत्तरोत्तरपरिणामानामुदयानात्पूर्वपूर्वपरिणामानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य प्रवाहस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति।।९९।।

अथोत्पादव्ययध्रौव्यत्वे सति सत्तैव द्रव्यं भवतीति प्रज्ञापयति - **सदवट्ठिदं सहावे दव्वं** द्रव्यं

मुक्तात्मद्रव्यं भवति। किं कर्तृ। सदिति शुद्धचेतनान्वयरूपमस्तित्वम्। किंविशिष्टम्। अवस्थितम्। क्व। स्वभावे। स्वभावं कथयति - **दव्वस्स जो हि परिणामो** तस्य परमात्मद्रव्यस्य संबन्धी हि स्फुटं यः परिणामः। केषु विषयेषु। **अत्थेसु** परमात्मपदार्थस्य धर्मत्वादभेदनयेनार्था भण्यन्ते। के ते। केवलज्ञानादिगुणाः सिद्धत्वादिपर्यायाश्च, तेष्वर्थेषु विषयेषु योऽसौ परिणामः। **सो सहावो** केवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वादिपर्यायरूपस्तस्य परमात्मद्रव्यस्य स्वभावो भवति। स च कथंभूतः। **ठिदिसंभवणाससंबद्धो** स्वात्मप्राप्तिरूपमोक्षपर्यायस्य संभवस्तस्मिन्नेव क्षणे परमागमभाषयैकत्ववितर्कावीचार-द्वितीयशुक्लध्यानसंज्ञस्य शुद्धोपादानभूतस्य समस्त- रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनज्ञानपर्यायस्य नाशस्तस्मिन्नेव समये तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यस्य स्थितिरित्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण संबन्धो भवतीति। एवमुत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेणैकसमये यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन परमात्मद्रव्यं परिणतं, तथापि द्रव्यार्थिकनयेन सत्तालक्षणमेव भवति। त्रिलक्षणमपि सत्सत्तालक्षणं कथं भण्यत इति चेत् 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' इति वचनात्। यथेदं परमात्मद्रव्यमेकसमयेनोत्पादयव्ययध्रौव्यैः परिणतमेव सत्तालक्षणं भण्यते तथा सर्वद्रव्याणीत्यर्थः।। ९९।।

अब, यह बतलाते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने पर भी द्रव्य 'सत्' है -

जो है स्वभाव में अवस्थित, द्रव्य 'सत्' परिणाममय।
उत्पाद-व्यय-ध्रुवतासहित, परिणाम द्रव्य-स्वभावमय॥

अन्वयार्थ : [स्वभावे] स्वभाव में **[अवस्थितं]** अवस्थित (होने से) **[द्रव्यं]** द्रव्य **[सत्]** 'सत्' है; **[द्रव्यस्य]** द्रव्य का **[यः हि]** जो **[स्थितिसंभवनाशसंबद्धः]** उत्पादव्ययध्रौव्य सहित **[परिणामः]** परिणाम है, **[सः]** वह **[अर्थेषु स्वभावः]** पदार्थों का स्वभाव है।

टीका : यहाँ (विश्व में) स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से द्रव्य 'सत्' है। स्वभाव द्रव्य का ध्रौव्य-उत्पाद-विनाश की एकतास्वरूप परिणाम है।

जैसे द्रव्य का वास्तु[१] समग्रपने द्वारा (अखण्डता द्वारा) एक होने पर भी, विस्तारक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे प्रदेश हैं; इसी प्रकार द्रव्य की वृत्ति[२] समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे परिणाम हैं। जैसे

१. द्रव्य का वास्तु = द्रव्य का स्व-विस्तार, द्रव्य का स्व-क्षेत्र, द्रव्य का स्व-आकार, द्रव्य का स्व-दल। (वास्तु = घर, निवासस्थान, आश्रय, भूमि।)

२. वृत्ति = वर्तना वह; होना वह; अस्तित्व।

विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है; उसी प्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक[१] है।

जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति[२] से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं; उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं। और जैसे वास्तु का जो छोटे से छोटा अंश पूर्वप्रदेश के विनाशस्वरूप है, वही (अंश) उसके बाद के प्रदेश का उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुभय स्वरूप है (अर्थात् दो में से एक भी स्वरूप नहीं है); इसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश पूर्व परिणाम के विनाशस्वरूप है, वही उसके बाद के परिणाम के उत्पादस्वरूप है, तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।

इस प्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणामपद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य, स्वभाव का अतिक्रम[३] नहीं करता; इसलिए सत्त्व[४] को त्रिलक्षण[५] ही अनुमोदना[६] चाहिए - मोतियों के हार की भाँति।

जैसे - जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है, ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में, अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुए समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं इसलिए, और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिए, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचयिता सूत्र अवस्थित होने से त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। इसी प्रकार जिसने नित्यवृत्ति[७] ग्रहण की है, ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्य

१. व्यतिरेक = भेद; (एक का दूसरे में) अभाव, (एक परिणाम दूसरे परिणामरूप नहीं है, इसलिए द्रव्य के प्रवाह में क्रम है)।

२. अनुस्यूति = अन्वयपूर्वक जुड़ान। [सर्व परिणाम परस्पर अन्वयपूर्वक (सादृश्यसहित) गुंथित (जुड़े) होने से, वे सब परिणाम एक प्रवाहरूप से हैं, इसलिए वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं।]

३. अतिक्रम = उल्लंघन; त्याग। ४. सत्त्व = सत्पना; (अभेदनय से) द्रव्य।

५. त्रिलक्षण = उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों लक्षणवाला; त्रिस्वरूप; त्रयात्मक।

६. अनुमोदना = आनन्द से सम्मत करना।

७. नित्यवृत्ति = नित्यस्थायित्व; नित्य अस्तित्व; सदा वर्तना।

में, अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रगट) होते हुए समस्त परिणामों में पीछे पीछे के अवसरों पर पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते हैं इसलिए, और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं इसलिए, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह अवस्थित होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ - प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है इसलिए 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश वह प्रदेश है; उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश वह परिणाम है। प्रत्येक परिणाम स्व-काल में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्वरूप से नष्ट होता है और सर्व परिणामों में एक प्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप-ध्रुव रहता है। और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समयभेद नहीं है, तीनों ही एक ही समय में हैं। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में द्रव्य, स्वभाव से ही सदा रहता है, इसलिए द्रव्य स्वयं भी, मोतियों के हार की भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है॥ ९९॥

प्रवचन नं. १०० का शेष **दिनाङ्क १० जून १९७९**

अब, यह बतलाते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने पर भी द्रव्य 'सत्' है - सत्ता है तो भी द्रव्य सत् है और उत्पाद्-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने पर भी द्रव्य सत् है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। गाथाएँ सूक्ष्म (हैं)। 'प्रवचनसार'! भगवान की दिव्यध्वनि का सार। ८८ (गाथा)।

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो।। ९९।।

जो है स्वभाव में अवस्थित, द्रव्य 'सत्' परिणाममय।
उत्पाद-व्यय-ध्रुवतासहित, परिणाम द्रव्य-स्वभावमय॥

आहा...हा...! यह सूक्ष्म विषय है, भाई! टीका! टीका है न? **यहाँ (विश्व में) स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से द्रव्य 'सत्' है।** द्रव्य अर्थात् आत्मा, द्रव्य अर्थात् परमाणु

आदि सब द्रव्य। सब ज्ञेय हैं न? **(विश्व में) स्वभाव में नित्य अवस्थित...** है। द्रव्य, स्वभाव में नित्य अवस्थित है। इस कारण से द्रव्य सत् है। **स्वभाव द्रव्य का ध्रौव्य-उत्पाद-विनाश की एकतास्वरूप परिणाम है।** आहा...हा...! वस्तु का स्वभाव उत्पाद-व्यय और ध्रुव की एकतारूप परिणाम है। एक समय में तीनों हैं। आहा...हा...! है?

तत्त्वज्ञान की खबर नहीं और सीधा धर्म हो जाए (ऐसा लोग मानते हैं)। मन्दिर के दर्शन करे और सामायिक करे... 'एकड़ा विनानां मींडा' (- एक अंक बिना के शून्य) हैं। वह तो मिथ्यात्वभाव है। अन्दर से आत्मा तत्त्व क्या है (इसकी खबर नहीं)। जो गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठता है, वह भी बन्ध का कारण है। आहा...हा...! जानने में आता है कि सत् है, यह सत्तावान है। जानने में आये और प्रसिद्धि भी ऐसे देखने में आये, परन्तु दृष्टि जहाँ द्रव्य पर करनी है, तब सत् है वह सत्ता है, ऐसा (भेद) नहीं (होता), स्वयं सत् सत्ता से नहीं है, स्वयं सत् है। आहा...हा...!

वैसे, **यहाँ (विश्व में) स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से द्रव्य 'सत्' है।** स्वभाव क्या (है)? (तो कहते हैं कि) **ध्रौव्य-उत्पाद-विनाश की एकतास्वरूप परिणाम है।** परिणाम (कहा)! यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को परिणाम कहते हैं, हाँ! उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को परिणाम कहते हैं। आहा...हा...! एकरूप चीज में तीन प्रकार हुए न? उत्पाद-व्यय और ध्रुव, परिणाम हुए - पर्याय हुई। आहा...हा...!

जैसे द्रव्य का वास्तु... (द्रव्य का वास्तु अर्थात्) 'द्रव्य का स्व-विस्तार, द्रव्य का स्व-क्षेत्र, द्रव्य का स्व-आकार, द्रव्य का स्व-दल। (वास्तु = घर, निवासस्थान, आश्रय, भूमि)।' **समग्रपने द्वारा (अखण्डता द्वारा) एक होने पर भी,...** आत्मा समग्रपने एक है। भले असंख्य प्रदेश हैं परन्तु असंख्य प्रदेश से एक है। आहा...हा...! ऐसा होने पर भी **विस्तारक्रम में प्रवर्तमान...** गुण का जो अनन्त विस्तार है, उसका लक्ष्य कराने को, **उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे प्रदेश हैं,...** आत्मा में असंख्य प्रदेश का ऐसा विस्तार है। उसमें एक प्रदेश (है, वह) अंश है। ऐसी बातें कभी (सुनी न हो)। द्रव्य का वास्तु (अर्थात्) घर समग्रपने एक है। (फिर भी) **विस्तारक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे प्रदेश हैं,...** आत्मा असंख्यप्रदेशी है, वह समग्रपने एक है परन्तु उसका एक-एक प्रदेश है - अंश है, वह क्षेत्र में भिन्न-भिन्न है। आहा...हा...!

इसी प्रकार द्रव्य की वृत्ति समग्रपने द्वारा एक होने पर भी,... क्या कहते हैं? वस्तु जो द्रव्य है, उसमें जो त्रिकाल परिणाम होते हैं, (वह) एकरूप परिणति है। जैसे विस्तार एकरूप है, उसमें एक-एक प्रदेश भिन्न हैं; वैसे परिणति-पर्याय का विस्तार एकरूप होने पर भी एक-एक परिणाम भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा है। ऐसा कैसा यह धर्म?

प्रश्न : इसमें समझना क्या?

उत्तर : इसमें समझना यह है कि द्रव्य अपने परिणाम से परिणमता है। द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप से परिणमता है। आहा...हा...! वह किसी के कारण से परिणमता है, ऐसा नहीं। आ...हा...! यहाँ तो क्रमसर-क्रमबद्ध लेंगे। क्रमबद्ध! आत्मा में यहाँ असंख्य प्रदेश समग्रपने हैं, फिर भी उसमें एक-एक प्रदेश भिन्न हैं। ऐसे अनादि-अनन्त समग्रपने परिणति है। यह परिणति अनादि-अनन्त एकरूप होने पर भी एक-एक समय के परिणाम-परिणति भिन्न हैं। आहा...हा...! ऐसी बात! व्यापारी को फुरसत नहीं मिलती (उसमें ऐसा सुनने मिले कि) सामायिक करो, प्रौषध करो, ये करो (तो) धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं है। धर्म दूसरी कोई चीज है, बापू! आहा...हा...!

द्रव्य की वृत्ति... है नीचे? (वृत्ति अर्थात्) 'वर्तना वह; होना वह; अस्तित्व। **समग्रपने द्वारा एक होने पर भी,...** त्रिकाल परिणति, **प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान...** प्रवाहक्रम! जो प्रदेश हैं, वे प्रवाहक्रम में विस्तार क्रम हैं। आत्मा असंख्य प्रदेशी है (उसमें) विस्तारक्रम ऐसे है और परिणाम जो हैं, वह प्रवाहक्रम है। उसके एक के बाद एक परिणाम होते हैं, वह प्रवाहक्रम है। प्रवाह-९३ (गाथा में) आ गया है। प्रवाहक्रम का पिण्ड और विस्तार का पिण्ड द्रव्य है। अरे...रे...! बापू! यह तो वीतराग का मार्ग (है)। Logic से बात है। भाषा चाहे कितनी आसान करें लेकिन वस्तुस्थिति हो ऐसी आती है न? आहा...हा...! क्या कहते हैं?

द्रव्य की वृत्ति समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, प्रवाहक्रम में... एक के बाद एक प्रवाहक्रम में **प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे परिणाम हैं।** आत्मा में असंख्य प्रदेश ऐसे विस्तार(रूप) हैं। उसमें एक प्रदेश है, वह भिन्न है। एक-एक-एक-एक (करके भिन्न हैं)। वैसे ही आत्मा में अनन्त गुण की जो त्रिकाली पर्यायें हैं, वह अनादि-

अनन्त परिणति का जो प्रवाहक्रम है वह समग्र(पने) एकरूप है। उसमें एक-एक समय की पर्याय भिन्न-भिन्न हैं। एक-एक समय का परिणाम प्रवाहक्रम में भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा है। है ?

जैसे विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है,... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा! (उसमें) असंख्य प्रदेश (का) जो विस्तारक्रम है, उसमें प्रदेश परस्पर भिन्न-भिन्न हैं। प्रत्येक प्रदेश दूसरे प्रदेश से भिन्न-भिन्न हैं। असंख्य प्रदेश हैं तो प्रत्येक प्रदेश दूसरे प्रदेश से भिन्न हैं। आहा...हा...! है ? **विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है,...** विस्तारक्रम ऐसा (है)। असंख्य प्रदेश में विस्तारक्रम है, उसमें एक-एक प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं। विस्तारक्रम में एक-एक प्रदेश है (वह) भिन्न-भिन्न है।

उसी प्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक है। प्रवाहक्रम में एक के बाद एक परिणाम होता है। उसमें भी परिणाम जो है, वे परस्पर भिन्न-भिन्न हैं। एक परिणाम (का) दूसरे परिणाम से एकत्व नहीं होता। आहा...हा...! यह तो तत्त्व कैसा है ? - (उसका ज्ञान कराते हैं)। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने जैसा देखा, वैसा तुझे समझना पड़ेगा। यह समझकर फिर अभेद पर दृष्टि देना। पहले समझे, तत्त्व ही क्या है ? - वह समझे नहीं तो अभेद पर दृष्टि कहाँ से करेगा ? आहा...हा...! भेद है, ज्ञान करने में भेद है; असंख्य प्रदेश है परन्तु एक-एक प्रदेश दूसरे प्रदेश से भिन्न-भिन्न हैं। वैसे ही आत्मा में प्रवाहक्रम में अनन्त परिणाम हैं फिर भी एक-एक परिणाम दूसरे परिणाम से भिन्न-भिन्न हैं। आहा...हा...! समझ में आया ?

जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न... आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। असंख्य प्रदेश (हैं), उसमें जो-जो प्रदेश अपने स्थान में हैं, वह स्व-रूप से उत्पन्न (है)। (अर्थात्) अन्दर लक्ष्य में आया कि असंख्य में से यह एक प्रदेश है **और पूर्व-रूप से विनष्ट...** (अर्थात्) पूर्व के प्रदेश की अपेक्षा से नहीं (है)। इस अपेक्षा से अभाव(रूप)-विनष्टरूप है। वर्तमान प्रदेश का लक्ष्य करने से - असंख्य प्रदेश में एक प्रदेश का लक्ष्य करने से वह उत्पन्न कहने में आया और पूर्व का प्रदेश उसमें नहीं है - दूसरा प्रदेश उसमें नहीं (है) तो इस अपेक्षा से विनष्ट कहने में आया। आ...हा...! है ?

तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से... आहा...हा...! (अनुस्यूति अर्थात्) अन्वयपूर्वक जुड़ान। (ऐसे अनुस्यूति से रचित) **एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं,...** आ...हा...हा...! किसमें कहा? पहले प्रदेश की बात कही। आत्मा कौन है? - इसकी खबर नहीं। आत्मा, इस परमाणु-शरीर से तो बिलकुल भिन्न है। (उसमें) असंख्य प्रदेश है। समग्र असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश दूसरे प्रदेश से भिन्न-भिन्न है। वैसे ही अनादि-अनन्त क्रम से परिणाम होते हैं, (उसे) समग्र प्रवाहक्रम से एक कहा, परन्तु उसमें एक-एक समय का परिणाम भिन्न-भिन्न है। आहा...हा...! ऐसा द्रव्य का स्वभाव! (इसकी) खबर नहीं। **उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं,...** प्रदेश-क्षेत्र की अपेक्षा (कही)।

उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न... आहा...हा...! परिणाम भी जो एक समय में उत्पन्न होता है, उस अपेक्षा से उसे उत्पन्न कहने में आता है। आ...हा...! है? **वे परिणाम अपने अवसर में...** आ...हा...हा...! अपने काल-अवसर में वह परिणाम उत्पन्न होता है, आगे-पीछे नहीं। क्रमबद्ध! आहा...हा...! अपने अवसर में जब परिणाम होता है, तब वह परिणाम त्रिकाल की अपेक्षा से भिन्न है। अनादि-अनन्त परिणाम प्रवाह है, उसमें एक परिणाम अपने अवसर में हुआ, वह दूसरे परिणाम से भिन्न है। आहा...हा...! क्रमबद्ध है। एक के बाद एक क्रमबद्ध परिणाम होते हैं। लोग अभी मानते नहीं कि क्रमबद्ध हो जाए तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा? एक के बाद एक परिणाम होता है तो फिर (पुरुषार्थ कहाँ रहा)? परन्तु क्रमबद्ध का निर्णय करने में ही अपने स्वरूप की ओर दृष्टि होती है। यह पुरुषार्थ है। आहा...हा...!

यह तो भगवान की वाणी है-दिव्यध्वनि है! त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि (है)। प्रभु! तेरी चीज क्या है? विस्तार क्या है? प्रवाह क्या है? विस्तार में भी एक-एक प्रदेश भिन्न हैं और प्रवाहक्रम में भी एक-एक परिणाम भिन्न हैं। एक-एक प्रदेश पर नजर करने से (वह प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से) उत्पन्न (है), दूसरे प्रदेश की अपेक्षा से विनष्ट है और सारा प्रदेश एकरूप देखने से ध्रुव है-है... है... है... प्रदेश है... है... है... उत्पन्न और विनष्ट नहीं। ध्रुव में प्रदेश है... प्रदेश है... प्रदेश है... प्रदेश है... बस!

इसी प्रकार प्रवाहक्रम में जो परिणाम होता है, अनादि-अनन्त क्रमसर परिणाम होते हैं, अपने-अपने अवसर में होता है, वह परिणाम दूसरे परिणाम से भिन्न है। आहा...हा...! सन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने तो यह बात कही है, भाई! जैसा (वस्तु का स्वरूप) जाने बिना तुझे आत्मा का ज्ञान हो - धर्म हो, ऐसा होता नहीं। आहा...हा...! आत्मा क्या है? विस्तारक्रम में कैसा है? प्रवाहक्रम में कैसा है? विस्तार - ऐसा (तिरछा) है। विस्तार-चौड़ाई इतनी, असंख्य प्रदेश में विस्तार (है), वह विस्तार (है) और परिणाम एक के बाद एक होते हैं, वह प्रवाहक्रम। ये परिणाम अनन्त हैं। विस्तारक्रम में भी एक-एक प्रदेश दूसरे प्रदेश से भिन्न हैं। वैसे ही प्रवाहक्रम में अनन्त परिणाम होते हैं, वह एक-एक परिणाम दूसरे परिणाम से भिन्न है। आहा...हा...!

परिणाम में भी... **स्व-रूप से उत्पन्न...** क्या कहते हैं? स्व अवसर में वह परिणाम उत्पन्न कहने में आया। आ...हा...! **और पूर्वरूप से विनष्ट होने से...** पूर्व के परिणाम की अपेक्षा से वर्तमान परिणाम विनष्ट-व्यय कहने में आता है। अपनी अपेक्षा से उत्पन्न कहने में आता है, पर की अपेक्षा से व्यय कहने में आता है। आहा...हा...! **तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा...** परिणाम... परिणाम... परिणाम... परिणाम... परिणाम... परिणाम... परिणाम... ऐसे अनादि-अनन्त एकरूप देखो तो **अनुत्पन्न-अविनष्ट...** है। अर्थात् परिणाम है... है... है... है... है... है... ऐसे।

आत्मा का असंख्य प्रदेश है, वह विस्तारक्रम (है)। (उसमें) एक-एक प्रदेश है, वह दूसरे प्रदेश से भिन्न है। एक प्रदेश पर नजर पड़े तो (उसे) उत्पन्न कहने में आया है, दूसरे प्रदेश की अपेक्षा से विनष्ट कहने में आया है और प्रदेश है... है... है... है... है... छे... छे... छे... छे... छे... उसका नाम ध्रुव। आ...हा...! (ऐसा) कभी सुना नहीं हो, अनन्त काल से जगत् की मजदूरी करके मर गया। वीतराग तत्त्व क्या कहते हैं, उस तत्त्व की ही खबर नहीं, प्रतीति तो बाद में (होगी)। आहा...हा...!

यह आत्मा है, असंख्य प्रदेशी है और अनादि-अनन्त परिणामवाला है। दो बात (हुई)। अब, उसमें असंख्य प्रदेश में एक प्रदेश है, वह दूसरे प्रदेश से नहीं। जब एक प्रदेश पर लक्ष्य हुआ तो उत्पन्न कहने में आता है, दूसरे प्रदेश की अपेक्षा उसे विनष्ट कहने

में आता है और है... है... है... है... है... है... इस अपेक्षा से ध्रुव कहने में आता है। आहा...हा... ! आज सूक्ष्म आया है। आहा...हा... !

ऐसे आत्मा में अनादि-अनन्त एक के बाद एक, एक के बाद परिणाम होते हैं। इस प्रवाहक्रम को समग्रपने देखो तो एक के बाद एक होते हैं, परन्तु एक पर्याय को देखो तो जिस पर्याय पर लक्ष्य गया, उस (पर्याय को) उत्पन्न कहने में आता है और उसमें पूर्व की पर्याय नहीं (है) तो उस अपेक्षा से विनष्ट कहने में आता है और पर्याय है... है... है... है... है... छे... छे... छे... छे... छे... उस ध्रुव कहने में आता है। ऐसी बात है, भाई! यह तो समझ में आये ऐसा है। बाप-दादा ने कभी सुना नहीं होगा। यह चीज श्वेताम्बर, स्थानकवासी में तो है ही नहीं। दिगम्बर में है तो (उसमें) चलता नहीं। क्रियाकाण्ड करो, प्रतिमा लो, मुनिपना लो, कपड़े छोड़ो... (यही चलता है)। आ...हा... ! वास्तविक तत्त्व क्या है? भगवान त्रिलोकनाथ क्या कहते हैं? और इस तत्त्व का दो रूप क्या है? (इसका कुछ भान नहीं)।

तत्त्व एक है, उसमें असंख्य प्रदेश उसका विस्तारक्षेत्र है और उसमें त्रिकाली परिणाम होते हैं, वह प्रवाहक्रम है। प्रवाहक्रम में और विस्तारक्रम में एक प्रदेश पर नजर करो तो (उसे) उत्पन्न कहने में आता है। पूर्व के प्रदेश की अपेक्षा से उस प्रदेश को विनष्ट कहने में आता है और वह प्रदेश है... है... है... है... तो ध्रुव कहने में आता है। आहा...हा... ! समझ में आता है? ऐसा सूक्ष्म है। 'प्रवचनसार'! भगवान की दिव्यध्वनि! त्रिलोकनाथ प्रभु विराजते हैं।

प्रश्न : दिव्यध्वनि में ऐसा कठिन आता है?

समाधान : कठिन है नहीं। उसे अभ्यास नहीं (है, इसलिए कठिन लगता है)। वहाँ तो ॐकार ध्वनि छूटती है। 'ॐ ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे' आहा...हा... ! क्या हो? बापू! वर्तमान में तो क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति में (लोगों को) बेचारों को मार डाला है। वास्तविक तत्त्व क्या है? (इसकी कुछ खबर नहीं)।

चौड़ाई-विस्तार क्या है? और ऊर्ध्व क्या है? एक के बाद एक पर्याय कैसी है?

आहा...हा... ! यह वस्तु का स्वरूप है। आहा...हा... ! देखो ! यह क्षेत्र है, ये (दूसरा) क्षेत्र नहीं और (दूसरा) क्षेत्र है, वह (पहला) नहीं। (आत्मा) असंख्य प्रदेशी है। (इस माला में) १०८ (मनके) हैं तो इस अपेक्षा से उत्पन्न, पूर्व की अपेक्षा से व्यय, है अपेक्षा से ध्रुव। अब परिणाम (कैसे हैं) ? जिस समय परिणाम हुआ, जिस समय में यह मोती जहाँ है, वहाँ है। जहाँ है वहाँ है। जिस समय जो परिणाम आत्मा में हुआ, (उस) समय में वहाँ है। वह है उसे देखने से उसे उत्पन्न कहने में आता है, पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट कहने में आता है और त्रिकाल में है... है... है... है... तो पर्याय को ध्रुव कहने में आता है। ऐसा है।

यह जो एक मोती है, वह दूसरे मोती में नहीं है। वैसे ही आत्मा के असंख्य प्रदेश में एक प्रदेश में दूसरा प्रदेश नहीं है। और आत्मा में एक परिणाम जो है (वह उसी स्थान में है)। मोती जिस स्थान में जहाँ है वहाँ है। यहाँ है... यहाँ है... यहाँ है... जहाँ है वहाँ है। वैसे आत्मा में जिस-जिस समय में-अवसर में परिणाम होते हैं वे वहाँ-वहाँ हैं। आहा...हा... ! क्रमबद्ध में उस समय का जो परिणाम हुआ वह वहाँ है। उस परिणाम पर लक्ष्य करने से उस परिणाम को उत्पन्न कहने में आया है; दूसरा परिणाम उसमें नहीं है तो विनष्ट कहने में आया है और वह परिणाम है... है... है... उसे ध्रुव कहने में आता है। एक पर्याय को तीन बोल कहने में आता है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न... आ...हा...हा... ! आत्मा में, परमाणु में – छहों द्रव्य (में) अपने-अपने अवसर में परिणाम उत्पन्न होते हैं; आगे-पीछे नहीं, (उसे) क्रमबद्ध कहते हैं। आहा...हा... ! क्रमबद्ध का बड़ा विरोध किया है। (एक बड़े विद्वान् कहते हैं कि) क्रमबद्ध है लेकिन एक (परिणाम) के बाद यही परिणाम है, ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि जो परिणाम जिस समय में है, (उसके बाद) जो होनेवाला है, वही होगा। क्रमबद्ध परिणाम है। बड़ी चर्चा हुई थी। (संवत्) २०१३ की साल ! (वे कहते थे कि) क्रमबद्ध है परन्तु इसके बाद यही परिणाम आयेगा, ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि इसके बाद यही होगा। अपने-अपने अवसर में परिणाम होगा, आगे-पीछे नहीं। आहा...हा... ! बड़ी गड़बड़ है। दिगम्बरधर्म के नाम से भी बड़ी गड़बड़ (चल रही है)। आहा...हा... ! श्वेताम्बर और स्थानकवासी में तो यह बात है ही नहीं। वहाँ तो

कहते हैं, यह करो... यह करो... क्रियाकाण्ड करके भर जाओ (और) चौरासी (लाख योनियों के) अवतार (में) जाओ!

यहाँ तो परमात्मा द्रव्य का विस्तार और द्रव्य का प्रवाहक्रम-परिणाम - दो बात कहते हैं। परिणाम क्रम से होते हैं, उसका पिण्ड द्रव्य है और असंख्य आदि प्रदेश जितने हैं, आकाश के अनन्त (प्रदेश हैं), वह असंख्य प्रदेशी वस्तु एक ही चीज है। उसमें भी यहाँ तो कहते हैं कि असंख्य (प्रदेश) सिद्ध करने हो तो कैसे सिद्ध हों? (तो कहते हैं कि) एक प्रदेश पर नजर करने से उसे उत्पन्न कहने में आया है। नया उत्पन्न हुआ ऐसे नहीं। लक्ष्य में एक प्रदेश लिया तो (उसे) उत्पन्न कहने में आया है। दूसरे प्रदेश की अपेक्षा विनष्ट कहने में आया है और है... है... है... है... है... उसे ध्रुव कहने में आया है। बराबर है?

इसी प्रकार अपने-अपने अवसर में जो अनन्त गुण के परिणाम होते हैं वे परिणाम होते हैं वे परिणाम अपने-अपने अवसर में होते हैं। दूसरे समय में भी अपने अवसर में होता है, तीसरे में अपने अवसर में होता है; तो अपने-अपने (अवसर में) परिणाम उत्पन्न होता है, उसे देखना हो तो 'है' पर लक्ष्य गया तो उसे उत्पन्न कहने में आया है; पूर्व की पर्याय से उसे व्यय कहने में आया है (और) है... है... है... छे... छे... छे... (इस अपेक्षा) उसे ध्रुव कहने में आया है। प्रत्येक पर्याय को ध्रुव कहने में आयी है! आ...हा...हा...! समझ में आता है?

यह समझकर करना क्या? कि यह चीज ऐसी है - ऐसा जानकर अन्तर में अभेद (स्वरूप) पर दृष्टि ले जाना। असंख्य प्रदेश का भेद नहीं और अनन्त पर्याय-परिणाम का भेद भी नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात (है)। सम्प्रदाय में कहीं सुना नहीं हो। क्रियाकाण्ड (किये)। आहा...हा...! जैन दिगम्बर साधु होकर नववीं ग्रैवेयक गया। वैसी क्रिया तो अभी है भी नहीं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रैवेयक उपजायो' - ऐसी क्रिया तो अभी है ही नहीं। (वर्तमान में) तो साधु नाम धराते हैं और उसके लिये बनाये चौके में (आहार लेते हैं)। उसके लिये चौके में सब आहार-पानी बनाते हैं और लेता है। अट्ठाईस मूलगुण का ठिकाना नहीं। उसके लिये चौका बनाते हैं, वहाँ गृहस्थ जाये (और) जितना उसे

चाहिये उतना बनाये। एक पानी के बिन्दु में असंख्य जीव! आ...हा...हा... ! सब हिंसा! यह तो व्यवहार आचरण भी सच्चा नहीं (है)। निश्चय दृष्टि तो झूठी है, (परन्तु आचरण भी सच्चा नहीं)। आहा...हा... ! उसमें धर्म मानते हैं तो दृष्टि मिथ्यात्व है।

धर्म तो प्रभु! आत्मा असंख्य प्रदेशी है - ऐसा भेद भी लक्ष्य में से छोड़ देना और आत्मा में अनन्त परिणाम क्रमसर होते हैं, इस क्रमसर (परिणाम की) दृष्टि भी छोड़ देना। आ...हा...हा... ! और दृष्टि, अन्दर अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु है, अभेद है, उस पर दृष्टि करने से धर्म की पहली शुरुआत-सम्यग्दर्शन की प्रथम शुरुआत होती है। इसके बिना सब बिना अंक के शून्य हैं। शून्य... शून्य! आहा...हा... ! कठिन पड़े। पञ्च महाव्रत के परिणाम करे, परीषह सहन करे, नंगे पैर चले परन्तु अन्दर में 'राग की क्रिया मेरी है और उससे मेरा कल्याण होगा' - (ऐसी मान्यता है) तो वह मिथ्यादृष्टिपना है। वह जैन ही नहीं है। आहा...हा... ! दिगम्बर धर्म कोई पक्ष नहीं, पन्थ नहीं, सम्प्रदाय नहीं, वस्तु का स्वरूप है। यहाँ यह कहते हैं (कि) वस्तु का ऐसा स्वरूप है।

परमाणु एक प्रदेशी, आत्मा असंख्य प्रदेशी, कालाणु एक प्रदेशी, धर्मास्तिकाय असंख्य प्रदेशी, अधर्मास्तिकाय असंख्य प्रदेशी, आकाश अनन्त प्रदेशी है। प्रत्येक पदार्थ में उसके जो प्रदेश हैं, (उन्हें) एकरूप देखो तो समग्र एक है परन्तु एक प्रदेश पर लक्ष्य करने से वह प्रदेश उत्पन्न कहने में आता है। नया उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। पूर्व की अपेक्षा से व्यय (कहने में आता है) और है... है... है... की अपेक्षा से ध्रुव (कहने में आता है)। ऐसे आत्मा में क्रमसर एक के बाद एक परिणाम होते हैं। आहा...हा... !

माला में देखो! एक के बाद एक मोती है या आगे-पीछे है? जिस स्थान में है वहाँ है। जैसे आत्मा में जिस अवसर में जो परिणाम है, उसी अवसर में (वह) परिणाम है। आहा...हा... ! ऐसी व्याख्या! ये परिणाम अपने-अपने अवसर में होते हैं। यह शरीर है, देखो! जैसे हिलती है वह पर्याय है। ये पर्याय तो उस समय में होनेवाली है ऐसी होती है; आत्मा में नहीं और पूर्व की पर्याय से वह पर्याय होती है, ऐसा नहीं। आहा...हा... ! ऐसी पर्याय होती है, वह अपने से (होती) है। इस पर्याय को देखने से उत्पन्न है, पूर्व की पर्याय का अभाव है तो विनष्ट है और पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... है इस अपेक्षा

से ध्रुव है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म (है)। मार्ग बहुत सूक्ष्म है, बापू! वर्तमान में तो सब गड़बड़ कर दी है। मूल वस्तु के भान बिना प्रवृत्ति के क्रियाकाण्ड में (लोगों को लगा दिया)। वह भी साधारण क्रियाकाण्ड है। भले जंगल में अकेला रहे, वनवास में रहो, पञ्च महाव्रत पालो, लेकिन सम्यग्दर्शन के बिना सब बिना अंक के शून्य (जैसा) है। वह कोई भव का अभाव करने की चीज नहीं।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि असंख्य प्रदेशी है और अनादि-अनन्त पर्याय भी उसके प्रवाहक्रम में (है)। प्रवाहक्रम में, हाँ! विस्तारक्रम ऐसे (चौड़ा है)। एक के बाद एक प्रदेश (है)। प्रवाहक्रम-एक के बाद एक पर्याय। जहाँ जिस समय (जो) पर्याय होगी वहाँ वह होगी और असंख्य प्रदेश में भी जिस स्थान में जो प्रदेश है वह (प्रदेश) वहीं होगा। आ...हा...हा...! जब-जब पर्याय अपने अवसर में होगी तो आत्मा को करना क्या? (पर्याय) अपने अवसर में होगी - ऐसा जब निर्णय करते हैं तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है कि यह परिणाम द्रव्य में से आया। द्रव्य ज्ञायक चिदानन्द प्रभु है - ऐसी दृष्टि जाने से (पर्याय अपने अवसर में होती है ऐसा निर्णय होता है)।

कल पर्याय लक्ष्य में आ गयी। द्रव्य है, वह पर्याय में जानने में आता है परन्तु पर्याय में द्रव्य आता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? अपने-अपने अवसर में उसकी दृष्टि करने से पूर्णानन्द का नाथ प्रभु चैतन्य भगवान आत्मराम! उस पर-पूर्ण स्वरूप पर दृष्टि करने से वर्तमान परिणाम में द्रव्य का ज्ञान, श्रद्धा पूर्ण आता है, फिर भी उस पर्याय में द्रव्य नहीं आता। क्या कहा? अपनी पर्याय में, (सभी) पर्याय (अपने) अवसर में होती है, ऐसा जब निर्णय करते हैं कि किसका परिणाम आता है? कि द्रव्य का। तो यह द्रव्य क्या है? चैतन्य प्रभु भगवान पूर्णानन्द अभेद है, उसकी दृष्टि करने से क्रमसर परिणाम का भी ज्ञान होता है और विस्तारक्रम जो प्रदेश है, उसका भी ज्ञान होता है, परन्तु दर्शन (-दृष्टि) अभेद करे तब। अभेद में ये गुणभेद भी नहीं है। राग तो नहीं, पर्यायभेद तो नहीं, (परन्तु गुणभेद भी नहीं) है। आ...हा...हा...! ऐसी बात है।

इस लू को देखो न! लू चलती है तो लोग बेचारे कितने घबरा जाते हैं। लू कहते हैं न? गरम... गरम... गरम (हवा)। इस लू से तो अनन्तगुनी लू पहली नरक में है। आहा...हा...!

श्रोता : उसका शरीर ज्यादा मजबूत होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर ऐसा है कि नाश (ही) न हो ? जब तक आयुष्य है तब तक रहेगा। आहा...हा... ! ये इनका देखो न, (उनकी माँ को) बहुत ऊल्टी हुई तो आँत में दरार हो गई, इसमें देह छूट गयी। यह (शरीर) तो जड़ है। वह तो उस समय होनेवाला था। जड़ की अवस्था उस समय आनेवाली थी। आ...हा...हा... ! वैसे ही आत्मा में जिस समय (ऐसा होता है कि) 'अरे ! मुझे ऐसा हुआ', ऐसा परिणाम भी उस समय आनेवाला था। आहा...हा... ! निश्चित ही है, आगे-पीछे कभी होता ही नहीं। कठिन बात है, भाई !

(सारे) हिन्दुस्तान में यह बात कहीं नहीं थी। क्रमबद्ध ! जिस समय जो (पर्याय) होनेवाली है, वह उस समय होगी - यह बात हिन्दुस्तान में नहीं थी। (बड़े विद्वानों के) पास नहीं थी। यह बात ही नहीं थी। आहा...हा... ! जिस समय परमाणु की और आत्मा की (जो) पर्याय होनेवाली है, वह होगी; आगे-पीछे नहीं। परन्तु उसकी दृष्टि कहाँ है ? पर्याय पर दृष्टि नहीं। दृष्टि (तो), जिसमें से क्रमसर पर्याय होती है (ऐसे) द्रव्य (पर हैं)। आहा...हा... !

'समयसार' में 'सर्वविशुद्ध अधिकार' में लिया है न ? क्रमनियमित ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रम से और नियमित (अर्थात्) जो होनेवाली है वह होगी, परन्तु उसका तात्पर्य क्या ? अकर्तापना ! 'सर्वविशुद्ध अधिकार' (में) पाठ है। अकर्तापना में क्रमबद्ध का निर्णय है। क्रमबद्धपर्याय (का निर्णय करनेवाले की) दृष्टि वहाँ नहीं (है)। 'मैं तो ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ, राग का भी कर्ता नहीं और पर्याय का भी कर्ता नहीं' (इस प्रकार स्वभाव पर दृष्टि होती है)। (पर्याय) क्रमसर होती है उसमें करना क्या ? आहा...हा... ! बहुत कठिन बात है, भाई ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ का धर्म बहुत सूक्ष्म (है)।

वर्तमान में तो सब गड़बड़ हो गई है, इसलिए 'सोनगढ़ का एकान्त है' ऐसे विरोध करते हैं-पुकार करते हैं। करो, बापू ! जैसा है वैसा है। 'सोनगढ़वाले व्यवहार से निश्चय कहते नहीं, निमित्त से पर में (कार्य) होता है, (ऐसा) कहते नहीं...' बात सच है। अपने समय में होती है, उसमें निमित्त से हुआ (ऐसा) कहाँ आया ? आहा...हा... ! व्यवहार - दया, दान राग आदि तो बन्ध का कारण है। उससे सम्यग्दर्शन होता है ? आहा...हा... !

राग से हटाकर – रुचि हटाकर, पर्याय की भी रुचि छोड़कर... आ...हा...हा...! जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, उसकी भी रुचि छोड़कर... आ...हा...हा...! ज्ञायक प्रभु अन्दर भगवान पूर्णानन्द, अनन्त गुण का सागर (है)। आ...हा...हा...! अनन्त गुणवाला भी नहीं। अनन्त गुणसागर भगवान! उस पर दृष्टि जाने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। भगवान ऐसा है, आत्मा जैसा है – ऐसी प्रतीति में उसकी दृष्टि होने से (सम्यग्दर्शन) होता है। उसका नाम सम्यक्-सत्य दर्शन (है)। जैसा प्रभु आत्मा है, सत्य त्रिकाली आनन्द (स्वरूप है), ऐसी प्रतीति – दर्शन उस ओर झुकने से होता है। आहा...हा...! लाख क्रियाकाण्ड करे और करोड़ करे... 'लाख बात की बात...' 'छहढाला' में आता नहीं? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत दंद-फंद निज आतम उर ध्यावो' 'छहढाला' में आता है। परन्तु (लोगों को) विचार नहीं, वाँचन नहीं। अरे...! जगत् चला जा रहा है। मौका चला जा रहा है। देह की स्थिति पूरी होने का काल आने पर (देह) छूट जायेगी। बापू! तूने (आत्महित) नहीं किया होगा तो भटकना नहीं मिटेगा। आ...हा...! यहाँ सब पैसेवाले-करोड़ोपति, अरबोंपति (हों लेकिन) धर्म का पता नहीं। वे यहाँ से मरकर तिर्यञ्च-पशु में जाय। आहा...हा...! यहाँ बाहर में इतने प्रसिद्ध हो... अरबों रुपये (हों)! (ऐसे) दो व्यक्तियों को तो देखा है। (एक के पास) पचास करोड़! 'मुम्बई' में अभी आये थे। पचास करोड़! और (दूसरे के पास) चालीस करोड़! यहाँ बहुत बार आये हैं। 'कलकत्ता' आये थे, उनके गाँव में गये थे, यहाँ आये थे, 'मुम्बई' आये थे। चालीस करोड़! और तीसरे एक अपने बनिये हैं। 'गोवा' में! अभी दो-तीन साल पहले स्वर्गवास हुआ। दो अरब चालीस करोड़! दो अरब चालीस करोड़! अभी उनका लड़का 'मुम्बई' में दर्शन करने आया था। परन्तु (उससे) क्या? धूल में मर गये, मार डाला! आहा...हा...! वह तो धूल है-जड़ है। जड़ मेरी चीज है? आत्मा की चीज है? आत्मा की मानना तो मिथ्या भ्रम, अज्ञान है। यहाँ तो पर्यायदृष्टि में रहना भी मिथ्यादृष्टि है तो फिर पर मेरा मानना – पैसा मेरा, स्त्री मेरी, कुटुम्ब मेरा (मानना तो घोर मिथ्यात्व है)। अरे...! मेरा है (कहता है लेकिन) वह चीज तेरे में कहाँ है? तेरे में है नहीं, उसे मेरा मानना!! आहा...हा...! यह मेरा पुत्र है-यह मेरा लड़का है, यह लड़के की बहू है। कौन लड़का? वह तो परद्रव्य है। आ...हा...हा...! आत्मा को लड़के कैसे? आहा...हा...!

यहाँ तो एक समय की पर्याय पर भी दृष्टि नहीं। एक समय की पर्याय जितना आत्मा नहीं। आ...हा...हा...! और भगवान सत्-द्रव्य और सत्ता गुण - ऐसा भेद भी अन्दर नजर में नहीं। आ...हा...हा...! ऐसी बात है! दुनिया से अलग प्रकार की है। आहा...हा...! अन्दर देह से भिन्न, कर्म से भिन्न, प्रभु! दया, दान, भक्ति के राग से भी प्रभु तो अन्दर भिन्न है। एक समय की पर्याय से भी भिन्न है। आ...हा...हा...! अवसर पर पर्याय होगी - ऐसा निर्णय करनेवाले (की) नजर ज्ञाता-दृष्टा (स्वभाव) पर जायेगी और अकर्ता हो जायेगा। राग और पर्याय का भी अकर्ता हो जायेगा। आहा...हा...! इसे समझने का सार यह है। परमात्मा त्रिलोकनाथ (ने) ज्ञान में जैसा द्रव्य देखा, वैसा कहा। ऐसी बात सर्वज्ञ परमेश्वर के अलावा कहीं नहीं है। आहा...हा...! जिसके सम्प्रदाय में है, उसे खबर नहीं, तो दूसरे सम्प्रदाय में तो यह बात है ही नहीं। श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैन है, उसमें भी यह बात नहीं है। आहा...हा...! कठिन बात है। दिगम्बर सम्प्रदाय कोई पन्थ नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है।

भगवान आत्मा! या एक-एक परमाणु लो, परमाणु में भी एक क्षेत्र (का) प्रदेश है और उसकी पर्याय अनादि-अनन्त होती है (वह) अवसर-अवसर पर उसके समय में पर्याय होती है, परन्तु वह तो ज्ञान करने के लिये है। आहा...हा...! अपने आत्मा में असंख्य प्रदेशी क्षेत्र (है), प्रभु! अपने प्रदेश है, उसमें भी एक प्रदेश दूसरे प्रदेश में नहीं, इस अपेक्षा से असंख्य प्रदेश सिद्ध होते हैं और पर्याय एक के बाद एक होती है तो एक पर्याय में दूसरी (पर्याय) नहीं (है), तब अनन्ती पर्याय सिद्ध होती हैं। ये अनन्ती पर्याय और असंख्य प्रदेश सिद्ध करने से दृष्टि द्रव्य पर जाती है। आ...हा...हा...! समझ में आया? कठिन काम है, भाई! ९७, ९८, ९९ ये सब गाथा (सूक्ष्म हैं)। आ...हा...!

अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं। क्या कहा? प्रत्येक द्रव्य में जो समय-समय पर परिणाम होता है ऐसा अनादि-अनन्त (प्रवाहक्रम है)। उसमें एक-एक पर्याय पर लक्ष्य करने से उत्पन्न (कहा जाता है), दूसरी पर्याय की अपेक्षा से व्यय और 'है' की अपेक्षा से ध्रुव (कहा

जाता है)। ऐसे अनादि-अनन्त पर्याय (के) प्रवाहक्रम का निर्णय करने से ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु! उस पर दृष्टि जानी चाहिए। तब उसका निर्णय सच्चा होता है।

विशेष कहेंगे...

प्रवचन नं. १०१ **दिनाङ्क ११ जून १९७९**

प्रवचनसार, ९९ गाथा! दूसरा पैराग्राफ फिर से लेते हैं। **जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न...** प्रत्येक पदार्थ (कि) जिसे बहुत प्रदेश हैं - आत्मा में असंख्य, आकाश में अनन्त, धर्मास्तिकाय में असंख्य, अधर्मास्तिकाय में असंख्य, **वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न...** उत्पन्न अर्थात् (वहाँ) लक्ष्य करने पर उस स्व-रूप से है **और पूर्वरूप से विनष्ट...** वे पूर्व से अभावरूप हैं। दूसरे जो प्रदेश हैं, उनसे यह प्रदेश अभावरूप है। थोड़ा सूक्ष्म आयेगा, अभी अधिक सूक्ष्म आयेगा। **तथा सर्वत्र परस्पर अनन्त अनुस्यूति से रचित...** (अर्थात्) है... है... है... है... ऐसे आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं। पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट कहा, स्वयं की अपेक्षा से उत्पन्न कहा और धारावाही है... है... है... है... (वह) उत्पन्न और विनष्ट भी नहीं (ऐसा) ध्रुव है... है... है... ठीक गाथा आयी है। आहा...हा...!

क्या कहते हैं? यहाँ तो हम आत्मा में लेते हैं। आत्मा असंख्य प्रदेशी है। जिस प्रदेश पर लक्ष्य है, उस प्रदेश को पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट कहते हैं। कारण कि पूर्व प्रदेश इसमें नहीं हैं, दूसरा प्रदेश इसमें नहीं है और अपनी अपेक्षा से इसे उत्पन्न कहते हैं परन्तु धारावाही है... है... है की अपेक्षा है उत्पन्न और विनष्ट नहीं है।

प्रश्न : भाई आये हैं तो पहले से लें तो?

समाधान : यह पहले से ही लिया है न! यहाँ से यह पहले से है। यह कल लिया था, फिर से लेते हैं। आहा...हा...!

जैसे यह असंख्यप्रदेशी प्रभु है, (उसके असंख्य प्रदेश को) सिद्ध करके फिर प्रवाहक्रम सिद्ध करना है। सिद्ध तो प्रवाहक्रम करना है, जिस समय जो पर्याय होती है, उसी समय क्रमबद्ध होती है। क्रमबद्ध का चलता है। (एक भाई) आये थे, वे कहते थे

कि वहाँ क्रमबद्ध का चलता है। अजमेर में अभी शिक्षण-शिविर है न! लोगों को कठिन (पड़ता है) लोगों को जहाँ हो वहाँ करूँ... करूँ... (का अभिमान हो गया है) वह फिर आयेगा, पर्याय की (बात आयेगी) तब कहेंगे।

प्रदेश है, वह अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न, पर-रूप से विनष्ट (और) सर्वत्र है... है... (ऐसी) **परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक है...** आहा...हा...! पूर्व की अपेक्षा से व्यय, स्वयं की अपेक्षा से उत्पन्न और है... है... अपेक्षा से ध्रुव। प्रत्येक प्रदेश को ऐसे तीन (पहलू) लागू करते हैं। (ऐसा) कहते हैं, आहा...हा...! ऐसी बातें! अभी इससे थोड़ा सूक्ष्म आयेगा। यह तो यहाँ से लिया है।

उसी प्रकार वे परिणाम... इसी प्रकार इस जीव में और जड़ में जिस समय जो परिणाम होता है, 'वे परिणाम' हैं न? बहुवचन है न? **वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न...** उस-उस समय में जड़ और चैतन्य की जो परिणति-पर्याय होनी है, इसलिए उसे उत्पन्न कहते हैं। आहा...हा...! है? **अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न...** आहा...हा...! (ऐसा मानने के बदले) उसकी जगह यह सब मन्दिर बनाते हैं, आगम मन्दिर बनाते हैं, पुस्तक बनाते हैं (ऐसा मानते है)।

श्रोता : अपने बन गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से बन गया है। (किसी के दूसरे के) कारण से नहीं बना है। आहा...हा...! इस मकान की (मन्दिर की) जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होने की थी, उसे पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट कहते हैं, उत्पन्न की अपेक्षा से उत्पन्न कहते हैं और धारावाही परिणाम है... है... है... है...है... है... (इस अपेक्षा से ध्रुव कहते हैं)। (इस प्रकार) एक ही परिणाम को उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों लागू पड़ते हैं। आहा...हा...!

प्रश्न : इसमें हमें क्या लाभ है?

समाधान : यह कहना है कि यदि इसका निर्णय करे तो उसकी दृष्टि पर्याय और राग के अकर्तापन पर जाती है और अकर्तापन पर जाये तो ज्ञातादृष्टा होता है तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहा...हा...! ऐसी सूक्ष्म बातें! सम्प्रदाय में तो कहीं है ही नहीं।

दिगम्बर सम्प्रदाय में है नहीं। कहाँ है ? यह सब इसके सेठिया रहे, इन्होंने कहाँ कभी सुना था ? आहा...हा... ! भाई ! वस्तु की स्थिति ऐसी है।

किसी को ऐसा लगता है कि स्व अवसर में परिणाम होते हैं, तब होंगे - इसमें हमें क्या ? परन्तु यह अवसर में परिणाम होते हैं, इस परिणाम को तीन बात लागू पड़ती है। पूर्व की अपेक्षा से उसका विनष्टपना-अभाव; अपनी अपेक्षा से उत्पन्न (और) है... है... है... वह ध्रुव - जिसकी ऐसी दृष्टि होती है, वह आत्मा के प्रति जाता है कि आत्मा ज्ञातादृष्टा है, कर्ता नहीं। यह निर्मलपर्याय होती है, उसका भी कर्ता नहीं है। वहाँ वह (निर्मल पर्याय) होनेवाली है, वह हुई है। आहा...हा... ! ऐसी बात है। धीमे से (समझना)। अभी अब इससे सूक्ष्म (बात) आयेगी। जो बात चलती है, उससे भी सूक्ष्म अब आयेगी।

प्रत्येक परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न... परिणाम, हाँ! **पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने के द्वारा...** एक प्रवाह - है... है... है... है... है... आहा...हा... ! अरे... ! लोग पढ़ते नहीं, विचार नहीं करते, बापू ! क्या है ? भाई ! आहा...हा... ! इसलिए **अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं...** यहाँ तक तो आया था। अब जरा सूक्ष्म है, ध्यान रखो तो पकड़ में आयेगा।

और जैसे वास्तु का छोटे से छोटा अंश... असंख्य प्रदेश हैं, उनमें का जो एक प्रदेश है, उसे अन्तिम कहते हैं अथवा छोटा कहते हैं, वह **अंश पूर्व प्रदेश के विनाशस्वरूप है...** वह प्रदेश पूर्व की अपेक्षा से विनाशस्वरूप है और **वही (अंश) उसके बाद के...** अर्थात् विनाशस्वरूप है उसके बाद का। यहाँ जो असंख्य प्रदेश हैं, उसमें जिस प्रदेश पर लक्ष्य करें, तो वह प्रदेश पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट है और वह प्रदेश बाद की अपेक्षा से उत्पन्न है। बाद की (अपेक्षा से) अर्थात् वह पूर्व का (प्रदेश) जिसकी अपेक्षा से विनष्ट कहा है, उसकी अपेक्षा से नहीं (परन्तु) बाद का (जो प्रदेश है) उसे उत्पन्न कहा है। आहा...हा... ! भाई ! यह सूक्ष्म है !

देखो ! यह लकड़ी है, यह अनन्त परमाणु हैं, यह कोई एक नहीं है - ऐसा यहाँ अपने को आत्मा में लेना है। आत्मा असंख्य प्रदेशी है, अब उसमें जिस प्रदेश का लक्ष्य

होता है, वह प्रदेश पूर्व की अपेक्षा से - दूसरे प्रदेश की अपेक्षा से अभाव-विनष्ट-व्ययस्वरूप है; अपनी अपेक्षा से उत्पन्न स्वरूप है और वह है... है... है... अपेक्षा से ध्रुवस्वरूप है। (यह तो पहले आ गया है) परन्तु अब यहाँ तो क्या अपेक्षा ली है ? कि जो पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट है, वह उसके बाद की अपेक्षा से उत्पन्न है। 'उसके बाद की' अर्थात् वह जो पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट कहा, उसके बाद की अपेक्षा से वह उत्पन्न है। कुछ समझ में आया ?

श्रोता : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से लेते हैं, लो ! भाई आये हैं न ! ऐसी सूक्ष्म बात सुनने आते हैं। आहा...हा... !

क्या कहते हैं ? प्रभु ! यह तेरे घर की बात है। वास्तु अर्थात् इसका घर। विस्तारक्रम अर्थात् इसका घर। आहा...हा... ! कितना चौड़ा ? यह इसका घर ! अब, इस चौड़ाई के जो असंख्य प्रदेश हैं, उसमें जो कोई भी एक प्रदेश पर लक्ष्य जाये अथवा लक्ष्य में लो, वह प्रदेश पूर्व की अपेक्षा से तो अभावस्वरूप है - विनष्ट स्वरूप है; अपनी अपेक्षा से उत्पन्न है और है... है... है... अपेक्षा से ध्रुव है। परन्तु अब फिर यहाँ ऐसा कहते हैं कि **वास्तु का जो छोटे से छोटा अंश पूर्व प्रदेश के विनाशस्वरूप है, वही अंश उसके बाद के प्रदेश का...** उसके बाद का अर्थात् जो विनष्टस्वरूप कहा था, वर्तमान प्रदेश की अपेक्षा से पूर्व को विनष्टस्वरूप (कहा था) स्वयं को विनष्टस्वरूप कहा था परन्तु वह (प्रदेश) तो है, उसके बाद का जो उत्पन्न (प्रदेश है), जिसकी अपेक्षा से उस प्रदेश को विनष्ट कहा था, उस विनष्ट की अपेक्षा से बाद का (प्रदेश) वह उत्पन्न (प्रदेश) है। वह बाद का प्रदेश है, उसे उत्पन्न कहते हैं। पहले की अपेक्षा से उसे विनष्ट कहते हैं, उसके बाद अर्थात् जो यह (लक्ष्य में लिया हुआ) प्रदेश है (उसे) पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट कहा, उसकी बाद का अर्थात् यही उत्पन्न (कहा) इसकी अपेक्षा से उत्पन्न कहा। समझ में आया कुछ ? उसके बाद का अर्थात् कि जो उत्पन्न है, उसके बाद का - ऐसा नहीं / सूक्ष्म है। आहा...हा... !

(दृष्टान्तरूप से) माला लो न माला ! (इसमें) एक सौ आठ (मोती) हैं। इसी प्रकार

आत्मा असंख्यप्रदेशी है। वे एक सौ आठ हैं। अब यह जो प्रदेश है - यह पहला (मोती) जो है, वह बाद की अपेक्षा से विनष्ट है अर्थात् अभावस्वरूप है और वह विनष्ट है, उसके बाद का है, इस अपेक्षा से उत्पन्न है। दूसरे की अपेक्षा से यह प्रदेश विनष्ट था, वही प्रदेश बाद के प्रदेश की अपेक्षा से उत्पन्न है। जिससे अभावस्वरूप कहा था, उससे यह दूसरा अलग अर्थात् यही स्वयं उत्पन्न अपेक्षा से उसे उत्पन्न कहते हैं। समझ में आया कुछ?

एक-एक प्रदेश जो हैं, उनमें से कोई भी एक लो, यह है, देखो! यह प्रदेश यहाँ है इसकी अपेक्षा से विनष्ट है, इसकी अपेक्षा से भावरूप नहीं हुआ और इसके बाद अर्थात् इसके बाद यह, इसके यह, इसके बाद अर्थात् उत्पन्न होनेवाला है, उसके बाद ऐसा नहीं; जिसकी अपेक्षा से विनष्ट कहा था, उसी विनष्ट की अपेक्षा से-पर की अपेक्षा से उत्पन्न है। भाई! समझ में आता है?

यह चार अंगुली हैं, देखो! यह (लम्बी) अंगुली इसकी (पहली अंगुली की) अपेक्षा से विनष्ट है और इसके बाद की (लम्बी अंगुली के बाद की अंगुली की) अपेक्षा से वह उत्पन्न है। इसके बाद की अपेक्षा से वह उत्पन्न है। समझ में आता है? अब अंगुली पर तो लिया। इसकी (- पहली अंगुली की) अपेक्षा से वह विनष्ट है और इसके बाद की लम्बी अंगुली के बाद की (अंगुली की) अपेक्षा से वह उत्पन्न है। कुछ समझ में आता है?

प्रश्न : एक की एक उत्पन्न और एक की एक विनष्ट?

समाधान : एक-एक को तीन - उत्पाद-व्यय-ध्रुव। एक को तीन लागू करना है। आहा...हा...!

फिर से - जैसे यह पाँच अंगुलियाँ हैं, उसी प्रकार इस (आत्मा में) असंख्य प्रदेश हैं। आकाश में अनन्त हैं। जैसे यह पाँच अंगुलियाँ हैं, उनमें इसे (लम्बी अंगुली को) जब लेते हैं, तब इसकी (पहली अंगुली की) अपेक्षा से वह विनष्टस्वरूप है और उसके बाद की अर्थात् इस (लम्बी अंगुली) के बाद की इस (अंगुली की अपेक्षा से) उत्पन्न कहते हैं। आहा...हा...! कुछ समझ में आता है? इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश को पूर्व की अपेक्षा

से व्यय, इसकी बाद की अपेक्षा से उत्पन्न और है... है... है... है... अपेक्षा से ध्रुव कहते हैं। आहा...हा... ! क्या शास्त्र की शैली है !

रात्रि में जरा कहा था न ? प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य समयसार में आता है – प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य। प्रत्येक पदार्थ को उस समय जो पर्याय होनी है... अपने यह प्रदेश कहे, अब अपने परिणाम में लें, उसके बाद का अर्थात् पहले प्रदेश के बाद का अर्थात् जिसका यहाँ लक्ष्य किया वह; **उसके बाद के प्रदेश के उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से...** (अर्थात्) किसी की अपेक्षा नहीं (मात्र) है... है... है... है... है... है... है... है... इससे। **एक वास्तुपने द्वारा अनुभयस्वरूप है (अर्थात् दो में से एक भी स्वरूप नहीं है।)...** यह प्रदेश का दृष्टान्त कहा। अब परिणाम की बात करते हैं।

उसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश... अर्थात् कि जिस समय में पर्याय होती है – जिस समय जो परिणाम होता है, उस हुए परिणाम को अंश कहते हैं। उसे पूर्व परिणाम की अपेक्षा से उस अंश को विनष्ट कहते हैं और उस (उसके बाद के अंश की) अपेक्षा से उसे उत्पन्न कहते हैं और उसे ही यह है... यह है... यह है... यह है... उसे ध्रुव भी कहते हैं।

प्रश्न : एक के तीन नाम ?

समाधान : एक के तीन ! (समयससार की गाथा) ७६ में भी एक के तीन नाम आये हैं न ? प्राप्त, विकार्य और निर्वृत्य। ७६ गाथा में, भाई ! जो पर्याय प्रगट हुई, वह ध्रुव है... ध्रुव है...। ध्रुव अर्थात् होनी है, वह हुई है, वह काल उसका ध्रुव है, इस अपेक्षा से वहाँ प्राप्य कहा।

कहाँ गये थे ? आज तो खरेखर (वास्तव में) गया, खरा था और गया। आहा...हा... ! अत्यन्त नया है। समझ में आया कुछ ? प्रदेश का तो गया। अब परिणाम पर लेते हैं। जीव के परिणाम जो हैं, जिस समय जो होनेवाले हैं, वह परिणाम पूर्व के परिणाम की अपेक्षा से विनष्ट है और उसके बाद की अपेक्षा से उत्पन्न है 'उसके बाद की' अर्थात् पूर्व की अपेक्षा से जिसे विनष्ट कहा था, उस पूर्व की अपेक्षा से बाद का वह

उत्पन्न। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है। धीमे... धीमे... (कहा जाता है) बापा! यह तो वीतराग मार्ग है। आहा...हा...!

जैसे यह असंख्य प्रदेश हैं, इनका अन्तिम एक अंश तो छोटे से छोटा है, वह प्रदेश पूर्व के प्रदेश की अपेक्षा से तो अभावस्वरूप-विनष्टस्वरूप है परन्तु उसके बाद की अपेक्षा से उत्पन्न है। उसके बाद की अर्थात्? पूर्व का जो (विनष्ट कहा) था, उसके बाद की अपेक्षा से वह उत्पन्न है और है... है... है... है... है... है... इस अपेक्षा से ध्रुव है।

जैसे (समयसार की) ७६ गाथा में प्राप्य, विकार्य, निर्वृत्य कहा है। आहा...हा...! ७६ गाथा में क्या कहा? कि जिस समय जो पर्याय होनी है, द्रव्य की - आत्मा की अथवा जड़ की; वह पर्याय ध्रुव है। ध्रुव अर्थात् 'है' उसे कोई अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! 'है' अब उसी पर्याय को पूर्व के परिणाम की अपेक्षा से विकार्य कहा। पूर्व (पर्याय का) अभाव है, इस अपेक्षा से उसी पर्याय को विकार्य कहा। पहले प्राप्य कहा था। उसी परिणाम को पूर्व की अपेक्षा से विकार्य अर्थात् बदलकर हुआ - ऐसा कहा और उसी की उसी पर्याय को उपजा है, इस अपेक्षा से उसे निर्वृत्य कहते हैं। इस प्रकार प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य है। अब ऐसी बातें हैं। ७६, ७७, ७८, ७९ चार गाथाओं में आता है। आहा...हा...!

प्रत्येक द्रव्य को उस समय का परिणाम ध्रुव अर्थात् उस समय ही होना था, वह हुआ है, इसलिए (उसे प्राप्य कहा)। ध्रुव अर्थात् त्रिकाली ध्रुव नहीं, यह तो वहाँ निश्चय 'है'। आहा...हा...! वह परिणाम उस समय वहाँ 'है', उसकी अपेक्षा से प्राप्य-ध्रुव कहते हैं और पूर्व की अपेक्षा से बदलकर हुआ इसलिए विकार्य कहते हैं। उत्पन्न हुआ है, इस अपेक्षा से पर की अपेक्षा जहाँ नहीं आयी, उत्पन्न हुआ है इस अपेक्षा से निर्वृत्य कहते हैं। आहा...हा...! वहाँ मुम्बई में कुछ नहीं मिलता व्यर्थ है। आहा...हा...!

इसी प्रकार जिस समय आत्मा के जो परिणाम होनेवाले हैं, वे होते हैं, वह उनका अवसर ही है। आगे-पीछे नहीं, परन्तु उस परिणाम की तीन अपेक्षा है — पूर्व परिणाम की अपेक्षा से व्यय कहते हैं-विनष्ट कहते हैं; उसे ही पूर्व की अपेक्षा से उसके बाद का कहकर उत्पन्न कहते हैं - उसके बाद का कहकर उत्पन्न कहते हैं! और उसे ही पूर्व की

अपेक्षा से और उसके बाद की (ऐसी) दो अपेक्षा छोड़कर (मात्र) 'है' (इस अपेक्षा से) उसे ध्रुव कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

प्रश्न : एक के तीन?

समाधान : एक के तीन! इसमें समझ में आता है। है न, है न? त्रिकाली ध्रुव है, उसे एक ओर रखो। यहाँ तो वर्तमान परिणाम उत्पन्न होता है, वह तो उसी समय होता है, आगे-पीछे नहीं। क्रमबद्ध! यदि इस एक क्रमबद्ध को समझे तो सब फैसला (हो जाता है)। यह हम गजरथ चलाते हैं और यह इन्द्र हुए और यह हम दो हाथी में बैठे और पाँच लाख दिये... कौन दे-कौन ले? सुन! आहा...हा...! उसके कारण वह पर्याय हुई है, किसी ने पैसा दिया है, इसलिए हुई है - ऐसा नहीं है, बापू! आहा...हा...! समझ में आया कुछ?

जड़ के परिणाम लो... आहा...हा...! यह पर्याय उत्पन्न हुई, इससे पूर्व की अपेक्षा से इसे विनष्ट कहते हैं और इस विनष्ट की अपेक्षा से इसके बाद की यह स्वयं इसे उत्पन्न कहते हैं, तत्पश्चात् अर्थात् पूर्व की अपेक्षा से बाद की, वह तत्पश्चात् और उस काल में है; पर के कारण अभाव और अपने के कारण उत्पन्न ऐसी कोई अपेक्षा नहीं 'है' (उसे) ध्रुव कहते हैं। आहा...हा...! ऐसा क्रमबद्ध है। आहा...हा...!

परमाणु में भी जो पर्याय जिस समय (होनी है, वह होगी।) भगवान की प्रतिमा भी जिस समय जिस प्रतिमा की पर्याय होनी है, उस समय वह पर्याय हुई, उसके पूर्व में नहीं थी इस अपेक्षा से विनष्ट कहते हैं और विनष्ट की अपेक्षा से बाद की अर्थात् वही पर्याय-हुई वह, उसके उत्पन्न कहते हैं और उसे पूर्व की और उत्पन्न - ऐसी अपेक्षा न लो तो 'है' वह ध्रुव है। आहा...हा...! कुछ समझ में आता है? भाई! ऐसा सब कलकत्ता में भी नहीं है और कहीं नहीं है (सर्वत्र थोथा-थोथा है।) पैसा मिले ऐसा देखे; पैसा (इसे) मिलता है, इससे यहाँ इनकार करते हैं। वह पैसे की पर्याय जिस समय यहाँ आनी है, उस समय उसका अवसर है। पूर्व की अपेक्षा से उस पर्याय को विनष्ट-व्यय कहते हैं और उसके बाद की अपेक्षा से उसे उत्पन्न कहते हैं, और उसकी पर्याय है... है... है... है... है... इस अपेक्षा से उसे ध्रुव कहते हैं। ऐसा है, प्रभु! क्या हो? यह कोई भगवान ने किया हुआ नहीं है।

भगवान तो ऐसा कहते हैं कि दिव्यध्वनि की जो भाषा की पर्याय हुई, उस समय उस पर्याय का अवसर था वह हुई; आत्मा ने नहीं की। उस पर्याय को पूर्व की अपेक्षा से (अर्थात्) भाषा (वर्गणा) की अपेक्षा लें, अभी भाषा नहीं थी – ऐसी वर्गणा की अपेक्षा लें तो विनष्ट है और वर्गणा की बाद की यह (पर्याय) कहलाती है, इसके बाद की अपेक्षा से उसे उत्पन्न कहते हैं और वह भाषावर्गणा की पर्याय है... है... है... है... है... उसे ध्रुव कहते हैं। आहा...हा...! धीमे-धीमे तो कहा जाता है, बापू! ऐसा है। अरे... रे...! आहा...हा...!

जैसे ध्रुव को – इस त्रिकाली ध्रुव को किसी की अपेक्षा नहीं है; इसी प्रकार एक समय की पर्याय जो जड़ में अथवा चैतन्य में होती है... आहा...हा...! उस अवसर का– उस समय की जो पर्याय होती है, उसे पूर्व की अपेक्षा से भले ही व्यय कहो और उसके बाद की अपेक्षा से उत्पाद कहो परन्तु 'है' की अपेक्षा से उसे ध्रुव कहते हैं। आहा...हा...! उस काल की वह पर्याय 'है' आहा...हा...! (समयसार की) ७६, ७७, ७८ (गाथा में) यही कहा है। ऐसी बात... आहा...हा...! दिगम्बर सन्त बहुत सादी भाषा में रखते हैं परन्तु समझना पड़ेगा न, बापू! यह तुमने कहा और यह पढ़ना बाकी है, यह आया। यह समझ में आता है कुछ? आहा...हा...!

यदि यह समझे तो इसकी पर के कर्तापन की बुद्धि तो उड़ जाये परन्तु अपनी होनेवाली पर्याय 'कर्ता हूँ' यह बुद्धि भी उड़ जाये। आहा...हा...! गजब बात है, भाई! भगवान के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि! उस दिव्यध्वनि की पर्याय भी, कहते हैं कि उस समय उत्पन्न होनेवाली, परन्तु पहले नहीं थी इस अपेक्षा से व्यय कहते हैं और उसके बाद की अपेक्षा से उसे उत्पाद कहते हैं परन्तु भाषा है... है... (इस अपेक्षा से ध्रुव कहते हैं।) इस पुद्गल में किसी समय पर्याय न हो – ऐसा तो नहीं है। ऐसे प्रत्येक में है... है... है... है... है... है... इससे एक-एक पर्याय में तीनपना लागू पड़ता है। आहा...हा...! समझ में आता है? सारा उत्पाद-व्यय-ध्रुव (स्वरूप है)। त्रिकाली पर दृष्टि जाये तब यह उत्पाद, उत्पाद के स्थान में उत्पाद पर की अपेक्षा से बाद का कहा है और है... है... (इस अपेक्षा से ध्रुव है।) इसका निर्णय (यथार्थ होता है) आहा...हा...! इसका अकर्तापने का निर्णय तब होता है। 'है' उसे करूँ क्या? ध्रुव है-प्राप्य है, उसे करूँ क्या? आहा...हा...!

अपनी (पर्याय), हाँ ! पर की तो बात भी क्या करना ? आहा...हा... ! पर की दया पालना और पैसा देना और पैसा लेना... आहा...हा... ! वह पर्याय तो तेरे कर्तापने की नहीं, उसमें तेरा कोई अधिकार नहीं। आहा...हा... !

मुनिराज सच्चे सन्त हों उन्हें आहार देते समय वह आहार की पर्याय वहाँ उस प्रकार की उत्पन्न होने की थी, वह हुई, पूर्व की अपेक्षा से उसे विनष्ट कहते हैं, उसके बाद होने की अपेक्षा से उसे उत्पाद कहते हैं; है... है... उसे ध्रुव (कहते हैं) देनेवाला कहता है कि मैंने आहार-पानी दिया - यह बात उसमें नहीं रहती। आहा...हा... !

प्रश्न : सबको पंगु बना दिया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको पुरुषार्थवाला बना दिया, आहा...हा... ! वीर्यवाला बनाया ! (मैं) मेरी पर्याय का कर्ता नहीं, ऐसा मेरा वीर्य है। आहा...हा... ! कुछ समझ में आता है ? मैं ज्ञाता हूँ - यह महावीर्य है - महापुरुषार्थ है। आहा...हा... ! कुछ समझ में आता है ? ऐसी बातें ! इसमें वाद-विवाद करने से कहाँ पार पड़े ऐसा है, बापू ! आहा...हा... ! वस्तुस्थिति... ! आहा...हा... !

सब ऐसा कहते हैं कि कानजीस्वामी यहाँ आये तब यह सब हुआ... यह बात झूठ है। कहते हैं यहाँ भैंसे बैठती थी, उसमें करोड़ों रुपये लग गये, महाराज आये इसलिए यह सब हुआ। नहीं... नहीं... भाई ! ऐसा नहीं है बापू ! इन परमाणुओं की क्रमशः स्व-अवसर में होने की पर्याय यहाँ हुई है। आहा...हा... ! उस पर्याय को तीनपना लागू पड़ता है। उसे पूर्व की अपेक्षा से व्यय लागू पड़ता है, व्यय की बाद की अपेक्षा से उसे उत्पाद लागू पड़ता है और व्यय उत्पन्न दोनों की अपेक्षा जहाँ है ही नहीं; है... है... है... उस काल में वह पर्याय... उस काल में वह पर्याय... उस काल में वह पर्याय... है। आहा...हा... ! 'है' की अपेक्षा से एक-एक पर्याय में तीनपना लागू पड़ता है, बापू ! आहा...हा... !

यह तो (समयसार की गाथा) ३२० में आया न ? भाई ! सर्वविशुद्ध अधिकार ! क्रमनियमित सिद्ध करने पर वहाँ तो मोक्ष की पर्याय और निर्जरा की पर्याय को भी जानता है - ऐसा कहा है। भले ही जानता है, वह पर्याय ही उस काल में होनी थी। आहा...हा... ! दूसरी बात है। जानता है, वह पर्याय भी उस काल में होनी थी और उस काल में होनी थी,

वह उत्पाद है, पहले की अपेक्षा से व्यय है और है... है... है... इस अपेक्षा से ध्रुव है परन्तु उस ज्ञान में जानने का रखा। वह ज्ञान की पर्याय करूँ - ऐसा भी नहीं। आहा...हा...! ज्ञातापना-दृष्टापना सहज हो जाता है। कुछ समझ में आया? ऐसी वस्तु की स्थिति है। आहा...हा...! भगवान तीन लोक के नाथ ने दिव्यध्वनि द्वारा यह कहा, वह सन्तों ने यह शास्त्र रचकर समझाया। आहा...हा...! ऐसा है! (इस भाई ने) दो लाख दिये हैं इसलिए वहाँ मकान होगा - ऐसा नहीं है। (यहाँ पर) इनकार करते हैं। आहा...हा...! अद्भुत बात!

(यहाँ पर कहते हैं कि) **इसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश...** अब पर्याय पर लिया है न? प्रवाह अर्थात् एक के बाद एक। प्रत्येक द्रव्य में जो पर्याय होती है, वह एक के बाद एक (होती है) अर्थात् जो होनी है, वह एक के बाद एक (होनी है ऐसा कहना है) ऐसा नहीं है कि एक के बाद एक अर्थात् पहली कुछ और दूसरी कुछ भी हो जाये - ऐसा नहीं है। दिगम्बर के अग्रेसर (प्रमुख) के साथ इस बात में विवाद था न? अब मेल किसके साथ करना? यह कहते हैं क्रमबद्ध है ऐसा नहीं है। एक के बाद एक अवश्य होती है परन्तु इसके बाद यही होगी (- ऐसा नहीं है)। यहाँ तो कहते हैं कि पूर्व की जो अवस्था हुई, उसके बाद की जो होनेवाली है, वही होती है। आहा...हा...! थोड़े भी सत्य को बराबर समझना चाहिए। आहा...हा...!

इसी प्रकार (अर्थात् जैसे) प्रदेश का कहा था, **इसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश...** द्रव्य में जो पर्याय आयत (अर्थात्) ऐसी लम्बी होती है - एक के बाद एक, एक के बाद एक... उसका वर्तमान छोटे से छोटा अंश वह **पूर्व परिणाम के विनाशस्वरूप है...** (अर्थात्) पूर्व परिणामस्वरूप से नहीं है, उस रूप से उसे व्यय कहते हैं। **वही उसके बाद के...** उसके बाद के अर्थात् जो विनाशस्वरूप है - इससे पहले जो था, उसकी अपेक्षा से इसे विनाशस्वरूप कहते हैं और जो विनाशस्वरूप कहा, उसके बाद की अवस्था को उत्पन्न कहते हैं। जिसे पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट कहा था, उसे ही बाद की अपेक्षा से उत्पन्न कहते हैं। आहा...हा...! कुछ समझ में आता है? नहीं समझ में आवे तो रात्रि में प्रश्न करना। यह तो सूक्ष्म है, बापू! आहा...हा...! बाप-दादाओं ने कहीं नहीं सुना था। आहा...हा...!

जिस द्रव्य की जिस समय में पर्याय होती है, वह होनी है, वह होती ही है; वही होती है, दूसरी नहीं। बाद की पर्याय भी वही होती है, दूसरी नहीं। उसके पहले भी जो पर्याय थी, वही थी और वही होती है, दूसरी नहीं। परन्तु पूर्व की अपेक्षा से वर्तमान परिणाम को व्यय कहते हैं और उसके बाद की स्वयं है, इसलिए उसे उत्पन्न कहते हैं और बाद का और पहले का छोड़ दो तो उसे ध्रुव - अनुभय कहा; उत्पाद-व्यय नहीं, 'है'। आहा...हा...! इसमें बड़ा विसंवाद-विवाद! सभी (पत्रिकाओं में) लिखते हैं, सोनगढ़ का साहित्य संसार में डुबो देगा। भगवान! बापू! इस बात को... भाई!

श्रोता : अज्ञान को डुबो देगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : डुबो देगा, मैं ऐसा ही कहनेवाला था। अज्ञान को नाश कर देगा, यह ऐसी बात है! आहा...हा...! अज्ञान नहीं टिकेगा! आहा...हा...! मिथ्यात्व का अंश नहीं टिकेगा, आहा...हा...! पर की पर्याय करना माने, (वह भी) मिथ्यात्वभाव है और अपनी भी राग की क्रिया (करना माने) तो मिथ्यात्वभाव होता है। अरे...! निर्मल पर्याय भी करूँ; होनेवाली है उसे मैं करूँ (यह भी मिथ्यात्वभाव है)। जिस समय होनेवाली है उसी समय होनेवाली है, उसके बदले मैं करूँ यह वहाँ कहाँ रहा? आहा...हा...! कहो, समझ में आता है? ऐसी सूक्ष्म बात है, ऐसा है, क्या हो? आहा...हा...!

सत् यही है, भाई! भगवान का कहा हुआ और वस्तु का स्वरूप-सत् ऐसा ही है। इसमें कहीं सन्देह को स्थान नहीं है। पर्याय आगे-पीछे नहीं होती (इस बात में) भी सन्देह को स्थान नहीं है। आगे-पीछे की व्याख्या क्या? प्रभु! इस जगह यह पर्याय होनी थी, वह नहीं हुई, अर्थात् क्या? यह पर्याय पच्चीसवें समय हुई अर्थात् क्या? पच्चीसवें समय होनेवाली थी, वह नहीं हुई, यह हुई अर्थात् क्या? कहीं भी मेल कहाँ है? आहा...हा...! इन युवाओं को थोड़ा कठिन पड़े ऐसा है। आहा...हा...!

इसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश... अर्थात् एक वर्तमान अंश। (वह) पूर्व परिणाम की अपेक्षा से विनाशस्वरूप है। आहा...हा...! **वही उसके बाद के...** अर्थात्? पूर्व का परिणाम है, उसकी अपेक्षा से उसके बाद का हुआ। **उसके बाद के परिणाम के उत्पादस्वरूप है...** आहा...हा...! **तथा वही...** (अर्थात्) वही पर्याय-

उसी प्रवाहक्रम में आयी हुई पर्याय **परस्पर अनुस्यूति से रचित...** अर्थात् जो स्वयं धारावाही है... है... है... है... है... है... है... जैसे मोती की माला में डोरा धारावाही है। है... है... है... मोती... मोती... मोती... वह प्रत्येक को है... है... है... लागू करता है। आहा...हा... !

वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा... एक प्रवाह है। आहा...हा... ! चैतन्य में और परमाणु में एक प्रवाहरूप से क्रमसर... क्रमसर... क्रमसर... एक प्रवाह क्रम... क्रम से हुआ ही करता है। इस अपेक्षा से लें तो कहते हैं कि उत्पाद और व्यय नहीं कहलाते, उसे ध्रुव कहा जाता है। 'है' ऐसा कहा जाता है। आहा...हा... ! ऐसा सूक्ष्म कहा होगा ! ? कुन्दकुन्दाचार्य लेकर के आये और अमृतचन्द्राचार्य ने उसकी टीका की। आहा...हा... ! ऐसा बहुत सूक्ष्म है, इसलिए (नहीं समझ में आ सकता - ऐसा नहीं है) सूक्ष्म नहीं है, भाई ! इसे अभ्यास नहीं है और जहाँ-तहाँ मैं करूँ... यह शरीर चलता है तो मैं चलाता हूँ, बोलता है तो मैं स्वाहा - भगवान की पूजा में स्वाहा बोली जाती है तो स्वाहा की भाषा भी मेरी और यह अँगुलियाँ हिलती हैं वह भी मुझसे; जहाँ-तहाँ ऐसी बुद्धि पड़ी है। आहा...हा... !

प्रश्न : अँगुलियाँ किसकी है ?

समाधान : अँगुलियाँ जड़ की और जड़ की अवस्था होती है वह जड़ के कारण होती है और वह अवस्था उस समय वही होनी थी। आहा...हा... !

सूक्ष्म है, सूक्ष्म ! आहा...हा... ! यह तो मूल मक्खन है बापू ! परमात्मा के द्वारा कहा गया सत् (यह है)। उत्पाद उस समय का वही, उसी समय का (उत्पाद) आहा...हा... ! इसके बदले (ऐसा मानना कि) मकान बनाता हूँ... आहा...हा... ! इसमें हम रहेंगे, स्त्री-पुत्रादिक को भी वहाँ ठीक रहेगा। अरे...रे... ! आहा...हा... ! भ्रम... भ्रम... भ्रम... !

प्रश्न : सभी बाबा हो जायेंगे तो त्यागियों को खाने के लिए कौन देगा ?

समाधान : उस समय भी खाने की पर्याय (जो आनी है, वह आयेगी) यह प्रश्न (संवत्) १९७८ (के साल में) हुआ था। 'चूड़ा' में... चूड़ा में ! ७८ की साल ! वहाँ भी (व्याख्यान में) बहुत लोग थे। बाहर एक पुलिसवाला बैठा था (व्याख्यान) पूरा होने के बाद कहने लगा - महाराज ! आप त्याग की ऐसी बहुत बात करते हो, तो सब त्यागी हो

जायेंगे तो उन्हें आहार कौन देगा ? पुलिसवाले ने ऐसा प्रश्न किया था। संवत् ७८ के साल की बात है। कितने वर्ष हुए ? ५७ ! बापू ! कौन देगा यह प्रश्न अभी है ही नहीं। उस काल में होनेवाली पर्याय होती है, वह देगा, अर्थात् होगी। मैंने तो दूसरा जबाव दिया था कि एक व्यक्ति लखपति है और पच्चीस लाख (इकट्ठा करना) चाहता है। इसीलिए वह यह विचार करता है मैं पच्चीस लाख इकट्ठे करूँगा तो फिर बर्तन माँजनेवाला कौन रहेगा ? मेरा पकानेवाला कौन रहेगा ? यह लकड़ियाँ लानेवाला कौन रहेगा ? – ऐसा विचार करता है ? उस समय यह तो ७८ की बात है ! चूड़ा में ! आहा...हा... !

ओ...हो... ! लोग साधारणरूप से पड़ जाते हैं, उन्हें ऐसा हो जाता है कि अपने को सच्चा ज्ञान हुआ। बहुत कठिन बात है, भाई ! ज्ञान आत्मा का होना चाहिए। आत्मा का ज्ञान कब होता है ? कि उसकी जो पर्याय जिस समय होनी है, उस पर्याय में तीन बात लागू पड़ती है, पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट, उसके बाद की अपेक्षा से उत्पन्न है... है... है..., अपेक्षा से ध्रुव ! ऐसी पर्याय का जहाँ निर्णय करता है, वहाँ वह ज्ञाता-दृष्टा होता है। तब वह वर्तमान होनेवाली पर्याय का भी कर्ता नहीं होता, कारण कि उसमें एक भाव नाम का गुण है, अनन्त गुणों में भाव (गुण का) रूप है, इसीलिए उस समय में वह पर्याय होनी हो, वह होती ही है। उसे कम तो होती है, वरना नहीं होती – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा फिर बारम्बार नहीं आता। यह तो सामने पुस्तक में आया हो उसका अर्थ होता है न ? आहा...हा... ! इन्दौर में यहाँ का विरोध (करने के लिए) पचास पण्डित इकट्ठे हुए थे। (उसमें ऐसा कहा कि) पर का नहीं करे वह दिगम्बर नहीं है। अर...र...र... ! अरे ! प्रभु... प्रभु... प्रभु... !

यहाँ तो (कहते हैं कि) पर का तो नहीं करता परन्तु अपनी पर्याय को भी नहीं करता। होती है, उसे करे यह बात कहाँ है ? समझ में आया ? आहा...हा... ! परन्तु यह था नहीं, हाँ ! था नहीं इसलिए फिर क्या करे ? स्थानकवासी, श्वेताम्बर में तो यह बात ही नहीं है, उनमें तो सब जैनपने से विरुद्ध बातें हैं। आहा...हा... ! यह तो दिगम्बरों में भी गड़बड़ खड़ी हुई है ! ऐसा सत्य ! पुकार करके कथन किया है, ऐसा प्रसिद्ध किया है, उसे यह कहना कि नहीं, अपन करें तो होता है और नहीं करें तो नहीं होता है; पर का भी अपन करें

तो होता है, वरना नहीं होता। अरे! आत्मा में भी पर्याय करूँ तो होती है और वरना नहीं होती – ऐसा नहीं है। सुन भाई! प्रभु तू तो ज्ञानस्वरूप है न! ज्ञान की पर्याय भी होनेवाली हो, उस काल में होती ही है परन्तु उसकी प्रधानता लेकर दूसरी पर्याय को करूँ – ऐसा नहीं है। दूसरी होती है, उसे जाननेवाला वहाँ इसे खड़ा रखते हैं।

उसके बाद के परिणाम के उत्पाद... यह परिणाम की-पर्याय की बात है। (वह) **उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित...** धारावाही... धारावाही... है... है... है... इससे एक प्रवाहपना है। है... है... का एक प्रवाहपना है। उसके **द्वारा अनुभय स्वरूप है।...** (अर्थात्) उस व्यय और उत्पादस्वरूप नहीं है, इसलिए ध्रुवस्वरूप है। आहा...हा...! इन तीन-चार पंक्तियों में तो इतना अधिक भरा है लो! आहा...हा...!

वस्तु है या नहीं? है तो उसके तीन अंश पड़ते हैं या नहीं? तीन अंश पड़ते हैं, वे तीन अंश अपने-अपने समय में अपने-अपने से हैं या नहीं? अर्थात् 'है' वह ध्रुव है। पूर्व की अपेक्षा से उसे विनष्ट कहते हैं और पूर्व की अपेक्षा से जो विनष्ट कहा था, उस पूर्व के बाद की यह पर्याय स्वयं है। उसके बाद की यह पर्याय है, उसे उत्पन्न कहते हैं। आहा...हा...!

'क्रमबद्ध में एकान्त हो जाता है' इस प्रकार लोग चिल्लाते हैं। अब यहाँ तो पर का तो करे नहीं परन्तु बापू! भाई! क्या करें? आहा...हा...! तेरी पर्याय भी उस काल में होनी है, उस अवसर में वह होती ही है। आहा...हा...! उसे भी तीन अपेक्षा लागू पाड़कर और उसे प्राप्य कहकर ध्रुव कहा, आहा...हा...! इस प्रवचनसार में ऐसा कहा। समयसार में प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य कहा। आहा...हा...! एक ही पर्याय में तीन (बातें लागू पड़ती हैं)। अर्थ किया था कि प्राप्य अर्थात् ध्रुव अर्थात् उस समय वह है। आहा...हा...! इस प्रकार प्रत्येक में है... है... है... है... है... है... है... है... एक प्रवाहरूप है... है... है... आहा...हा...! ऐसा निर्णय करने जाये, उसे पर का कर्तापना तो उड़ जाये परन्तु राग का और पर का कर्तापना भी उड़ जाता है। आहा...हा...! ज्ञातापना हो, वह जाननेवाला हो जाता है। जाननेवाला हुआ वह उस काल में केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। आहा...हा...! उसके

क्रमबद्ध में अल्प काल में केवलज्ञान होना है, आहा...हा...! ऐसी बात है।

इस प्रकार स्वभाव से ही... देखा!? **स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणामपद्धति में...** देखो! है? **त्रिलक्षण परिणामपद्धति...** एक परिणाम में तीन प्रकार का लक्षण है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव। आहा...हा...! यह कोई वार्ता नहीं है, प्रभु! आहा...हा...! यह तो वस्तु की स्थिति परमात्मा, अनन्त तीर्थङ्कर, अनन्त केवली, अनन्त सन्त, अनन्त मुनियों ने इस प्रकार जानकर अनुभव किया है। आहा...हा...! उनके संसार का अन्त आ गया। वह अन्त का समय था परन्तु जब (आत्मा का) ज्ञान और आनन्द प्रगट हुआ, उसे अल्प समय में संसार का अन्त आ जाता है, उसे भव का अन्त आ जाता है।

इस प्रकार स्वभाव से ही... स्वभाव से ही (कहा है)। (अर्थात्) एक परिणाम में तीन लक्षणपना हैं, वह स्वभाव से ही है। आहा...हा...! **त्रिलक्षण परिणाम...** त्रिलक्षण परिणाम कहा न? त्रिलक्षणवाली परिणामपद्धति। (परिणामों की परम्परा) पद्धति अर्थात् परिणामों की परम्परा। आहा...हा...! अरे! एक बार मध्यस्थ होकर सुने तो सही! बापू! किसका विरोध करता है? भाई!

इस प्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणामपद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य... है? अब तीन में वर्तता द्रव्य, **स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता...** ऐसा जो त्रिलक्षण परिणामपद्धति में प्रवर्तमान द्रव्य, स्वभाव को नहीं छोड़ता हुआ, आहा...हा...! उस स्वभाव का उल्लंघन नहीं करता। समझ में आया?

सत्व को त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिए... सत्व अर्थात् यहाँ द्रव्य लेना। सत्व अर्थात् सत्पना अर्थात् द्रव्य। पहले परिणामों का त्रिपना था, अब यहाँ कहते हैं कि द्रव्य को **त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिए...** यहाँ अब द्रव्य लिया। आहा...हा...! इसलिए द्रव्य को **त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिए...** आहा...हा...! अनुमोदना का अर्थ किया है - इस प्रकार जब त्रिलक्षणवाला द्रव्य स्वभाव है - ऐसी द्रव्य दृष्टि होती है, उसे आनन्द से मान्य रखना, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन से उसे मान्य रखना। आहा...हा...!

विशेष कहा जायेगा...!

प्रवचन नं. १०२ दिनाङ्क १२ जून १९७९

प्रवचनसार ९९ गाथा। लोगों में नहीं कहलाता? (श्रोता - निन्यानवें का धक्का) हाँ, यह! आहा...हा...! निन्यानवें थे, उसे पूर्ण किया - ऐसा लोगों में आता है, निन्यानवें का धक्का! यह (- ९९ गाथा) निन्यानवें का धक्का है! आहा...हा...!

इस प्रकार स्वभाव से... क्या कहते हैं? यह छहों द्रव्यों की बात है, हाँ! **इस प्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणाम...** (अर्थात्) तीन लक्षणवाले परिणाम - उत्पाद-व्यय और ध्रुव! उनकी पद्धति (अर्थात्) उनकी परम्परा में **प्रवर्तमान द्रव्य...** उत्पाद-व्यय-ध्रुव की परम्परा में प्रवर्तमान द्रव्य, प्रत्येक (द्रव्य)। परन्तु अभी यहाँ मस्तिष्क में आत्मा की बात है। **(परिणामों की परम्परा में...)** आहा...हा...! एक तो त्रिलक्षण परिणाम की पद्धति-परम्परा, उसमें **प्रवर्तमान द्रव्य, स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता...** यह भगवान आत्मा, त्रिलक्षण परिणाम की परम्परा में प्रवर्तमान (और) स्वभाव को नहीं छोड़ता, आहा...हा...! **सत्व को...** सत्व अर्थात् द्रव्य; द्रव्य-वस्तु को **त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिए...** अनुमोदना! ऐसा त्रिलक्षण - उत्पाद-व्यय-ध्रुव में प्रवर्तमान द्रव्य है, (वह) उसका स्वभाव है। स्वभाव में प्रवर्तमान... आहा...हा...! द्रव्य को त्रिलक्षण ही... त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिए। इन तीन लक्षण में प्रवर्तमान द्रव्य है, उस द्रव्य पर जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ उसे अनुमोदन होता है। अर्थात्? अनुसर कर मोदन होता है-आनन्द होता है। मोद... मोद...! प्रमोद आता है। आहा...हा...! भाषा तो देखो!

प्रत्येक द्रव्य त्रिलक्षण परिणाम पद्धति में-परम्परा में वर्तता द्रव्य है। ऐसे ही इस आत्मा को भी उत्पाद-व्यय और ध्रुव त्रिलक्षण में (वर्तना है), यह द्रव्य का स्वभाव है, द्रव्य उसमें वर्तता है। उस सत्व को (अर्थात्) उस द्रव्य को... आहा...हा...! क्या कहा? द्रव्य को **त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिए...** ओहो...हो...हो...! उत्पाद-व्यय और ध्रुव उसका स्वभाव है, उसमें वर्तता है; उसकी अन्तर की पर्याय होने के काल में होती है, इसलिए उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है, क्योंकि द्रव्य तीनों में वर्तता है। आहा...हा...! यह

द्रव्य, उसमें वर्तता यह तीनपना है – ऐसी दृष्टि जाने पर अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है – कहते हैं – आहा...हा...! अनुमादेन-मोदन – उसे अनुसर कर आनन्द आता है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द अमृत का पूर है! आहा...हा...! ऐसे आत्मा को त्रिलक्षण (परिणाम) पद्धति में वर्तता द्रव्य है – ऐसा जहाँ निर्णय करने जाता है,... आहा...हा...! वहाँ उसे अनुमोदन, अर्थात् द्रव्य को अनुसर कर वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहा...हा...हा...! जिसके स्वाद को बढ़ाने के लिए चक्रवर्ती के आठ वर्ष के राजकुमार... आहा...हा...! अन्तर में जाने पर अनुमोदन-आनन्द आने पर, यह वस्तु तीन लक्षण में प्रवर्तती ही है, ऐसी जहाँ दृष्टि होती है, वहाँ अन्दर आनन्द आता ही है। आहा...हा..! और उस आननद को बढ़ाने के लिए, उन राजकुमारों को भी अनुमोदन-आनन्द आता है। आहा...हा...! फिर कहीं उनकी रुचि नहीं लगती, उन्होंने पूरे संसार को जान लिया है। आहा...हा...! कहते हैं – उनकी रुचि अन्तर में ढल जाती है। आहा...हा...!

क्रमसर होनेवाली त्रिलक्षण परिणामपद्धति में वर्तता द्रव्य है। लोग कहते हैं कि ऐसा होवे तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? परन्तु प्रभु! सुन तो सही, भाई! आहा...हा...! इन त्रिलक्षणों में प्रवर्तमान द्रव्य है – ऐसा जहाँ निर्णय करने जाता है, वही पुरुषार्थ है और उसमें उसे अतीन्द्रिय आनन्द आता है; आहा...हा...! और उस अतीन्द्रिय आनन्द को बढ़ाने के लिए राजकुमार-चक्रवर्ती के आठ-आठ वर्ष के पुत्रों को दुनिया की कुछ पड़ी नहीं है। आहा...हा...! आठ वर्ष के राजकुमार हों, वे मोर पिच्छी और कमण्डल (लेकर वन-जंगल में चल निकलते हैं!) आहा...हा...! अकेले बाघ और भालू; नाग और बिच्छु के जंगल में ढेर पड़े हों! आहा...हा...! चल निकलते हैं। आहा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द के समक्ष बाहर की कोई भी (वस्तु रुचिकर नहीं लगती)। अरे...! विकल्प उत्पन्न होवे, उसे घोर संसार का कारण जानते हैं। आहा...हा...! शुभविकल्प उत्पन्न हो, उसे भी (संसार का कारण जानते हैं।)

ऐसा जो प्रभु है – त्रिलक्षण (परिणाम) पद्धति में प्रवर्तमान यह द्रव्य... आहा...हा...!

उस द्रव्य पर जहाँ पर्याय जाती है, वहाँ अनुमोदन (अर्थात् स्वभाव को) अनुसर कर आनन्द आता है। आहा...हा...! उस आनन्द को बढ़ाने... आहा...हा...! करना तो यह है। आहा...हा...! आठ वर्ष के राजकुमार जंगल में बाघ और भालू और नाग के बीच चले जाते हैं। हाथ में एक मोरपिच्छी और कमण्डल! आहा...हा...! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द बढ़ाने के प्रेम में कहीं बाहर की प्रतिकूलता दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार कोई अनुकूलता भी ज्ञात नहीं होती। ऐसा यह ज्ञाता-दृष्टा... आहा...हा...! जानने-देखनेवाला प्रभु जहाँ हाथ आया... आहा...हा...! जिसे रत्न मिला, उसे अब दुनिया की क्या दरकार रही? आहा...हा...! आहा...हा...! प्रतिष्ठा और लोग पसन्द करे और मान दे, दुनिया में गिनाऊँ और गिनती में आऊँ... आहा...हा...! गिनती में तो ले लिया, प्रभु को! आहा...हा...!

यह तो 'आनन्दघनजी' में नहीं आया था? 'वे गुण गणी न प्रवीणा, अवधु क्या माँगु गुणहीना' - वे गुण कितने हैं? कि गिनते हुए पार नहीं आवे। उन अनन्त गुणों का स्वाद (आता है), एक आनन्द का स्वाद नहीं, अनन्त गुणों का स्वाद! आहा...हा...! जिसके समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन और इन्द्राणियाँ... आहा...हा...! उनकी अनुकूलता का भोग भी सड़े हुए श्वान जैसा लगता है। आहा...हा...! ऐसा भगवान आत्मा अपने स्वभाव को प्राप्त हुआ... आहा...हा...! तो स्वभाव तो आनन्द था; (अत: अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ।)

कोई यह कहता है कि तुम ऐसे क्रमबद्ध का निश्चय करो, मानो तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? प्रभु! तू ऐसा रहने दे, भाई! यह क्रमबद्ध के परिणाम, परिणाम के काल में होते हैं, व्यय होते हैं और ध्रुव रहता है - उसमें वर्तता द्रव्य है, उसका निर्णय करने को तो ज्ञायक पर दृष्टि जाती है। आहा...हा...! चाहे जिस प्रसंग में खड़ा हो, परन्तु उसका अपने में उत्पाद होता है, वह इसमें आया न? अब, दृष्टान्त देंगे। परन्तु वह उत्पाद होता है, व्यय होता है और ध्रुव रहता है - यह द्रव्य का स्वभाव है और द्रव्य उसमें वर्तता है। आहा...हा...! पर्याय में द्रव्य वर्तता है - ऐसा नहीं, द्रव्य त्रि स्वभाव में वर्तता है। आहा...हा...! ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि करने जाते हैं, तब अन्दर आनन्द से अनुमोदन करे अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता है। आहा...हा...! ऐसी बात है!

मोतियों के हार की भाँति... यहाँ तक तो कल आया था। **मोतियों के हार की भाँति।** यह मोतियों का हार है; **जैसे, जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है...** यह हार इतना लम्बा है। **जैसे, जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है - ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में...** ऐसा लटकता हुआ, हाँ! ऐसा पड़ा हुआ नहीं... **लम्बाई ग्रहण की है - ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में, अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुए...** (अर्थात्) जहाँ-जहाँ उनका स्थान है, वहाँ-वहाँ वे मोती हैं। यह (मोती) यहाँ है... यह यहाँ है... यह यहाँ है... यह यहाँ है... (ऐसे) जहाँ-जहाँ उसका स्थान है, वही वह मोती है। आहा...हा...! **अपने-अपने स्थानों में...** भाषा क्या है ? उन मोतियों का स्वयं अपना-अपना स्थान है। जहाँ-जहाँ जो मोती हैं, वह उनका अपना-अपना स्थान है। आहा...हा...!

अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुए, समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं... आहा...हा...! अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित और पीछे-पीछे के (अर्थात्) यहाँ एक है, उसके पीछे-पीछे का... आहा...हा...! **पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं, इसलिए, और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिए...** पहले स्थान में मोती हैं, वह पीछे के स्थान में नहीं आते; पीछे के स्थान में हैं, वे पहले के स्थान में नहीं और पहले के स्थान में हैं, वह पीछे के स्थान में नहीं - यह दृष्टान्त है; फिर परिणाम में उतारेंगे। आहा...हा...!

जहाँ-जहाँ मोती का स्थान है... ऐसे लम्बाई में लटकते हुए, हाँ! आहा...हा...! वहाँ-वहाँ उस स्थान में कि जहाँ-जहाँ स्वयं हैं, वहाँ पीछे-पीछे के स्थान में दूसरा; उसके पीछे के स्थान में तीसरा, वह भी जिसके स्थान में है वहाँ, आहा...हा...! **समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं इसलिए...** जैसे, यह एक (मोती) बीच में है तो इसके पीछे यह, इसके पीछे यह - ऐसे पीछे-पीछे प्रगट होते हैं। आहा...हा...! **और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिए...** जब इस (मोती) पर लक्ष्य गया तो उसके पीछे यह प्रगट होता है, परन्तु उसके पहले का तो गया, वह प्रगट नहीं होता। आहा...हा...! सन्तों ने जगत् को निहाल करने की विधि दी है! पैसे

से निहाल (माने, वह निहाल नहीं है), धूल में मर जाएगा! यह तो भगवान आत्मा! जिस-जिस स्थान में हैं, उसके पीछे-पीछे में होना है, वह वहाँ है; और उसके पहले हो गया, वह वहाँ (गया) पहले हुआ, वह अब नहीं होता और पीछे होता है, वह उसके स्थान में वहाँ है। आहा...हा...! ऐसा आठ वर्ष के बालक को भी समझ में आये, बापू! आहा...हा...!

आठ वर्ष के राजकुमार! आहा...हा...! भरत के १०८ (पुत्र) नहीं? रविकीर्ति राजकुमार! रत्न का डण्डा और सोने का गेंद, आहा...हा...! उससे खेलते थे। उनकी माँ ने एक व्यक्ति को साथ में भेजा था 'लड़के खेलते हैं ध्यान रखना' आहा...हा...! १०८! वहाँ एक व्यक्ति निकला, उसने कहा - जयकुमार ने दीक्षा ले ली है। सेना के अधिपति ने - ९६ करोड़ सेना के अधिपति ने - सुलोचना के पति-स्वामी ने... आहा...हा...! दीक्षा ली है। सुनते ही रोमांच (हो गया)। आहा...हा...! उस व्यक्ति से कहते हैं कि चलो हम ऐसे जाते हैं। चलो, चलो, हम ऐसे जाते हैं। भगवान के पास जाते हैं (ऐसा) कहने जायें तो (व्यक्ति ऐसा कहेगा कि) माता की आज्ञा नहीं है और ऐसा नहीं है। आहा...हा...! रत्न की... क्या कहलाता है? डण्डा! सोने की गेंद, आहा...हा...! सोने की गेंद! कितनी वजनदार! रत्न का डण्डा! वे जहाँ चैतन्यरत्न की (बात) सुनते हैं - जयकुमार ने भगवान के पास दीक्षा ले ली, आहा...हा...! अब माता से पूछने भी नहीं जाना कि अब हमें आज्ञा दे। आहा...हा...! हमारा नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का दल प्रभु, उसमें विकार नहीं है, उसमें विकार का ज़हर नहीं है। पुण्य-पाप दोनों परिणाम ज़हर हैं। आहा...हा...! वे प्रभु में नहीं हैं, आहा...हा...! उसे साधने के लिए जयकुमार ने साधुपना लिया है। हम भी भगवान के पास जाना चाहते हैं, ऐसा कहा। वरना तो (वह व्यक्ति) कहता कि साहब! आपको तो यहाँ खेलने के लिये भेजा है और मुझे देखने के लिये रखा है। आप यहाँ से दीक्षा लेने के लिये चले जाओगे तो आपकी माँ मुझे क्या कहेगी? (कहते हैं कि) भाई! ऐसे चलो, थोड़ा ऐसे (जायेंगे), आहा...हा...!

वे भगवान के पास जाते हैं... प्रभु...! अतीन्द्रिय आनन्द की वृद्धि होवे - ऐसी दीक्षा प्रदान करो। आहा...हा...! कुँवारे हैं, छोटी उम्र के बालक हैं, सोलह-सोलह वर्ष की उम्र के युवा! परन्तु जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया है और अब सुना कि

(उन्होंने) तो दीक्षा ली है, अतीन्द्रिय आनन्द का पुष्ट करने के लिये दीक्षा ली है ओ...हो...! हमें भी वह लेना चाहिए – ऐसा सबको हो गया, एक को नहीं। भगवान के पास दीक्षा लेते हैं। तब उनके साथ रहनेवाले व्यक्ति को (ऐसा लगता है कि) अरे...रे...! मुझे इनकी देखरेख करने के लिये भेजा था और यह तो दीक्षा लेते हैं, घर में पूछेंगे... आहा...हा...! जिन्हें नहीं है चिन्ता का दूसरा विकल्प! अतीन्द्रिय आनन्द को साधने के लिये, स्वाद लिया है, आहा...हा...! उस समय वहाँ पर्याय होनेवाली है – ऐसा जहाँ निर्णय करते हैं, वहाँ उसमें वर्तते द्रव्य का निर्णय हो जाता है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

यह कहा न? **त्रिलक्षण परिणाम पद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य, स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता...** (अर्थात्) उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव को नहीं छोड़ता। सत्व अर्थात् द्रव्य को त्रिलक्षण अनुमोदना चाहिए। आहा...हा...! यह तीन लक्षण हैं – ऐसा जहाँ निर्णय करने जाते हैं, वहाँ उस पर्याय जो द्रव्य वर्तता है, उस समय वह होनेवाली पर्याय होती है, उसमें द्रव्य वर्तता है। इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जाती है। आहा...हा...!

लोगों को क्रमबद्ध की (बात) कठिन पड़ती है। आहा...हा...! एक के बाद एक पर्याय होती है परन्तु इसके बाद यही होगी – ऐसा नहीं है (ऐसा वे कहते हैं।) आहा...हा...! भाई! एक के बाद एक, ऐसे यह हार है न? देखो न! हार में एक के बाद एक (मोती में कोई मोती); आगे-पीछे है? जिस स्थान में है वहाँ है; पूर्व के स्थान में पूर्व और बाद के स्थान में बाद का है।

अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुए समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं, इसलिए और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिए तथा सर्वत्र परस्पर... आहा...हा...! (पहले) उत्पाद-व्यय कहा, (अब कहते हैं) **परस्पर अनुस्यूति का रचयिता सूत्र...** अन्दर जो डोरा है, वह सबमें धारावाही है। आहा...हा...! पीछे-पीछे के उत्पन्न होते हैं, वह उत्पाद; पहले-पहले के व्यय होते हैं, वह व्यय आहा...हा...! और धारावाहीरूप से लो तो है... है... ध्रुव,

आहा...हा... ! **परस्पर अनुस्यूति का रचयिता सूत्र...** अर्थात् सबमें धारावाही रहनेवाला डोरा। आहा...हा... ! उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहा है, तथापि उन सबमें रहनेवाला डोरा ध्रुव है। आहा...हा... ! ऐसा जो भगवान आत्मा, वह प्रत्येक पर्याय में वर्तता-डोरे की तरह है। आहा...हा... ! है ?

अनुस्यूति का रचयिता सूत्र अवस्थित... है। डोरा तो सर्वत्र है... है... है... है... है... भले ही पीछे का मोती पीछे में, पहले का (मोती) पहले में परन्तु डोरा तो सबमें धारावाही है। आहा...हा... ! ऐसी व्याख्या ! **त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि को प्राप्त होता है...**उसमें तीन लक्षण से वह हार प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। है न ? यह दृष्टान्त हो गया। अब सिद्धान्त (कहते हैं), आहा...हा... !

उसी प्रकार जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है... (नित्यवृत्ति अर्थात्) नित्य अस्तित्व, नित्य स्थायित्व, सदा वर्तना वह। आत्मा ! ऐसी नित्यवृत्ति-टिकना, ग्रहण किया हुआ है। नित्य त्रिकाल ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... आहा...हा... ! जिसने नित्य स्थायित्व ग्रहण किया है, **ऐसे रचित (परिणमित)...** ऐसे परिणमित **द्रव्य में...** आहा...हा... ! जिसने नित्य स्थायित्व ग्रहण किया है, ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्य में... आहा...हा... ! अमृतचन्द्राचार्य ने अमृत बहाया है।

अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रगट)... (दृष्टान्त में) स्थानों में प्रकाशित होते हुए... कहा था। उसी प्रकार (यहाँ पर) अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित होते हुए (कहा है)। द्रव्य की जिस-जिस समय की अवस्था है, वहाँ-वहाँ वह-वह पर्याय प्रकाशित थी। आहा...हा... ! धर्म करना हो, उसे इतना सब समझना पड़ता होगा ? बापू ! धर्म की पर्याय कैसे होती है ? जिस समय जो परिणाम (होना है, वह) **अपने-अपने अवसरों में...** अपने-अपने काल में वह पर्याय होती है। आहा...हा... ! आगे-पीछे नहीं। आहा...हा... ! शास्त्र में कथन आता है कि साधक जीव को अल्प काल में केवलज्ञान होगा। आता है न ? परन्तु वह भी क्रमबद्ध में ही है; अर्थात् जिसने आत्मा के आनन्द का अनुभव किया और जिसे आनन्द में रमणता जमी है, उसे केवलज्ञान प्राप्त करने का काल अल्प ही है। आहा...हा... आ...हा... ! ऐसी बात है।

अपने-अपने अवसरों में... जैसे (दृष्टान्त में) अपने-अपने स्थान में कहा था (इसी प्रकार) आत्मा के **अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रगट) होते हुए समस्त परिणामों में...** सभी परिणाम, अपने-अपने काल में होनेवाले परिणाम; आहा...हा...! चिन्तामात्र छोड़ दी है। आहा...हा...! जिसके जिस समय जो परिणाम होते हैं – अपने-अपने समस्त परिणाम, हाँ! आहा...हा...! अपने-अपने अवसर में अर्थात् काल में; पहले क्षेत्र था, अब काल है। **अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रगट) होते हुए समस्त परिणमों में, पीछे-पीछे के अवसरों पर पीछे-पीछे के परिणाम...** आहा...हा...! भविष्य के भी पहले समय में होनेवाले वे पीछे-पीछे के हैं। वर्तमान में हुए वे स्वयं; और बीत गये – गये वे गये, वे व्यय में गये; होंगे वे उत्पाद में (गये) और वर्तमान में भी वह उत्पाद है, वह ध्रुवरूप से प्रत्येक को है... है... है... है... है... आहा...हा...! ऐसी व्याख्या! वाद-विवाद से कुछ पार नहीं पड़ता, बापू!

इस प्रकार जिसे (निर्णय) होता है, उसे काललब्धि पक गयी है। आहा...हा...! अपने-अपने अवसर में परिणाम होते हैं... आहा...हा...! पीछे-पीछे के अवसर में उस-उस काल में वे होते हैं; पहले-पहले के अवसर में उस-उस काल में हो गये। आहा...हा...! समस्त परिणामों में प्रकाशित-सभी परिणामों में (प्रकाशित) और (पीछे-पीछे के अवसरों में) पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते होने से, **और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं इसलिए...** आहा...हा...! जो परिणाम उनके समय में हो गये, वे अब कोई होनेवाले नहीं हैं और पीछे-पीछे के होंगे और उनमें दोनों में... आहा...हा...! पीछे-पीछे के होंगे, वह उत्पाद में गया; हो गये वह व्यय में गया; आहा...हा...! और परस्पर अनुस्यूति (अर्थात्) प्रत्येक में है... है... है... उस-उस समय में है... है... बाद का उत्पाद और पहले का व्यय – ऐसा नहीं है... है... बस! आहा...हा...! जैसे इन सबमें डोरा है; उसी प्रकार प्रत्येक परिणाम के काल में वह धारावाहिक आत्मा है। आहा...हा...! भाई! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, आहा...हा...!

आज एक पुस्तक आयी है। तारणस्वामी है, उन्हें (माननेवाली) कोई बहिन है ऐसा (लिखती है) कि भगवान के शास्त्र में जिनबिम्ब, जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर है।

वे तारणस्वामीवाले लोग कुछ नहीं रखते न ? और तुम ऐसा कहो कि तारणस्वामी यह नहीं मानते थे, तब तो फिर इसका अर्थ हुआ कि वे मिथ्यादृष्टि थे – ऐसा तुम अवर्णवाद करते हो। जिनबिम्ब, जिनप्रतिमा (जिन भवन) अनादि के हैं। एक पुस्तक आयी है। बात सच्ची है। असंख्य जिनप्रतिमाएँ स्वर्ग में हैं, इसी प्रकार असंख्य द्वीप-समुद्र में अकृत्रिम हैं। ढाई द्वीप में संख्यात कृत्रिम हैं, सब है; प्रतिमा नहीं है – ऐसा नहीं है। शास्त्र में तो यहाँ तक आता है कि जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्मों का नाश होता है। आता है न ? धवल में ! आहा...हा... ! उसके एक अक्षर और एक पद में भी फेरफार कैसे होगा ? शास्त्र के एक भी अक्षर और एक भी पद से भ्रष्ट होवे तो वह मिथ्यादृष्टि है – ऐसा कठिन पड़ता है। (पुस्तक में लिखते हैं कि) इन्हें (तारणस्वामी को) तुम ऐसा मानते हो कि वे मूर्ति को नहीं मानते, तब तो फिर सूत्र का उत्थापन किया तो तुम मिथ्यादृष्टि सिद्ध करते हो। उनका लक्ष्य जाने पर शुभ उपयोग है, धर्म नहीं परन्तु वस्तु है। वह भी अपने-अपने अवसर में वहाँ प्रतिमा है, मन्दिर है, जिनबिम्ब है, आहा...हा... ! यह कोई पक्ष की बात नहीं है, यह कोई पन्थ नहीं है, यह तो भगवान के द्वारा कथित पन्थ-मार्ग है, है वही है। समझ में आया ? इसमें मूर्ति और जिनबिम्ब नहीं है – ऐसा कहने जाये तो सूत्र और सूत्र के पद के अर्थ में (फेरफार कर दिया है)। सूत्रपाहुड़ में आता है न ? सूत्र के एक भी पद और एक भी अक्षर से भ्रष्ट हो तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! भले ही (जिन प्रतिमा) शुभभाव का निमित्त है; परन्तु वह है ही नहीं ? आहा...हा... ! वह है इसलिए उसमें धर्म है – ऐसा नहीं है परन्तु वह चीज है। ज्ञानी को भी उसके वन्दन-पूजा का भाव उसके काल में आता है; भले ही वह पुण्यबन्ध का कारण है परन्तु वह आता है। आहा...हा... ! उस-उस समय के वे पूजा के-भक्ति के परिणाम आते हैं, भाई ! और उस-उस समय सामने मन्दिर आदि चीज हो, उसे भी वह सिद्ध करते हैं, आहा...हा... ! मन्दिर और जिनबिम्ब नहीं है (– ऐसा माननेवाले ने) सूत्र के वचन, वीतराग के सिद्धान्त-वचन को उत्थापित कर दिया है। आहा...हा... !

मल्हारगढ़ गये थे तब तुम थे ? मल्हारगढ़ ! वहाँ गये तो वह ढोलक बजानेवाला गीत में मूर्ति का विरोध करने लगा। उन लोगों को ऐसा है – मूर्ति का विरोध ही करते हैं।

लोगों को पक्ष हो जाता है फिर सूझ नहीं पड़ती; और फिर वह भूलकर जिनबिम्ब और जिनप्रतिमा से भी धर्म होता है – ऐसा मानें तो वह भी विपरीतता है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म मार्ग है। बापू! अलौकिक मार्ग है!

पाठ में तो ऐसा आया है न? कि जिनबिम्ब दर्शन निद्धत और निकाचित कर्म का (नाश होता है।) ऐसा तीव्र शुभभाव है। सम्यग्दृष्टिसहित है, उसकी बात है। उसे रस नहीं है, इसलिए बहुत घट जाता है। निद्धत और निकाचित होवे उसकी भी (स्थिति घट जाती है)। आहा...हा...! सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हाँ! अकेले दर्शन भक्ति करे वह कहीं (स्थिति को नहीं घटाते) आहा...हा...! इस त्रिलक्षण (परिणाम पद्धति में) प्रवर्तमान द्रव्य है, उसकी दृष्टिसहित के जो परिणाम आते हैं (उनकी बात है)। आहा...हा...! यह कोई पक्ष नहीं है, यह कोई पन्थ नहीं है, वाड़ा नहीं है; यह तो अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवलियों, सन्तों जिस पन्थ में गये, वह पन्थ यह है, इसमें कोई पक्ष नहीं है। मूर्ति को स्थापित किया तो वहाँ जड़ को स्थापित किया (– ऐसा कोई कहता है) परन्तु बापू! वह जड़ तो है परन्तु ज्ञानी को भी स्वरूप स्थिरता न हो, तब छह आवश्यक हैं न? छह आवश्यक! पूजा आदि उस समय आते हैं। ऐसा है भाई! उस-उस समय वह आते हैं, तथापि उनकी दृष्टि का जोर वहाँ नहीं है। आहा...हा...! उन परिणामों में प्रवर्तमान जो द्रव्य है, वहाँ दृष्टि है। आहा...हा...! फटाक... फटाक...! दो टुकड़े हो जायें! राग और भगवान – दो भिन्न (हो जायें) आहा...हा...!

पर्याय में प्रवर्तमान द्रव्य है और यह तो द्रव्य का उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव है। स्वभाव में प्रवर्तमान स्वभाववान... आहा...हा...! उस पर दृष्टि जाने पर उसका अनुमोदन होता है कि यह है, इसे आनन्द आता है। उस-उस समय में होता है, इसलिए उसे पुरुषार्थ नहीं है – ऐसा नहीं है, प्रभु! आहा...हा...! उस-उस समय में परिणाम होते हैं, बापू! आठ वर्ष का बालक हो या आठ वर्ष की बालिका हो, वह भी समकित प्राप्त करते हैं। आहा...हा...! यह तो बालिका की बात कही। आठ वर्ष की बालिका हो, वह समकित प्राप्त करती है! लड़का हो वह फिर केवलज्ञान प्राप्त करता है! आहा...हा...! क्योंकि अन्दर आत्मतत्त्व है न! और तत्त्व का-अस्तित्व का मौजूदगी में अनन्त... अनन्त...

ध्रुवस्वरूप है न? आहा...हा...! भले ही वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव त्रिलक्षण में प्रवर्तता है, तथापि वह कायम रहनेवाला द्रव्य उसमें वर्तता है, वह द्रव्य है न? आहा...हा...! उस द्रव्य पर दृष्टि जाने से... वह दृष्टि जाती ही है। यहाँ तो यह कहते हैं। यहाँ तो त्रिलक्षण परिणामपद्धति में प्रवर्तमान द्रव्य है – ऐसा जहाँ निर्णय करने जाये, इसलिए उसकी दृष्टि द्रव्य पर ही जाती है। आहा...! ऐसा है।

यहाँ तो यह कहा है, अपने-अपने अवसर में परिणाम होते हैं, आगे-पीछे नहीं। (दिगम्बर के बड़े विद्वान के साथ) बड़ी चर्चा हुई। (उन्होंने कहा कि) ऐसा नहीं है, एक के बाद एक परिणाम होते हैं परन्तु यही हो – ऐसा नहीं है, क्रमनियमित नहीं है। (यहाँ तो कहते हैं कि) क्रम से (होते हैं) और जो होना हो, वही होता है। आहा...हा...! क्या हो? (तत्पश्चात्) उन्होंने यह कहा कि सोनगढ़ का साहित्य डुबो देगा! अरे... प्रभु...! बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहा...हा...! ऐसा अवसर प्राप्त हुआ बापू! किसी को क्या कहे? क्यों कहें? इससे तुझे क्या काम है?

यहाँ तो कहते हैं कि अपना द्रव्य त्रिलक्षण (परिणामों की) परम्परा में वर्तता (द्रव्य है)। यह तो द्रव्य प्रवर्तता है न? वह प्रवर्तमान द्रव्य उसके स्वभाव में वर्तता है। उस स्वभाव पर जहाँ दृष्टि जाती है, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है और अतीन्द्रिय आनन्द आता है। पुरुषार्थ और यह सब वहाँ आया – अकर्तापना आया, पुरुषार्थ आया, आनन्द आया। अरे...! अनन्त गुणों की संख्या का पार नहीं, उन अनन्त गुणों का व्यक्तरूप से सभी गुणों का अंश आया। प्रात:काल नहीं आया था? योग का अंश भी क्षय हुआ है। आहा...हा...! यह क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन होने पर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि होने पर उसके योग्य अविरति... क्योंकि चारित्रगुण है, उसका अंश भी प्रगट होता है, भाई! आहा...हा...! अरे...रे...! और प्रभु में अनन्त गुण में एक अयोग नाम का गुण है। आहा...हा...! अपने-अपने अवसर में उत्पन्न होनेवाले परिणामों में वर्तता द्रव्य है। उसमें जाने पर... आहा...हा...! उससे अयोग नाम का गुण है, वह भी चौथे गुणस्थान में आँशिक प्रगट होता है। आहा...हा...! अरे...! अयोग तो चौदहवें (गुणस्थान में) आयेगा न, भाई? आहा...हा...! अयोगपने का अंश प्रगट होता है, प्रभु! आहा...हा...! भगवन्त, तू कितना महान! आहा...हा...! जहाँ तेरा

स्वीकार होने पर अयोग का एक अंश भी प्रगट होता है ! आहा...हा... !! यह वस्तुस्थिति है, इसमें किसी वाद-विवाद को स्थान नहीं है। ऐसी स्थिति है।

अपने-अपने अवसर में होनेवाले, आगे-पीछे नहीं। एक बार कहा था - भगवान के पास भक्ति करके आने के बाद कहा था, बहुत वर्ष हुए - कहा आगे-पीछे अर्थात् क्या ? आगे-पीछे यह क्या ? यह पर्याय यहाँ होनेवाली है, वह यहाँ होगी और वहाँ की यहाँ होगी इसकी व्याख्या क्या ? बापू ! स्व-काल में होती है तब होगी। इसमें आगे-पीछे का प्रश्न कहाँ ? आहा...हा... ! दुनिया माने न माने, सत्य तो यह है। (दिगम्बर) ऐसा कहते हैं कि तुम ढूँढ़िया (स्थानकवासी) में से आये हो और तुम्हारी बात सच्ची और हमारी खोटी ? प्रभु ! हम कहीं से भी आये तेरा रहने दे। यह सब दिगम्बर और यह सब पण्डितों की सभी बातें खोटी ? स्थानकवासी की भी खोटी और श्वेताम्बरों की भी खोटी और दिगम्बरों की भी खोटी ? परन्तु दिगम्बर का क्या कहना है ? - यह जाना नहीं है, बापू ! इसमें जन्म लिया इसलिए दिगम्बर हो गये (- ऐसा नहीं है)।

श्रोता : मोक्षमार्गप्रकाशक का सातवाँ अधिकार दिगम्बरों के लिए ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर नहीं, वस्तु ही यह है। दिगम्बर होने पर भी मिथ्यात्व शल्य रह जाता है, उसके अभाव के लिए सातवें (अधिकार में) बात की है। पहली शुरुआत में बात की है (कि) दिगम्बर में जन्मने पर भी मिथ्यात्व का एक अंश (रह जाता है।) व्रतधारी साधु हो परन्तु मिथ्यात्व का शल्य रह जाता है। आहा...हा... ! जबकि (जयपुर का एक व्यक्ति) ऐसा कहता है 'दिगम्बर में जन्म लिया वे सब समकिती तो हैं।' हमारे 'मूलचन्दजी' ऐसा कहते थे कि स्थानकवासी में जन्म लिया, वे समकिती तो हैं। लो ! वे ऐसा कहते थे। आहा...हा... ! बापू ! वस्तु में कहाँ स्थानकवासी और कहाँ श्वेताम्बर था ? यह तो वस्तु का स्वरूप है। दिगम्बर है, यह तो जैसी वस्तु की स्थिति है, वैसा वर्णन करता है; यह कोई पन्थ और पक्ष नहीं है। आहा...हा... ! कठिन पड़ता है, प्रभु ! परन्तु है तो यह ! दुनिया भले ही माने या न माने। आहा...हा... !

पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं इसलिए तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह... धारावाही प्रवाह, हाँ। (दृष्टान्त में) डोरा था। **अनुस्यूति**

रचनेवाला प्रवाह... (अर्थात्) एक के बाद एक। **अवस्थित होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है...** भगवान आत्मा और प्रत्येक परमाणु (प्रत्येक में ऐसा स्वभाव है) प्रत्येक का जानना तो ज्ञान में होता है या नहीं? या पर में होता है? जड़ परमाणु में भी उसका त्रिलक्षणपना (प्रसिद्ध है।) प्रगट अवस्था-पर्याय है, वह उस-उस समय में है। पीछे की पीछे समय में है, पहले की पहले समय में है परन्तु यह ज्ञान किसे है? जड़ को है? आहा...हा...!

सर्वत्र वह अनुस्यूति (रचनेवाला) प्रवाह (अर्थात् कि) परिणाम... परिणाम... परिणाम... परिणाम... परिणाम... (ऐसा) प्रवाहक्रम। विस्तारक्रम का तो दृष्टान्त दिया था, यह प्रवाहक्रम है। परिणाम, एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक... जो होनेवाला है, वही होगा। गया वह गया। वह भी उसके समय में हुआ था। उसका पूरा प्रवाह गिनो तो वह प्रवाह टिकता होने से, प्रवाहरूप से तो प्रत्येक परिणाम को टिकता देखकर त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। आहा...हा...! उत्पाद भी है, व्यय भी है और ध्रुव भी है। एक परिणाम में तीनपना है। आहा...हा...! समझ में आया? लोगों को यह बात बहुत कठिन पड़ती है (इसलिए) लोग सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिमा ले लो, साधु हो जाओ, यह करो-यह छोड़ो, रस छोड़ो; रस छोड़े इसलिए (कहते हैं) इस साधु ने रस छोड़ा! अरे! परन्तु अभी पहले मिथ्यात्व तो छोड़ा नहीं, रस कहाँ से छोड़ा? आत्मा का रस आये बिना राग का रस नहीं टूटता। आहा...हा...! और यह आत्मा का रस तब आता है कि उस-उस समय के परिणाम वहाँ-वहाँ होते हैं, हो गये हैं, वे अब नहीं होते, नहीं हुए, वे उसे समय होते हैं, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव उस-उस समय का गिनने पर वे है... है... है... प्रवाह (रूप से है), वह ध्रुव। आहा...हा...! एक ही पर्याय में तीन लागू पड़ते हैं। यह तो समयसार में प्राप्त विकार्य व निर्वृत्य कहा था न? यह प्रवचनसार है। जिस समय के जो परिणाम होते है, वह प्राप्य हैं; पूर्व की अपेक्षा से बदला, इसलिए वह विकार्य है; है तो वही का वही; और उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से उसे निर्वृत्य कहा। आहा...हा...! गजब बात है। सत्य का जाहिरपना, सत्य का प्रसिद्धपना। ओ...हो...! यहाँ यह कहा न? **त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है।** आहा...हा...!

जहाँ यह पर्याय उत्पन्न (होने का) काल है और फिर भी उत्पन्न (होने का) काल होगा, वह उसके काल में होगी और उत्पन्न काल हो गया, वह समय होने पर वह गया और... है... है... प्रवाह की अपेक्षा से ध्रुव है। उसमें प्रवर्तमान द्रव्य, उस द्रव्य की दृष्टि होने पर उसे त्रिलक्षणपने का सच्चा निर्णय होता है। आहा...हा...! ऐसा है।

भावार्थ – टीका की भाषा जरा कठिन है न! इसलिए भावार्थ में सादी भाषा में (समझाते हैं।)

भावार्थ : प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है... प्रत्येक द्रव्य अर्थात् वस्तु सदा स्वभाव में रहता है। **इसलिए सत् है...** द्रव्य है। **वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है...** आहा...हा...! वह सत् द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत् है और सत् द्रव्यलक्षणं – यह सूत्र आता है न ? वरना तो आत्मा में अनन्त गुण में एक उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण भी है। आहा...हा...! आत्मा में उत्पाद-व्यय और ध्रुव नाम का गुण है, जिससे उसे उस-उस समय की वह पर्याय उत्पन्न होती है। उस गुण के कारण, गुण का धारक (द्रव्य है ऐसी) द्रव्य दृष्टि हुई, उसके कारण (उस-उस समय के परिणाम उत्पन्न होते हैं), वह उत्पाद करना पड़े – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात है। **वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है...** परिणाम, हाँ!

जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश... पहली बात अलग थी, भाई! समानजातीय-असमानजातीय वह दूसरी बात थी, यह दूसरी बात है। वहाँ तो द्रव्य की पर्याय अकेली सीधी न बताकर समानजातीय विभावपर्याय में परमाणु-परमाणु की पर्याय बतायी। असमानजातीय में जीव और जड़ की (द्रव्यपर्याय) बतलायी। वह तो द्रव्य-पर्याय के प्रकार बतलाये और फिर गुण-पर्याय के दो भेद (बतलाये) – स्वभाव (गुण-पर्याय) और विभाव (गुण-पर्याय)। वह अलग शैली है, यह अलग बात है। यह तो अन्तर में जिस समय जो परिणाम हो, वह परिणाम उसके उत्पाद का काल था और फिर भी जो परिणाम होंगे, वे उसके उत्पाद के काल में होंगे और हुए वे भी उसके उत्पाद के काल में हुए थे, वे गये। इस अपेक्षा से एक-एक पर्याय को पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट; अपनी अपेक्षा से उत्पन्न; है... है... है... है... है...। इस अपेक्षा से ध्रुव (कहते हैं।)

आहा...हा...! वीतरागमार्ग! बापू जिसका फल संसार का अन्त! आहा...हा...! इस चौरासी के अवतार का अन्त! भाई! आहा...हा...! जिसमें भव का अन्त है।

त्रिलक्षण परिणाम में वर्तता द्रव्य... आहा...हा...! इसका स्वीकार होने पर वहाँ भव का अन्त आता है। आहा...हा...! मोक्ष की पर्याय शुरु होती है, इसलिए सम्यग्दर्शन भी मुक्ति की एक पर्याय है। भगवान ध्रुव मुक्त वस्तु है, उसकी एक पर्याय है। आहा...हा...! पूर्ण मुक्त भले ही केवलज्ञान हो तब हो, परन्तु यहाँ मुक्तस्वरूप है तो मुक्त की पर्याय शुरु होती है। आहा...हा...! जहाँ अयोग गुण का भी अंश प्रगट होता है तो भगवान तो अबद्ध और मुक्त है तो उसका भी अंश-मुक्त का अंश भी व्यक्त-प्रगट होता ही है। आहा...हा... हा....! तब उसने मुक्त को जाना और माना कहा जाता है। जाना और माना कब कहलाता है? मुक्तस्वरूप है, उसे जाना-माना तब कहलाता है कि मुक्त की पर्याय की शक्ति में से अंश व्यक्तता हो। आहा...हा...! यहाँ कहते हैं। **(जैसे द्रव्य के) विस्तार का छोटे से छोटा अंश वह प्रदेश है; उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश वह परिणाम है।** जैसे विस्तार का छोटा अंश है; उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाह का ऐसा (ऊर्ध्व है) और विस्तार ऐसा (तिरछा) है। **प्रत्येक परिणाम स्व काल में अपने रूप से उत्पन्न होता है...** यह कठिन पड़ता है न?

विशेष कहा जायेगा...।

प्रवचन नं. १०३ **दिनाङ्क १३ जून १९७९**

प्रवचनसार ९९ (गाथा का) भावार्थ थोड़ा चला है। फिर से (लेते हैं।) **प्रत्येक द्रव्य...** अर्थात् छहों द्रव्य आये। प्रत्येक द्रव्य अर्थात् सभी द्रव्य आये। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणुओं, असंख्य कालाणुओं, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश - एक बात। **...सदा स्वभाव में रहते हैं...** वे द्रव्य सदा स्वभाव में रहते हैं; **इसलिए सत् है।...** उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव है, उसमें वह सत् स्थित है।

वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। आहा...हा...! कितना स्पष्ट है? प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में है और स्वभाव है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव है;

अर्थात् उस द्रव्य के स्वभाव में उत्पन्न (होने के) काल में पर्याय उत्पन्न होती है, द्रव्य नहीं – द्रव्य उत्पन्न होता है – ऐसा नहीं है। द्रव्य का जो स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुव (है), उसमें वह द्रव्य स्वयं वर्तता है; वह द्रव्य, उत्पाद को करता है। आहा...हा...! यह तो कर्म के कारण पर्याय होती है – यह बात इसमें नहीं रहती है।

श्रोता : व्यवहार कथन आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कथन तो निमित्त का ज्ञान कराने के (लिए है।) श्वेताम्बर में तो अकेले कर्म से ही सब बातें आती है। यहाँ सम्प्रदाय में भी अभी तो यही हो गया है।

यहाँ कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य सिद्धान्त और वस्तुस्थित है। वह द्रव्य सदा अपने स्वभाव में रहता है; किसी पर की पर्याय में अथवा पर के गुण में नहीं जाता। आहा...हा...! वह स्वभाव (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है।) आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य की अपनी वर्तमान पर्याय के उत्पाद में उसका अपना स्वभाव है, इसलिए उत्पन्न होता है। आहा...हा...! उसके उत्पन्न (होने के) लिए उसे दूसरे द्रव्य के स्वभाव की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दूसरे द्रव्य का स्वभाव भी उसके उत्पाद-व्यय में है। आहा...हा...!

जो जड़कर्म है, वह भी परमाणु द्रव्य है और द्रव्य है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव में है और उसका (द्रव्य का) स्वभाव है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, इसलिए कर्म भी उसकी अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है, पूर्व की पर्याय से व्यय होता है, कायम रहने की अपेक्षा ध्रुव है; पर्याय भी, हाँ! आहा...हा...! अब जब कर्म अपने स्वभाव में – उत्पाद-व्यय-ध्रुव में वर्तता है, वह आत्मा का विकार करावे – यह बात कहाँ रही? सम्प्रदाय में अभी यह बड़ा विवाद है। यहाँ तो इनकार करते हैं।

स्वभाव उत्पाद... आहा...हा...! एक समय में उस द्रव्य का स्वभाव उत्पाद-व्यय और ध्रुवस्वरूप है। उस समय में वह उसके परिणाम हैं – ये तीन परिणाम हैं। आहा...! तीन भेद हुए न! उत्पाद-व्यय और ध्रुव – ये द्रव्य के तीन परिणाम हैं। आहा...हा...!

जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश... वस्तु जितनी चौड़ी है, उसके जो प्रदेश हैं, उनका छोटे से छोटा अर्थात् जो प्रदेश है, वह छोटे से छोटा भाग है। भले ही

वह अनन्त हों या असंख्य हों परन्तु वह द्रव्य के विस्तार का... विस्तार (अर्थात्) ऐसे चौड़ाई; उसमें छोटे से छोटा अंश, वह प्रदेश है। **उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश, वह परिणाम है।** आहा...हा...! कितनी स्पष्ट गाथा है! फिर भी गड़बड़ चलती है।

विकार भी उत्पादरूप से द्रव्य स्वयं करे, वह उसका स्वभाव है। यहाँ तो स्वभाव कहा! विकार स्वभाव!? वहाँ यह विवाद आया था न? (संवत्) २०१३ के वर्ष में! (दिगम्बर के एक बड़े विद्वान् ऐसा कहते थे कि) विकार, कर्म के बिना होवे तब तो वह स्वभाव हो जाएगा... और अपने सवेरे यह आया था - द्रव्य आस्रव के बिना भाव आस्रव नहीं होता। जड़ निमित्तरूप से होता है, उसके बिना भावास्रव नहीं होता - परन्तु यह तो मात्र निमित्त का ज्ञान कराया है। वह होता तो द्रव्य के अपने उत्पाद-व्यय-(ध्रुवस्वभाव से) है। द्रव्य अपने स्वभाव में है और वह स्वभाव, उत्पाद-व्यय-ध्रुव है और वह उत्पाद उस समय का जो होता है, उस समय का जो होता है, वही होता है। ओहो... हो...हो...!

श्रोता : अनेकान्त नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त आया न! दूसरा उल्टा-सीधा नहीं होता; दूसरे से नहीं होता; आगे-पीछे नहीं होता - यह अनेकान्त है। ऐसी बात है। आहा...हा...! आचार्यों ने, दिगम्बर सन्तों ने परम सत्य को समाज के समक्ष रखने में कसर नहीं रखी है कि मैं ऐसी बात करूँगा तो दुनिया को बैठेगी या क्या! आहा...हा...!

श्रोता : मुनियों को समाज की क्या दरकार!

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें तो किसी की दरकार नहीं है। वस्तु की स्थिति है, तदनुसार प्रसिद्ध की है। आहा...हा...! जैन में लाकड़ु यह - कर्म के कारण होता है; कर्म के बिना हो जाए तो स्वभाव (हो जाए - ऐसा कहते हैं।) यहाँ तो कहते हैं, उत्पाद-व्यय-ध्रुव (स्वभाव है, उसमें) विकार भी लेना, हाँ! अकेले अविकारी (परिणाम) नहीं। उत्पाद में विकारी-अविकारी पर्याय (दोनों लेना।) यह उत्पाद-व्यय और ध्रुव, वह स्वभाव है। लो, यहाँ तो स्वभाव कहा! विकार को स्वभाव कहा! आहा...हा...! **स्पष्ट**

भवनम् स्वभावः अपनी पर्याय में होता है, इसलिए उसे स्वभाव (कहा।) आहा...हा... ! अभी पण्डितों में बहुत विवाद है। आहा...हा... !

क्या कहा ? उत्पाद-व्यय-ध्रुव परिणाम है। द्रव्य सदा ही स्वभाव में है। उसका स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। आहा...हा... ! वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसके परिणाम हैं। द्रव्य, उत्पन्न नहीं होता; द्रव्य, व्यय नहीं होता; द्रव्य, ध्रुव नहीं रहता; ये द्रव्य के तीन परिणाम हैं। उत्पन्न होने का परिणाम, व्यय का परिणाम और ध्रुवरूप (रहना) - तीन भाग किये न ? (इसलिए परिणाम कहा है।) आहा...हा... ! वह परिणाम हैं। **जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश, वह प्रदेश है...,** आकाश के या जीव के (किसी के भी) असंख्य प्रदेशों में से कोई एक प्रदेश। **उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाह का...** आहा...हा... ! जो द्रव्य का स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है, उसमें वह द्रव्य (प्रवर्तता है।) प्रवाहक्रम में जो पर्याय होनी है, उस प्रवाह का छोटे से छोटा अंश, वह परिणाम है। आ...हा... ! चाहे तो जीव में विकारी मिथ्यात्व होवे तो भी वह उत्पाद उसके द्रव्य का स्वभाव है और स्वभाव है, (वह) उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। मिथ्यात्व भी उसका स्वभाव है - ऐसा कहा ! आहा...हा...हा... !

जो वस्तु-प्रत्येक द्रव्य है, भगवान जिनेन्द्रदेव ने जो देखा है कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव में है, पर को स्पर्श नहीं करती, पर को स्पर्श नहीं किया और अपना जो स्वभाव है, वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव है, क्योंकि उत्पाद-व्यय और ध्रुव, वह सत् है और सत् वह द्रव्य है। आहा...हा... ! ऐसी बात को (समझने की) फुरसत कहाँ है ? सत् का - वास्तविक पदार्थ का निर्णय क्या ? आहा...हा... ! कहते हैं कि यह द्रव्य जो है - आत्मा, उसका प्रवाह अर्थात् पर्याय का प्रवाहक्रम; जिस प्रवाह के क्रम में जो पर्याय आनेवाली है, वही आयेगी; उल्टी-सीधी पर्याय नहीं होगी और उस प्रवाह के उत्पाद में द्रव्य ही आयेगा। द्रव्य के कारण उत्पाद है। आहा...हा... ! कर्म के कारण से आत्मा में मिथ्यात्व का उत्पाद नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! उस प्रवाहक्रम में जीव के राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, वह उसका स्वभाव है। वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव उसका स्वभाव है और स्वभाव में द्रव्य सदा रहता है। आहा...हा... ! अतः उस आत्मा से वह

मिथ्यात्व और राग-द्वेष होते हैं, कर्म से नहीं। कठिन काम! जगत को सत्य सुनने नहीं मिलता, बेचारे कहाँ (जाएँ?) कर्म करता है, कर्म करता है, विकार को कर्म करता है; अपना आत्मा कर्म करता और कर्म भोगता है (- ऐसा अज्ञानी मानते हैं।) यहाँ भगवान इनकार करते हैं।

दूसरे द्रव्य के परिणाम, दूसरे द्रव्य के परिणाम को करते हैं - ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहा...हा...! तब कहते हैं कि स्वरूप क्या है? यही कि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में है। एक निगोद का जीव - लहसुन, प्याज और हरी काई, वहाँ एक अँगुल के असंख्यातवें भाग में अनन्त आत्माएँ और उनके साथ प्रत्येक जीव/आत्मा को तैजस और कार्मण दो-दो शरीर! वह निगोद का जीव भी... आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य आया न? (इसलिए) उसका अपना मिथ्यात्व का भाव (उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव के कारण होता है।) आत्मा उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव में (प्रवर्तता है।) उत्पाद-व्यय-ध्रुव में उत्पाद उस समय के प्रवाहक्रम में-कालक्रम में जो पर्याय होनी है, उसके प्रवाहक्रम में वह उत्पाद है; वह उत्पाद द्रव्य के कारण है। आहा...हा...! कठिन बात!

दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम यह शुभराग है, इसे धर्म मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! वह मिथ्यादृष्टिपना जीव के द्रव्य का स्वभाव है, आहा...हा...! ऐसी बात सुनने मिलना कठिन पड़ती है, बापू! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ प्रभु की यह वाणी है। आहा...हा...! न्याय से यह बैठ जाये ऐसी है परन्तु सुनने को मिले तब न? आहा...हा...! अभव्य को भी जो मिथ्यात्व का उदय होता है... आहा...हा...! उस अभव्य का जीव भी स्वयं सदा अपने स्वभाव में है और उसका स्वभाव वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव है; अत: जो मिथ्यात्व के उत्पाद में आता है, वह द्रव्य के प्रवाहक्रम में-उस परिणाम में द्रव्य आता है। आहा...हा...!

बहुत से ऐसा कहते हैं कि एकेन्द्रिय निगोद के जीव हैं, उन्हें कर्म का जोर है (वहाँ से) बाहर आने के बाद मनुष्य हुआ, उसे कर्म का जोर कम है। इस बात से भगवान यहाँ इनकार करते हैं। आहा...हा...! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य... भगवान ने अनन्त द्रव्य देखे हैं,

अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, एक आकाश (ऐसे) छह द्रव्य देखे हैं। जाति से छह और संख्या से अनन्त हैं। प्रत्येक द्रव्य एक समय में अपने स्वभाव में वर्तता है। आहा...हा...! और उसका स्वभाव, वह उत्पाद -व्यय और ध्रुव है। इसलिए उसे प्रवाहक्रम में जो परिणाम होने हैं, वे होते हैं। उस समय वे परिणाम प्रवाहक्रम में आते हैं, वहाँ वह द्रव्य का उत्पाद है। द्रव्य का परिणाम है, वह द्रव्य का परिणाम है। आहा...हा...! ज्ञानावरणीय के कारण ज्ञान रुका, दर्शनमोहनीय के कारण समकित रुका – सभी बातें मिथ्या हैं। आहा...हा...! अरे...रे...!

वीतराग त्रिलोकनाथ, द्रव्य की स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा पीटते हैं कि जो द्रव्य है... आहा...हा...! उसे पहले समय विकार नहीं था (अर्थात्) मन्द था और दूसरे समय तीव्र आया तो कहते हैं कि क्यों आया? आहा...हा...! (तो कहते हैं कि) प्रवाहक्रम में वे परिणाम उस द्रव्य में उत्पन्न होनेवाले थे आहा...हा...! समझ में आया? भाई! ऐसी वस्तु है, दुनिया को कठिन पड़ती है, कहीं निर्णय का ठिकाना नहीं है। आहा...हा...! भक्ति का भाव जिस समय आनेवाला है, उस समय में उत्पादरूप से उसका उत्पाद-व्यय ध्रुवस्वभाव है, इसलिए उस समय प्रवाहक्रम में उत्पाद आयेगा। आहा...हा...! समझ में आया?

प्रत्येक परिणाम स्वकाल में अपनेरूप से उत्पन्न होता है... आहा...हा...! प्रत्येक परिणाम! फिर मिथ्यात्व का (परिणाम हो या) केवलज्ञान का, समकित का... आहा...हा...! चारित्र का (परिणाम हो)। यह समकित का परिणाम उत्पादरूप से उसके प्रवाहक्रम में जब आना है, (उस समय) वह द्रव्य उस परिणामरूप से उत्पन्न होता है। आहा...हा...! यह कर्म के कारण वहाँ समकित पाया है अथवा गुरु की देशना सुनी, इसलिए पाया है – ऐसा नहीं है। यहाँ तो कहते हैं – प्रवाहक्रम में वह सम्यक् की पर्याय के परिणाम आना थे, वह उत्पाद, द्रव्य का परिणाम है और वह तीन परिणाम होकर द्रव्य का स्वभाव है और वह द्रव्य उस स्वभाव में वर्तता है। आहा...हा...! भाषा तो स्पष्ट है, बापू! अभी तो कर्म के कारण विकार होता है... कर्म के कारण विकार होता है... (ऐसी प्ररूपणा चलती है।) यहाँ प्रभु इनकार करते हैं। बात स्पष्ट चली है।

तेईस वर्ष पहले (बात चली है) (उन विद्वान ने ऐसा कहा कि) कर्म के कारण ही विकार होता है, वरना विकार स्वभाव हो जाये, उन्होंने ऐसा कहा। (तब) मैंने कहा विकार अपने से-षट् कारक के परिणमन से होता है। पञ्चास्तिकाय की ६२ गाथा! वहाँ बहुत अधिक विद्वान् थे। जिस समय में इसे विकार होना है, आहा...हा...! उस समय वह विकार के परिणाम द्रव्य ने किये हैं, वे द्रव्य के परिणाम हैं, कर्म के कारण नहीं। कर्म परद्रव्य है, वह कर्म ही उसके क्रम में-प्रवाहक्रम में जो परिणाम आनेवाले हैं, वे परिणाम (उसके स्वभाव के कारण आयेंगे)। उत्पाद-व्यय-ध्रुव के स्वभाव में वे कर्म के परमाणु हैं और वे परमाणु परिणामरूप से आये हैं। आहा...हा...! परमाणु ज्ञानावरणीयरूप से परिणमते हैं, उस समय में उन परमाणुओं में वह पर्याय उत्पन्न होने का-उत्पाद का उसका स्वभाव है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

प्रत्येक परिणाम... प्रत्येक परिणाम है न! **स्व-काल में अपनेरूप से उत्पन्न होता है...** स्व काल में ही उत्पन्न होता है। जिस समय में उसके परिणाम होना है, उस समय होता है, आगे-पीछे नहीं। आहा...हा...! क्योंकि वह उत्पाद, प्रवाहक्रम में उसका जो समय आता है, तब उस समय के वे परिणाम अपने से उत्पन्न होते हैं और उसे कर्म और पर की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! ऐसे ही अज्ञानी को राग-द्वेष हुए, वह अपने परिणाम से हुए और उस समय कर्म बँधा, वह कर्म के परमाणु उसकी कर्मरूपी पर्यायरूप से परिणमित हुए, इसलिए वह कर्म बँधा है। यहाँ राग हुए, इसलिए कर्म बँधा है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

प्रश्न : ऐसा होता है कि राग-द्वेष करे और कर्म न बँधे?

समाधान : यह प्रश्न वहाँ राजकोट में किया था। ऐसा कि राग न करे तो (कर्म) कहाँ बँधते हैं? ऐसा प्रश्न किया था। परन्तु यह प्रश्न ही यहाँ नहीं है। मूल तत्त्व की दृष्टि का पता नहीं है। आहा...हा...! यहाँ राग होता है, वह भी अपने उत्पाद के परिणाम का काल है, इसलिए द्रव्य उस रागरूप से परिणमता है - एक बात; और सामने जहाँ चारित्रमोह के परिणामरूप (कर्म) बँधता है, वे परमाणु भी उस चारित्रमोह की पर्यायरूप उत्पन्न हों - ऐसा उनका स्वभाव है। उस स्वभाव में परमाणु रहे हैं, वे परमाणु उनके

उत्पाद-व्यय-ध्रुव में रहे हैं। (कर्म में) दर्शनमोह के परिणाम हुए, वह परिणाम उन परमाणुओं ने उत्पन्न किया है। यहाँ मिथ्यात्व सेवन किया, इसलिए दर्शनमोह हुआ है, ऐसा नहीं है - ऐसा है। आहा...हा...! वीतराग के अलावा ऐसी बात कहाँ है! श्वेताम्बर में तो (कर्म के कारण होता है, यह चलता ही है) अब तो दिगम्बर में भी यही चलता है। पण्डित (यही प्ररूपणा करते हैं कि) कर्म के कारण होता है... कर्म के कारण होता है। श्वेताम्बर में तो स्पष्ट बात ही यह है - कर्म के कारण होता है। आहा...हा...! परद्रव्य के कारण परद्रव्य में परिणाम हों - यहाँ भगवान इनकार करते हैं। तीन काल-तीन लोक में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक काल में प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में वर्तता है और वह स्वभाव उसका सत् है। वह 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' उसरूप के उत्पादरूप से वह पर्याय उसके कालक्रम में आयी है, उसरूप से वह द्रव्य का परिणाम है, द्रव्य से परिणाम उत्पन्न हुआ है। आहा...हा...! समझ में आया?

यह भाषा होती है - भाषावर्गणा से (होती है)। कहते हैं कि इस भाषा के जो परमाणु हैं, वे भाषावर्गणारूप से पहले हैं, वे भी अपने उत्पाद के कारण हैं और फिर भाषारूप परिणमित हुए, उन परमाणुओं का उत्पाद-व्यय और ध्रुव स्वभाव है, उसमें वे परमाणु रहे हैं; इसलिए उस भाषा की पर्यायरूप से परमाणु उत्पन्न हुए है। भाषा की पर्याय आत्मा से होती है या होंठ से होती है या जीभ से होती है - ऐसा नहीं है। अरे... अरे...! ऐसी बातें! आहा...हा...! अभी तो यही सब चलता है - कर्म के कारण विकार होता है और दया-दान, तथा व्रत के शुभपरिणाम से धर्म होता है, दोनों मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व भी उस काल में उत्पन्न होनेवाला परिणाम, द्रव्य ने उत्पन्न किया है; कर्म ने नहीं, पर के कारण नहीं, आहा...हा...! ऐसी बात है।

श्रोता : यदि द्रव्य में से मिथ्यात्व होता है तो द्रव्य में मिथ्यात्व सदा रहना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय कहा न? वह परिणाम है। द्रव्य, परिणामरूप आया है। उस परिणाम का काल तो एक समय का ही होता है और उस परिणाम को यहाँ तो स्वभाव कहा है, मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम को भी, उसी समय उत्पन्न होते हैं, उन्हें यहाँ स्वभाव कहा है, उस स्वभाव में द्रव्य रहा है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

(अज्ञानी ऐसा तर्क करते हैं) गोम्मटसार में ऐसा कहा है... अरे! परन्तु किस अपेक्षा से कहा है? भाई, बापू! ज्ञानावरणीय कर्म से (ज्ञान हीन होता है) यह तो निमित्त का संक्षिप्त कथन बतलाया, वरना ज्ञानावरणीय से ज्ञान ढँकता है, यह बात ही मिथ्या है। यह ज्ञान की हीनदशा होना, उस समय का वह परिणाम उत्पाद होता है, उसमें उस द्रव्य ने वह उत्पाद परिणाम किया है, कर्म के कारण नहीं; ज्ञानावरणीय का उदय है, इसलिए ज्ञान की हीनदशा होती है - ऐसा नहीं है। उस हीनदशा के उत्पाद के काल के समय उसका उस प्रवाहक्रम में समय था, इसलिए उस हीनदशारूप द्रव्य स्वयं ज्ञान की हीन पर्यायरूप आया है आहा...हा...! समझ में आया? अभी (इस बात की) बड़ी गड़बड़ है। यह दो बातें - निमित्त से होता है और व्रत, तप, भक्ति करने से धर्म होता है - दोनों मिथ्यात्व हैं। आहा...हा...! इस मिथ्यात्व के परिणामरूप से भी द्रव्य स्वयं होता है, आहा...हा...! किसी ने इसे उपदेश दिया, इसलिए इसे मिथ्यात्व के नये परिणाम होते हैं - ऐसा नहीं है। आहा...हा...हा...! ऐसा है। इसमें किसके साथ चर्चा और वार्ता करना?

प्रत्येक परिणाम स्वकाल में अपने रूप से उत्पन्न होता है... देखा! उस-उस समय में वे-वे परिणाम अपने रूप से उत्पन्न होते हैं, पर के कारण नहीं। विकार हो या अविकार हो; सम्यग्दर्शन की पर्याय भी, उसके प्रवाहक्रम में आनेवाली पर्याय उसके उत्पादरूप द्रव्य स्वयं वहाँ पर्यायरूप उत्पन्न होता है। द्रव्य का वह परिणाम है और वह परिणाम उसका स्वभाव है - ऐसे मिथ्यात्व-उल्टी मान्यता भी... आहा...हा...! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा से धर्म मानना - ऐसा मिथ्यात्व भी उस समय उस मिथ्यात्व के परिणाम उसके काल में (प्रवाह के) क्रम में आये हैं, वह द्रव्य स्वयं परिणामरूप से उत्पन्न हुआ है। आहा...हा...! कर्म से नहीं, आहा...हा...! एकेन्द्रिय को कर्म का जोर है, इसीलिए वहाँ निगोद में पड़े हैं, ऐसा यहाँ इनकार करते हैं।

श्रोता : शास्त्र में तो आता है कि कम्मो वलियो जीवो वलियो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह 'कम्मो वलियो' (अर्थात्) राग का जिस समय तीव्र परिणाम होना है, वह अपने से हुए है, वह उसका स्वभाव है और उस स्वभाव में आत्मा है, आहा...हा...! ऐसा है, दुनिया से बहुत विरुद्ध! आहा...हा...!

श्रोता : भावनगर का एक साहब भी ऐसा कहता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह भी ऐसा कहता था। उस बेचारे को क्या भान! दीवान था न दीवान! भावनगर दरवार! व्याख्यान में आया था (संवत्) १९९३ की बात है। ९३! कितने वर्ष? ४२ वर्ष हुए, ४२ वर्ष! व्याख्यान में बहुत लोग! हजारों लोग! गुरुकुल में व्याख्यान था। सुना, फिर खड़े होकर भाषण किया। (उसमें कहा) किसी समय कर्म का जोर होता है, किसी समय आत्मा का जोर होता है। कुछ भान नहीं है, बड़ा दीवान होकर घूमता है, और है मूढ़! भावनगर दरबार का दीवान! व्याख्यान में आया था, व्याख्यान में तो राजा भी आते हैं। आहा...हा...!

भावनगर दरबार व्याख्यान में आया था। यहाँ दो-तीन बार आया था। स्वर्गवास हो गया है, वह श्रीकृष्णकुमार! जरा नरम व्यक्ति था, सुनता था। मैंने तो उसे इतना कहा जो कोई व्यक्ति महीने में पाँच हजार माँगता है, वह छोटा भिखारी, लाख चाहिए मोटा भिखारी, करोड़ चाहिए वह बड़े में बड़ा भिखारी है! भिखारी है, कहा माँग... माँग... (करता है) लाओ... लाओ... लाओ... लाओ...! भगवान में अनन्त आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है, वहाँ तो देखता नहीं, उसका तुझे माहात्म्य नहीं आता और तुझे जगत् के पैसे का माहात्म्य! नरम व्यक्ति था, यहाँ हमें कहाँ उससे पैसा लेना था? राजा को एक करोड़ का आमदनी है, कृष्णकुमार! अभी उसका लड़का है। यह राजा और सेठिया करोड़ों-अरबोंपति सब भिखारी हैं। शास्त्र में पाठ है, इन्हें 'बराका' कहा है। बराका अर्थात् राका अपनी चीज की कीमत नहीं और परवस्तु की कीमत / महिमा करते हैं। यह बेचारे रंक हैं आहा...हा...! पाँच-पचास लाख रुपये मिलें, स्त्री ठीक मिले, लड़के अच्छे हों, पाँच-पच्चीस लाख का बड़ा मकान हो, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है, भिखारी है। तुझे पर की चीज के कारण हर्ष! भिखारी है! यह तुझे मुझे मिले तो ठीक (ऐसी भीख माँगता है)। आहा...हा...!

यहाँ तो दिगम्बर सन्त कहते हैं, वे परमात्मा कहते हैं, उसे ही कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने वहाँ आठ दिन परमात्मा की वाणी सीधी सुनी थी। आहा...हा...! वहाँ हमारी उपस्थिति थी, बहिन की उपस्थिति थी, अन्त में ऐसा रोग आया... यहाँ उत्पन्न होना हो गया। आहा...हा...!

यहाँ महासिद्धान्त... महासिद्धान्त... ! जिस सिद्धान्त में न्याय त्रिकाल में भी परिवर्तित नहीं होता। आहा...हा... ! कहते हैं कि पहले समय क्रोध मन्द था और दूसरे समय तीव्र हुआ तो कुछ कर्म का निमित्तपना है या नहीं ? उसके कारण (हुआ - ऐसा है या नहीं) ? (एक जगह) आया है कि पहले यहाँ क्रोध था और फिर मान हुआ, वहाँ मान का उदय आवे, निमित्तरूप से तो आये न ? आवे भले ही, परन्तु परिणाम हुए हैं, उस काल में अपने प्रवाहक्रम में। आहा...हा... ! यह तो ९९ वें गाथा ! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ! दिगम्बर सन्त ! चलते सिद्ध ! उनका जगत् के समक्ष फरमान है। तुमने भले ही सुना हो या न सुना हो परन्तु प्रत्येक द्रव्य के जो परिणाम होने हैं, वे होते हैं। आहा...हा... !

चार-पाँच परमाणु दो गुणरूप स्निग्धतावाले हों और दूसरे चार गुण स्निग्धतावाले में जाये तो चार गुण हो जाते हैं। कहते हैं कि यह तो व्यवहार का कथन है, यह चार गुण की पर्याय उत्पन्न होने का उस काल का समय है, इसलिए वह द्रव्य चार गुणरूप उत्पन्न हुआ है। आहा...हा... !

प्रत्येक परिणाम अपने स्वकाल में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्वरूप से नष्ट होता है और सर्व परिणामों में एक प्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप-ध्रुव रहता है... ध्रुव ! तीनों लिये। स्वयं उत्पन्न होने की अपेक्षा से उत्पन्न है; पूर्व की अपेक्षा से विनष्ट-व्यय; और ध्रुव- है... है... है... यह ध्रुव। एक ही परिणाम में तीनपना - उत्पाद, व्यय और ध्रुव। उसमें प्रवर्तमान द्रव्य अपने स्वभाव में अपने कारण से प्रवर्तता है। आहा...हा... ! क्या स्वतन्त्रता ! ऐसी बात वीतराग दिगम्बर सन्त और सर्वज्ञ के सिवाय कहीं नहीं है। आहा...हा... ! सम्प्रदायवालों को पता नहीं है न !

उत्पाद परिणामरहित द्रव्य नहीं होता, व्यय परिणामरहित द्रव्य नहीं होता, ध्रुव परिणामरहित द्रव्य नहीं होता। आहा...हा... ! समझ में आया ? क्योंकि वह द्रव्य अपने स्वभाव में वर्तता है और स्वभाव, उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। आहा...हा... ! वह उत्पाद-पर्याय प्रगट है... आहा...हा... ! उसे त्रिपना लागू पड़ता है। प्रगट पर्याय को अपनी अपेक्षा से उत्पाद है, पर की अपेक्षा से व्यय है और है... है... है... है... है... है... इस अपेक्षा से ध्रुव है। प्रगट पर्याय की अपेक्षा से (बात है)। आहा...हा... ! उस-उस समय के उस-

उस पर्याय में उपजता द्रव्य अपने स्वभाव से स्वभाव में उपजता है। आहा...हा... ! अज्ञानी ने, ईश्वर कर्ता है – ऐसा ठहराया, तब जैन में कर्म कर्ता ठहराया। जड़कर्म! अब उन्होंने ईश्वर ठहराया! कर्म के कारण परिभ्रमण करना पड़ता है, कर्म के कारण विकार होता है। आहा...हा... ! मार डाला! 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकायी' भक्ति में आता है। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकायी, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पायी' आहा...हा... ! ऐसी बात! ९९ वीं गाथा... ! (श्रोता – दो बार नौ) दो बार नौ – अफर! दोनों अफर! आहा...हा... ! और यह आत्मा वस्तु भी अपने स्वभाव में वर्तती है, स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुव और उत्पाद उस-उस समय का प्रवाहक्रम में होना वह (उत्पाद), उसे अब देखना कहाँ रहा ? उसे देखना द्रव्य रहा; जो परिणाम में उत्पन्न होता है, व्यय होता है, उस द्रव्य पर दृष्टि देखना रही। आहा...हा... ! वह भी उस समय के द्रव्य को देखने का वह परिणाम स्वयं (स्वतन्त्ररूप से) द्रव्य में उत्पन्न होता है। आहा...हा... ! मिथ्यात्व का व्यय हुआ, इसलिए समकित की उत्पत्ति हुई – ऐसा भी नहीं है, यह कहते हैं। यह अभी १०१ गाथा में आयेगा। जो पर्याय जिस समय में उत्पन्न हुई, उस उत्पाद को उसके व्यय और ध्रुव की आवश्यकता नहीं है। आहा...हा... ! अरे... रे... ! ऐसा वीतराग का धर्म!

वे स्थानकवासी कहते हैं कि दया पालो, व्रत करो... क्रियाकाण्ड यह सब उनका चारित्र मानते हैं। दृष्टि मिथ्यात्व है, वहाँ चारित्र कहाँ से आया ? श्वेताम्बर में मूर्ति पूजा और भक्ति, यात्रा... धमाल! आ...हा... !

यहाँ कहते हैं कि **सर्व परिणामों में एक प्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप ध्रुव रहता है...** वह परिणाम उस समय उसे ध्रुव रहता है। जिसे उत्पन्न की और व्यय की भी अपेक्षा नहीं है; है... है... है... है... है... है... है... उस समय का सत् उस पर्यायरूप है। आहा...हा... ! वहाँ उस पर्याय को सत् कहा जाता है – ध्रुव कहा जाता है। आहा...हा... ! परन्तु उस ध्रुव को भी यहाँ परिणाम कहा है। तीन को परिणाम कहकर और द्रव्य, उस परिणाम के स्वभाव में वर्तता है – उस परिणाम में वह द्रव्य वर्तता है आहा...हा... ! बनियों को व्यापार-धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, उसमें ऐसी बात! एक घण्टे फुरसत में हो और (सुनने जाये वहाँ) जो कुछ सुनानेवाला

कहे (उसे) जय नारायण... (कहकर चला जाता है)। हो गया, जाओ! सत्य क्या है और असत्य क्या है (इसका निर्णय करने का समय नहीं मिलता)। आहा...हा...! अरे ऐसी जिन्दगी चली जाती है। एक ओर राम और एक ओर ग्राम अर्थात् विकल्प से लेकर समस्त परवस्तुओं में से हटकर द्रव्यस्वभाव में जा! जहाँ आतमराम विराजते हैं। आहा...हा...!

उत्पाद विनाश से रहित एकरूप ध्रुव रहता है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समय भेद नहीं है... उत्पाद पहले समय होता है और व्यय दूसरे समय होता है और तीसरे समय ध्रुव रहता है – ऐसा नहीं है। एक ही समय में तीनों हैं। आहा...हा...! (एक) सेकेण्ड के असंख्यातवें भाग का समय-इसमें एक समय में तीन हैं। आहा...हा...! ९९ वें गाथा गजब है! थिर हो जाये ऐसा है! आ...हा...! कहीं बाहर में इसे देखना नहीं है, आहा...हा...! स्वयं ही अनन्त गुण से विराजमान भगवान हैं।

प्रश्न : घर का काम किस दिन करना?

समाधान : घर का काम कौन करता है? वकालात के (काम) किसने किये थे? अभिमान किया था। दूसरा एक वकील नहीं था? भाई! सौ रुपये लेता था, सब गप्प मारनेवाले! आहा...हा...!

आ...हा...! एक परमाणु... यह (शरीर) तो अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है, इसका अन्तिम Point परमाणु (कहलाता है।) वह परमाणु अपने स्वभाव में है और उसका स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुव है और उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समय के परिणाम में लागू पड़ता है; उस परिणाम में द्रव्य स्वयं परिणमता है। एक परमाणु की ऐसी गति हो या स्थिर रहे, (उसमें) उसे पर की अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसा इसमें कहीं नहीं लिखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या आया? उत्पाद स्व-काल में होता है, यह द्रव्य का परिणाम है। इसे पर की अपेक्षा नहीं है, यह परद्रव्य के कारण नहीं है आहा...हा...! यह सन्तों की वाणी तो सूक्ष्म है। दिगम्बर मुनियों की वाणी... आहा...हा...! कहीं

नहीं है, परन्तु इसे समझना बहुत कठिन है। बाड़ा में (सम्प्रदाय में) जन्मे हैं, उन्हें भी खबर नहीं है।

(एक व्यक्ति) जयपुर में कहता था कि दिगम्बर में जन्म लिया, वे सब समकिती हैं, अब उन्हें चारित्र (लेना है)। आहा...हा...! सब माननेवाले यह कि कर्म के कारण होता है और दया, दान, व्रत के परिणाम के कारण धर्म होता है। यह माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं, और (मानते हैं कि) हम जैनधर्मी समकिती हैं! अर...र...! क्या हो? बापू! आहा...हा...!

श्रोता : तीर्थंकर होते हैं, वे समकित लेकर आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकर आते हैं, वह अपनी पर्याय है न? आहा...हा...! भगवान माता के गर्भ में आते हैं, तब तीन ज्ञान और समकित लेकर आते हैं, तीर्थंकर! उस पर्याय का परिणमन अपने द्रव्य के कारण है। आहा...हा...! गजब बात है!

और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समयभेद नहीं है; तीनों एक ही समय में हैं। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में द्रव्य, स्वभाव से ही सदा रहता है, इसलिए... आ...हा...हा...! सादी भाषा कर दी है। उत्पाद-व्यय और ध्रुवस्वरूप परिणामों की **परम्परा में द्रव्य, स्वभाव से ही सदा रहता है, इसलिए द्रव्य स्वयं ही, मोतियों के हार की भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है।** आहा...हा...! बहुत सरस! यह ९९ वीं गाथा (पूरी) हुई। अब १०० (गाथा)।

गाथा - १००

अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्पराविनाभावं दृढयति -

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण।। १००।।

न भवो भङ्गविहीनो भङ्गो वा नास्ति संभवविहीनः।
उत्पादोऽपि च भङ्गो न विना ध्रौव्येणार्थेन।। १००।।

न खलु सर्गः संहारमन्तरेण, न संहारो वा सर्गमन्तरेण, न सृष्टिसंहारौ स्थितिमन्तरेण, न स्थितिः सर्गसंहारमन्तरेण। य एव हि सर्गः स एव संहारः, य एव संहारः स एव सर्गः, यावेव सर्गसंहारौ सैव स्थितिः, यैव स्थितिस्तावेव सर्गसंहाराविति।तथा हि - य एव कुम्भस्य सर्गः स एव मृत्पिण्डस्य संहारः, भावस्य भावान्तराभावस्वभावेनावभासनात्। य एव च मृत्पिण्डस्य संहारः स एव कुम्भस्य सर्गः, अभावस्य भावान्तरभावस्वभावेनावभासनात्। यौ च कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ सैव मृत्तिकायाः स्थितिः, व्यतिरेकाणामन्वयानतिक्रमणात्। यैव च मृत्तिकायाः स्थितिस्तावेव कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ, व्यतिरेकमुखेनैवान्वयस्य प्रकाशनात्। यदि पुनर्नेदमेवमिष्येत तदान्यः सर्गोऽन्यः संहारः अन्या स्थितिरित्यायाति। तथा सति हि केवलं सर्ग मृगयमाणस्य कुम्भस्योत्पादनकारणाभावादभवनिरेव भवेत्, असदुत्पाद एव वा। तत्र कुम्भास्याभवनौ सर्वेषांमेव भावानामभवनिरेव भवेत्; असदुत्पादे वा व्योमप्रसवादीनामप्युत्पादः स्यात्। तथा केवलं संहारमारभमाणस्य मृत्पिण्डस्य संहारकारणाभावाद-संहरणिरेव भवेत्, सदुच्छेद एव वा। तत्र मृत्पिण्डस्यासंहरणौ सर्वेषामेव भावानामसंहरणिरेव भवेत्; सदुच्छेदे वा संविदादीनामप्युच्छेदः स्यात्।तथा केवलां स्थितिमुपगच्छन्त्या मुत्तिकाया व्यतिरेकाक्रान्तस्थि-त्यन्वयाभावादस्थानिरेव भवेत्, क्षणिक-नित्यत्वमेव वा। तत्र मृत्तिकाया अस्थानौ सर्वेषामेव भावानाम-स्थानिरेव भवेत्; क्षणिकनित्यत्वे वा चित्तक्षणानामपि नित्यत्वं स्यात्। तत उत्तरोत्तरव्यतिरेकाणां सर्गेण पूर्वपूर्वव्यतिरेकाणां संहारेणान्वयस्या-वस्थानेनाविनाभूतमुद्योतमाननिर्विघ्नत्रैलक्षण्यलाञ्छनं द्रव्यमवश्यमनुमन्तव्यम्।।१००।।

एवं स्वरूपसत्तारूपेण प्रथमगाथा, महासत्तारूपेण द्वितीया, यथा द्रव्यं स्वतःसिद्धं तथा सत्तागुणोऽपीति कथनेन तृतीया, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वेऽपि सतैव द्रव्यं भण्यत इति कथनेन चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्तालक्षणविवरणमुख्यतया द्वितीयस्थलं गतम्। अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्परसापेक्षत्वं

दर्शयति - **ण भवो भंगविहीणो** निर्दोषपरमात्मरुचिरूपसम्यक्त्वपर्यायस्य भव उत्पादः तद्विपरीतमिथ्यात्वपर्यायस्य भङ्गं विना न भवति। कस्मात्। उपादानकारणाभावात्, मृत्पिण्डभङ्गाभावे घटोत्पाद इव। द्वितीयं च कारणं मिथ्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वपर्यायरूपेण प्रतिभासनात्। तदपि कस्मात्। 'भावान्तरस्वभावरूपो भवत्यभाव' इति वचनात्। घटोत्पादरूपेण मृत्पिण्डभङ्ग इव। यदि पुनर्मिथ्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वोपादानकारणभूतस्याभावेऽपि शुद्धात्मानुभूतिरुचिरूपसम्यक्त्वस्योत्पादो भवति, तर्ह्युपादानकारणरहितानां खपुष्पादीनामप्युत्पादो भवतु। न च तथा। **भंगो वा णत्थि संभवविहीणा** परद्रव्योपादेयरुचिरूपमिथ्यात्वस्य भङ्गो नास्ति। कथंभूतः। पूर्वोक्तसम्यक्त्वपर्यायसंभवरहितः। कस्मादिति चेत्। भङ्गकारणाभावात्, घटोत्पादाभावे मृत्पिण्डस्येव। द्वितीयं च कारणं सम्यक्त्वपर्यायोत्पादस्य मिथ्यात्वपर्यायाभावरूपेण दर्शनात्। तदपि कस्मात्। पर्यायस्य पर्यायान्तराभावरूपत्वात्, घटपर्यायस्य मृत्पिण्डाभावरूपेणेव। यदि पुनः सम्यक्त्वोत्पादनिरपेक्षो भवति मिथ्यात्वपर्यायाभावस्तर्ह्यभाव एव न स्यात्। कस्मात्।अभावकारणाभावादिति, घटोत्पादाभावे मृत्पिण्डाभावस्य इव। **उत्पादो वि य भंगो ण विणा दव्वेण अत्थेण** परमात्मरुचिरूपसम्यक्त्वस्योत्पादस्तद्विपरीतमिथ्यात्वस्य भङ्गो वा नास्ति। कं विना। तदुभयाधारभूतपरमात्मरूपद्रव्यपदार्थं विना। कस्मात्। द्रव्याभावे व्यतोत्पादाभावान्मृत्तिकाद्रव्याभावे घटोत्पादमृत्पिण्डभङ्गाभाववदिति। यथा सम्यक्त्वमिथ्यात्वपर्यायद्वये परस्परसापेक्षमुत्पादादित्रयं दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेषु मित्यथः।। १००।।

अब, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का परस्पर अविनाभाव[1] दृढ़ करते हैं –

उत्पाद है नहीं भंगबिन, नहीं भंग, बिन उत्पाद के।
उत्पाद-भंग वर्ते नहीं, बिना ध्रौव्य पदार्थ के॥

अन्वयार्थ : [भवः] उत्पाद **[भङ्गविहीनः]** भंग[2] रहित **[न]** नहीं होता, **[वा]** और **[भङ्ग]** भंग **[संभवविहीनः]** बिना उत्पाद के **[नास्ति]** नहीं होता; **[उत्पादः]** उत्पाद **[अपि च]** तथा **[भङ्ग]** भंग **[ध्रौव्येण अर्थेन विना]** ध्रौव्य पदार्थ के बिना **[न]** नहीं होते।

टीका : वास्तव में सर्ग[3] संहार[4] के बिना नहीं होता और संहार सर्ग के बिना नहीं होता; सृष्टि[5] और संहार स्थिति[6] (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते, स्थिति सर्ग और संहार के बिना नहीं होती।

---

१. अविनाभाव = एक के बिना दूसरे का नहीं होना वह; एक-दूसरे बिना हो ही नहीं सके ऐसा भाव।
२. भंग = व्यय; नाश। ३. सर्ग = उत्पाद, उत्पत्ति। ४. संहार = व्यय, नाश।
५. सृष्टि = उत्पत्ति। ६. स्थिति = स्थित रहना; ध्रुव रहना; ध्रौव्य।

जो सर्ग है, वही संहार है; जो संहार है, वही सर्ग है; जो सर्ग और संहार है, वही स्थिति है; जो स्थिति है, वही सर्ग और संहार है। वह इस प्रकार – जो कुम्भ का सर्ग है, वही मृत्तिकापिण्ड[1] का संहार है, क्योंकि भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से अवभासन है। (अर्थात् भाव अन्यभाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है – दिखाई देता है।) और जो मृत्तिकापिण्ड का संहार है, वही कुम्भ का सर्ग है, क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से अवभासन है; (अर्थात् नाश अन्यभाव के उत्पादरूप स्वभाव से प्रकाशित है।)

और जो कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, वही मृत्तिका की स्थिति है, क्योंकि व्यतिरेक[2] अन्वय का अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करते, और जो मृत्तिका की स्थिति है वही कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, क्योंकि व्यतिरेकों के द्वारा ही अन्वय[3] प्रकाशित होता है। और यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया तदनुसार) न माना जाय तो ऐसा सिद्ध होगा कि 'सर्ग अन्य है, संहार अन्य है, स्थिति अन्य है।' (अर्थात् तीनों पृथक् हैं – ऐसा मानने का प्रसङ्ग आ जायेगा।) ऐसा होने पर (क्या दोष आता है, तो समझाते हैं) :-

केवल सर्ग-शोधक कुम्भ की (-व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) उत्पादन[4] कारण का अभाव होने से उत्पत्ति ही नहीं होगी; अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा। और वहाँ, (१) यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति ही नहीं होगी। (अर्थात् जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का उत्पाद ही नहीं होगा – यह दोष आयेगा); अथवा (२) यदि असत् का उत्पाद हो तो व्योम-पुष्प[5] इत्यादि का भी उत्पाद होगा, (अर्थात् शून्य में से भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे – यह दोष आयेगा।)

और केवल व्ययारम्भक (उत्पाद और ध्रौव्य से रहित केवल व्यय करने को उद्यत

---

१. मृत्तिकापिण्ड = मिट्टी का पिण्ड।

२. व्यतिरेक = भेद; एक का दूसरेरूप न होना वह; 'यह वह नहीं है' ऐसे ज्ञान का निमित्तभूत भिन्नरूपत्व।

३. अन्वय = एकरूपता; सादृश्यता; 'यह वही है' ऐसे ज्ञान का कारणभूत एकरूपत्व।

४. उत्पादनकारण = उत्पत्ति का कारण।

५. व्योमपुष्प = आकाश के फूल।

मृत्तिकापिण्ड का) संहारकारण का अभाव होने से संहार ही नहीं होगा; अथवा तो सत् का ही उच्छेद होगा। वहाँ, (१) यदि मृत्तिकापिण्ड का व्यय न होगा तो समस्त ही भावों ही संहार ही न होगा, (अर्थात् जैसे मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भाव का संहार ही नहीं होगा - यह दोष आयेगा); अथवा (२) यदि सत् का उच्छेद होगा तो चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा, (अर्थात् समस्त द्रव्यों का सम्पूर्ण विनाश हो जायेगा - यह दोष आयेगा।)

और केवल[१] स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की, व्यतिरेकों सहित स्थिति का-अन्वय का - उसके अभाव होने से, स्थिति ही नहीं होगी; अथवा तो क्षणिक को ही नित्यत्व आ जायेगा। वहा (१) यदि मृत्तिका की स्थिति न हो तो समस्त ही भावों की स्थिति नहीं होगी, (अर्थात् यदि मिट्टी ध्रुव न रहे तो मिट्टी की ही भाँति विश्व का कोई भी द्रव्य ध्रुव ही नहीं रहेगा - टिकेगा ही नहीं, यह दोष आयेगा।) अथवा (२) यदि क्षणिक का नित्यत्व हो तो चित्त के क्षणिक-भावों का भी नित्यत्व होगा; (अर्थात् मन का प्रत्येक विकल्प भी त्रैकालिक ध्रुव हो जाय - यह दोष आयेगा।)

इसलिए द्रव्य को उत्तर उत्तर[२] व्यतिरेकों के सर्ग के साथ, पूर्व पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ अविनाभाववाला, जिसको निर्विघ्न (अबाधित) त्रिलक्षणतारूप लांछन[३] प्रकाशमान है - ऐसा अवश्य सम्मत करना॥ १००॥

प्रवचन नं. १०३ का शेष **दिनाङ्क १३ जून १९७९**

अब, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का परस्पर अविनाभाव दृढ़ करते हैं - (अविनाभाव अर्थात्) एक के बाद दूसरे का नहीं होना (अर्थात्) उत्पाद के बिना व्यय नहीं होता और व्यय के बिना उत्पाद नहीं होता, ध्रुव नहीं होता, सब साथ होते हैं।

१. केवल स्थिति = (उत्पाद और व्यय रहित) अकेला ध्रुवपना, केवल स्थितिपना; अकेला अवस्थान। [अन्वय व्यतिरेकों सहित ही होता है, इसलिए ध्रौव्य उत्पाद-व्ययसहित ही होगा, अकेला नहीं हो सकता। जैसे, उत्पाद (या व्यय) द्रव्य का अंश है - समग्र द्रव्य नहीं, इस प्रकार ध्रौव्य भी द्रव्य का अंश है - समग्र द्रव्य नहीं।

२. उत्तर उत्तर = बाद बाद के।

३. लांछन = चिह्न।

अविनाभाव = एक के बाद दूसरे का नहीं होना, वह; एक-दूसरे बिना हो ही नहीं सके ऐसा भाव। अविनाभाव सिद्ध करते हैं। १०० अखण्ड (गाथा) आयी।

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण।। १००।।

उत्पाद है नहीं भंगबिन, नहीं भंग, बिन उत्पाद के।
उत्पाद-भंग वर्ते नहीं, बिना ध्रौव्य पदार्थ के॥

अभी तो यहाँ सिद्ध करना है, हाँ! फिर कहेंगे - उत्पाद के कारण उत्पाद है, व्यय के कारण नहीं; यहाँ तो तीनों को सिद्ध करना है, एक समय में तीनों होते हैं, इतना सिद्ध करना है।

टीका : वास्तव में सर्ग... अर्थात् उत्पत्ति - उत्पाद। सर्ग... सर्ग...! सर्ग अर्थात् स्वर्ग नहीं, सर्ग। उत्पत्ति! सर्ग अर्थात् उत्पत्ति; **संहार के बिना नहीं होता...** व्यय के बिना नहीं होता। आ...हा...! है? (संहार अर्थात्) व्यय, नाश। प्रत्येक द्रव्य में एक समय में जो पर्याय का उत्पाद है, उसी समय में व्यय भी है। उत्पाद, व्यय के बिना नहीं होता; व्यय, उत्पाद के बिना नहीं होता। आहा...हा...! और वे **सृष्टि और संहार...** सृष्टि अर्थात् उत्पत्ति और संहार अर्थात् नाश, यह **स्थिति (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते...** (अर्थात्) ध्रुव के बिना नहीं होते। (स्थिति अर्थात्) टिकना, ध्रुव, ध्रौव्य, ध्रुव रहना वह, ध्रौव्य। आ...हा...! **स्थिति, सर्ग और संहार के बिना नहीं होती।** और ध्रुवपना भी उत्पन्न और विनाश के बिना नहीं होता - ऐसा धर्म! इसमें करना क्या? मन्दिर करना और यह करना और अमुक करना... अब हो गया है - ऐसा कहते हैं। परन्तु अभी होना है न? अफ्रीका में / नैरोबी में पन्द्रह लाख का, बीस लाख का करेंगे। क्या कहते हैं? जनवरी! जनवरी की १९ तारीख को मन्दिर का मुहूर्त है। अफ्रीका, नैरोबी! वहाँ जाने की माँग है। वहाँ ६० घर श्वेताम्बर हैं। सब दिगम्बर हो गये, ६० घर! उसमें सात-आठ घर तो करोड़पति हैं, बाकी दूसरे घर हैं, बीस लाख, पच्चीस लाख, तीस लाख, चालीस लाख, पचास लाख। पैसेवाले साठ घर हैं। उन लोगों ने ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस का मुहूर्त किया है। आज ज्येष्ठ कृष्ण तीज

है, मन्दिर तैयार होने आयेगा, तब वहाँ ले जाने की भावना है। जो होवे वह ठीक, नब्बे वर्ष तो शरीर को हो गये। ९०... ९० किसे कहते हैं ? १०० में दस कम! फिर शरीर कितना काम करेगा ? व्याख्यान देने में (तकलीफ नहीं है) परन्तु चलने में जरा थकान लग जाती है। व्याख्यान में कुछ पता नहीं पड़ता, कारण कि संवत् ७४ की साल से व्याख्यान चलते हैं, ६१-६२ वर्ष हुए, हजारों लोगों में (व्याख्यान दिये हैं)। संवत् १९७४! सम्प्रदाय में थे तब से नियमित व्याख्यान चलता है। पहले किसी समय करते थे परन्तु बाद में नियमित (चालू हो गये।)

आहा...हा...! क्या कहा! सर्ग अर्थात् द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति, व्यय के बिना नहीं होती; संहार के बिना उत्पत्ति नहीं होती और संहार सर्ग अर्थात् उत्पत्ति के बिना नहीं होता और उत्पत्ति तथा संहार स्थिति अर्थात् टिकना-ध्रुव के बिना नहीं होता और स्थिति-टिकना, सर्ग और संहार के बिना नहीं होता। आहा...हा...! पर के बिना नहीं होता - ऐसा नहीं है। इनमें ही इनमें इसके बिना नहीं होता, एक समय में तीनों साथ हैं। आहा...हा...! वीतराग सर्वज्ञ ने जो देखा, वह कहा। अन्यत्र कहीं इस बात की गन्ध भी नहीं है, सबने गप्प मारी है। आहा...हा...!

यह तो जिनेश्वरदेव परमात्मा महाविदेह में समवसरण में विराजमान हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये और टीकाकार भी ऐसे निकले! तीर्थंकर के गणधर काम करें ऐसे! कुन्दकुन्दाचार्यदेव का काम तीर्थंकर जैसा! अमृतचन्द्राचार्यदेव ने गणधर जैसा काम किया है! ओ...हो...हो...! जरा शान्ति से दो-चार-आठ दिन सुने तो पता पड़े कि यह क्या है ? और हम क्या मानते हैं ? एक-दो दिन में इसमें कुछ पकड़ में आवे ऐसा नहीं है। सब फेरफार... फेरफार... पूरे दिन दुकान पर बैठा हो तब... यह मैं हूँ तो सब चलता है... मैं हूँ तो यह सब धन्धा चलता है... ऐसा होता है... धूल भी नहीं। सुन तू जहाँ है, वहाँ वे नहीं हैं और वे जहाँ हैं, वहाँ तू नहीं है। जहाँ तू नहीं है, वहाँ उनका तुझसे होता है, यह कैसे हो सकता है ? आ...हा...!

श्रोता : रोज घड़ी सही करता है!

पूज्य गुरुदेवश्री : किया... किया... अभिमान! आहा...हा...! जिसको जो धन्धा

हो, वहाँ लवलीन होता है। हमारे पालेज में भी धन्धा था। पाँच-पाँच हजार की तम्बाकू रखते, यह तो संवत् ६५-६६ की बात है हाँ! नदियाड़ में तम्बाकू पकती है न, वहाँ से वे लोग ले आते, उनकी दुकान में, हमारी दुकान में नहीं। दो दुकान थी, बड़े भाई वहाँ थे, पाँच-पाँच हजार की तम्बाकू उस दिन! बड़ा व्यापार-धन्धा! यह तो ६४-६५ की बात है, संवत् १९६४-६५। पिताजी ६३ की साल में स्वर्गस्थ हो गये। उनकी उपस्थिति में यह दुकान की थी फिर वे गुजरे गये। आहा...हा...! उन्हें अभिमान ऐसा - हम करते हैं। दूसरों की दुकान नहीं चली, मेरी चली (क्योंकि) मैंने बहुत ध्यान रखा, व्यवस्थित ध्यान रखा, इसलिए यह चली। सब मिथ्यात्व की मदिरा पीये हुए हैं! आहा...हा...! यह दुकान की व्यवस्था मेरी उपस्थिति में सही हुई, नौकर बैठे तो नहीं कर सकता, कुछ का कुछ करे, सब ऐसा मानते हैं। आहा...हा...! यहाँ कहते हैं कि उस-उस परमाणु की वहाँ-वहाँ अवस्था है, व्यापार में; या केशलोंच में लो न! वह परमाणु है, उसका व्यय होना, यहाँ रहा है उसका व्यय होना (उसका) वह समय है फिर बाहर निकलने का समय वही है और टिका रहना - वे-वे परिणाम टिके रहना, वह ध्रुव ही वही है। इस लोंच को आत्मा नहीं कर सकता, अँगुली नहीं कर सकती। कौन माने? लोंच करे तब लोग इकट्ठे हों और ओ...हो...हो...! (करें) कर्ताबुद्धि और अज्ञान का सेवन करके मानते हैं कि हम धर्म करते हैं। आहा...हा...!

इसका विशेष आयेगा।

प्रवचन नं. १०४ **दिनाङ्क १४ जून १९७९**

१०० वीं गाथा! प्रवचनसार है न? बहुत सरस बात है! स्वतन्त्रता का ढिंढोरा है! फिर से लो, **टीका - वास्तव में...** किसी भी द्रव्य की उत्पत्ति का समय है, वही संहार का समय है, आहा...हा...! आत्मा में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का समय है, वही मिथ्यात्व के व्यय का समय है। दर्शनमोह के व्यय के कारण सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई - ऐसा नहीं है। इतना अभी अन्दर से सिद्ध करते हैं। फिर तो एक-एक अलग करेंगे, यहाँ तो सम्यग्दर्शन जो आत्मा की धर्म-पर्याय (उत्पन्न हुई), पूर्व की पर्याय का व्यय उसी समय

है। जिस समय उत्पाद है, उसी समय व्यय है और उसी समय व्यय है। उसी समय में (ही व्यय है), आगे-पीछे उसका-व्यय का (समय) नहीं है। आहा...हा...! क्योंकि उत्पाद का समय अपने-अपने अवसर में है... आहा...हा...! तो उसके पूर्व की पर्याय का व्यय भी उस-उस समय में ही है। आहा...हा...!

प्रत्येक आत्मा या प्रत्येक परमाणु में जो वर्तमान उसकी (उस) समय की उत्पत्ति का अवसर है, वही अवसर पूर्व की पर्याय के व्यय का अवसर है। व्यय का वही अवसर है, उस समय में वह व्यय हो, वह उसका अवसर है। आहा...हा...! क्या सिद्धान्त! आ...हा...! ऐसी वीतराग की बात! सर्वज्ञ परमात्मा (ऐसा कहते हैं)। यहाँ तो गड़बड़ चलती है - कर्म के कारण ऐसा होता है, अमुक के कारण ऐसा होता है... आहा...हा...! कर्म की पर्याय में भी, उसकी पर्यायरूप से कर्म की पर्याय उत्पन्न है, उसका उत्पन्न होने का समय है, परमाणु में कर्म-पर्यायरूप से उत्पन्न होने का समय है, उसी समय अकर्मरूप पर्याय का व्यय हुआ, (उसका भी) वही समय है। आ...हा...हा...!

आत्मा में भी सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद है, वही मिथ्यात्व के व्यय का समय है, वही समय है। आ...हा...! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय... आहा...हा...! उसमें इस प्रकार जहाँ होता है, उसमें दूसरा द्रव्य क्या करे? आहा...हा...! जिसका - व्यय का समय भी उत्पाद का जो समय है, वही (व्यय का) समय है, समय भेद नहीं है। आ...हा...!

वास्तव में उत्पत्ति संहार के बिना नहीं होती, संहार उत्पत्ति के बिना नहीं होता - व्यय भी उत्पत्ति के बिना नहीं होता। मिथ्यात्व का व्यय हुआ, वह सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बिना नहीं होता। आहा...हा...! मिथ्यात्व का व्यय हुआ और समकित की उत्पत्ति नहीं हुई - ऐसा नहीं होता, दोनों का एक ही समय है। भले ही तीनों के लक्षण अलग हैं, एक व्यय, एक उत्पाद, एक ध्रुव; तथापि समय तो एक ही है। एक ही समय में संहार अर्थात् व्यय के बिना उत्पाद नहीं होता; उत्पाद, व्यय के बिना नहीं होता।

सृष्टि और संहार... पर्याय की उत्पत्ति उस समय में, उस अवसर में, उस काल में (होती है) उस समय की अवस्था और पूर्व की अवस्था का व्यय, वह **स्थिति**

(ध्रौव्य) के बिना नहीं होते... (अर्थात्) ध्रुव के बिना-टिकते हुए तत्त्व के बिना दोनों नहीं होते, उसका भी समय वही है। आ...हा...! ऐसी सूक्ष्म बात! परमात्मा सन्तों ने गजब करुणा की है न! आ...हा...! ऐसी टीका...!

श्रोता : ऐसी टीका जगत् में अन्यत्र कहीं नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं है; सर्वत्र फेरफार है। क्या हो? भाई! दूसरे को ऐसा लगता कि बस! तुम्हीं यह हो? अरे! हमारी बात रहने दो, बापू! वस्तु का स्वरूप यह है। इस प्रकार यह प्रतीति में आता है और इस प्रकार ज्ञान में ज्ञात होता है। आहा...हा...! इसमें क्या हो? भाई!

संहार, उत्पत्ति और स्थिति के बिना नहीं होता। वैसे ही स्थिति अर्थात् टिकना, वह उत्पाद और व्यय के बिना नहीं होता। आ...हा...! इतना तो कल आ गया था। गजब काम किया है! ९९, १००, १०१ गाथा! आ...हा...!

यह बात हुई थी न? कि आत्मा में जो ज्ञान की हीनाधिकता होती है - कम-ज्यादापना (होता है), वह ज्ञानावरणीय कर्म के कारण होता है, (दिगम्बर के बड़े विद्वान् के साथ) चर्चा हुई थी। (यहाँ के) विरोध की पुस्तक छपाई है न? वहाँ प्रश्न हुआ था कि जिस समय पर्याय का अवसर है, उस समय में होती है, पर से नहीं और क्रमसर होती है। यहाँ तो व्यय का समय वही है (- ऐसा कहते हैं) आ...हा...! अज्ञान और मिथ्यात्व के व्यय का समय है, वही उत्पाद का समय है। फिर विशेष स्पष्ट करेंगे। और जो उत्पाद का समय है, वही व्यय का समय है और जो उत्पाद-व्यय का समय है, वही ध्रुव का समय है - टिकने का समय है। आ...हा...! एक समय में तीनों — उत्पाद-व्यय-ध्रुव हैं। आ...हा...! इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य में ऐसा है।

अब (कहते हैं) **जो सर्ग है वही संहार है...** यहाँ भाषा देखी? आ...हा...! आगे दृष्टान्त देंगे। घट की उत्पत्ति का जो समय है, वही पिण्ड के व्यय का (समय है)। वही है - ऐसा कहते हैं। समय (भेद) नहीं। वही संहार है; जो सर्ग है, वही संहार है ऐसा क्यों कहा? जो घट की उत्पत्ति-सर्ग है, वही मिट्टी के पिण्ड का व्यय है क्योंकि समय एक है, इसलिए वही ऐसा है, यह कहते हैं। आ...हा...हा...!

सर्ग अर्थात् उत्पत्ति है, वही व्यय है। उत्पत्ति है, वही व्यय है अर्थात् ? वही समय है ऐसा। जो किसी द्रव्य में पर्याय की उत्पत्ति जिस समय होती है, वही संहार है, क्योंकि संहार हुआ है, तब उत्पत्ति है; समय एक है, इसलिए उत्पत्ति है, वही संहार है। संहार है, इसका अर्थ कि उस समय संहार हुआ है - ऐसी भाषा! ऐसा उपदेश! दिगम्बर सन्तों ने जगत् पर करुणा करके (उपदेश दिया) परन्तु उसे पचाना, समझना बहुत कठिन है। आ...हा...!

प्रत्येक द्रव्य की उत्पत्ति का समय, वही पूर्व की पर्याय के व्यय का समय है। अब उसे पर से व्यय होता है और पर से उत्पाद होता है, यह कहाँ रहा ? भगवान आत्मा ने केवलज्ञान की उत्पत्ति की, उसी समय पूर्व की पर्याय का व्यय है अथवा वही व्यय है ऐसा। केवलज्ञान का उत्पाद है, वही पूर्व की पर्याय का व्यय है। आहा...हा...! कर्म का व्यय है तो केवलज्ञान की उत्पत्ति है - ऐसा नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र में तो ऐसा कथन आता है कि चार घातिकर्म का नाश होता है, तब केवलज्ञान होता है। तत्त्वार्थसूत्र! उमास्वामी! बापू! इसमें क्या कहा ? भाई! आहा...हा...! यह चार घातिकर्म का क्षय अर्थात् व्यय हुआ, उसका अकर्मरूप परिणमित होने का समय भी उसके कारण है। यहाँ केवलज्ञान हुआ, इसलिए घाति परमाणुओं की अवस्था का व्यय हुआ - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अब ऐसा (समझने की) निवृत्ति नहीं हुई, बापू! करने योग्य तो यह है। आहा...हा...! और ऐसा निर्णय हुए बिना, इसे अन्तर्मुख दृष्टि नहीं होती। भाई! जहाँ भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजमान है, (उसकी दृष्टि नहीं होती) आहा...हा...!

उसकी जो उत्पत्ति है, वह उसके ध्रुव के बिना नहीं अथवा उत्पत्ति है, वह ध्रुव है - ऐसा यहाँ तो कहा है न ? भाई! उत्पत्ति है, वही ध्रुव है; उत्पत्ति है वही संहार है। **जो संहार है, वही सर्ग है...** अर्थात् समय एक है न ? इसलिए उसी समय में उत्पाद और उसी समय में व्यय है। उत्पाद, वही संहार है और व्यय, वही उत्पाद है। आहा...हा...! अब ऐसा कहाँ मिले ? सुनने की फुरसत कब है ? अरे...रे...! माँ-बाप, गुरु कहाँ गये होंगे ? वस्तु रह गयी है। आ...हा...हा...!

जो सर्ग है, वही संहार है... वही फिर स्थिति है - वही टिकना है। आ...हा...!

टिकने का समय भी वही है। आ...हा...! गजब किया है! ऐसी बात! दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं है। लोगों को दु:ख लगता है परन्तु क्या हो? अरे...! दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म लिया, उन्हें भी सुनने को नहीं मिलता। बापू! जन्म-मरण कर-करके विपरीत मान्यता से (मर गया है)। 'मेरी उपस्थिति में इस द्रव्य की पर्याय उत्पन्न हुई है' (- ऐसा मानता है)। यहाँ कहते हैं कि उसकी उत्पत्ति उसके संहार के कारण हुई है। आहा...हा...! और उसका संहार भी उत्पत्ति के कारण हुआ है। पर की कोई अपेक्षा नहीं है, आ...हा...! ऐसी चीज है।

श्रोता : पर की कोई अपेक्षा नहीं तो निरपेक्ष हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरपेक्ष ही है। अभी तो आगे अधिक आयेगा। १०१ (गाथा में) तो अधिक आयेगा। यहाँ तो (सबका) एक समय कहते हैं। वहाँ तो यह कहेंगे कि उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं है; उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं है आ...हा...हा...! गजब बात! यह श्लोक, गाथाएँ...!! भाई! जन्म-मरण करके चौरासी के अवतार में (मर गया)। आहा...हा...! शरीर की ऐसी स्थिति हो - जड़ की हो, उसी समय में उस शरीर की पर्याय, जिस प्रकार रोगरूप होना होती है, उसी प्रकार उसी समय होती है और पूर्व की निरोग अवस्था का व्यय हो, (उसका भी) वही समय है। निरोगता का व्यय और रोग का उत्पाद, उसी समय है और उस समय परमाणु का टिकना-स्थिति-रहना, वह भी उसी समय है। आहा...हा...!

स्थिति, संहार और व्यय का समय एक है। उसकी उत्पत्ति, संहार के बिना नहीं; परन्तु पर के निमित्त बिना नहीं - ऐसा है? आहा...हा...! कितनी बात की है! आ...हा...! निमित्त से होता है - जो ऐसा कहता है, उसका यहाँ निषेध करते हैं। जगत् में निमित्त वस्तु होती है, चीज भले ही हो। आया था न? उचित (निमित्त) हो परन्तु यहाँ जो उत्पाद हुआ है, वह तो व्यय है, उसका ही वह उत्पाद है और उत्पाद का ही व्यय है। व्यय का ही वह ध्रुव है और ध्रुव का ही वह उत्पाद है। आ...हा...हा...! समय एक ही है, आ...हा...!

धीरजवान् होकर देखे कि जब अपनी पर्याय में भी इस प्रकार (होता है तो) पर में तो देखना रहा ही नहीं। अपनी पर्याय का उत्पाद, वही व्यय का काल है, तो ध्रुव में वर्तता

द्रव्य... आहा...हा... ! उस पर इसे दृष्टि करना। समझ में आया ? यहाँ तो यह काललब्धि डाली, भाई! जिस समय पर्याय होनी है, वह काललब्धि है। आ...हा...हा... ! धर्म काललब्धि ! ओ...हो...हो... ! जिस समय-जिस काल में, जिस अवसर में, धर्म की उत्पत्ति है, वह (उस) समय का उत्पाद है। यह व्यय वही उत्पाद और उत्पाद वही व्यय और वही स्थिति है। यहाँ तो एक समय है न ? इसलिए 'वही-वही' ऐसा कहा है। आ...हा...हा... !

जो सर्ग और संहार है, वही स्थिति है; जो स्थिति है... (अर्थात्) टिकना है **वही सर्ग और संहार है। वह इस प्रकार...** अब भगवान (अमृतचन्द्राचार्य) दृष्टान्त (देते हैं) मूल पाठ में तो इतना है।

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण।।

...अमृतचन्द्राचार्य ! आहा...हा... ! ऐसी टीका ! अमृतचन्द्राचार्य ने (की है) अब क्या कहते हैं ? **जो कुम्भ का सर्ग है...** (अर्थात्) घट की उत्पत्ति का जो समय है, उसी समय मिट्टी में से घट की उत्पत्ति होती है। आ...हा...हा... ! कुम्हार से नहीं। आहा...हा... ! आगे तो कहेंगे, व्यय से-पूर्व की पिण्ड पर्याय के व्यय से भी कुम्भ का उत्पाद नहीं है। यहाँ तो एक समय में तीन सिद्ध करना है। १०१ गाथा में तो ऐसा लेंगे। आहा...हा... ! एक के बाद एक गाथा उत्कृष्ट है ! आ...हा... !

(जो) कुम्भ की उत्पत्ति है, **वही मृत्तिका पिण्ड का संहार है...** मिट्टी का पिण्ड है और उसका अभाव हो गया न ? यह भाव होने पर उसका अभाव हुआ, वह समय तो एक ही है। घट की उत्पत्ति का समय है, वही पिण्ड के व्यय का समय है। आहा...हा... ! अरे...रे... ! क्या कहा ? घट की उत्पत्ति है, **वही मृत्तिका पिण्ड का संहार है, क्योंकि...** क्या सिद्धान्त देते हैं ! आहा...हा.. ! **भाव का...** (अर्थात्) उत्पत्ति कही न ? घट की ! यह उत्पत्ति है, वह भाव है। **भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से...** इस भाव का दूसरे अन्य भाव के **अभावस्वभाव से अवभासन है...** आहा...हा... ! घट की उत्पत्ति, यह भाव और इससे दूसरी चीज अभावस्वरूप है। **भावान्तर...** (अर्थात्) उस उत्पत्ति के अभाव से अन्य भाव, उसका अभावस्वभाव। भाई ! भाषा तो बहुत स्पष्ट है ! उत्पत्ति के भाव से

अन्य भाव अर्थात् संहार का भाव। आहा...हा... ! भावान्तर का अभाव... है ? व्यय का अभाव। आहा...हा... ! अरे... ! आहा...हा... ! सन्तों ने तो जगत् को निहाल कर दिया है ! जो होवे उसे लगता है। आहा...हा... !

क्या कहा ? घट की उत्पत्ति का जो समय है, उस भाव से अन्य भाव (अर्थात्) संहार का (भाव), उस भाव से भावान्तर का अभाव है अर्थात् जो उत्पत्ति का भाव है, उससे अन्य भाव-पिण्ड का (भाव), उसके अभाव-स्वभावरूप से प्रकाशन है। आहा...हा... ! ऐसा सूक्ष्म लो ! इन महिलाओं को बेचारियों को समय नहीं मिलता। इन्हें ऐसा समझना।

श्रोता : बहिनें बहुत होशियार हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची है, पूरे दिन इन्हें बच्चों को सम्हालना और खाना बनाना होता है... कौन बनाये ? बनाये कौन ? आ...हा... ! उसकी पर्याय का-विकल्प का काल उठा, बस वह भाव उससे अन्य भावान्तर संहार हुआ, उस भाव से अन्य भाव है अर्थात् संहार होना, वह उत्पाद के भाव से अन्य भाव है। उसका अभाव-भाव; भाव के भावान्तर का अभावस्वभाव से प्रकाशन है। आहा...हा... ! समझ में आया ? भाषा तो (सादी है)।

एक पर्याय उत्पन्न हुई, वह भाव है; उससे भावान्तर (अर्थात्) अन्य भाव। कौन ? व्यय। उस अन्य भाव के अभावस्वभावरूप है (अर्थात्) वह व्ययस्वरूप उत्पाद है। आहा...हा... ! ऐसी बात है, भाई ! आहा...हा... ! परमात्मा जिनेश्वरदेव की शैली यह है ! अभी तो पण्डित पुकार करते हैं - इन्दौर में न ? किस गाँव में ? पचास पण्डित इकट्ठे हुए थे, वहाँ ऐसा कहा कि यह सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं कि पर का कर्ता नहीं है... इसलिए वे पचास इकट्ठे होकर कहते हैं कि पर का कर्ता नहीं माननेवाला दिगम्बर नहीं है। यह सोनगढ़वाले दिगम्बर नहीं हैं।

(अज्ञानी) ऐसा कहता है कि वज्रनाराचसंहनन है तो यहाँ केवलज्ञान होता है। (उससे) यहाँ इनकार करते हैं। केवलज्ञान की पर्याय का उत्पाद, उससे भावान्तर-अन्य भाव जो पूर्व पर्याय थी, उसके अभावरूप से वह प्रकाशित है। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? जो केवलज्ञान का उत्पाद है या सम्यग्दर्शन का लो ! सम्यग्दर्शन का उत्पाद है, उस

भाव से अन्य भाव (अर्थात्) पूर्व का व्यय; उस अन्य भाव के अभावस्वरूपभाव को प्रकाशित करता है। आहा...हा...! गजब बात है। भाव का अर्थात् उत्पाद का-प्रत्येक का। आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य की जिस समय में-जिस अवसर में-जिस काल में उत्पादरूपी भाव है, उस भाव से भावान्तर - अन्य भाव जो संहार है, उसके भाव का वहाँ अभाव है। उसके अभाव में उत्पाद प्रकाशित है, आ...हा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! धीरे-धीरे पकड़े तो पकड़ में आये ऐसा है न? बापू! आहा...हा...!

भाव का... अर्थात् उत्पाद। सम्यग्दर्शन का कहो, मिथ्यादर्शन का कहो, चारित्र की पर्याय का उत्पाद कहो। चारित्र की पर्याय जिस समय उत्पन्न होनी, वह उसका अवसर है। वह उत्पाद, भावान्तर (अर्थात्) चारित्र की पर्याय से अन्य भाव (अर्थात्) पूर्व में अस्थिरता का भाव था वह, इस भावान्तर का अभाव वह चारित्रभाव है। उससे भावान्तर अर्थात् अन्य भाव-संहार, उसका इसमें अभाव है। आहा...हा...! दिगम्बर सन्तों ने जगत् में ऐसी टीका बनायी है! यहाँ तो जहाँ हो वहाँ ऐसा कहते हैं एक-दूसरे का करते हैं... करते हैं... सोनगढ़वाले इनकार करते हैं... सोनगढ़वाले इनकार करते हैं... बापू! सोनगढ़वाले नहीं, भगवान इनकार करते हैं - ऐसा कह। यह क्या कहते हैं? आहा...हा...! यह सोनगढ़ की पुस्तक है?

जो भाषा होती है, वह भाषा की पर्याय का उत्पाद वह भाव, उससे भावान्तर (अर्थात्) अन्य भाव। कौन? भाषा की पर्याय के पहले जो भाषा की पर्याय नहीं थी, ऐसी वचनवर्गणा की पर्याय - उस भावान्तर के भाव का अभाव, उसके अभाव से उत्पाद, भासन होता है। भावान्तर के अभाव से उत्पाद का अवभासन होता है। है? (अर्थ लिखा है) **(अर्थात् भाव अन्यभाव के...** देखा! भावान्तर है न? **(...भाव अन्यभाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है - दिखाई देता है।)...** कहते हैं कि जो उत्पाद है, वह अन्यभाव के अभाव से ज्ञात होता है। आहा...हा...! 'यह है' ऐसा कब ज्ञात होता है? जो उत्पादभाव है, उसे अन्य भाव जो भावान्तर - ऐसा जो संहारभाव, उसका उत्पाद में अभाव है, वह व्यय है न? आहा...हा...! ऐसी भाषा! भाषा तो सादी है, भाषा कोई ऐसी संस्कृत या व्याकरण या ऐसी कुछ नहीं है। आ...हा...हा...!

फिर एक व्यक्ति ऐसा कहता था, वह दक्षिण में से आया था। जो पर्याय है, वह ही पर्याय भावान्तररूप से फिर से आती है। एक आया था न कारंजावाला! ऐसा नहीं है। ऐसे शब्द में से ऐसा निकालते हैं! एक आया था! वाचनकार था, ऐसा कहता था कि कोई भी पर्यायरूप भाव हो, वह जो भाव हुआ है, उसका अभाव होकर, वही भाव होता है। जो पर्याय है, वही भाव है, उससे अन्य पर्याय हो, वह वही भाव है। जो भाव है, वही फिर से वहाँ आया है... ऐसा नहीं है। कोई कारंजा का था... आया था! बहुत चर्चा हो गयी। आ...हा...हा...!

अरे... भाई! आहा...हा...! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीन काल-तीन लोक देखे ऐसा कहना है, वह भी व्यवहारनय है क्योंकि वे पर में तन्मय होकर नहीं देखते। आ...हा...हा...! वे तो अपनी पर्याय को जानते हैं।

यहाँ तो कहते है कि केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक से तो नहीं हुई, लोकालोक के अभाव से भी नहीं हुई। केवलज्ञान की पर्याय अपना भाव है, उससे भावान्तर-जो पूर्व पर्याय थी, उसके अभाव से केवलज्ञान की पर्याय हुई है। आहा...हा...! कुछ समझ में आया?

जो सर्ग-उत्पत्ति है, वह व्यय है और व्यय है, वह स्थिति-टिकना है। क्यों? (क्योंकि) **(...भाव अन्यभाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है - दिखाई देता है।)...** उत्पाद है, वह उससे अन्य भाव के अभावस्वरूप से दिखाई देता है। अन्य पर्याय के भावस्वरूप दिखाई देता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! क्या कहा? जो वर्तमान पर्याय है, उससे अन्य भावान्तर पर्याय अर्थात् व्यय, उसके अभाव से भाव प्रकाशित होता है। उत्पाद, पूर्व के अपने भाव से अन्य व्ययभाव, उसके अभाव से वह उत्पाद दिखाई देता है, उसके अभाव से उत्पाद दिखता है। पूर्व भाव के अभाव से उत्पाद ज्ञात होता है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है, तथापि पकड़ में आये ऐसा है। आहा...हा...! इसमें कितना समाधान हो जाता है। कर्म के, पर के (कर्तापने का सबका समाधान हो जाता है)।

यह अँगुली ऐसे चलती है, वह उत्पाद है। उस उत्पादभाव से अन्य भाव (अर्थात्) पूर्व की पर्याय का व्यय, जो ऐसे थी, उसका व्यय हुआ और ऐसे हुई। पूर्व की पर्याय का

व्यय अर्थात् अभावस्वभाव से उत्पाद प्रकाशित होता है। पर के निमित्त के कारण वह उत्पाद, प्रकाशित होता है – ऐसा नहीं है। अन्दर भगवान आत्मा है, इसलिए यह अवस्था ऐसी होती है – ऐसा नहीं है। इस अवस्था का उत्पाद है, इससे अन्यभाव अर्थात् पूर्व में जो पर्याय थी, उसके अभावस्वभाव से यह उत्पाद दिखाई देता है। अन्दर आत्मा है, इसलिए आत्मा के कारण यह पर्याय दिखाई देती है – ऐसा नहीं है। आ...हा...हा...!

प्रश्न : पर्याय, पर्याय के कारण से ?

समाधान : उसके कारण से, यह तो और फिर (आयेगा)। अभी तो उत्पाद दूसरे के अभाव-स्वभाव से प्रकाशित होता है (यह सिद्ध करना है) आहा...हा...! इतनी अपेक्षा ली है। फिर १०१ (गाथा में) तो अपेक्षा भी निकाल देंगे। आहा...हा...! अरे...! ऐसी बात है, बापू! अभिमान उतर जाए ऐसा है। आहा...हा...!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर दिव्यध्वनि में यह कहते, इनका भरतक्षेत्र में विरह पड़ा है। आ...हा...हा...! परन्तु उनकी वाणी रह गयी। आ...हा...! उस वाणी में यह प्रकाशित हुआ। परजीव की दया का भाव तू कर, तो कहते हैं कि उस भाव का उत्पाद हुआ, पूर्व में वैसा राग नहीं था, उसका अभाव हुआ उस अभाव से वह दया का भाव प्रकाशित होता है, परन्तु पर के कारण दया का भाव प्रकाशित होता है (– ऐसा नहीं है) और तेरे दया के भाव के कारण सामनेवाले जीव की जीवितव्य की पर्याय उत्पाद है, वह प्रकाशित होती है – ऐसा नहीं है। सामनेवाले जीव का जीवन – जो टिकना है, वह उसका उत्पाद है, वह उत्पाद उसके भावान्तर से अन्यभाव-पर्याय है, उसके – भाव के अभाव से प्रकाशित होता है परन्तु दूसरा उसकी दया पालनेवाला है, इसलिए अवस्था टिकी हुई है, जीव का जीवतव्य ऐसा नहीं है – ऐसा दिखाई नहीं देता। यहाँ तो ऐसा कहते हैं! आहा...हा...! ऐसी वस्तु है। आहा...हा...! एक बार मिथ्यात्व को जीते जी मार दे (ऐसा कहते हैं) आहा...हा...!

भ्रम को मार! अभ्रम ऐसी उत्पत्तिदशा में भ्रम का अभाव है, इससे अभ्रमदशा उत्पन्न दिखती है। आहा...हा...! क्या कहा ? अभ्रान्ति का भाव अर्थात् समकित, उसका

भाव। पूर्व का जो व्यय है, वह भावान्तर है। उत्पाद से वह भावान्तर-अन्यभाव है, अन्यभाव के अभाव से वह उत्पाद प्रकाशित होता है। आहा...हा...! परन्तु साथ में जीव है, इसलिए वह भाषा हुई – ऐसा प्रकाशित नहीं होता। आ...हा...हा...!

रोटी होती है, उस रोटी की जो पर्याय आटे में से हुई, उसका उत्पाद प्रकाशित है – किस प्रकार? पूर्व के आटे के पिण्ड की जो अवस्था है, वह इस उत्पाद के भावान्तरवाली – अन्यभावस्वभाव से है। उस अन्यभावस्वभाव के अभावस्वरूप रोटी की पर्याय दिखती है। आहा...हा...! बेलन से और स्त्री से वह रोटी की पर्याय नहीं दिखती – ऐसा कहते हैं। अरे...रे...! इसे कहाँ जाना? आहा...हा...! अमृतचन्द्राचार्य ने अमृत बहाया है। दिगम्बर सन्त! इतना स्पष्ट नहीं किया होता तो लोगों को एकदम समझ में नहीं आता। पाठ में तो इतना है – (सर्ग) संहार के बिना नहीं, संहार (सर्ग) के बिना नहीं परन्तु उसका दृष्टान्त देकर सिद्ध किया है। आहा...हा...!

तुझे ऐसा लगे कि घट की उत्पत्ति कुम्हार से हुई – तीन काल में ऐसी बात नहीं है। यह घट की उत्पत्ति पिण्ड के पर्याय के (अभावस्वरूप है कि जो) उत्पत्ति से अन्यभाव है। उसके अभाव से वह उत्पत्ति प्रकाशित होती है, आहा...हा...! समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। जितने दृष्टान्त (लेना हो उतने लिये जा सकते हैं।)

यह मन्दिर बनाना, गजरथ निकालना, उस समय की प्रतिमा की और मन्दिर के जो पर्याय उत्पत्तिरूप से दिखाई देती है, वह उसकी पूर्व की पर्याय जो भावान्तर है-व्यय है, उसके अभावस्वभाव से वह उत्पाद प्रकाशित होता है परन्तु किसी ने किया, इसलिए प्रकाशित होता है – (ऐसा नहीं है।) आहा...हा...! जैन परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसी बात कहाँ है?

आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की भक्ति का भाव आया, वह उत्पाद हुआ; वह पूर्व की पर्याय के – भावान्तर के अभाव से वह पर्याय का भाव प्रकाशित है परन्तु भगवान के दर्शन किये, इसलिए वह भाव प्रकाशित है – ऐसा नहीं है। तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजमान हैं, उनके दर्शन का शुभभाव हुआ, आ...हा...हा...! कहते हैं कि उस शुभभाव की उत्पत्ति पूर्व के भाव के अभावस्वभाव से प्रकाशित है, भगवान के दर्शन

हुए, इसलिए शुभभाव प्रकाशित है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात पहले सुनी भी नहीं होगी। घड़े का जो दृष्टान्त दिया, (अभी इस विषय में) बड़ा विवाद है। (कहते हैं कि) कुम्हार में घड़े को करनेरूप कर्तापने का भाव है, आरोपित (भाव) भी है न? ऐसा कहते हैं परन्तु उसका अर्थ क्या? भाई! बापू! आहा...हा...!

यहाँ तो प्रभु यह कहते हैं कि जो कुम्हार की पर्याय हुई (अर्थात्) मैं घड़ा बनाऊँ – ऐसा जो विकल्प उत्पन्न हुआ, वह विकल्प भी ऐसा प्रकाशित करता है कि पूर्व में दूसरा विकल्प था, उसका व्यय हुआ, उस भावान्तर का अभाव हुआ, तब यह विकल्प प्रकाशित होता है। यह घड़ा हुआ, इसलिए उसका – घड़े का विकल्प प्रकाशित है – ऐसा नहीं है। आ...हा...! ऐसा है।

जो कुम्भ का सर्ग है, वही मृत्तिकापिण्ड का संहार है क्योंकि भाव का... अर्थात् कुम्भ की उत्पत्ति का / भाव का... **भावान्तर** अर्थात् जो मिट्टी का पिण्ड था, उसके अभावस्वभावरूप से भावान्तर (अर्थात्) कुम्भ की उत्पत्ति से अन्य भाव अर्थात् कि संहाररूप भाव मृत्तिकापिण्ड का संहाररूप भाव उसके अभाव से प्रकाशित है। आहा...हा...! पुस्तक है न सामने? उसका अर्थ होता है। आहा...हा...! यह तो एक सिद्धान्त का दृष्टान्त लिया।

सिद्धान्त तो यह है कि उत्पाद है, वह अन्य भाव के अभावस्वभाव से उत्पाद प्रकाशित है। हमें ख्याल में आवे इसके लिए दृष्टान्त है। दृष्टान्त यह कि घट की उत्पत्ति है, वह पिण्ड का व्यय जो भावान्तर है – वह अन्यभाव है, उसके अभावस्वभाव से घट की उत्पत्ति प्रकाशित है, दिखाई देती है, ऐसा है। ऐसा है और ऐसा दिखाई देता है, यह कहते हैं। आहा...हा...! ऐसी बात।

यह तो मन्दिर बनाओ, गजरथ निकालो, रथ चलाओ... धूमधाम! दश-दश हजार, बीस-बीस हजार लोग, पचास हजार लोग! रथ निकाले तब एक-एक हजार मनुष्यों के बीच में... क्या कहते हैं? बैण्ड! बाजा रखते हैं! पच्चीस हजार (लोगों होंवे तो) एक-एक हजार (लोगों में) बैण्ड! आ...हा...हा...! अद्भुत शोभा भगवान! सुन भाई! आहा...हा...! इस गजरथ में जो हाथी की पर्याय चलती है, उसकी चलने की पर्याय, उसको पूर्व में

चलने की पर्याय नहीं थी, उसके अभावस्वभाव से प्रकाशित है। व्यक्ति सिर पर बैठा हो, वह हाथी को चलाता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! यह पञ्च कल्याणक करनेवाला प्रमुख है... आहा...हा...! इसलिए इस गजरथ की पर्याय का प्रकाश होता है - ऐसा नहीं है। आ...हा...हा...! सिंघवी करते हैं न? प्रमुख! दो-पाँच लाख रुपये खर्च करे उनके कारण यह सब पर्यायें ऐसी उत्पन्न दिखती हैं - ऐसा नहीं है। वहाँ वह-वह पर्याय पूर्व की पर्याय का अन्यभाव - ऐसे भावान्तर के अभावस्वभाव से वह प्रकाशित है। अरे...रे...! कर्तापना कहाँ रहा? बापू! आहा...हा...! इस गजरथ का कर्ता नहीं और हाथी का (भी कर्ता) नहीं। आहा...हा...! हाथी पर बैठने के लिए बोली लगे तो एक-दूसरे मानो कुछ... वह कहे १५००, दूसरे कहे २०००, तीसरा ५००० - यह होता है परन्तु वह शुभभाव है। तुझे शुभभाव हुआ, इसलिए वहाँ होता है (ऐसा नहीं है।) यह तुम्हारे पूर्वजों ने भी नहीं सुना होगा। आहा...हा...! गजब बात है! सत् का अमृत बहाया है, 'सतिया सत् मत छोड़िये, सत् छोड़िये पत जाये' आहा...हा...! 'सतिया सत् मत छोड़िये' जिस समय जो सत् की पर्याय होती है, वह पूर्व के व्यय के अभाव-स्वभाव से प्रकाशित है, दूसरे के कारण नहीं। तू इस प्रकार सत् को मत छोड़ना। यह तो वे माँगने आते हैं न? (वे बोलते हैं) 'सतिया सत् मत छोड़िये, सत् छोड़िये पत जाये, सत् की मारी लक्ष्मी फिर मिलेगी आय' आहा...हा...! यह सुना है या नहीं? हमारी दुकान में बहुत आते थे न? वहाँ पालेज में प्रतिदिन रिवाज है। हर रोज एक माँगनेवाला आये ही - ऐसा स्थान है, वहाँ से उसे अमुक टिकट दे, वह फिर पैसा-पैसा माँगे, उस दिन पैसा था, अब बढ़ गया। आहा...हा...! वह ऐसा बोलते थे।

यहाँ कहते हैं कि सत् प्रभु का उत्पाद है, वह सत् है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत् है तो प्रत्येक द्रव्य की जिस समय में जो पर्याय होती है, वह सत् है। उस सत् को तू उलटा-सीधा मत करना। वह दूसरे से होता है - ऐसा मत मानना, वरना तेरी मान्यता में असत् हो जायेगा। वहाँ तो है, ऐसा है। वहाँ तो वह जो पर्याय हुई है, पूर्व का भावान्तर जो अन्यभाव-संहार, उसके अभावस्वभाव से है और वही पर्याय है, वह दूसरे समय आयी है - ऐसा भी नहीं है। इसमें से कितने ही ऐसा निकालते हैं कि यह जो पर्याय थी, वही भावान्तर होकर

वापिस (होती है।) यह बड़ी चर्चा हुई थी। बहुत चर्चाएँ हुई हैं, पढ़े-लिखे लोग आते हैं न? अरे... बापू! ऐसा नहीं है, भाई! आहा...हा...!

भावान्तर के अभावस्वभाव से ज्ञात होती है अर्थात् है – इस प्रकार ही दिखाई देती है। तू दूसरे प्रकार से देखे तो यह तेरा भ्रम है – ऐसा कहते हैं। यह क्या कहा? घट की उत्पत्ति की पर्याय और प्रत्येक द्रव्य की उत्पत्ति की पर्याय, उसकी अन्य पर्याय अर्थात् व्यय, जो अन्य भाव है, उसके अभाव से वह दिखती है। दूसरा व्यक्ति वहाँ निमित्त होकर आया, इसलिए वह वहाँ दिखती है – ऐसा नहीं है। तथापि निमित्त हो, आहा...हा...! परन्तु यहाँ निमित्त के कारण उत्पाद होता है – ऐसा नहीं है। वह उत्पाद तो उसका अन्य भावान्तर – व्यय के अभाव से वह दिखता है, व्यय के अभाव से वह उत्पाद दिखता है। निमित्त आया, इसलिए उत्पाद दिखता है (– ऐसा नहीं है।) आ...हा...! ऐसी बात।

श्रोता : इस बात की छनावट आज ही हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामने आया है न! आहा...हा...! मन्दिर बनाया और मानस्तम्भ बनाया और स्वाध्याय मन्दिर बनाया, समवसरण बनाया...।

श्रोता : यह तो रोज गाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...! (आप यह सब) लाये...। ऐसा आता है न? व्यवहार से भाषा (में कहा जाता है); वस्तु ऐसी नहीं है। व्यवहार कहता है वैसा नहीं है, यह आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में! व्यवहार कहता है वैसा नहीं है; मात्र निमित्त था उसका ज्ञान कराते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। आहा...हा...! ऐसा उपदेश किस प्रकार का होगा! कलकत्ता में सुना था? आ...हा...! यह ऐसी सूक्ष्म बात है। आहा...हा...हा...! भाई! एक बार आग्रह छोड़कर और वस्तु की जिस प्रकार स्थिति / मर्यादा है, उस प्रकार तू ज्ञान तो कर प्रभु! आहा...हा...! आहा...हा...!

शास्त्र लिखने में अक्षर की उत्पत्ति होती है, वह उत्पत्ति की पर्याय ऐसा बतलाती है कि पूर्व में जो पर्याय व्यय हुई, उस भाव से भावान्तर के अभावस्वभाव से वह पर्याय दिखाई देती है, लिखनेवाले के कारण यह भाषा दिखती है, लिखावट दिखती है, अक्षर दिखते हैं – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वे फिर ऐसा कहते हैं – भगवान का मार्ग

अनेकान्त है। इस जगह ऐसा कहा, परन्तु दूसरी जगह कहा है। अरे...भाई! आहा...हा...! दूसरी जगह कहा है, व्यवहारसाधन है निश्चय साध्य है – ऐसा जयसेनाचार्यदेव की टीका में आता है। वह तो यहाँ वस्तु के स्वभाव का ज्ञान हुआ, तब वहाँ पहले कौन था उसका ज्ञान कराया है; उससे हुआ है और उससे होता है – ऐसा नहीं है। यहाँ तो मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति पूर्व के मिथ्यात्व अव्रत और कषायभाव के अभावस्वभाव से प्रकाशित है। मोक्ष का मार्ग जो प्रगट हुआ है, वह उत्पन्न है, वह पूर्व के संहार का भाव भावान्तर है – ऐसे भावान्तर के अभावस्वभाव से वह भाव प्रकाशित है। आहा...हा...! इससे दिखाई देता है। तू दूसरे प्रकार से देखे तो ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। आहा...हा...!

आहा...हा...! तीन लोक के नाथ दिव्यध्वनि करते होंगे... आ...हा...हा...! उनकी वाणी में क्या भाव आते होंगे! गणधर और इन्द्र भी एक बात चमत्कृत... चमत्कृत... कि आहा...हा...! क्या है! यह क्या कहते हैं! बापू! यह तो चमत्कार है! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति पर से नहीं और उसके भाव से भावान्तर-अन्यभाव के अभावस्वभाव से प्रकाशित है। निमित्त से भाव से प्रकाशित है (ऐसा नहीं है।) उचित निमित्त तो आया था? (९५ वें गाथा में) बहिरंग उचित निमित्त हो, उचित निमित्त परन्तु उससे यह उत्पाद प्रकाशित है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! यह एक बोल हुआ।

और जो मृत्तिकापिण्ड का संहार है... मृत्तिकापिण्ड का संहार है – व्यय, **वही कुम्भ का सर्ग है...** वही काल है, इसलिए वही सर्ग है 'वही' में ऐसा नहीं लेना कि संहार हुआ है, वही पर्याय उत्पादरूप से आयी है – ऐसा नहीं है। जो संहार है, वह कुम्भ की उत्पत्ति है। **क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से...** व्यय जो अभाव है, उससे भावान्तर जो उत्पाद है, उसके भावस्वभाव से व्यय का भवभासन होता है। आ...हा...! भाषा तो ऐसी मीठी है...! आ...हा...! मृत्तिकापिण्ड का संहार, वह कुम्भ की उत्पत्ति है **क्योंकि अभाव का...** अर्थात् पूर्व के पिण्ड का अभाव हुआ, उसका **भावान्तर...** अर्थात् उससे अन्यभाव-उत्पाद; अन्यभाव के **अभावस्वभाव से अवभासन है...** दिखाई देता है – ऐसा है और ऐसा दिखाई देता है। **(अर्थात् नाश अन्यभाव के उत्पादरूप**

स्वभाव से प्रकाशित है...) नाश है, वह अन्यभाव जो उत्पाद, उसके स्वभाव से प्रकाशित है। आ...हा...हा... ! नाश, अन्यभावरूप-जो उत्पाद, उसे वह नाश प्रकाशित है। उसका अभाव होकर वह प्रकाशित है परन्तु वहाँ कुम्हार था, इसलिए उस पिण्ड का व्यय हुआ – ऐसा प्रकाशित नहीं करता।

विशेष कहेंगे।

प्रवचन नं. १०५ **दिनाङ्क १५ जून १९७९**

प्रवचनसार १०० वीं गाथा। सूक्ष्म पड़ता है – ऐसा (कोई) कहता था। सवेरे का कुछ समझ में आता है, दोपहर का सूक्ष्म पड़ता है। ध्यान रखे तो पकड़ में आवे ऐसा है।

जो सर्ग है वही संहार है... क्या कहते हैं ? जो छह द्रव्य हैं, उनकी जिस समय पर्याय उत्पन्न होती है, वह संहार से अर्थात् पूर्व की पर्याय के संहार से होती है, यह तो समझ में आये ऐसा है। **सर्ग है, वही संहार है...** यह उत्पन्न जो है, वही संहार है। इसका स्पष्टीकरण करेंगे। **जो संहार है...** (अर्थात् कि) व्यय है, **वही सर्ग है...** जो व्यय है, वही उत्पाद है। **जो सर्ग और संहार है, वही स्थिति है...** उत्पाद है, व्यय है वही स्थिति है; तीनों एक समय में हैं।

जो स्थिति है, वही सर्ग और संहार है। अब दृष्टान्त से समझायेंगे। कुम्हार, कुम्भ का – घट का कर्ता नहीं है। आहा...हा... ! कुम्भ का उत्पाद-घट का उत्पाद... घड़ा उत्पन्न होता है न ? **वही मृत्तिकापिण्ड का संहार है...** जो घट की उत्पत्ति है। वही मृत्तिकापिण्ड का अभाव है। मृत्तिकापिण्ड का संहार कहो या अभाव कहो। आहा...हा... ! यह तो समझ में आये ऐसा है। क्योंकि भाव का अर्थात् उत्पादभाव का, आहा...हा... ! घट की उत्पत्ति के भाव का **भावान्तर...** अर्थात् अन्यभाव से अभावस्वभाव से भाव अर्थात् उत्पाद उससे भावान्तर अर्थात् संहार-व्यय, उसके अभावस्वभाव से-व्यय के अभावस्वभाव से उत्पाद का (अवभासन है)।

श्रोता : अधिक स्पष्ट करिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते हैं। आहा...हा...! यह तो घड़े का दृष्टान्त दिया। यह भाषा होती है, जो भाषा की उत्पत्ति है, वही संहार है अर्थात् वचनवर्गणारूप पर्याय थी, उसका संहार हुआ अर्थात् भाषा की पर्याय से भावान्तर का अभाव; भाषा की पर्याय से भावान्तर अर्थात् उस भाव का अभाव। भावान्तर अर्थात् भाषा की पर्याय से दूसरा अन्यभाव (अर्थात्) संहार-व्यय, उसके अभावस्वभाव से भाषा की पर्याय प्रकाशित होती है, आत्मा से नहीं।

इनका भुक्का का व्यापार है न? उसे क्या कहते हैं? पाउडर... पाउडर...! उस पाउडर की जो पर्यायरूप से उत्पत्ति हुई, वह पूर्व की जो अवस्था थी, उसका संहार अर्थात् उत्पत्ति के भाव से अन्यभाव अर्थात् संहार; उस भाव से भावान्तर अर्थात् उसके अभाव से वह भाव दिखाई देता है, यह तुम्हारे (पाउडर) पर उतारा है। आहा...हा...! आचार्य ने सीधा कुम्भ का दृष्टान्त दिया है। घट की उत्पत्ति ऐसा जो भाव, उससे भावान्तर अर्थात् अन्यभाव, ऐसा जो संहार (उसका अभाव); भावान्तर अर्थात् भाव से अन्य भाव का अभाव, उस अभावस्वभाव से उत्पाद भासित होता है, कहो समझ में आया? यह तो वस्तु की स्थिति का वर्णन है और सम्यग्दर्शन का विषय है। इस प्रकार बराबर प्रतीति होना चाहिए। आहा...हा...! प्रतीति में भी आता है, ऐसा आया था। अवभासन! पर्याय से देखें तो उन्मग्न है और प्रतीति में भी ऐसा आता है। यह (९८ वें गाथा में) आया था। आहा...हा...! यह तो सर्वज्ञ भगवान के ज्ञेयपदार्थ की प्रतीति कैसे करना और उनका कैसा स्वतः स्वरूप है? - उसकी बात है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि जो घट उत्पन्न हुआ, वह कुम्हार से नहीं, परन्तु उस उत्पत्ति का भाव है, उससे भावान्तर-अन्यभाव अर्थात् व्यय; अन्यभाव-व्यय, उस अन्य भाव का अभाव उस अभाव से वह भाव भासित होता है। पिण्ड की अवस्था के अभाव से घट की अवस्था भासित होती है। घट की अवस्था भाव है, वह भावान्तर अर्थात् उसके भाव से (अन्यभाव) पिण्ड की अवस्था है। वह अन्यभाव है, उसका अभाव। मिट्टी के पिण्ड की अवस्था का अभाव, वही मिट्टी में से घट की उत्पत्ति का सद्भाव है। आहा...हा...! क्या बात की है! ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है। यह भाषा बहुत कोई संस्कृत जैसी कठिन नहीं है। आहा...हा...!

देखो ! यह शरीर है, यह पर्याय है, यह पर्याय ऐसे जो थी, पहली पर्याय थी, वह इस पर्याय से भावान्तर है – अन्यभाव-अन्यदशा है। यह चलने की उत्पत्ति इससे अन्यभाव जो अभाव है, उससे यह प्रकाशित है, पूर्वभाव के अभाव से यह भाव प्रकाशित है। आहा...हा... ! आत्मा से यह भाव चलता है और प्रकाशित है – ऐसा नहीं है, ऐसी बात है।

श्रोता : साहिब ! सम्यग्दर्शन की पर्याय में उतारो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल दृष्टान्त दिया था। सम्यग्दर्शन की पर्याय की उत्पत्ति, उससे भावान्तर अर्थात् मिथ्यात्व के अभावस्वभाव से सम्यग्दर्शन प्रकाशित है। दर्शनमोह के अभावस्वभाव से सम्यग्दर्शन प्रकाशित है – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! बातें तो सब मीठी हैं, आहा...हा... ! यह ज्ञान में हीनदशा का उत्पाद हुआ, वह पूर्व की दशा कुछ ठीक थी, उसका अभाव, ज्ञान की हीन पर्याय की उत्पत्ति हुई, इस भाव से भावान्तर वह हीन पर्याय की उत्पत्ति से भावान्तर (अर्थात्) अन्य पर्याय है, उसके अभावस्वभाव से ज्ञान की हीनता प्रकाशित है, कर्म के कारण नहीं। यह बड़ा विवाद उठा है न ? (एक विद्वान् ने) पुस्तक में लिखा, उसने यहाँ का विरोध किया है (बाबूलाल) जमादार ने प्रकाशित किया है। करो बापू ! उस बेचारे को खबर नहीं है। आ...हा...हा... !

उनका यह कहना था कि ज्ञान की हीन अवस्था ज्ञानावरणीय के उदय के कारण है और ज्ञान की विशेष दशा ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम के कारण है। आहा...हा... ! यह तो समझ में आये ऐसा है। बापू ! भगवान आत्मा को न समझ में आये तो किसे समझ में आयेगा ? आहा...हा.. ! ज्ञान की हीन... अरे... ! अधिक दशा लो, ज्ञान की उग्र विशेष दशा हुई वह ज्ञानावरणीय के अभाव से हुई – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! वह जो ज्ञान की अधिक दशा हुई है, वह पूर्व में जो हीन दशा थी, वह अधिक दशा से अन्यभाव है। ज्ञान की अधिक दशा से पहले हीन दशा थी, वह भावान्तर है-अन्यभाव है। उसके अभावस्वभाव से ज्ञान की अधिकता अवभासित होती है, आहा...हा... ! ज्ञान की हीन दशा के अभावस्वभाव से ज्ञान की अधिक दशा भासित होती है। ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से ज्ञान की पर्याय अधिक हुई – ऐसा भासित होता है, ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! प्रभु... ! प्रभु... ! प्रभु... !

प्रभु... ! मार्ग तो देखो ! बहुत सरस बात ! ऐसी बात है, बापू ! क्या हो ? (उस विद्वान् के साथ) चर्चा होने पर बहुत विरोध किया कि इनकी श्रद्धा की सारी लाइन संसार में डूबो देगी। अरे... प्रभु ! शान्त हो भाई ! यह विद्वत्ता की वस्तु नहीं है, बापू ! आहा...हा... ! पुस्तक में छापा है। पुस्तक छप गई है। आ...हा... !

(उनसे किसी ने पूछा कि) महाराज ! कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान की हीन-अधिकता अपनी योग्यता से होती है, ज्ञानावरणीय के कारण नहीं, क्यों महाराज ? (आप क्या कहते हो) ? (तब उन्होंने कहा कि) 'अरे ! ग्यारह अंग का पाठक कहे तो भी यह बात सत्य नहीं है।' यह बात चलती नहीं थी बापू ! इसमें क्या हो, अरे रे... ! उन्हें आत्मा का हित तो करना है न ! उन्हें हित तो करना है न ! वे दु:खी हों ऐसा तो (हम क्यों चाहेंगे ?) परन्तु वस्तु का पता नहीं है। आहा...हा... !

प्रभु ! कहते हैं कि आत्मा में केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई, वह भाव है, उससे भावान्तर (अर्थात्) पूर्व की हीन पर्याय थी, वह भावान्तर; उसके अभावस्वभाव से ज्ञान की पर्याय भासित होती है, ज्ञानावरणीय के क्षय से भासित होती है - ऐसा नहीं है।

आत्मा में राग होता है, उस राग की उत्पत्ति पूर्व की पर्याय के संहार से होती है; कर्म के उदय के कारण राग उत्पन्न होता है - ऐसा नहीं है। उस राग की उत्पत्ति है, वह भाव है और उससे अन्यभाव अर्थात् पूर्व की पर्याय जो हलकी है-थोड़ी है, वह अन्यभाव है, उसके अभावस्वभाव से (राग की) दशा दिखाई देती है। आहा...हा... ! क्या आचार्यों की शैली ! गजब बात है, बापू ! आहा...हा... ! तीर्थंकरदेव साक्षात् विराजमान हैं, आहा...हा... ! उनकी दिव्यध्वनि, जहाँ इन्द्र डोल उठते हैं ! इन्द्र, श्वान के बच्चे की तरह सुनने बैठते हैं, आहा...हा... ! बापू ! वह मार्ग अलौकिक है ! लौकिक दृष्टि से वह समझ में आये ऐसा नहीं है।

सम्प्रदान नाम का गुण है और उसमें पर्याय प्रगट होती है, वीतरागी पर्याय प्रगट होकर स्वयं-स्वयं को देता है, आहा...हा... ! पर को दान देना तो आत्मा कर नहीं सकता। पैसा देना तो आत्मा का कार्य नहीं है। अरे...रे... ! मुनि का आहार दे, वह आहार (देने का) काम भी आत्मा का नहीं है। आहा...हा... ! उस आहार के परमाणुओं की जो पर्याय

रोटीरूप है, वह ऐसे जाती है, उस पर्याय के भाव से पूर्व में जो भाव था, उस भावान्तर के अभावस्वभाव से वह पर्याय होती है। देनेवाले के भाव से वह भाव होती है (ऐसा नहीं है) आ...हा...हा...! देनेवाले के भाव से वहाँ रोटी दी जाती है या मौसमी का रस दिया जाता है (– ऐसा नहीं है) ऐसी बात! कभी भी सुना नहीं था। आ...हा...हा...! क्या शैली?

कोई कहता है कि मुझे दूध नहीं चलता – तो इसका अर्थ क्या? दूध चलता है – ऐसी जो पर्याय थी, उस पर्याय का व्यय होकर – संहार होकर और दूध नहीं चलता, ऐसा जो विकल्प उत्पन्न हुआ, उससे विरुद्ध अन्यभाव-चलता है – ऐसा जो भाव, उसके अभाव से उत्पन्न भाव हुआ। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है। व्यवहार का तो पानी उड़ जाता है।

प्रश्न : यह सब समझने की क्या आवश्यकता है?

समाधान : परन्तु यही व्यवहार है। पर्याय और उत्पाद-व्यय को सिद्ध करना यही अभी व्यवहार है। फिर उसका लक्ष्य द्रव्य पर जाये, वह निश्चय है। आहा...हा...! समझ में आया?

घट की उत्पत्ति, **वही मृत्तिकापिण्ड का संहार है... वही** अर्थात् उसी समय मिट्टी के पिण्ड का संहार है। **क्योंकि भाव का...** अर्थात् घट की उत्पत्तिरूपी (भाव का) – घट की पर्याय उत्पन्न हुई, उस भाव का **भावान्तर...** अर्थात् अन्य भाव का अर्थात् पिण्डरूप जो अन्यभाव था, उसके **अभावस्वभाव से अवभासन है...** आहा...हा...! एक न्याय समझे तो (सब यथार्थ समझ में आ जाये।) यह तो पर का करना... पर का करना... पर का करना... आ...हा...!

मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, भगवान ने उपकार किया... अर्थात् वह तो एक समझाते हैं कि वाणी निकली...

प्रश्न : भगवान ने उपकार किया न?

समाधान : कौन करे? भव्य के भाग्य के योग से वाणी निकलती है, ऐसा कहा है, यह भी व्यवहार से है। वरना तो उस समय में भाषावर्गणा की पर्याय उत्पन्न हुई, उससे

अन्य भाव का व्यय हुआ - अभाव हुआ, तब वह भाषा की पर्याय हुई। भगवान से नहीं हुई; जगत् के भाग्य के उदय के कारण नहीं हुई। पाठ तो ऐसा आता है 'भवि भागन जोग' - नहीं आता? 'भवि भागन जोग' वाणी निकलती है। समझाना होवे (तब) ऐसा समझाते हैं। आहा...हा...! **एगम जाणइं सव्वं जाणइ**।

समकित की पर्याय का उत्पाद हुआ, वह पूर्व की मिथ्यात्वपर्याय से भावान्तर भाव हैं, उसके अभावस्वभाव से समकित की पर्याय प्रकाशित है; दर्शनमोह के अभावस्वभाव से समकित की पर्याय प्रकाशित है - ऐसा नहीं है। थोड़ा भी सत्य होना चाहिए, भाई! लम्बी-लम्बी बड़ी बातें करे और सत्य कुछ हाथ न आवे (- ऐसा नहीं होना चाहिए।) आहा...हा...!

उत्पाद-व्यय और ध्रुव सत् है। वह उत्पादभाव से अन्य व्ययभाव के अभावस्वभाव से उत्पन्न है।

श्रोता : केवलज्ञानी भगवान भावश्रुत का उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो देते हैं, यह तो अलग है, यह सब तो पता है, दूसरी बात है। आहा...हा...! कौन उपदेश दे? वह श्रुतज्ञान का उपदेश भी कौन दे? वह तो पहले नहीं कह गये? 'भवि भागन जोग' यह भी व्यवहार का कथन है। उस समय उन परमाणुओं का भाषा होने का स्व-अवसर है, उस उत्पादरूप से भाषा (होती है।) उसी काल में उसी प्रकार दिव्यध्वनि होती है, पूर्व की पर्याय का उस भाव से अन्यभाव-पर्याय नहीं थी, वह हुई, वह उसका अन्यभाव, उस भाव के अभावस्वभाव से भाषा हुई है। भगवान ने भाषा की है - ऐसा नहीं है। भव्य के भाग्य के योग से हुई है - ऐसा भी नहीं है। आ...हा...!

श्रोता : भव्य के भाग्य के उदय से हुई है - ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात कही न! 'भवि भागन जोग' यह सब निमित्त की बातें हैं, बापू! समय-समय का सत् स्वतन्त्ररूप से पूर्व का भावान्तर-जो पूर्व का संहार, उसके अभावस्वभाव से उत्पन्न हो, यह वस्तु की स्थिति है। शेष सब बातें आवे, कि निमित्त से होता है और उससे होता है (वह सब कथनमात्र है)। आ...हा...हा...! दो कारण से कार्य होता है - यह विवाद उठाते हैं। 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' में ऐसा आता है कि दो कारणों से

कार्य होता है। यहाँ तो कहते हैं कि वह तो दूसरी चीज है, उसका ज्ञान कराया है। आहा...हा... ! यहाँ साधक राग है, उससे सम्यग्दर्शन होता है, साधक से साध्य होता है - ऐसा जो कहा है, वह भी निमित्त से कथन है, वरना तो साधक जो शुभराग है, उसका व्यय होकर, उसकी रुचि का व्यय होकर उस सम्यक्त्व की पर्याय से उसकी (राग की) रुचि है वह अन्यभाव है। उसका अभाव होकर सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है - ऐसा है। तुम्हारे बहीखातों में ऐसा कहीं नहीं आता है। व्यापार में नहीं आता है। अभी तो सम्प्रदाय में नहीं आता, प्रभु ! क्या हो ? आ...हा...हा... ! एकान्त... एकान्त... कहकर (विरोध करते हैं।) आ...हा... ! महा कठिनता से अनेकान्त बाहर आया (तो उसका विरोध करते हैं), हलका बोलो, उतावल से बोलो, समझ में आये ऐसा बोलो, यह सब बातें हैं। अरे... !

इस पृष्ठ पर ख्याल गया और जो ज्ञान की उत्पत्ति हुई, वह इससे (पृष्ठ से) नहीं हुई। उस काल में वह होनी थी, वह उत्पाद हुआ है और बहुत कारण लो तो पूर्व का व्यय है, उसके संहार-अभाव के कारण, उसके अभाव से भाव उत्पन्न हुआ - भासित हुआ। पूर्व की पर्याय के अभाव के कारण उत्पाद का भावभासन हुआ। आहा...हा... ! ऐसा कहाँ याद रहे ? यह खण्डवा के लड़के हैं, वे कहते हैं - सवेरे का थोड़ा समझ में आता है, दोपहर का थोड़ा सूक्ष्म पड़ता है। भाषा तो सादी है, बापू ! आ...हा...हा... ! यह घड़े का दृष्टान्त तो दिया, सिद्धान्त तो है वह है परन्तु लोगों को एकदम ख्याल में आवे, (इसलिए दृष्टान्त से बात समझाते हैं)।

तब यह कहता है - कुम्हार के बिना घड़ा नहीं होता, आ...हा... ! कुम्हार में घट को कर्तापने का कर्ताभाव भी है - ऐसा कहते हैं। यहाँ तक कहते हैं - घड़े का कर्तापने का जो भाव है - ऐसा कर्ता (भाव) कुम्हार में भी है। आ...हा...हा... ! निमित्तकर्ता कहा अवश्य है न ? (इसलिए ऐसा कहते हैं परन्तु) ऐसा नहीं है, भाई ! आ...हा... !

दूध में से दही होता है, वह छाछ पड़ी इसलिए होता है - ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। वह दही की पर्याय का जो उत्पाद (हुआ), वह पूर्व की दूध की पर्याय का संहार-अभावस्वभाव से है। दही की पर्याय का भाव, उससे भावान्तर (अर्थात्) पूर्व की जो दूध

की पर्याय है, उस भावान्तर का अभाव होकर दही की पर्याय होती है। आहा...हा...! ऐसा है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू ज्ञाता है न! उस ज्ञाता की जो पर्याय का उत्पाद (हुआ), वह पर को जानता है, इसलिए ज्ञाता है – ऐसा नहीं है। आ...हा...हा...! ज्ञाता की पर्याय जो है, उसका उत्पाद, उसके पहले की पर्याय का संहार अर्थात् अभाव होकर पर्याय हुई है। आ...हा...हा...! क्या कहना है ? कि आत्मा... (समयसार की) ३२० गाथा में आया न ? कि आत्मा उदय को, बन्ध को, जानता है, निर्जरा को–मोक्ष को जानता है। आ...हा...हा...! क्या प्रभु की शैली! निर्जरा को, मोक्ष को कर्ता नहीं, किन्तु जानता है। वह जानने की पर्याय भी निर्जरा और मोक्ष की पर्याय है, इसलिए उन्हें जानने की पर्याय हुई – ऐसा नहीं है। समझ में आया ? मोक्ष की पर्याय और मोक्ष के मार्ग की पर्याय तो द्रव्य नहीं करता, आ...हा...! उसके काल में उसे जानता है कि मोक्ष है, निर्जरा है; वह जानने की पर्याय भी उस निर्जरा को, मोक्ष को जानती है, उनसे जानने की पर्याय हुई है – ऐसा नहीं है। यह जानने की पर्याय से पहले जो जानने की पर्याय थी, उसका संहार अर्थात् पहले जानने की पर्याय से भावान्तर संहार के अभावस्वभाव से ज्ञान की पर्याय अवभासित होती है। वह मोक्ष को और निर्जरा को जानती है – पर्याय में मोक्ष और निर्जरा का कारण है, इसलिए ज्ञान की पर्याय होती है – ऐसा नहीं है। यह तो आगे–आगे चला जाता है, आहा...हा...! प्रभु का परम सत्य कान में तो पड़े!

ज्ञाता–दृष्टा की पर्याय, वह भी जिसे जानती है, इसलिए उनसे हुई है – ऐसा नहीं है। उसकी पर्याय भी पूर्व की पर्याय के, पर्याय उत्पन्न हुई उससे अन्यभाव अर्थात् पूर्व की पर्याय का संहार अर्थात् अभाव; भावान्तर के अभावस्वभाव से वह पर्याय भासित होती है। आहा...हा...! शून्य है, पर से बिलकुल शून्य है, व्यर्थ का अभिमान करके (भटकता है।)

श्रोता : पर से खाली किन्तु अपने से भरपूर है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : काम किस दिन था इसका ? आ...हा...हा...! इसका काम तो जानना–देखना, यह पर्याय हो, वह इसका काम है। इस काम में भी जिसे जानता है, वह कारण काम में नहीं, आ...हा...! केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को जानती है, इसलिए

लोकालोक कारण है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वह केवलज्ञान की पर्याय पूर्व की पर्याय के अभावस्वभाव से प्रकाशित है। उसी समय में उत्पाद है और उसी समय में पूर्व पर्याय का अभाव है – संहार है। आ...हा...हा...! एक सूत्र क्रमबद्ध! यदि यह समझे तो व्यवहार से निश्चय होता है, निमित्त से निश्चय होता है, यह सब बातें उड़ जाती हैं। आहा...हा...! अरे...! परन्तु ऐसा समय कहाँ है ? आ...हा...हा...!

जो प्रगट पर्याय है, द्रव्य उस प्रगट पर्याय के बिना कभी नहीं होता – ऐसा यहाँ कहते हैं। जो गुण की प्रगट पर्याय है... आहा...हा...! उस पर्याय से अन्य पर्याय वह पूर्व की पर्याय के संहार अर्थात् अभावस्वभाव से वर्तमान पर्याय दिखाई देती है। आ...हा...हा...! कितना समाहित कर दिया है! घट की उत्पत्ति कही न ? **(भाव अन्य भाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है, दिखाई देता है।)**

और जो मृत्तिकापिण्ड का संहार है... अब दूसरा बोल आया है। आहा...हा...! मिट्टी के पिण्ड का व्यय है, **वही कुम्भ का सर्ग है...** वही घट की उत्पत्ति है। **क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से...** आहा...हा...! संहार है, वह अभाव है, उसका भावान्तर अर्थात् अन्य भाव, वह भाव है (अर्थात्) उत्पाद है। आहा...हा...! है ? पिण्ड का संहार, वह अभाव है; उस कारण का अभाव का भावान्तर (अर्थात्) उस भाव से अन्य भाव। कौन ? उत्पन्न होता है वह। घट की उत्पत्ति होती है, वह ध्वंस-संहार के अभाव का भावान्तररूप से प्रकाशित है। आ...हा...! पहले में ऐसा कहा था कि भावान्तर के अभावस्वभाव से होने से। यहाँ अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव (कहा है) उत्पन्न है न ? संहार के समय में ही उत्पाद है, उस उत्पाद से अन्यभाव अर्थात् उत्पाद, उस भाव के अभावस्वभाव से भाव कहा और पहले में अभावस्वभाव से अभाव (लिया था)। इसमें अभावस्वभाव से भाव (कहा है)। आ...हा...हा...!

मृत्तिकापिण्ड का संहार है... पिण्ड का व्यय है, वही घट की उत्पत्ति है। **क्योंकि अभाव का...** उस पिण्ड के अभाव का **भावान्तर...** (अर्थात्) अन्य भाव ऐसी जो घट की उत्पत्ति हुई, उसके **भावस्वभाव से अवभासन है...** आहा...हा...! बनिये को व्यापार के कारण यह सब कठिन पड़ता है। धीरे से समझे तो यह तो (समझ में आये ऐसा है।)

श्रोता : चतुर जाति, होशियार जाति, अक्लवाली जाति कहलाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया में तो ऐसा कहते हैं कि चतुर माँ का बेटा पागल! पागल माँ का लड़का चतुर – ऐसा कहते हैं और भरवाड़ में ऐसा कहते हैं कि चतुर माँ का लड़का पागल। भरवाड़िया चतुर (कहलाता है।) उसका लड़का पागल – ऐसा कहते हैं और बनिये की स्त्रियाँ भोली-पागल जैसी, उसका लड़का चतुर – ऐसा कहते हैं। सब बातें हैं। ऐसी बातें सुनते थे। आ...हा...हा...! ओ...हो...हो...! ढाई रुपये का मन तो चार पैसे का सेर – ऐसी यह चाभी उतारी है। आ...हा...हा...! फिर उसका दृष्टान्त। सवा पाँच सेर से वह चालीस सेर तक ले जाओ, इतने दृष्टान्त (उतरते हैं।) आ...हा...हा...! सवा पाँच सेर का एक पैसा, पौने उनचालीस आना... (इस प्रकार) आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) संहार के अभावस्वरूप... है न? **क्योंकि अभाव का...** संहार अर्थात् अभाव, उसका **भावान्तर...** अर्थात् उत्पत्ति। ऐसे उत्पन्न **भावस्वभाव से अवभासन है (अर्थात्) नाश अन्यभाव के उत्पादरूप स्वभाव से प्रकाशित है)...** नाश है, वह उत्पादरूप स्वभाव से प्रकाशित है। आ...हा...हा...! मोक्षमार्ग की पर्याय का नाश, उसका अन्यभाव जो केवलज्ञान का उत्पाद (हुआ, वह) संहार के अभावस्वभाव से भाव-भासित होता है। संहार का अभावस्वभाव और भावान्तररूप भाव (अर्थात्) उत्पन्न हुआ, वह भाव है। संहार के अभावस्वभावरूप भाव से अन्यभाव उत्पन्न होता है, आ...हा...हा...! कर्म से बिलकुल नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

अन्तरायकर्म से आत्मा में विघ्न पड़ता है, लोग ऐसी बातें करते हैं। आ...हा...! समझने की बहुत (इच्छा है) परन्तु ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम चाहिए न? ऐसा कहते हैं, लो! आ...हा...हा...! ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम चाहिए न? प्रभु इनकार करते हैं। तेरा जो क्षयोपशमभाव वर्तमान स्वतन्त्र उत्पाद है, वह पूर्व पर्याय के-तेरे भाव से अन्य भाव के अभावस्वभाव से तेरा प्रकाशन है। कर्म के अभावस्वभाव से ज्ञान का प्रकाशन है – ऐसा नहीं है। आ...हा...हा...! यह तो आ गया है। ज्ञान की हीन-अधिक दशा ज्ञानावरणीय के कारण होती है, यह बात सत्य नहीं है।

यह बड़ी चर्चा हुई है। समझ में आया? है न, वह भी है न? पुस्तक है न? (यहाँ

के) विरोध का स्पष्टीकरण (रखा है) देखो! प्रश्न (किया है) ज्ञान में जो कमी हुई, जीव का स्वभाव तो केवलज्ञान है और वर्तमान में जो हमारी संसारी अवस्था में जितने भी जीवों के ज्ञान में कमी हुई, वह क्या कर्म की वजह से कमी हुई या बिना कर्मोदय से हुई? आहा...हा...! (उसका उत्तर) कमी दोनों के कारण है। कर्म का उदय कारण है और उपादान कारण है। महाराज! कानजीस्वामी कहते हैं कि ज्ञानावरणीय आदि कर्म कुछ नहीं करता। यह छाप ठेठ तक रह गयी है 'ज्ञानावरणीयकर्म कुछ नहीं करता अपनी योग्यता से ज्ञान में कमी होती है। महाराज! ज्ञान में कमी होती है, वह अपनी वजह से होती है, अपनी योग्यता से होती है, कानजीस्वामी यह कहते हैं कि ज्ञानावरणीयकर्म कुछ नहीं करता, महाराज! क्या यह ठीक है?' (उन्होंने उत्तर दिया कि) क्या ठीक है? आप ही समझो कैसे ठीक है? यह ठीक नहीं। अर...र...र...! ऐसी चीज हो गयी। वे ऐसा कहते हैं और यहाँ भगवान ऐसा कहते हैं। ज्ञान में जो कमी है, वह अपनी पर्याय का कमी होने का काल है, इसलिए होती है, वह पूर्व की पर्याय के अभावस्वभाव से होती है; कर्म के उदय के कारण वह कमी होती है - ऐसा नहीं है। यह मूल चीज है, बापू! आहा...हा...! हिन्दुस्तान में नहीं थी। आहा...हा...! यह भगवान का फरमान है। आहा...हा...! 'ज्ञान की हीनाधिकता ज्ञानावरणीयकर्म से होती है, यह ठीक है; अपनी योग्यता से होती है यह ठीक नहीं है।' तब तो इसका अर्थ यह हुआ कि समकित की पर्याय भी दर्शनमोह के अभाव से होती है, आ...हा...हा...! यहाँ कहते हैं कि मिथ्यात्व के अभाव से समकित की उत्पत्ति होती है। उत्पाद है, वह संहार-अन्य संहार है, वह अन्यभाव है, उसके अभाव से इसकी उत्पत्ति होती है। आहा...हा...! यह तो महासिद्धान्त है।

श्रोता : द्रव्यानुयोग और करुणानुयोग की पद्धति में तो अन्तर पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त से कथन है। वस्तुस्थिति यह है, (उसे) रखकर सब बातें हैं। कर्म से होता है, यह निमित्त का कथन है। ऐसा नहीं है - व्यवहारनय कहता है - ऐसा नहीं है। भाई ने टोडरमलजी ने नहीं कहा? ऐसा नहीं है (अर्थात्) जहाँ-जहाँ व्यवहार से कहा हो ऐसा नहीं है, परन्तु उसमें निमित्त था उसका ज्ञान कराया है। उससे हुआ है - ऐसा नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है।

श्रोता : आप करुणानुयोग को नहीं मानो तो वे शास्त्र खोटे पड़ जायेंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें शास्त्र सच्चे पड़ते हैं। जिस अपेक्षा से कहा, उसमें सच्चा (कहते) हैं। आहा...हा... ! यह बात खोटी पड़े और यह बात सच्ची पड़े - ऐसा होता है ? (ऐसा होवे) तो यह प्रवचनसार खोटा पड़ता है, भगवान की वाणी खोटी पड़ती है लो, आहा...हा... !

श्रोता : दोनों अपेक्षा से दोनों बातें सच्ची हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों अपेक्षा से सच्ची हैं अर्थात् ? निमित्त से कहा है, वह सच्ची; यह सत्य से कहा है, वह सच्ची है। आहा...हा... ! बड़ा विवाद है। लिख गये हैं- सोनगढ़ का साहित्य (डुबो) देगा। लिख गये हैं क्या हो ? बेचारों को (ऐसा) बैठा होगा (दूसरे को) ऐसा कहा कि यह तो पण्डितों ने बुलाया है परन्तु बोले हैं वह लिखा है, लिखावट है, हजारों पुस्तकें छप गयी हैं, और सूक्ष्मता थी बहुत सूक्ष्मता !

यह तो अन्दर में पूर्व का था इसलिए आया है, वरना तो कहीं सुना नहीं जाता। आ...हा...हा... ! (संवत्) १९७१ में पहली बार बाहर कहा - दोपहर के प्रौषध करके सब बैठे हों न ? आहा...हा... ! सुनते हैं, गुरु महाराज बैठे हों वे सुनते हैं। पीछे बैठे हुए सुनते हैं, वैसा पकड़ नहीं सकते कहा - कर्म के कारण आत्मा में विकार होता है, यह बात बिलकुल झूठ है। वहाँ यह कहा था, मैंने तो पड़ा भी नहीं था। आहा...हा... ! अपनी पर्याय अपने से होती है, पर से नहीं ऐसा महासिद्धान्त है। मानो न मानो जगत् के पास रहा। जैन में तो कर्म से होता है, कर्म से होता है... (ऐसी ही प्ररूपणा चलती है)। (एक मुमुक्षुभाई ने श्वेताम्बर साधु के साथ चर्चा की, उन्होंने) कहा कि 'कर्म से विकार होता है, यह मान्य है ? फिर चर्चा करेंगे।' उसने कहा हमें यह मान्य नहीं है, दूसरे द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य से हो ! बापू ! जो स्पर्श नहीं करता, वह (उससे) हो ? यह क्या कहते हैं ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता।

भगवान आत्मा, कर्म के उदय को स्पर्श नहीं करता। वह जड़ है, प्रभु चैतन्यस्वरूपी है। वह अरूपी, रूपी को कैसे स्पर्श करे ? और कर्म का उदय जड़ है, वह आत्मा को कैसे छुए ? आहा...हा... ! और कर्म का उदय भी जो उत्पन्न हुआ, वह सत्ता की पर्याय

का संहार हुआ... आहा...हा...! उसकी सत्ता की पर्याय का संहार हुआ। उत्पन्नभाव से अन्य भावान्तरभाव-सत्ता की पर्याय का अभाव हुआ, उससे उत्पन्न है। आहा...हा...! ऐसा है।

प्रभु वहाँ रहे और यहाँ आ गये। आहा...हा...! यह प्रभु का मार्ग है, चला आता है, उनका विरह पड़ा, बातें रह गयीं। उसके उलटे अर्थ करके लोग एकान्त ठहराते हैं! आहा...हा...! क्या (होवे) ? बापू! इसमें दूसरे को नुकसान नहीं है। एकान्त कहे तो इससे कहीं दूसरे को नुकसान है, ऐसा नहीं है। नुकसान तो स्वयं को है। आहा...हा...!

यह ज्ञेय अधिकार है। छहों ज्ञेय, उनकी पूर्व पर्याय की संहार का भाव, उससे भावान्तर जो उत्पन्न (भाव) उसके भाव से वह उत्पन्न भासता है। उसके अभाव के भाव से भाव उत्पन्न भासता है। आहा...हा...! उसमें दृष्यान्त पूरी दुनिया का आता है। आहा...हा...! थोड़ा-थोड़ा पकड़ में आता है या नहीं ? आहा...हा...! क्या गाथा! १००... १००..., वह सौ! आ...हा...हा...! गजब बात है!

होता है, ज्ञानी को राग होता है, अशुभराग होता है परन्तु वह अशुभराग, अशुभराग के कारण है और देह की क्रिया, देह के कारण होती है। भाई! उसे जो अशुभराग है, उसे जानने की जो पर्याय हुई, वह अशुभराग के कारण नहीं। आहा...हा...! पूर्व में उस प्रकार की जानने की पर्याय नहीं थी, उसका अभाव होकर यह जानने की पर्याय हुई। आहा...हा...! भाव और अभाव अन्दर दोनों की (बात) है। आहा...हा...!

क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से अवभावसन है (अर्थात् नाश, अन्यभाव के उत्पादरूप स्वभाव से प्रकाशित है।)... आहा...हा...! है, दो बोल हुए। तीसरा।

और जो कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, वही मृत्तिका की स्थिति है,... उसी समय मृत्तिका का रहना है। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय और ध्रुव एक समय में है, आहा...हा...! कितने ही यह कहते हैं कि उत्पाद-व्यय और ध्रुव है, उसमें से ध्रुव का एक अंश पर्याय में लो, ध्रुव पूरा नहीं लेना - ऐसा नहीं है। ध्रुव स्वयं ही अंश है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन हुए न ? इन तीनों को पर्याय कहा है, वह आयेगा... आहा...हा...!

कितने ही ऐसा कहते हैं कि उत्पाद-व्यय और ध्रुव के साथ जो ध्रुव है, उसका अंश लेना और दूसरा ध्रुवद्रव्य त्रिकाली है, वह अलग है... ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! अरे... ! प्रभु का मार्ग परम सत्य!

यहाँ सुनने पर जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह तो पूर्व की पर्याय के संहार से उत्पन्न होती है; शब्दों से उत्पन्न होती है - ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! उसका उत्पन्न होना और पूर्व पर्याय का व्यय (होना) एक ही समय में है। पूर्व की पर्याय के व्यय के-संहार से अन्यभाव (अर्थात्) उत्पन्न हुआ वह अन्यभाव भासित होता है। शब्द के कारण सुनने के कारण भासित होता है (ऐसा नहीं है)। आहा...हा... ! ऐसी बात! इससे पहले यह पर्याय नहीं थी और अभी सुनने के समय मस्तिष्क में यही पर्याय आयी। पहले घर में नहीं थी, पहले विचार में नहीं थी, तब इसे सुनने से हुआ, ऐसा इसमें कोई असर है या नहीं ? नहीं। आहा...हा... ! उस-उस समय की ज्ञान की, श्रद्धा की, वीर्य की पर्याय... आहा...हा... ! उस-उस अपने-अपने अवसर में हुई है, उसे बहुत (कहना हो) तो पूर्व की पर्याय का संहार हुआ, उसके अभाव से भाव हुआ, अभाव से हुआ तो अभाव से हुआ ऐसा आया। अभाव से हुआ अर्थात् अभाव हुआ, उससे हुआ - ऐसा आया। अभाव होने पर उत्पाद अपने से हुआ है, अभाव के कारण उत्पाद हुआ - ऐसा भी नहीं है, मात्र यहाँ समझाते हैं। आहा...हा... ! यह स्थिति की बात है... विशेष कहेंगे... लो !

प्रवचन नं. १०६ **दिनाङ्क १६ जून १९७९**

प्रवचनसार १०० गाथा। यहाँ नीचे आया, उत्पाद-व्यय की बात आ गयी। अब स्थिति की-ध्रुव की बात आती है। प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव, उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। यदि इस प्रकार नहीं माने तो तत्त्व से विरुद्ध दृष्टि होती है। अर्थात्? प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति अपने से होती है और उसका संहार भी अपने से होता है, पर से नहीं।

प्रश्न : पर की मदद तो होती है न ?

समाधान : मदद जरा भी नहीं है। इसके लिए तो (यह बात करते हैं।) द्रव्य का अपना स्वभाव है। अपना स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, यह पहले आया न! पहले आ

गया था (९९ वें गाथा के भावार्थ में आ गया था)। **द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है, इसलिए सत् है, वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है।** आहा...हा...! प्रत्येक पदार्थ-आत्मा और परमाणु आदि प्रत्येक का स्वभाव अपना, अपने से उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है, इसलिए दूसरे से (कुछ) होता है, यह बात नहीं रही। आहा...हा...!

श्रोता : दूसरे से नहीं होता परन्तु दूसरे का होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे से भी नहीं होता और दूसरे का भी नहीं होता – ऐसी बात है। शरीर की पर्याय उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, परन्तु वह उससे उत्पाद होती है, उससे व्यय होती है और उसमें ध्रुव रहती है। उसमें उत्पाद, उसमें व्यय और उसमें ध्रुव। आहा...हा...! शरीर समीपवर्ती है, तथापि उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव प्रत्येक परमाणु का स्वभाव है, इसलिए उसमें प्रतिक्षण उत्पाद भी है, उसी क्षण व्यय भी है और उस क्षण ध्रुव भी है। यहाँ उत्पाद और व्यय दो की बात आ गयी है।

और... है? **जो कुम्भ का सर्ग...** कुम्भ अर्थात् घट की उत्पत्ति **और पिण्ड का संहार...** पूर्व में जो पिण्ड था, उसका व्यय, **वही मृत्तिका की स्थिति है,...** वही मृत्तिका की स्थिति-टिकना है। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय, वही स्थिति है – ऐसा कहते हैं। वह स्थिति है अर्थात् उसी समय में स्थिति है – ऐसा कहते हैं। ऐसी सूक्ष्म बात है। Logic है; मृत्तिका कुम्भ की जो उत्पत्ति है, वह पूर्व के पिण्ड का व्यय है, वही मृत्तिका उसी क्षण ध्रुव है, वही मृत्तिका की स्थिति है। इसका अर्थ उस क्षण में टिका हुआ तत्त्व है। यह तो सिद्धान्त है, भाई!

क्योंकि व्यतिरेक... है? भिन्न-भिन्न पर्याय का उत्पाद और व्यय व्यतिरेक कहलाता है। अन्य अवस्था उत्पन्न होती है, अन्य अवस्था व्यय (को प्राप्त होती है), यह भिन्न-भिन्नपना व्यतिरेक है (मूल शास्त्र में नीचे फुटनोट में अर्थ दिया है) एक का दूसरेरूप न होना वह; यह वह नहीं है – ऐसे ज्ञान का निमित्तभूत भिन्नरूपपना। व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ। **अन्वय का अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करते,...** क्या कहा? कि प्रत्येक पदार्थ में जो उत्पाद और व्यय व्यतिरेक है, वह उसकी स्थिति का उल्लंघन नहीं करते। आहा...हा...! है? अन्वय अर्थात् कायम रहना; अन्वय अर्थात्

कायम रहना। आहा...हा...! (है न नीचे?) एकरूपता, सदृश्यता। उत्पाद-व्यय है, वे विसदृश्य हैं, समझ में आया? अन्वय है वह सदृश्य है, एक प्रकार का रहे वह सदृश्य (कहलाता है।) उत्पाद-व्यय विदृश्य है क्योंकि वे उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं। उत्पन्न और विनष्ट (होते हैं, इसलिए) विसदृश्य हैं। आहा...हा...! ऐसा है। बनियों को व्यापार के कारण फुरसत नहीं है और यह निर्णय करने का समय नहीं है। आहा...हा...!

कहते हैं कि घट की उत्पत्ति वह उत्पाद है, पिण्ड का व्यय वह संहार है, यह व्यतिरेक कहलाते हैं, भिन्न-भिन्न होते हैं न? (इसलिए व्यतिरेक कहलाते हैं) शास्त्र में तो यहाँ तक कहा है कि उत्पाद-व्यय है, वह विरुद्ध है क्योंकि उत्पन्न होता और नष्ट होता है - ऐसा हुआ न? पर्याय उत्पन्न होती है और उसी समय व्यय (होता है), विरुद्ध हुआ न विरुद्ध? और स्थिति - जो अन्वय/टिकता तत्त्व है, वह अविशेष है, इसमें आता है। क्या कहते हैं? आगम! आगम नहीं? धवल... धवल...! धवल में यह आता है। उत्पाद-व्यय है वह विरुद्ध है क्योंकि उपजना और व्यय होना - है एक समय में विरुद्ध; और टिकना वह अविरुद्ध है क्योंकि सदृश्यपना कायम रहता है और यह विसदृश्य है। विसदृश्य कहो कि विरुद्ध कहो (दोनों एकार्थ हैं)। आहा...हा...! अब ऐसा सब (समझना)। जगत् की करुणा के लिए मुनियों ने कितनी मेहनत की है? आहा...हा...! एक-एक श्लोक की एक-एक बात का स्पष्टीकरण किया है।

व्यतिरेक, अन्वय का अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करते,... उत्पाद-व्यय जो है — व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकार; क्योंकि उपजना और विनशना भिन्न हुए न? यह उपजना और व्यय (होना यह) प्रकार का ही भिन्न हुआ। यह उपजना और विनशना अर्थात् व्यतिरेक, अन्वय अर्थात् स्थिति - टिकते तत्त्व को नहीं छोड़ते। आहा...हा...! पर के साथ यहाँ कुछ सम्बन्ध नहीं है। पर से होता है, यह बात ही नहीं है। (पर का) उचित निमित्त है - ऐसे उसका ज्ञान करने को कहा जाता है परन्तु वह निमित्त है; इसलिए इसमें कोई उत्पाद-व्यय होता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! 'उचित निमित्त' तो (९५ वीं गाथा में) आ गया है।

प्रश्न : निमित्त का ज्ञान कराने का क्या काम है?

समाधान : है, दूसरी चीज है; ज्ञान का स्वभाव स्व-पर को प्रकाशित करने का है। परचीज एक है, उसका ज्ञान कराने को निमित्त है (ऐसा कहते हैं।) निमित्त नहीं है - ऐसा नहीं है परन्तु निमित्त से यहाँ उत्पाद-व्यय होता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! कुम्हार निमित्त है; निमित्त कहलाता है परन्तु इस कारण कुम्हार से घट की उत्पत्ति होती है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

मकान होने में कारीगर को निमित्त कहते हैं परन्तु कारीगर निमित्त है, इसलिए मकान का उत्पत्ति होती है - ऐसा नहीं है क्योंकि उसका उत्पाद का समय है, वहाँ मकान की पर्याय होती है, पिण्ड की पूर्व पर्याय या मिट्टी की, या पत्थर की या दूसरी चीज की (पर्याय का) व्यय होता है और वह उत्पाद और व्यय व्यतिरेक भिन्न-भिन्न है।

प्रश्न : सब मजदूरों ने धूप का सेवन किया, उसका क्या?

समाधान : कौन (सेवन करे) ? आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! अद्भुत बात, बापू! आहा...हा...! एक-एक आत्मा और एक-एक परमाणु, प्रत्येक (द्रव्य) अपनी उस समय की पर्याय के उत्पाद के समय उपजता है; व्यय के समय अर्थात् समय तो वही है जो उत्पाद का समय है, वही व्यय का है और जो उत्पाद-व्यय का समय है, वही स्थिति-टिकने का (ध्रौव्य का) समय है। समय में भेद नहीं है परन्तु उन तीनों के लक्षणों में भेद है। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय की दो बात आ गयी है, यह तो अब स्थिति की बात चलती है। **कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, वही मृत्तिका की स्थिति है।**

क्योंकि व्यतिरेक... (अर्थात्) भिन्न-भिन्न दो दशाएँ, आहा...हा...! पिण्ड का व्यय और घट की उत्पत्ति, यह व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न दशाएँ, **अन्वय का...** अर्थात् कायम रहनेवाली मिट्टी का उल्लंघन नहीं करते (अर्थात्) स्थिति का-ध्रुव का वे उल्लंघन नहीं करती अथवा ध्रुव से भिन्न समय नहीं है। आहा...हा...! वह उत्पाद-व्यय का समय है, वही ध्रुव का समय है। आहा...हा...! यह उत्पाद-व्यय हुआ, तथापि उस क्षण में ध्रुवपना है, उस ध्रुवपने को व्यतिरेक उल्लंघन नहीं करते, नहीं छोड़ते। आहा...हा...!

यहाँ तो वहाँ तक कहा है न! कि जो आत्मा का निर्णय (होता है), वह अनित्य से नित्य का निर्णय होता है। अनित्य अर्थात् उत्पाद-व्यय पर्याय; और उसी समय टिकता तत्त्व है, उसका निर्णय उत्पाद-व्यय से होता है। आहा...हा...! नित्य का निर्णय अनित्य से होता है, आहा...हा...! नित्य का निर्णय नित्य से होता है - ऐसा नहीं है। नित्य है, उसे तो सदृश्य कहा न? व्यतिरेकरहित है और निर्णय करता है, वह तो उत्पाद-व्यय है। आहा...हा...! वह उत्पाद-व्यय (नित्य) ध्रुव का निर्णय करते हैं।

श्रोता : ध्रुव का भी करे और अपना भी करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका का नहीं करता, वह अपना करे उसमें ज्ञान होता है, उसमें सब जानता है। स्वयं को इस प्रकार जाने, तब दूसरे के उत्पाद-व्यय-ध्रुव भी इस अनुसार जानता है परन्तु पहले यहाँ स्वयं को जाने तब। जो स्वयं के उत्पाद-व्यय और ध्रुव को यथार्थ नहीं जानता और गड़बड़ करता है, वह दूसरे को भी यथार्थ नहीं जानता। आहा...हा...!

व्यतिरेक, अन्वय का... अर्थात् कायम टिकती हुई वस्तु है, उसी क्षण जो परमाणु की और आत्मा की स्थिति है, उस स्थिति को व्यतिरेक अवलम्बन नहीं करते। उत्पाद-व्यय उसे छोड़कर नहीं रहते। आहा...हा...! अकेला Logic-न्याय भरा है।

और जो मृत्तिका की स्थिति है... अर्थात् मिट्टी का टिकना है, **वही कुम्भ का सर्ग...** है, उत्पाद है, उसी समय मिट्टी की उत्पत्ति है। जिस समय मिट्टी की स्थिति है- टिकती है, उसी समय कुम्भ का उत्पाद है **और पिण्ड का संहार है...** उसी समय (अर्थात् कि) मृत्तिका की स्थिति के समय पिण्ड का व्यय और कुम्भ की उत्पत्ति है। समय वही है, आहा...हा...! प्रवचनसार! अधिक लोगों में रखो तो (ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं? ध्यान रखे तो (पकड़ में आवे ऐसा है)। भाषा तो सादी है। कथन भी बहुत सादा, Logic एकदम सीधा...।

भाई! तू आत्मा है या नहीं? तो आत्मा है, यह तो स्थिति हुई। अब आत्मा है, उसका निर्णय करनेवाली व्यक्त पर्याय है या नहीं? वह पर्याय व्यतिरेक - भिन्न-भिन्न है या नहीं? एक ही समय में भिन्न, हाँ! एक समय में उत्पाद और दूसरे समय में व्यय - ऐसा

नहीं। यहाँ तो उसी समय उत्पाद और उसी समय में व्यय, उसी समय में स्थिति है या नहीं? जिस समय स्थिति है, उसी समय उत्पाद और व्यय है या नहीं? आहा...हा...!

जैसे व्यतिरेक अर्थात् उत्पाद-व्यय भिन्न-भिन्न हैं, वह मिट्टी की स्थिति का उल्लंघन नहीं करते। उसी प्रकार **जो मृत्तिका की स्थिति है, वही कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, क्योंकि व्यतिरेकों के द्वारा ही अन्वय प्रकाशित होता है...** देखो! भाषा देखो! आहा...हा...! उस उत्पाद-व्यय द्वारा ही स्थिति है, वह प्रकाशित होती है। यह स्थिति है, वह उत्पाद-व्यय द्वारा ज्ञात होती है। उसका जो समय-समय का उत्पाद-व्यय है, उसके द्वारा स्थिति-टिकना ज्ञात होता है। आहा...हा...!

सम्यग्दर्शन की पर्याय की उत्पत्ति, मिथ्यात्व का व्यय और भगवान का-ध्रुव की स्थिति-टिकना उसी समय में है। व्यतिरेक अर्थात् सम्यग्दर्शन का उत्पाद और मिथ्यात्व के व्यय द्वारा आत्मा है - ऐसा प्रकाशित होता है। उसी के द्वारा आत्मा क्या है, यह प्रकाशित होता है - ऐसा कहाँ (सुनने को मिले)? सब कठिन (लगता है) आहा...हा...! क्या कहा? सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का जो समय है, उसी समय में वह पर्याय उत्पन्न होती है, उसी समय में मिथ्यात्व का व्यय होता है, वह व्यतिरेक उस स्थिति का उल्लंघन नहीं करते हैं। वे अलग-अलग भाव भी ध्रुव को नहीं छोड़ते हैं - एक बात।

दूसरी बात - कि व्यतिरेकों द्वारा अन्वय प्रकाशित होता है। आहा...हा...! देखा, पारस्परिक! पहले यह लिया कि उत्पाद-व्यय व्यतिरेक हैं, वह स्थिति को नहीं छोड़ते। व्यतिरेक अन्वय को नहीं छोड़ते - एक बात; और जो उत्पाद-व्यय हैं, वह स्थिति को प्रकाशित करते हैं। आहा...हा...! स्थिति को स्थिति प्रकाशित करती है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! व्यतिरेक, ध्रुव को नहीं छोड़ते हैं, इसलिए ध्रुव को जानने का काम करते हैं। करता है, वह उत्पाद-व्यय करता है। आत्मा को! अपने को तो यहाँ आत्मा का लेना है न? आहा...हा...! सम्यग्दर्शन का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय, वे व्यतिरेक टिकते तत्त्व को नहीं छोड़ते हैं और वह व्यतिरेक टिकते तत्त्व को प्रकाशित करते हैं, आहा...हा...! समझ में आया या नहीं? - ऐसा उपदेश!

श्रोता : पर्याय से द्रव्य पहचाना जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही न! कार्य तो पर्याय में होता है न? आहा...हा...! वे पर्यायें ध्रुव को नहीं छोड़ती - एक बात; और वे पर्यायें ध्रुव को प्रकाशित करती हैं। न्याय से (बात करते हैं)। भाषा सादी है। आहा...हा...! फुरसत से कुछ निवृत्ति लेकर (समझे तो समझ में आये)। बापू! अरे...रे...! ऐसा अवसर कब मिले? आहा...हा...! वीतरागी तत्त्व को पहचानने, जानने और मानने का अवसर कब मिले? भाई!

इससे दो बात सिद्ध की हैं कि उत्पाद-व्यय जो विसदृश्य है, वे सदृश्य को नहीं छोड़ता। विसदृश्य होने पर भी सदृश्य जो ध्रुव-स्थिति है, उसे नहीं छोड़ता और विसदृश्य है, वह विसदृश्य को जानता है - ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! क्या कहा? समझ में आया? विसदृश्य है, वह विसदृश्य को ही प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! विसदृश्य अर्थात् उत्पाद और व्यय विसदृश्य है। दोनों के भाव में विरोध है। एक ही भावरूप और एक है अभावरूप। उत्पाद भावरूप है और व्यय अभावरूप है, तथापि दोनों एक ही समय में होते हैं। फिर भी वे दोनों स्थिति को नहीं छोड़ते, टिकते तत्त्व को वे नहीं छोड़ते - एक बात। दूसरा - उस टिकते तत्त्व को वे व्यतिरेक प्रकाशित करते हैं। व्यतिरेक, व्यतिरेक को प्रकाशित करते हैं, ऐसा नहीं कहा। अन्दर ज्ञान होने पर वह आ जाता है परन्तु वे व्यतिरेक ध्रुव को प्रकाशित करते हैं। आहा...हा...! गजब बात करते हैं न? भाई! यह मार्ग तो ऐसा है, यह कोई वार्ता नहीं है। यह तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा लिखी गई है, अमृतचन्द्राचार्य ने टीका की है। सब विरोध करते हैं कि निमित्त के बिना कार्य होता है? तत्त्वार्थ राजवार्तिक में आता है 'दो कारण से कार्य होता है।'

यहाँ कहते हैं कि इसका - उत्पाद-व्यय का जो कार्य है, वह स्वयं से होता है और वह कार्य सदृश्य को नहीं छोड़ता, वह कार्य सदृश्य को नहीं छोड़ता और वह कार्य सदृश्य को प्रकाशित करता है। आहा...हा...! बनियों की बहियों में नहीं आता, बाहर की चर्चा में नहीं आता। आहा...हा...! क्या बात की है! **व्यतिरेकों के द्वारा ही...** देखा? उत्पाद और व्यय जिस समय के है, उसी समय में स्थिति है, तथापि उस स्थिति को व्यतिरेक द्वारा प्रकाशित करते हैं। आहा...हा...! इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु और देव, शास्त्र से ध्रुव

प्रकाशित नहीं होता। इसकी पर्याय का उत्पाद-व्यय (है, वह) पर्याय द्वारा ही प्रकाशित होता है, आहा...हा...! शास्त्र द्वारा भी वह प्रकाशित नहीं होता। उसकी जो पर्याय है, (उसके द्वारा प्रकाशित होता है)। वह जो टिकता तत्त्व है, उससे दो समय अलग नहीं है। आहा...हा...! और टिकते तत्त्व को व्यतिरेक प्रकाशित करते हैं, तथापि समय दूसरा नहीं है। व्यतिरेक द्रव्य को प्रकाशित करते हैं, उनका समय अलग नहीं है। आहा...हा...! इतना सब याद कब रखना? यह सब ऐसी सूक्ष्म बात है। कहीं मिले ऐसी नहीं है, बापू! कठोर काम है, अभिमान से कहे कि मेरे पास है; हम कहते हैं वह सच्चा - ऐसा नहीं है। बापू! वस्तु ऐसी है, भाई! आहा...हा...! गजब काम करते हैं न! इसमें कितनी गम्भीरता है!! आहा...हा...!

समकित का उत्पाद जो मूल चीज है, मिथ्यात्व का व्यय, यह टिकता नित्यानन्द प्रभु है (उससे) वे व्यतिरेक भिन्न नहीं हैं, काल अलग नहीं हैं, आहा...हा...! व्यतिरेक अन्वय को नहीं छोड़ते, आहा...हा...! और वह व्यतिरेक ध्रुव को प्रकाशित करते हैं, भिन्न-भिन्न विसदृश्य परिणाम अथवा उत्पाद और व्यय दो की अपेक्षा विरुद्ध है, तथापि वह उत्पाद, ध्रुव को प्रकाशित करता है। आ...हा...हा...!

भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो। (समयसार की) ११ वीं गाथा - भूतार्थ वस्तु के आश्रय से सम्यक् होता है। इसका अर्थ सम्यग्दर्शन पर्याय, द्रव्य को जानती है। आहा...हा...! द्रव्य को प्रकाशित करती है। ऐसी मूल वस्तु के बिना व्रत-तप और भक्ति... (यह सब व्यर्थ हैं।) मूल सम्यग्दर्शन क्या है (इसका पता नहीं है) आहा...हा...! भले ही चारित्रदोष हो, इस कारण से दर्शन का (श्रद्धा का) दोष नहीं है। दूसरा दोष दूसरे गुण को दोष करता है - ऐसा नहीं है। यह क्या कहा? चारित्रगुण का जो दोष उत्पाद (हुआ), वह सम्यग्दर्शन की पर्याय को दोष नहीं करता। आहा...हा...! चारित्रदोष का उत्पाद है, उसी समय सम्यग्दर्शन का उत्पाद है परन्तु वह सम्यग्दर्शन का उत्पाद और चारित्र का दोष - दोनों एक समय में होने पर भी, वह दोष सम्यग्दर्शन की पर्याय को दोष नहीं करता है। आहा...हा...!

नरक में भी शील लिया है। रात्रि में कहा था, नरक में भी शील है। शील अर्थात् सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव - ऐसा शीलपना वहाँ भी है। दूसरे दोष

भले हों परन्तु यह शील वहाँ है और वहाँ तक लिया है कि वहाँ से तीर्थङ्कर होगा! आहा...हा...! चारित्रदोष है परन्तु दर्शनदोष नहीं है। वह उत्पाद है, वह द्रव्य को प्रकाशित करता है। व्यय है, वह उसकी जाति की पर्याय का व्यय है। चारित्रदोष के साथ किञ्चित् स्वरूपाचरण का उत्पाद साथ में है। स्वरूप के अचारित्र का व्यय है। यह क्या कहा? सम्यग्दर्शन की पर्याय के समय सम्यग्ज्ञान की पर्याय है, स्वरूपाचरण की पर्याय है, वह पूर्व की पर्याय स्वरूपाचरण की (पर्याय से) विरुद्ध है, उसका वहाँ व्यय है। आहा...हा...! स्वरूपाचरण की पर्याय का उत्पाद है और यह इससे विरुद्ध है, उसका व्यय है परन्तु वह उत्पाद और व्यय, स्थिति-ध्रुव क्या है? - उसे बतलाते हैं। आहा...हा...! इसमें ऐसा नहीं कहा कि उत्पाद और व्यय, उत्पाद को बतलाता है - ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! क्या शैली! वह तो जानने में आ जाता है। उत्पाद-व्यय, द्रव्य को जानता है। जोर यहाँ दिया है। वरना तो यहाँ पदार्थ की स्थिति का वर्णन है। ज्ञेय पदार्थ में - जो ज्ञान में पदार्थ ज्ञात हुए, भगवान आत्मा के ज्ञान में (ज्ञात हुए), उन पदार्थों की स्थिति-मर्यादा किस प्रकार है? - ऐसा बतलाते हैं। उसमें यह डाला है।

परमाणु में भी उत्पाद-व्यय है, वह परमाणु की ध्रुवता को बतलाता है। जाननेवाला भले ही आत्मा है। ध्रुव प्रकाशित होता है, अपनी उत्पाद-व्यय की पर्याय से वह ध्रुव प्रकाशित होता है।

श्रोता : जाने भले ही ज्ञान?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा भले ही (होवे), जाननेवाला भले ही दूसरा होवे, उसका कुछ नहीं परन्तु उसका उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, स्वयं के कारण जो पर्याय का उत्पाद-व्यय है, वह परमाणु की कायम की स्थिति को प्रकाशित करता है। आहा...हा...! ऐसा है न? **व्यतिरेकों के द्वारा ही... 'ही'...** एकान्त कर दिया। दूसरे के द्वारा नहीं। आत्मा के उत्पाद-व्यय के द्वारा आत्मा ज्ञात होता है परन्तु वह भगवान और देव-शास्त्र-गुरु के कारण नहीं। इनसे ही ज्ञात होता है, ऐसी एक ही बात की है। आहा...हा...! ऐसी बात कहाँ है? इन एक-एक शब्दों में (गम्भीरता है।) दिगम्बर सन्त, केवली के आढ़तिया हैं। आहा...हा...! जगत् को केवलज्ञान प्रवाहित किया है।

भाई ! तू आत्मा है न, प्रभु ! तेरी पर्याय में जो उत्पन्न होता है, वह तुझसे होता है; पर से नहीं। आहा...हा... ! यह तो कहा है न ? ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, इससे यहाँ ज्ञान की वृद्धि होती है, इससे यहाँ इनकार करते हैं। एक बार (संवत्) १९८१ में एक भाई 'गड्ढा' में आये थे। (वे कहते थे) ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम अनुसार ज्ञान व्यक्त होता है। यह उन्होंने पढ़ा है, और यह बात कहूँ ऐसा। (उनसे) कहा ऐसा नहीं है। ८१ की बात है ! गड्ढा के चातुर्मास में (बात हुई थी), तुम्हारे जन्म के पहले की बात है, ८१ (अर्थात्) कितने (वर्ष) हुए ? ५४ ! आ...हा...हा... ! पढ़ते थे न ? बुद्धि बहुत नहीं थी परन्तु निवृत्ति थी। उस समय दस लाख थे, फिर बढ़ गये, करोड़पति (हो गये)। यहाँ व्याख्यान में बैठे थे, तब बात करते हुए ऐसे बोले कि जितना ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो, उतना ज्ञान होता है। (हमने) कहा ऐसा नहीं है। अपने पुरुषार्थ से ज्ञान की पर्याय जितनी विकसित होती है, उतना क्षयोपशम होता है। कर्म तो सामने दूसरी चीज है, उससे क्या है ? अ...रे...रे... ! ऐसी बात है।

गोम्मटसार में ऐसा कथन आता है कि ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को रोकता है, ज्ञान को अवृत्त करता है, लो ! (आता है) ज्ञान और ज्ञानावरणीय अलग-अलग चीज हैं।

प्रश्न : भाव, ज्ञानावरणीय को रोके या... ?

समाधान : भावघात, भावघाति है न ? रात्रि में कहा था – भावघाति। ज्ञान की हीन पर्याय स्वयं भावघाति है। आहा...हा... ! वह दूसरी चीज तो निमित्तमात्र वस्तु है परन्तु निमित्त से कहीं इसमें फेरफार (होवे) या थोड़ा सा भी कम ज्यादा (होवे) या अधिक, विपरीत कुछ मदद हो – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! यह आज बहुत आया था न ? उपादान और निमित्त। स्वाध्याय में नहीं आया था ? उपादान-निमित्त दोहा।

प्रश्न : शास्त्रकार ने निमित्त में अन्तर तो बताया है न ?

समाधान : निमित्त है – ऐसा बताया है। अन्तर अर्थात् ? निमित्त है। प्रत्येक के वस्तु में भिन्न-भिन्न प्रकार के निमित्त हैं, एक प्रकार के निमित्त नहीं होते हैं। उचित निमित्त है – ऐसा कहा था न ?

श्रोता : नोकर्म को असत्भूत निमित्त कहा और कर्म को सत्भूत निमित्त कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नोकर्म हो या चाहे कुछ हो – सब निमित्त है। निमित्त है परन्तु उचित निमित्त हो, उसके योग्य निमित्त हो, तथापि उसके योग्य निमित्त, उसे कुछ करता नहीं है – ऐसा पाठ आता है। – 'उचित निमित्त की उपस्थिति में' उचित निमित्त (कहा) वह तो निमित्त की उचितता कही है, वह निमित्त उसके योग्य है। जैसे, आत्मा गति करता है, तब धर्मास्तिकाय उसे उचित निमित्त है; तथापि वह उचित निमित्त कहीं गति नहीं कराता। आहा...हा...! इसी प्रकार कुम्हार घट को उचित निमित्त कहलाता है परन्तु उचित निमित्त से घट में कुछ होता है – ऐसा बिलकुल नहीं है। आहा...हा...!

अच्छे अक्षर लिखने में उचित निमित्त वैसा क्षयोपशम हो उसे होगा न? बहुत क्षयोपशम हो वह मोती के दाने (जैसे) अक्षर निकाले, सामने उसे उचित निमित्त कहा जाता है परन्तु उसके कारण अक्षर होते हैं और वह लिखता है – ऐसा बिलकुल नहीं, जरा भी नहीं है। आहा...हा...! जैसे कि पापड़ होता है, बड़ी होती है, हलवा होता है, वह क्या कहलाता है? पूड़ी; होशियार बाई हो वह बराबर एक सरीखी करती है। ऐसा घी हो और ऐसा करे और वैसा करे... उसे उचित निमित्त हो परन्तु उस उचित निमित्त से उसमें कुछ हुआ है – (ऐसा नहीं है)।

प्रश्न : वह बाई की होशियार तो गिनी जाती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिलकुल नहीं। उसकी होशियारी उसमें रही, इसमें – पूड़ी में कहाँ आ गयी?

श्रोता : निमित्त होशियार है – ऐसा तो बताता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पता पड़े कि उसकी होशियार उसमें है – ऐसा ज्ञात होता है। उसके कारण यहाँ कुछ हुआ है – (ऐसा नहीं है) इसलिए उचित निमित्त कहा है। उचित निमित्त का अर्थ ही उन लोगों ने ऐसा कर दिया है कि देखो! उसके योग्य निमित्त है इसलिए कुछ कार्य होता है... ऐसा नहीं है। यह तो निमित्त की योग्यता, इस कार्य के काल में ऐसा निमित्त होता है, यह बताया परन्तु इससे कहीं निमित्त के कारण यहाँ उत्पाद पर्याय होती है (– ऐसा नहीं है)। आहा...हा...!

प्रश्न : सब मुकद्मे जीते, वह सब पानी में गया?

समाधान : जीते वह सब पानी में गया। पानी में गया नहीं, अहंकार का बन्धन (हुआ है) कहो, ऐसी बात है। आहा...हा...!

यहाँ तो मस्तिष्क में दूसरा शब्द आया कि 'उचित निमित्त' कहा है न? उचित निमित्त का अर्थ ही यह है कि सामने इसके योग्य निमित्त हो, होवे, फिर भी उससे कुछ हो, उचित-योग्य है, इसलिए यहाँ (कुछ) हो – ऐसा नहीं है। पढ़ाने में उचित निमित्त अध्यापक होता है या कुम्हार होता है? उचित निमित्त है, इसीलिए वहाँ छात्र को ज्ञान होता है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

प्रश्न : एक को उदासीन और एक को प्रेरक (निमित्त) कहने में कुछ मर्म तो होना चाहिए न?

समाधान : बिलकुल नहीं। सब एक (ही) है। यह तो गति करता हो, उसे उदासीन (निमित्त है) पर के लिए दोनों उदासीन हैं; पर के लिए दोनों धर्मास्तिकायवत् उदासीन हैं। इष्टोपदेश ३५ वीं गाथा! आहा...हा...! जो ध्वजा हिलती है (उसमें) पवन उचित निमित्त है, परन्तु उसके कारण ध्वजा हिलती है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! गन्ने में से रस निकलने में संचा उचित निमित्त है परन्तु उस निमित्त से गन्ने का रस निकलता है, यह बात झूठ है। उसके उत्पाद-व्यय उसे प्रकाशित करते हैं, बस! आहा...हा...! ऐसी बात। यह तो उचित निमित्त का अर्थ किया। उचित निमित्त होता है परन्तु उसके योग्य; उचित का अर्थ 'उसके योग्य ही' होता है। उसके योग्य होने पर भी पर में कुछ नहीं करता आहा...हा...! ऐसी बात है। समझ में आता है?

(यहाँ कहते हैं कि) **और यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया तदनुसार) न माना जाय तो...** है? भाषा तो सादी है, प्रभु! इसे समझना हो तो (समझ में आये वैसा है)। टीका बहुत सादी, बहुत सरल भाषा से की है! आहा...हा...! तथापि वहाँ सुननेवाले को वाणी उचित निमित्त कहलाती है परन्तु फिर भी सुननेवाले को जो पर्याय होती है, उस उत्पाद को इस निमित्त से कुछ असर नहीं है। आहा...हा...! उचित निमित्त से कोई असर नहीं है और इससे कुछ नहीं होता। घड़ा होने में उचित निमित्त तो कुम्हार ही होगा न? घड़ा

(बनते) समय कपड़े का व्यापारी बनिया होगा? अतः निमित्त में इतना अन्तर पड़ा या नहीं? परन्तु निमित्त में अन्तर पड़ा, इससे पर में कहाँ अन्तर पड़ा? आहा...हा...! गजब बात है, बापू! परम सत्य को प्रसिद्ध करने की सन्तों की कला...! आहा...हा...! परम सत्य है, उसे प्रसिद्ध करने की सन्तों की बहुत सरलता! आहा...हा...! ऐसी सरल टीका...! आहा...हा...! जगत् का भाग्य! भाषा की पर्याय रह गयी। आहा...हा...!

और यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया तदनुसार) न माना जाय तो 'सर्ग अन्य है...' अन्य काल में उत्पत्ति है, अन्य काल में संहार है, अन्य काल में स्थिति है। **(ऐसा सिद्ध होता है अर्थात् तीनों पृथक् हैं - ऐसा मानने का प्रसङ्ग आ जायेगा।)...** एक ही समय में तीनों हैं - ऐसा न मानने से अलग-अलग समय में मानने का प्रसङ्ग आता है। आहा...हा...! बहुत सिद्धान्त (रख दिये हैं)।

इसकी मान्यता में अन्तर पड़ता है कि उत्पाद व्यय है, इसीलिए ध्रुव प्रकाशित होता है, पर के कारण नहीं। ऐसी श्रद्धा होवे तो इसकी परावलम्बी श्रद्धा छूट गयी। आहा...हा...! इतना तो इसे लाभ होता है। आहा...हा...! अब इसे स्वसन्मुख झुकना रहा और स्वसन्मुख झुकने की भी पर्याय है, वह स्वसन्मुख झुके; ध्रुव है वह तो ध्रुव ही है। आहा...हा...! पर की पर्याय से अन्तर में झुके, यह तो नहीं रहा और अपनी जो पर्याय है, उससे अन्तर में झुके - इतनी पर्याय इसे प्रकाशित करती है। यह न हो तो एक समय में तीन है - यह सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...! दृष्टान्त तो बहुत (मिलते हैं)।

यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया तदनुसार) न माना जाय तो ऐसा सिद्ध होगा कि 'सर्ग अन्य है, संहार अन्य है, स्थिति अन्य है।' (अर्थात् तीनों पृथक् हैं - ऐसा मानने का प्रसङ्ग आ जायेगा।) ऐसा होने पर (क्या दोष आता है, तो समझाते हैं)... यदि ऐसा न माने तो क्या-क्या दोष उत्पन्न होते हैं, वह समझाया जाता है।

केवल सर्ग... अकेली उत्पत्ति **शोधक कुम्भ की...** अकेले घट की उत्पत्ति को जाननेवाला, शोधनेवाला **(-व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) उत्पादनकारण का अभाव होने से...** आहा...हा...! व्यय है, वह उत्पादनकारण है - ऐसा कहते हैं। अकेली उत्पत्ति, शोधने जाये तो उत्पादनकारण के

अभाव के कारण अकेली उत्पत्ति नहीं दिखाई देती। अकेली उत्पत्ति नहीं हो सकती, आहा...हा...! अभी सूक्ष्म तो आता है। मुम्बई जैसे में ऐसा रखें तो (लोगों को ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं ? आहा...हा...!

केवल-अकेली एक घट की उत्पत्ति को देखने जाये, (मात्र) उत्पत्ति को; स्थिति को नहीं और व्यय को नहीं तो **उत्पादन कारण का अभाव होने से...** उत्पत्ति का कारण संहार है। संहार का अभावरूप कारण न हो तो उत्पत्ति का कार्य नहीं हो सकता। पिण्ड की पर्याय का संहार का अर्थात् उसके अभाव का कारण न हो तो उत्पत्ति का कार्य नहीं हो सकता। आहा...हा...! उसमें ऐसा नहीं कहा कि दूसरा उचित निमित्त न हो तो वहाँ उत्पन्न /उत्पाद नहीं हो सकता – ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! समझ में आया ? इसमें ही इसमें घट की जो उत्पत्ति है, वह अकेली देखने जाये तो उत्पत्ति का कारण जो व्यय-संहार है, उसके अभाव से वह उत्पत्ति ही नहीं होती। समझ में आया ? उचित निमित्त के बिना उत्पत्ति नहीं होती – ऐसा नहीं लिया है। आहा...हा...! आहा...हा...! ऐसी बातें है। अरे...! ऐसी बातें सुनने मिलना कठिन है बापू! यह तो परमात्मा के ज्ञान की धारा है! तीन लोक के नाथ के द्वारा कथित तत्त्व की यह धारा है। बापू! आहा...हा...! यह बात साधारण रूप से निकाल दे... आहा...हा...! क्या प्रभु के शब्द! क्या टीका के शब्द! यह वाणी प्रभु के शब्द हैं! आ...हा...हा...!

केवल-अकेली घट की उत्पत्ति देखे तो **(-व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) उत्पादन कारण का अभाव होने से...** आहा...हा...! नीचे (मूल शास्त्र में अर्थ दिया है।) उत्पादन कारण अर्थात् उत्पत्ति का कारण। वस्तुतः तो पर्याय का संहार है, वह ही उत्पत्ति का कारण है। यह तो आया था न, जैनतत्त्व मीमांसा में! पूर्व पर्याय युक्त द्रव्य वह कारण, पूर्व पर्याय युक्त द्रव्य वह कारण, उत्तर पर्याययुक्त वह कार्य। यदि वह पूर्व पर्याय न हो तो उत्तर पर्याय कहाँ से होगी ? उसमें फिर क्षयकारण रखा! वह पूर्व पर्याय का भी क्षय-संहार। (मिट्टी के पिण्ड का) संहार न हो तो घट की उत्पत्ति नहीं होगी। आहा...हा...!

मिथ्यात्व का व्यय न हो तो समकित की उत्पत्ति का अभाव होता है। आहा...हा...! समझ में आया ? मिथ्याश्रद्धा का संहार न हो – व्यय न हो और सामने टिकता तत्त्व न हो...

आहा...हा... ! तो उत्पत्ति कहाँ से होगी ? आहा...हा... ! अकेले Logic से–न्याय से बात की है। इसमें विवाद करते हैं – एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है... ! प्रभु... ! क्या करता है ? बापू ! यह एकान्त ही है, अनेकान्त भी अनेकान्तरूप है। (अनेकान्त भी) सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्त - ऐसा है। आहा...हा... ! उस–उस पर्याय का अंश उससे होता है, यह सम्यक् एकान्त है। नय है, वह सम्यक् एकान्त है; प्रमाण है, वह सम्यक् अनेकान्त है, आहा...हा... !

यहाँ यह कहते हैं कि अकेली उत्पत्ति माँगनेवाला... आहा...हा... ! ज्ञान की विशेष पर्याय का उत्पाद हुआ, उसकी पहले की पर्याय का यदि संहार ही न हो, उसकी पहले की पर्याय का व्यय ही न हो और वस्तु की स्थिति न हो तो यह उत्पाद ही नहीं होगा। उत्पाद के कारण बिना उत्पाद नहीं होता, परन्तु कारण यह। इसकी पूर्व की पर्याय का व्यय, वह कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है; बाहर का कोई कारण नहीं है। आहा...हा... ! **उत्पादन कारण का अभाव होने से उत्पत्ति ही नहीं होगी...** एक बात !

अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा... आहा...हा... ! असत् (अर्थात्) अध्धर से। जैसे आकाश के फूल हों, ऐसा होगा। संहार और स्थिति न हो तो उत्पाद तो आकाश के फूल की तरह हो जायेगा। आहा...हा... ! है ? **अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा...** असत् - है नहीं, उसका उत्पाद होगा। आहा...हा... ! स्थिति और संहार इसके बिना यदि उत्पन्न हो, तब तो असत् की उत्पत्ति (होगी)। है नहीं, और उत्पन्न हो - ऐसा नहीं है। अकेले न्याय का विषय रखा है। आहा...हा... ! यह एक बात हुई।

(१) यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति ही नहीं होगी।... यह तो दृष्टान्त हुआ। जैसे, कुम्भ की उत्पत्ति, स्थिति और संहार कारण के बिना नहीं होगी, इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का अभाव न हो तो वह पर्याय ही नहीं होगी। प्रत्येक द्रव्य में - अनन्त द्रव्य हैं उनमें स्थिति नहीं होगी और पूर्व का संहार–अभाव कारण नहीं होगा तो प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद ही नहीं होगा। आहा...हा... ! क्या वस्तु ! समझ में आया ? कहते हैं कि घट की उत्पत्ति में संहार और स्थिति के कारण के बिना, उत्पत्ति होवे तो असत् की उत्पत्ति होगी। इसी प्रकार समस्त -

अनन्त द्रव्यों में जिस समय उनकी (पर्याय की) उत्पत्ति होगी, उसके पूर्व के संहार के कारण के बिना और स्थिति के बिना वह उत्पत्ति (नहीं) होगी। सत्, सत् है तो उत्पत्ति होती है - ऐसा कहते हैं। अध्धर से उत्पत्ति होगी (ऐसा नहीं है) आहा...हा...! बहुत बात... मुद्दे की रकम है। **(जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का उत्पाद ही नहीं होगा - यह दोष आयेगा)...।**

अथवा (२) यदि असत् का उत्पाद हो तो... (अर्थात्) कुछ है ही नहीं; स्थिति है ही नहीं; वस्तु के उत्पाद के काल में भी स्थिति है ही नहीं... आहा...हा...! तो असत् का उत्पाद होगा। **व्योम-पुष्प इत्यादि का भी उत्पाद होगा...** है ? व्योम पुष्प अर्थात् आकाश का फूल। आहा...हा...! नहीं है, उसमें से उत्पन्न होगा। (जैसे) आकाश का फूल। आहा...हा...! न्याय भी क्या दिया है ? व्यापारियों को यह जैनधर्म मिला! उसमें ऐसे न्याय! वकालात की तरह सब न्याय हैं। मस्तिष्क में बैठना कठिन पड़ता है। है तो बहुत सादी भाषा। आकाश के पुष्प का उत्पाद होगा, ऐसे **शून्य में से भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे...** ऐसे। शून्य में से भी (पदार्थ उत्पन्न होंगे) स्थिति नहीं, संहार के कारण का अभाव नहीं और अध्धर से होवे तो शून्य में से भी नहीं होंगे। यह स्थिति के साथ का वर्णन है।

विशेष कहेंगे...!

प्रवचन नं. १०७ **दिनाङ्क १७ जून १९७९**

प्रवचनसार, १०० वीं गाथा। इसमें २०० पृष्ठ है, अन्तिम पैराग्राफ। यहाँ क्या कहते हैं ? कि उत्पाद-व्यय और ध्रुव वस्तु का स्वभाव है। प्रत्येक वस्तु जितनी है, उस सबके स्वभाव में द्रव्य रहता है और वह स्वभाव उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। सूक्ष्म बात है, भाई! अब यहाँ ऐसा कहा है। उत्पाद की बात तो हो गयी है। अकेला उत्पाद शोधने जाये तो संहार के कारण बिना उत्पाद नहीं रह सकता, यह बात कल हो गयी है। प्रत्येक द्रव्य में अकेला उत्पाद देखने जाये - वर्तमान पर्याय (देखने जाये) परन्तु उसके संहार के - उपादान कारण के अभाव के बिना वह उत्पाद नहीं हो सकता।

अब यहाँ (कहते हैं कि) **केवल व्ययारम्भक...** आज यह विषय है, बहुत सूक्ष्म। किसी भी द्रव्य में यदि संहार अर्थात् व्यय ढूँढ़ने जाये, आरम्भनेवाला संहार को ढूँढ़ने जाये, **(मृत्तिकापिण्ड का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरहित केवल व्यय करने को उद्यत...)** मृत्तिकापिण्ड का अकेला व्यय ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद और ध्रुव के बिना वह नहीं हो सकता, उत्पाद उसका कारण है। उत्पाद का संहार कारण है और संहार का उत्पाद भी कारण है – ऐसी बात है।

यदि प्रत्येक द्रव्य में केवल व्यय अर्थात् पर्याय का अभाव-संहार मानने जाये तो **मृत्तिकापिण्ड का (उत्पाद और ध्रौव्य से रहित केवल व्यय करने को उद्यत मृत्तिकापिण्ड का) संहारकारण का अभाव होने से संहार ही नहीं होगा;...** देखा! मृत्तिकापिण्ड का व्यय नहीं है – ऐसा ढूँढ़ने जाये तो संहार कारण के अभाव के बिना अर्थात् उत्पाद है, वह संहारकारण का कारण है। जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह संहार-व्यय का कारण है। संहार का कारण उत्पाद है और उत्पाद का कारण संहार है। बनियों ने किसी दिन यह न सुना हो, ऐसी बात है। आहा...हा...!

श्रोता : बनियों के अलावा दूसरा सुनता कौन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कौन सुने तब? यह तो नयी बात है। वे तो (दूसरे तो) दया पालो, यह करो, वह करो... तत्त्व की दृष्टि का कुछ पता नहीं है।

(कहते हैं) केवल अकेला व्यय ढूँढ़ने जाये, मिट्टी के पिण्ड का अकेला अभाव ढूँढ़ने जाये तो **मृत्तिकापिण्ड का (उत्पाद और ध्रौव्य से रहित केवल व्यय करने को उद्यत मृत्तिकापिण्ड का) संहारकारण का अभाव होने से...** मृत्तिकापिण्ड का व्यय है, वह उत्पाद के कारण से इसका व्यय है। व्यय, उत्पाद का कारण है और उत्पाद, व्यय का कारण है। पिण्ड का व्यय, यह यदि घड़े की उत्पत्ति न हो तो संहार नहीं हो – ऐसा है। उत्पत्तिरहित अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद के कारण के अभाव से व्यय ही हाथ नहीं आयेगा, व्यय ही नहीं हो सकेगा... आहा...हा...! अकेला Logic भरा है। आहा...हा...!

संहारकारण का अभाव होने से... संहार का कारण तो उत्पाद है। घड़ा उत्पन्न हुआ, इसमें संहार उसका कारण है और संहार का उत्पाद कारण है। अकेला संहार ढूँढ़ने

जाये तो उत्पाद के बिना वह संहार नहीं हो सकता – ऐसा सूक्ष्म है। **संहार ही नहीं होगा...** उत्पाद के कारण बिना – घट की उत्पत्ति के कारण बिना, पिण्ड का व्यय ही नहीं होगा। समझ में आया ?

अथवा तो सत् का ही उच्छेद होगा... अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो 'है' उसका नाश हो जायेगा। संहार का कारण उत्पाद है, इसलिए उत्पाद को न माने और संहार कारण ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद के कारण (बिना संहार नहीं हो सकेगा), (उत्पाद तो) संहार का कारण है, वह संहार ही सिद्ध नहीं होगा और या सत् है, उसका संहार होगा, नाश होगा। आहा...हा...! इसमें कुछ समझ में आया ? अकेला व्यय ढूँढ़ने जाये तो उत्पादकारण के बिना व्यय नहीं हो सकेगा – एक बात; अथवा अकेला व्यय ढूँढ़ने जाये तो सत् का ही व्यय हो जायेगा। 'है' उसका नाश हो जायेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। वीतराग का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है, बापू! आहा...हा...! लोगों को अभ्यास नहीं है, और बाहर से धर्म करेंगे – ऐसा मान लेते हैं। धर्म था कहाँ ? आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि धर्म की उत्पत्ति के अभाव में मिथ्यात्व का व्यय नहीं हो सकेगा अकेले मिथ्यात्व का व्यय ढूँढ़ने जाये तो समकित की उत्पत्ति के बिना वह व्यय नहीं हो सकेगा कहो इसमें ठीक है ? और या अकेला व्यय ढूँढ़ने जाये तो सत् जो ध्रुव वस्तु है, उसका नाश होगा – ऐसा है। वह तो सरल था, एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रिइन्द्रिया, चतुइन्द्रिया,पञ्चेन्द्रिया मिच्छामि दुक्कडं – हो गयी सामायिक! धूल भी सामायिक नहीं है। मिथ्यात्व की सामायिक हुई, मिथ्यात्व का लाभ हुआ। आहा...हा...!

कहते हैं कि सामायिक की उत्पत्ति के अभाव में पहली जो असामायिक-विसमता थी, उसका ही अकेला नाश ढूँढ़ने जाये, सामायिक की उत्पत्ति हुई, उसकी पूर्व असामायिक का संहार था, वह अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो उत्पत्ति के कारण बिना संहार नहीं हो सकेगा। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के बिना मिथ्यात्व का नाश नहीं हो सकेगा। चारित्र की उत्पत्ति के बिना अचारित्र का व्यय नहीं हो सकेगा और होगा तो सत् का-ध्रुव का नाश हो जायेगा।

दो कारण आये – संहारकारण और उत्पादकारण। यदि न हो तो उत्पन्न नहीं होगा और संहारकारण अकेला ढूँढ़ने जाने पर ध्रुव है, उसका नाश हो जायेगा। उत्पाद और ध्रुव

दोनों का वहाँ मेल नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? यह प्रवचनसार तो बहुत बार पढ़ा गया है, परन्तु अभी बहुत वर्षों से नहीं लिया था।

केवल संहारारम्भक... अर्थात् उत्पाद और ध्रुव के आश्रय बिना - उत्पाद और ध्रुव के अस्तित्व बिना अकेले संहार को ढूँढ़ने जाये तो उत्पत्ति के कारण बिना संहार नहीं हो सकता और या वह ध्रुव है, उसका संहार हो जायेगा - ऐसा है।

प्रश्न : धर्म के काम में Logic का क्या काम है ?

समाधान : Logic का काम तुम्हारी वकालात में कैसे काम करता है ? यह भी न्याय है। यह तत्त्व को सिद्ध करने की कॉलेज है, तत्त्व को सिद्ध करने की न्याय की कॉलेज है। आहा...हा... !

क्या कहा ? यदि अकेला उत्पाद शोधने जाये, (केवल) घट की उत्पत्ति (शोधने जाये) तो पिण्ड के व्यय बिना और मिट्टी की ध्रुवता के बिना घट की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। उत्पत्ति नहीं हो सकती तो प्रत्येक द्रव्य की पर्याय में उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार संहार-व्यय, अकेला व्यय (ढूँढ़ने जाये) तो उत्पादकारण बिना - उत्पन्न हो, उस कारण बिना अकेला व्यय-संहार नहीं हो सकता। अर्थात् उत्पादकारण के बिना संहार का अभाव होगा और या ध्रुव है, उसका संहार हो जायेगा। आहा...हा... ! ऐसा है।

अब, सिद्धान्त कहते हैं। **(१) यदि मृत्तिकापिण्ड का व्यय न होगा तो समस्त ही भावों ही संहार ही न होगा...** अर्थात् ? संहार ही नहीं होगा तो समस्त द्रव्य हैं, उनकी पर्याय का व्यय ही नहीं होगा। जगत् के जो द्रव्य हैं, उनका व्यय नहीं होगा। मिट्टी के पिण्ड की उत्पत्ति के कारण बिना मृत्तिकापिण्ड का व्यय नहीं हो सकेगा और यदि ऐसा हो तो समस्त द्रव्यों का संहार हो जायेगा। अर्थात् ? कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति नहीं होगी और उत्पत्ति के कारण बिना उसके पूर्व का जो व्यय है, वही सिद्ध नहीं होगा, व्यय ही नहीं होगा। आहा...हा... ! ऐसा सूक्ष्म है, वीतराग का तत्त्व बहुत सूक्ष्म है ! **(अर्थात् जैसे मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भाव का संहार ही नहीं होगा...)** पलटेगा ही नहीं। जैसे मृत्तिकापिण्ड का अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद और ध्रुव के बिना वह नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार

जगत् के समस्त पदार्थों में अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो द्रव्य की उत्पत्ति और ध्रुव के बिना संहार हो ही नहीं सकेगा। आहा...हा...! समझ में आया? **(किसी भाव का संहार ही नहीं होगा - यह दोष आयेगा)।**

अथवा (२) यदि सत् का उच्छेद होगा तो चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा... आहा...हा...! क्या कहते हैं? अकेले मृत्तिकापिण्ड का व्यय ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद के कारण बिना व्यय सिद्ध नहीं होगा और या तो सत् का ही विच्छेद हो जायेगा - इसी प्रकार यहाँ समस्त (द्रव्य में) व्यय लागू होगा तो चैतन्यवस्तु है, उसका उच्छेद हो जायेगा। आहा...हा...! संहार अकेला ढूँढ़ने जाये तो चैतन्य है, उसका संहार हो जायेगा। संहार तो कब होता है? प्रत्येक द्रव्य में उत्पत्ति की पर्याय हो और ध्रुव कायम हो, उसे पर्याय का संहार लागू पड़ता है परन्तु उत्पाद और ध्रुव ही जहाँ नहीं हैं, उनका संहार हो तो द्रव्य का ही नाश हो जायेगा। द्रव्य का नाश होने पर भगवान चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद होगा। आहा...हा...! सच्चिदानन्द प्रभु! आत्मा सत् है। आहा...हा...! यदि अकेला व्यय ढूँढ़ने जाये तो सच्चिदानन्द प्रभु का उच्छेद हो जायेगा। आहा...हा...! ऐसा है। बनियों को हाथ आया और बनियों को फुरसत नहीं मिलती। आ...हा...! Logic है। यह सब Logic -न्याय है।

दो बातें हुई। क्या दो बातें हुईं? कि अकेली उत्पत्ति-द्रव्य की उत्पत्ति-पर्याय की उत्पत्ति ही ढूँढ़ने जाये तो व्यय के कारण-उपादान के कारण के अभाव से उत्पत्ति ही नहीं होगी और या उत्पत्ति हो तो द्रव्य की ही सम्पूर्ण नयी उत्पत्ति हो जायेगी, परन्तु ऐसा है नहीं; और (केवल) संहार ढूँढ़ने जाये तो उत्पत्ति के कारण बिना अकेला संहार नहीं हो सकता। संहार नहीं हो सकता और या तो द्रव्य का उच्छेद-नाश हो जायेगा। द्रव्य का नाश होने पर चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु! सत् शाश्वत् वस्तु है, (उसका भी नाश हो जायेगा)। अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो उसकी उत्पत्ति के बिना संहार सिद्ध नहीं होगा और उत्पत्ति तथा ध्रुवपना यदि नहीं रहेगा तो ध्रुव का नाश हो जायेगा। आहा...हा...! समझ में आया? दो बोल हुए।

अब **केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली...** अर्थात् क्या कहते हैं? कि यदि मिट्टी का रहना-टिकना-अकेला ध्रुवपना ढूँढ़ने जाये (केवल स्थिति अर्थात्)

'(उत्पाद और व्ययरहित) अकेला ध्रुवपना अकेला टिकनापना, अकेला अवस्थान, (अन्वय, व्यतिरेकसहित ही होते हैं...)' ध्रुव है वह, उत्पाद व्यय के व्यतिरेकों सहित ही होता है [इसलिए ध्रौव्य उत्पाद-व्ययसहित ही होता है, अकेला नहीं हो सकता जैसे उत्पाद (अथवा व्यय) द्रव्य का अंश है – समग्र द्रव्य नहीं है, उसी प्रकार ध्रौव्य भी द्रव्य का अंश है-समग्र द्रव्य नहीं है।] आहा...हा...! उत्पाद-व्यय और ध्रुव, तीन होकर द्रव्य है। अकेला ध्रुव वह तो अंश है, ध्रुव अंश की अकेली स्थिति ही ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद-व्यय के बिना स्थिति नहीं हो सकती। क्या कहा?

अकेली स्थिति-टिकना-टिकता तत्त्व ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद और व्यय के बिना वह स्थिति नहीं हो सकती, क्योंकि उत्पन्न और व्यय भिन्न-भिन्न व्यतिरेक हैं। भिन्न-भिन्न व्यतिरेक के बिना अभिन्न अकेला अन्वय ध्रुवद्रव्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। आहा...हा...! ऐसा वीतराग का कायदा है! अकेली स्थिति-ध्रुव ही ढूँढ़ने जाये कि ध्रुव ही है तो जो ध्रुव है, वह उत्पाद-व्यय के कारण के बिना, व्यतिरेक के बिना, भिन्न-भिन्न प्रकार के बिना अकेला ध्रुवपना हो ही नहीं सकता। आहा...हा...! अब इसमें कोई घर पर पूछे कि क्या समझे? (तो ऐसा कहे कि) सुनने आओ तो समझ में आयेगा। आहा...हा...!

केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की, व्यतिरेकों सहित स्थिति का... व्यतिरेक अर्थात् उत्पाद-व्यय भिन्न-भिन्न है, (उनसे) सहित **स्थिति का-अन्वय का...** स्थिति कहो या ध्रुव कहो या अन्वय कहो, (सब एकार्थ है।) **उसके अभाव होने से, स्थिति ही नहीं होगी...** उत्पाद-व्यय के व्यतिरेक के बिना स्थिति ही नहीं रहेगी – ध्रुवपना ही नहीं रहेगा। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय के कारण के बिना, व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न दशा के बिना अभिन्नपना एकरूप रह ही नहीं सकेगा। आहा...हा...! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य नयी-नयी अवस्था पलटता है, वह नजर से दिखता है और पुरानी अवस्था का व्यय होता है। अत: यह उत्पाद और व्यय न हो तो अकेला ध्रुव रह ही नहीं सकेगा। भिन्न-भिन्न उत्पाद और व्यय – व्यतिरेक – भिन्न-भिन्न प्रकार के बिना अभिन्नपना-ध्रुव रह ही नहीं सकेगा। समझ में आया? आचार्य ने बहुत न्याय से बात की है परन्तु यह अभ्यास चाहिए न? आहा...हा...!

यह तो एक-एक तत्त्व स्वतन्त्र (सिद्ध करते हैं।) उस तत्त्व का उत्पाद स्वयं के कारण होता है। यदि तू वह अकेला उत्पाद देखने जाये तो उत्पाद का उपादान कारण संहार है, उस संहार के बिना वह उत्पन्न/उत्पाद दिखाई नहीं देगा। समझ में आया? आहा...हा...! और अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो संहार का कारण उत्पाद है तो उससे रहित संहार नहीं हो सकेगा और अकेला ध्रुव ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद-व्यय के व्यतिरेकों की अनेकता के बिना एकपना नहीं रह सकेगा। आहा...हा...! व्यतिरेक के बिना अन्वय नहीं होगा। व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्पाद-व्यय के बिना ध्रुव नहीं हो सकेगा - ऐसी बात है। आहा...हा...! यह तो धीमे-धीमे समझने की बात है न? वीतरागमार्ग है, बापू! सन्तों ने तो कितनी... आहा...हा...! करुणा करके टीकाएँ रची हैं! आहा...हा...!

श्रोता : स्पष्टता तो आपने की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्तों! दिगम्बर मुनियों! आहा...हा...! ने जगत् को निहाल करने का रास्ता बताया है। बन्धन से छूट जाये और संसार का अन्त आवे, उसकी यह बात है। आ...हा...! आ...हा...!

तू यदि 'अकेला ध्रुव ही है' ऐसा ढूँढ़ने जायेगा तो ध्रुव है, वह व्यतिरेक के बिना ध्रुव है, वह रहेगा किस प्रकार? यदि उसमें जो कार्य है, वह कार्य नहीं और अकेला कारण - ध्रुव ही है (ऐसा ढूँढ़ने जायेगा तो) ऐसे किस प्रकार रह सकेगा? उत्पाद-व्यय वह कार्य है और ध्रुव उसका कारण है, तो उत्पाद-व्यय के बिना अकेला ध्रुव ढूँढ़ने जायेगा तो ध्रुव-कारण हो ही नहीं सकेगा। कार्य में ध्रुवता का ख्याल आता है, कार्य में ध्रुवता का ख्याल आता है-उत्पाद-व्यय में ध्रुवता का ख्याल आता है। यदि उस उत्पाद-व्यय का नकार करेगा और यदि अकेला ध्रुव ढूँढ़ने जायेगा तो ध्रुव ही नहीं रहेगा। आहा...हा...! यह तो कोर्ट के कायदे जैसा सब आया है। आहा...हा...!

अथवा तो क्षणिक को ही नित्यत्व आ जायेगा... क्योंकि व्यतिरेक के बिना अकेला ध्रुव (होवे) तो ध्रुव स्वयं क्षणिक हो जायेगा। आहा...हा...! अकेला ध्रुव ढूँढ़ने जाने पर व्यतिरेक अर्थात् उत्पाद-व्यय के कारण बिना ध्रुवपना लक्ष्य में ही नहीं आयेगा और दूसरे प्रकार से लें तो उत्पाद-व्यय के बिना यदि ध्रुव ढूँढ़ने जायेगा तो ध्रुव, क्षणिक

हो जायेगा, कायम टिकनेवाला नहीं रहेगा। परिवर्तन होने पर भी कायम रहती है - ऐसी वस्तु है। परिवर्तन — उत्पाद-व्यय होने पर भी कायम रहे - ऐसी चीज है। तू अकेली उस वस्तु को ढूँढ़ने जायेगा तो परिवर्तनरहित ध्रुव का क्षणिकपना आ जायेगा, ध्रुव को क्षणिकपना आ जायेगा। आहा...हा...! समझ में आया? आज का विषय जरा सूक्ष्म है।

आ...हा...! वस्तु है, भगवान ने यह सब (वस्तु)-अनन्त द्रव्य (देखे हैं)। वे एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित हैं। एक समय में! अब यदि कोई यह कहे कि इन तीन में से एक उत्पाद ही है तो उत्पाद है, वह व्यय के कारण बिना उत्पाद ही सिद्ध नहीं होगा और या असत् का उत्पाद हो जायेगा। असत् का उत्पाद होगा-है नहीं, वह उत्पन्न होगा। ध्रुव का अभाव होकर असत् (उत्पन्न होगा) आहा...हा...! और यदि अकेला संहार ढूँढ़ने जायेगा तो उत्पादकारण के बिना संहार सिद्ध होगा ही नहीं। आहा...हा...! और या सत् का ही संहार हो जायेगा। पहले में असत् का उत्पाद था इसमें सत् का नाश हो जायेगा (ऐसा कहा) और अकेली स्थिति ढूँढ़ने जायेगा तो उत्पाद-व्यय के व्यतिरेक-कार्य के बिना कारण सिद्ध ही नहीं होगा। आहा...हा...! और या ध्रुव है, वह क्षणिकपना प्राप्त करेगा। आहा...हा...! पहले में असत् की उत्पत्ति (कही थी) दूसरे में सत् का नाश कहा, तीसरे में क्षणिकपना कहा है। आहा...हा...! धीमे-धीमे समझने की बात है - ऐसा मार्ग है।

एक-एक द्रव्य, एक-एक परमाणु और एक-एक आत्मा, प्रत्येक समय में अपनी पर्याय से उत्पन्न होता है - ऐसा सिद्ध करना है। उस उत्पाद में पर की कुछ सहायता नहीं है। हाँ! उस उत्पन्न में संहार का कारण है, पूर्व की पर्याय का संहार का कारण है, आहा...हा...! और या टिकता ध्रुव है, वह उसका कारण है। यदि अकेला उत्पाद ही करने जाये तो संहार के बिना उत्पाद नहीं होगा और या असत् की उत्पत्ति हो जायेगी। आहा...हा...! ध्रुवपने के बिना तू अकेला उत्पाद करने जायेगा तो ध्रुव स्वयं सत् है, उसका नाश हो जायेगा, असत् हो जायेगा। आहा...हा...! इसमें दो-दो बार पुनरुक्ति लगे तो पकड़ में आवे तो ऐसा है, हाँ! आहा...हा...! आचार्यों ने क्या (बात की है!) ऐसी बात कहीं नहीं है! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा! आहा...हा...! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अनन्त है, वे अनन्त हैं, वे अपने स्वभाव में हैं; कोई एक पदार्थ पर के स्वभाव में नहीं है। अब स्वभाव

क्या ? कि उत्पाद-व्यय और ध्रुव उसका स्वभाव है, उसमें वह द्रव्य स्वयं सत् है। दूसरे उत्पाद-व्यय के कारण यह द्रव्य है - ऐसा नहीं है क्योंकि उसका स्वभाव ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप स्वभाव है, और द्रव्य, स्वभाव में रहता है। आहा...हा...! समझ में आया ?

अकेला उत्पाद-उत्पन्न होना... उत्पन्न होना - ऐसा हो... आहा...हा...! तो संहारकारण के बिना वह उत्पत्ति ही सिद्ध नहीं होगी और अथवा असत् की उत्पत्ति होगी। आहा...हा...! (अकेला) संहार ढूँढ़ने जाये तो उत्पन्न कारण के बिना-उत्पत्ति के कारण बिना (संहार नहीं होगा) उस उत्पत्ति के कारण बिना संहार नहीं, हाँ! पर के कारण बिना नहीं, आहा...हा...! उत्पत्ति के कारण बिना संहार सिद्ध नहीं होगा और या सत् का संहार हो जायेगा। 'है' उसका नाश हो जायेगा। आहा...हा...! अब यदि अकेला ध्रुव ढूँढ़ने जायेगा, प्रत्येक पदार्थ ध्रुव ही है - ऐसा यदि तू जाने तो ध्रुव है, वह कार्य - उत्पाद-व्यय - व्यतिरेक के बिना ध्रुव का लक्ष्य नहीं हो सकेगा। व्यतिरेकरहित ध्रुव नहीं हो सकेगा। अन्वय रह ही नहीं सकेगा। व्यतिरेक के बिना अन्वय हो ही नहीं सकेगा। अन्वय का अभाव हो जायेगा और या सत् का उच्छेद हो जायेगा या सत् का क्षणिकपना हो जायेगा। तीसरे बोल में (ऐसा आया कि) सत् का क्षणिकपना हो जायेगा। पहले बोल में (कहा कि) असत् की उत्पत्ति हो जायेगी; दूसरे बोल में (कहा कि) सत् का नाश हो जायेगा (और) तीसरे बोल में कहा कि क्षणिकपना हो जायेगा। आहा...हा...!

यह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया ? जो ज्ञेय हैं, (वे) इस प्रकार ही हैं। इस प्रकार इसकी श्रद्धा में न आवे और दूसरे प्रकार से श्रद्धा में आवे कि इस द्रव्य का उत्पाद, संहार कारण के बिना नहीं होता; परन्तु उसका उत्पाद निमित्त के बिना नहीं होता - ऐसा (श्रद्धा में आ जाये तो) वस्तु विपरीत हो जायेगी। आहा...हा...! यह क्या कहा ? धर्म की -सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति स्वयं मिथ्यात्व के व्यय बिना नहीं हो सकती। मिथ्यात्व का व्यय यह उपादान का अभाव है-उपादान है, उसका अभाव हुआ, तत्समय सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई और यदि अकेला उत्पाद ही ढूँढ़ने जायेगा तो संहार के बिना उत्पन्न/उत्पाद नहीं हो सकेगा और अकेला देखने जायेगा तो असत् की ही उत्पत्ति हो जायेगी। कोई ध्रुव रहकर उत्पन्न होगा - ऐसा है नहीं। आहा...हा...! यह ऐसा है।

केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की... मिट्टी ध्रुव है, उसे ही अकेला माने तो **व्यतिरेकों सहित स्थिति का-अन्वय का - उसके अभाव होने से...** कारण कि पलटती अवस्था के बिना ध्रुवपना रह ही नहीं सकता। अन्वय, व्यतिरेक के बिना नहीं हो सकता; इस कारण स्थिति ही नहीं हो सकेगी, टिक ही नहीं सकेगा, क्योंकि ख्याल आना है, वह तो उत्पाद-व्यय से है। ध्रुव का ख्याल आना है न? ध्रुव का ख्याल ध्रुव से नहीं आना है। उत्पाद-व्यय के लक्ष्य से, भले ही लक्ष्य करनेवाला दूसरा जीव है परन्तु उसमें उत्पाद-व्यय पर्याय न हो तो उसका अन्वय है, वह उसे सिद्ध नहीं होगा, कायम ध्रुव रहनेवाला (तत्त्व) सिद्ध नहीं होगा। आहा...हा...!

मुनियों ने भी ऐसी बातें की हैं! दिगम्बर सन्त आनन्द में रहनेवाले! अतीन्द्रिय आनन्द में! आहा...हा...! उसमें विकल्प आया, उसमें ऐसी बात रच गयी! शब्द में ऐसी बात रच गयी। आहा...हा...! उन्होंने रची नहीं, उनमें इस प्रकार का ज्ञान था कि संहार के बिना उत्पन्न (उत्पाद) नहीं होता, उत्पन्न के बिना संहार नहीं होता और उत्पन्न-संहार के बिना - व्यतिरेक के बिना अन्वय नहीं होता। आहा...हा...! कहो, यह तुम्हारे स्थानकवासी में (किसी) दिन सुना था? एकेन्द्रिय की दया पालो, व्रत पालो, उपवास करो... (ऐसा सुना था) आहा...हा...!

वस्तु की दृष्टि सम्यग्दर्शन का विषय है। यह सब सम्यग्दर्शन का विषय है, हाँ! ज्ञेय अधिकार! ९२ वें गाथा तक ज्ञान अधिकार। ९३ से २०० गाथा तक समकित अधिकार है, फिर चरणानुयोग का अधिकार है। आहा...हा...! तो कहते हैं कि तेरा प्रभु है न आत्मा! उसमें अकेली धर्म की पर्याय की उत्पत्ति देखने जायेगा तो मिथ्यात्व के व्यय के बिना वह उत्पत्ति नहीं होगी और या असत् की उत्पत्ति होगी। 'कुछ नहीं था और हुआ' ऐसा होगा। आहा...हा...! परन्तु चैतन्यभगवान है, उसमें से संहार होकर उत्पत्ति होती है। आहा...हा...! अकेला संहार-मिथ्यात्व का नाश ही ढूँढ़ने जायेगा तो समकित की उत्पत्ति के कारण बिना मिथ्यात्व का व्यय निश्चित (नहीं होगा), निर्णय ही नहीं होगा। आहा...हा...! और या भगवान सत् है, उसका नाश होगा। यदि अकेला संहार ही ढूँढ़ने जायेगा तो उसका नाश हो जायेगा। आत्मा अकेला टिकता-ध्रुव है - ऐसा यदि ढूँढ़ने जायेगा तो ध्रुव जो

अन्वय कायम रहनेवाला है, वह कायम रहनेवाला है, वह व्यतिरेक के बिना कायम रहनेवाला हो नहीं सकता, क्योंकि व्यतिरेक के द्वारा अन्वय ज्ञात होता है, उस पलटती अवस्था के द्वारा अन्वय ज्ञात होता है। वह पलटती अवस्था नहीं माने और अकेला ध्रुव माने तो उस पलटती अवस्था के बिना ध्रुव हो ही नहीं सकता और या वह ध्रुव क्षणिक हो जायेगा। आहा...हा...! इतने वर्ष में ऐसा किसी दिन नहीं सुना होगा।

यह प्रवचनसार है। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थङ्करदेव की वाणी! आहा...हा...! सन्तों को करुणा का विकल्प आया, उसके – विकल्प के भी वे कर्ता नहीं और टीका हुई, उसके तो कर्ता हैं ही नहीं। आहा...हा...! परन्तु टीका में यह बात रच गयी, उसमें उनका ज्ञान, विकल्प निमित्त कहलाता है, ज्ञान निमित्त कहलाता है। निमित्त का अर्थ ऐसा नहीं है कि यह हुआ, इसलिए वह ज्ञान निमित्त था इसलिए हुआ। ऐसी निमित्त की व्याख्या ही नहीं है। आहा...हा...!

लोकालोक को केवलज्ञान निमित्त कहलाता है, इससे कहीं लोकालोक से केवलज्ञान हुआ है? और केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त कहलाता है। केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त कहलाता है, इसलिए लोकालोक केवलज्ञान से हुआ है? बस! निमित्त कहलाता है तो निमित्त की व्याख्या यह है। निमित्त आवे इसलिए (जीव को ऐसा लगता है कि) निमित्त आया तब हुआ न? परन्तु निमित्त अर्थात् क्या? केवलज्ञान है, वह लोकालोक को निमित्त है, इससे कहीं केवलज्ञान के कारण लोकालोक है – ऐसा नहीं है। तथा लोकालोक को केवलज्ञान निमित्त है, आहा...हा...! समझ में आया? लोकालोक को केवलज्ञान का निमित्त है, इसलिए केवलज्ञान है इसलिए लोकालोक है – ऐसा है? आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) **और केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की, व्यतिरेकों सहित स्थिति का–अन्वय का – उसके अभाव होने से...** अन्वय ही नहीं रहेगा, **स्थिति ही नहीं होगी...** व्यतिरेक के बिना स्थिति ही नहीं रहेगी। आहा...हा...! पलटती अवस्था के बिना ध्रुव ही नहीं रहेगा। आहा...हा...! **अथवा तो क्षणिक को ही नित्यत्व आ जायेगा।...** क्षणिक है, वह नित्य हो जायेगा। आहा...हा...! **वहाँ (१) यदि मृत्तिका की स्थिति न हो तो समस्त ही भावों की स्थिति नहीं होगी,...** सभी

आत्माओं तथा परमाणुओं का ध्रुवपना ही नहीं रहेगा। जैसे, व्यतिरेक के बिना मृत्तिका की अकेली स्थिति नहीं रहती... आहा...हा... ! उसी प्रकार समस्त पदार्थों का भी व्यतिरेक के बिना ध्रुवपना नहीं रह सकेगा। आहा...हा... ! सूक्ष्म विषय है परन्तु मूल विषय है। यह सम्यग्दर्शन का मूल विषय है। इस प्रकार अन्दर में वस्तु को मानना।

अपनी उत्पत्ति; सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, मिथ्यादर्शन के व्यय के कारण हुई और वह उत्पत्ति ध्रुव से हुई और मिथ्यात्व का व्यय हुआ, वह समकित की उत्पत्ति के कारण हुआ। अकेला संहार-मिथ्यात्व का व्यय देखने जाये तो ध्रुव का भी नाश हो जायेगा। अकेला ध्रुवपना ढूँढ़ने जाये तो ध्रुव है, वह कहीं ध्रुव से ज्ञात होता है ? ध्रुव है, वह तो व्यतिरेकों-अवस्थाओं से ज्ञात होता है। यह जड़ है तो उसकी उत्पत्ति से वह जड़ ज्ञात होता है। यह चैतन्य है, उसकी उत्पत्ति का व्यतिरेक है, उससे वह ज्ञात होता है। आहा...हा... ! कितना स्पष्ट किया है।

(कोई) कहे कि धर्म की उत्पत्ति कर्म के क्षयोपशम से होती है। देव-गुरु की श्रद्धा से होती है, देव-गुरु की कृपा से होती है ! आहा...हा... ! इन भगवान के दर्शन और मन्दिर से समकित होता है - इससे यहाँ इनकार करते हैं। आहा...हा... ! वह तो शुभभाव होता है, वस्तु है; प्रतिमा, जिनमन्दिर यह वस्तु है परन्तु यह शुभभाव में निमित्त है। निमित्त है अर्थात् इससे शुभभाव नहीं होता। शुभभाव में यह निमित्त है, धर्म में निमित्त है - (ऐसा) नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा (तत्त्व) !

धर्म के कारण में तो पूर्व की पर्याय का नाश हुआ वह कारण है, और या पर्याय जिससे उत्पन्न होती है - अन्वय, वह कारण है। आहा...हा... ! ऐसा सूक्ष्म है। चारित्र की पर्याय, वीतरागी आनन्द की पर्याय... आहा...हा... ! तू अकेली ढूँढ़ने जाये तो पूर्व के दुःख की पर्याय के व्यय के बिना आनन्द की पर्याय की उत्पत्ति नहीं होती, आहा...हा... ! और या असत् की उत्पत्ति हो जायेगी। आहा...हा... ! भगवान सत् है और संहार होता है, इसलिए उत्पत्ति होती है। आहा...हा... !

अकेले मिथ्यात्व का व्यय ढूँढ़ने जाये तो समकित की उत्पत्ति के कारण बिना मिथ्यात्व का व्यय ज्ञात नहीं होगा और उसका अकेला (संहार) ढूँढ़ने जाये तो सत् का

नाश हो जायेगा। आहा...हा...! और (अकेली) स्थिति ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद-व्यय के कार्य बिना यह ध्रुव है, यह पलटती क्रिया द्वारा ज्ञात होता है कि यह ध्रुव है। अत: पलटती अवस्था न माने तो स्थिति ही नहीं ज्ञात होती। स्थिति ही नहीं ज्ञात होती, स्थिति ही नहीं रहती और या वह स्थिति क्षणिक हो जायेगी; क्योंकि परिवर्तन तो होता है और स्थिति मानता नहीं, आहा...हा...! ऐसी बात है। आहा...हा...! आज तो अष्टमी है, ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी। धीमे-धीमे (समझना) न समझ में आये तो रात्रिचर्चा में पूछना।

श्रोता : समझा ही न हो वह रात्रि में क्या पूछ सकेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ-कुछ तो समझते हैं न! यह तो बहुत वर्ष से चलता है। सवा चवालीस वर्ष तो यहाँ हुए, सोनगढ़! सवा चवालीस से ज्यादा! कृष्ण तीज से ऊपर जितना जाये (उतना), आज तो अष्टमी है। पाँच दिन हुए; सवा (चवालीस) से ऊपर पाँच दिन। आहा...हा...! क्या वीतरागमार्ग की शैली! आहा...हा...!

धर्म की उत्पत्ति में संहार है, वह कारण है, इसलिए उत्पत्ति (हुई है)। उपादान कारण है, वह संहार हुआ - व्यय हुआ... आहा...हा...! तब वह (उत्पाद) कार्य समकित आया। आहा...हा...! एक कहा था न? पूर्व पर्यायसहित द्रव्य वह उपादान आया है न यह? सूक्ष्म फिर ख्याल में आ गया। जैन तत्त्व मीमांसा में (आया है) फूलचन्दजी का! है या नहीं? दूसरी अभी छपी है, वह है? वह नहीं होगी। दूसरी छपी है, है? दूसरी... दूसरी...! है भाई? (नहीं)। ऐसा! ठीक! रुपये नये-नये आते हैं, वह घर में कैसे रखते हैं? जैन तत्त्व मीमांसा एक पुरानी है और एक नयी है। आहा...हा...! उसमें रखा है कि पूर्व की पर्यायसहित का द्रव्य, वह उपादान और उत्तर की पर्यायसहित का द्रव्य, वह उपादेय। पहला कारण और यह कार्य, उसमें है। अभी तो पर्याय का पता नहीं होता! पूर्व की पर्यायसहित का द्रव्य, वह उपादानकारण है और उत्तर पर्यायसहित का द्रव्य वह उपादेय है। यहाँ कहते हैं कि उत्पाद है, वह पूर्व के उपादानकारण का अभाव बिना नहीं हो सकता। आहा...हा...! उपादानकारण है, इसलिए उपादानकारण रहकर कार्य होता है - ऐसा नहीं है। यह क्या कहा? पूर्व की पर्यायसहित का द्रव्य कारण है, बाद की पर्यायसहित का द्रव्य कार्य है, अर्थात्? पूर्व की पर्याय रही और बाद की पर्याय हो - ऐसा

नहीं है। समझ में आया? पूर्व की पर्याय का व्यय होकर (नयी उत्पत्ति होती है), इसलिए उसे उपादान कहा है, परन्तु व्यय होकर बाद की पर्याय का कार्य होता है आहा...हा...! वह पूर्व की पर्याय उपादानरूप से टिकी रहे और फिर कार्य हो - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! जैन तत्त्व मीमांसा में आता है। अभी दूसरी पुस्तक छपी है, उसमें तो बहुत लिखा है। आहा...हा...!

बहुत सरस बात है! आहा...हा...! प्रभु! तू आत्मा को अकेले ध्रुव ही ढूँढ़ने जायेगा तो ढूँढ़नेवाला जो कार्य है, उसके बिना वह ध्रुव किस प्रकार रह सकेगा? किस प्रकार ज्ञात होगा? व्यतिरेक के बिना अन्वय-कायम, टिकता, भिन्न-भिन्न दशा के बिना एकरूप टिकता तत्त्व ज्ञात किस प्रकार होगा? आहा...हा...! यह इसमें आया न? अनित्य, वह नित्य का निर्णय करता है। यदि अनित्य ही न हो तो और अकेला नित्य ही हो तो निर्णय करनेवाला नहीं रहता। आहा...हा...! ठीक है? आहा...हा...! चारों ओर से देखो तो यह बात सिद्ध हो जाती है।

व्यतिरेक के बिना ध्रुव नहीं होता क्योंकि अनित्य, वह नित्य का निर्णय करता है; नित्य का निर्णय नित्य नहीं करता। आहा...हा...! और नित्य-ध्रुव यदि न हो तो उत्पाद -व्यय की तरह स्थिति, क्षणिक हो जायेगी। सम्पूर्ण आत्मा ही क्षणिक हो जायेगा। उत्पाद-व्यय क्षणिक है - ऐसा ही ध्रुव क्षणिक हो जायेगा।

श्रोता : क्षणिक को नित्यपना लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षणिक नित्य हो जायेगा, क्षणिक नित्य हो जायेगा। है? **क्षणिक को ही नित्यत्व आ जायेगा वहाँ (१) यदि मृत्तिका की स्थिति न हो तो समस्त ही भावों की स्थिति नहीं होगी, (अर्थात् यदि मिट्टी ध्रुव न रहे तो मिट्टी की ही भाँति विश्व का कोई भी द्रव्य...** आत्मा, सिद्ध इत्यादि। **कोई भी द्रव्य ध्रुव ही नहीं रहेगा - टिकेगा ही नहीं, यह दोष आयेगा।) अथवा (२) यदि क्षणिक का नित्यत्व हो तो...** आहा...हा...! यहाँ तो भगवान नित्य दिखता है। उसमें कहते हैं कि क्षणिक का नित्यपना हो तो **चित्त के क्षणिक-भावों को भी नित्यत्व होगा...** चित्त जो क्षणिक है, क्षणिक का नित्यपना होगा तो चित्त के परिणाम क्षणिक हैं, उनका नित्यपना हो

जायेगा। नित्य तो ध्रुव है और यह चित्त के परिणाम (भी) ध्रुव हो जायेंगे। आहा...हा...! वीतराग का मार्ग ऐसा है!

सच्चे ज्ञान के बिना वास्तविक भावभासन नहीं हो वहाँ तक उसकी प्रतीति भी सच्ची कहाँ से होगी? आहा...हा...! जो चीज जिस प्रकार से है, उस प्रकार से भासन न हो और भासन हुए बिना यह यही है – ऐसी प्रतीति भी कहाँ से होगी? आहा...हा...!

(मन का प्रत्येक विकल्प भी त्रैकालिक ध्रुव हो जाय – यह दोष आयेगा।)... आहा...हा...! **इसलिए द्रव्य को...** अर्थात् वस्तु को। **उत्तर-उत्तर व्यतिरेकों के सर्ग के साथ...** आहा...हा...! बाद-बाद की उत्पत्ति के साथ और **पूर्व पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ...** प्रत्येक द्रव्य को (यह प्रकार लागू पड़ता है।) आहा...हा...! बाद-बाद की अनेक अवस्था के साथ, पहले-पहले की अनेक अवस्था के अभाव के साथ **और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ...** (अर्थात्) टिकते तत्त्व के साथ अविनाभावपना है। आहा...हा...! अवस्थान = टिकना वह; ध्रुव रहना वह। **जिसको निर्विघ्न (अबाधित) त्रिलक्षणतारूप लांछन प्रकाशमान है...** आहा...हा...! **जिसको निर्विघ्न (अबाधित) त्रिलक्षणतारूप...** (अर्थात्) उत्पाद-व्यय और ध्रुव। आहा...हा...! तत्त्वार्थसूत्र में ऐसी साधारण बात की है कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्; सत् द्रव्य लक्षणं... परन्तु साधारण नहीं है, बापू! बड़ी गम्भीरता है! आहा...हा...! बहुत चिन्तन अपेक्षित है। अन्दर बहुत ऊहापोह अपेक्षित है। आहा...हा...!

श्रोता : यह बात ठीक से समझ में न आवे तो सांख्यमत और बौद्धमत जैसा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अज्ञान हो जाये। अज्ञान है न, फिर चाहे जो कुछ मत अज्ञान है। आहा...हा...! क्षणिक मानो तो बौद्ध हो जाता है, क्षणिकपर्याय को नित्य मानें तो भी बौद्ध हो जाता है। आहा...हा...! और अकेला ध्रुव मानें तो अनित्य के बिना वह भी अज्ञान हो जाता है। वेदान्त अकेला ध्रुव मानता है न? वेदान्त अकेला ध्रुव मानता है, बौद्ध अकेला क्षणिक मानता है। आहा...हा...! दो मत हो जाते हैं। अकेला क्षणिक माने तो ध्रुव

भी क्षणिक हो जायेगा, इसलिए बौद्धमत हो जायेगा और अकेला ध्रुव ही माने, उत्पाद-व्यय न माने तो वेदान्त जैसा कूटस्थ हो जायेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है! परन्तु अब पाठ आया हो उस प्रकार अर्थ करना (पड़ेगा न)?

उस (लौकिक के) अभ्यास करने में बेचारे मर जाते हैं। कहीं के कहीं 'लन्दन जायें और बिलायत जाये!' आहा...हा...! पाप का अभ्यास! यह अभ्यास घर का अभ्यास है। आहा...हा...! जिसका अभ्यास करते-करते पुण्य बँध जाये, फिर अभ्यास में अन्तर का अभ्यास हो जाये, तब धर्म हो जाये। आहा...हा...!

श्रोता : पुण्य फले तो सच्चे देव-गुरु...

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा देव-गुरु (तो) आत्मा है। गुरु भी आत्मा है, देव भी आत्मा और धर्म भी आत्मा है। पञ्च परमेष्ठी, आत्मा है। आहा...हा...! यह आता है न? अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु - इन पाँच पद स्वरूप अन्दर आत्मा है। आत्मा में पाँच पद हैं। आहा...हा...! बाहर के पद तो व्यवहार कहलाते हैं। अन्दर अपना निश्चय पद है। अरहन्त, सिद्ध, केवलज्ञान आदि। आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि वीतरागता का भाव, वह स्वयं अन्दर आत्मा है। आहा...हा...! और वीतरागभाव वह क्षणिक है और वीतरागी स्वरूप त्रिकाल है, वह नित्य है, जो वीतरागीभाव है, वह तो क्षणिक है। मोक्षमार्ग है, वह तो क्षणिक है; आहा...हा...! यह मोक्ष स्वयं भी क्षणिक है! पर्याय है न! इस पर्याय के बिना द्रव्य सिद्ध नहीं होता और द्रव्य के बिना पर्याय सिद्ध नहीं होती। पर्याय किसके आधार से होती है? यह सिद्ध नहीं होता। आज का विषय थोड़ा सूक्ष्म है, भाई! रविवार को ये लोग भावनगर से आते हैं, (तब) ठीक ऐसा आ जाता है। लो! आ...हा...हा...!

द्रव्य को उत्तर-उत्तर व्यतिरेकों के सर्ग के साथ, पूर्व-पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ अविनाभाववाला... आहा...हा...! उत्पाद के बिना व्यय नहीं होता; व्यय के बिना उत्पाद नहीं होता; उत्पाद-व्यय के बिना ध्रुव नहीं होता; ध्रुव के बिना उत्पाद-व्यय नहीं होते। (इस प्रकार अविनाभाव है) (अर्थात् कि) एक के साथ दूसरा भाव होता ही है, इसका नाम अविनाभाव है। है न? आ...हा...हा...! अविनाभाव का अर्थ पहले आ गया है, बस वह देखो! अविनाभाव =

एक के बिना दूसरे का नहीं होना, वह; एक-दूसरे के बिना हो ही नहीं सके ऐसा भाव वह अविनाभाव है, यह आ गया है। आ...हा...! **(अबाधित) त्रिलक्षणतारूप लांछन...** (अर्थात् चिह्न) **प्रकाशमान है ऐसा अवश्य सम्मत करना...** ऐसा अवश्य मान्य करना – यह कहते हैं। इस प्रकार वस्तु है, उसका ज्ञान करके उसे मान्य करना।

विशेष कहेंगे...!

प्रवचन नं. १०८ **दिनाङ्क १८ जून १९७९**

प्रवचनसार, १०० गाथा! टीका फिर से (लेते हैं।) **वास्तव में सर्ग, संहार के बिना नहीं होता...** प्रत्येक द्रव्य में पर्याय की उत्पत्ति बिना संहार के नहीं होती, सर्ग-उत्पत्ति संहार के बिना नहीं होती। समकित की उत्पत्ति मिथ्यात्व के नाश के बिना नहीं होती। आहा...हा...! सर्ग अर्थात् उत्पत्ति। समकित की उत्पत्ति संहार के बिना-मिथ्यात्व के नाश के बिना नहीं होती, यह तो दृष्टान्त है। ऐसा सबमें सिद्धान्त (लेना)।

और संहार, सर्ग के बिना नहीं होता... संहार भी, उत्पत्ति न हो और संहार हो जाये – ऐसा नहीं होता। संहार नहीं हो – ऐसा नहीं होता। **संहार, सर्ग के बिना नहीं होता...** संहार-नाश हो, वह उत्पत्ति हो तो नाश होता है अर्थात् उत्पत्ति, संहार के बिना नहीं और संहार, उत्पत्ति के बिना नहीं है। आहा...हा...! मिथ्यात्व का नाश सर्ग के बिना अर्थात् समकित की उत्पत्ति के बिना नहीं होता। आहा...हा...!

सृष्टि और संहार... समकित की उत्पत्ति (वह) सृष्टि और संहार (अर्थात्) पूर्व के मिथ्यात्व का नाश। वह **सृष्टि और संहार स्थिति के बिना नहीं होते...** वह सृष्टि और संहार स्थिति के बिना नहीं होते अर्थात् समकित की उत्पत्ति, मिथ्यात्व का नाश ध्रुव के बिना नहीं होते।

स्थिति, सर्ग और संहार के बिना नहीं होती... जो ध्रुव है-जो टिकना है, वह भी उत्पाद और व्यय के बिना नहीं होता। आहा...हा...! बहुत सिद्धान्त (भर दिये हैं)। इसमें तो महा सिद्धान्त कहे हैं कि जो कोई द्रव्य है, उस समय में उसकी जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर के कारण नहीं; संहार के बिना नहीं होती परन्तु पर के कारण नहीं; पूर्व

की पर्याय के व्यय के बिना–उपादानकारण के क्षय के बिना नयी उपादेय पर्याय नहीं होती। मिथ्यात्व है, वह उपादान है, और उसके क्षय के बिना–संहार के बिना समकित की उत्पत्ति नहीं होती। अत: समकित की उत्पत्ति पर से हो यह बात तो रही नहीं। आहा...हा...! यह निसर्गज, अधिगमज समकित कहते हैं न? अधिगम समकित! यहाँ कहते हैं कि वह पर्याय स्वयं से हुई है। अधिगम – गुरु से नहीं हुई है, भले ही दो भेद पड़े – निसर्गज (और अधिगमज) परन्तु जो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई है, वह पर के बिना हुई है, पर के बिना हुई है! आहा...हा...! क्षायिक समकित की पर्याय होती है, तब कहा कि निमित्त के काल में होती है। यहाँ कहते हैं कि उस निमित्त के बिना पर्याय होती है। क्षायिक समकित समवसरण में श्रुतकेवली के समीप होता है परन्तु फिर भी उनसे नहीं होता। क्षायिक समकित श्रुतकेवली और तीर्थङ्कर की समीपता से नहीं होता। आहा...हा...! अधिगमज और निसर्गज (समकित) कहा तो अधिगम से नहीं होता, यहाँ तो ऐसा कहा है। वहाँ तो एक निमित्त का ज्ञान कराया है, वरना होता है वह अपनी पर्याय, अपने कारण से उत्पन्न होती है। आहा...हा...! यह फिर से लिया है। अब नीचे!

जो सर्ग है, वही संहार है... (अर्थात्) जो उत्पत्ति है, उसी समय संहार होता है; इसलिए **वही संहार है...** ऐसा कहा है। समकित की उत्पत्ति है, वही मिथ्यात्व का संहार है, उसी समय में है। आहा...हा...! धर्म की उत्पत्ति है, उसी समय में अधर्म का व्यय अर्थात् नाश है। आहा...हा...! **सर्ग है, वही संहार है, जो संहार है...** जो मिथ्यात्व का नाश है, वही समकित की उत्पत्ति है, उसी समय उत्पत्ति है; उसी समय है, इसलिए वही है। आहा...हा...!

जो सर्ग और संहार है... सम्यग्दर्शन की पर्याय का सर्ग अर्थात् उत्पत्ति और मिथ्यात्व का संहार, **वही स्थिति है...** उसी समय उसका ध्रुवपना होता है। आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य की बात है। यह तो समकित के दृष्टान्त से बात की है। आहा...हा...! पर के बिना कुछ नहीं होता – जो अभी ऐसी पुकार है (कि) निमित्तकारण होता है, तब कार्य होता है – ऐसा जो कहते हैं, उसमें यह विरोध करते हैं। उनकी पर्याय जो होती है, चाहे तो शरीर की हो, वाणी की हो, कर्म की हो, राग की हो; राग की उत्पत्ति भी आत्मा का

स्वभाव है क्योंकि द्रव्य सदा अपने स्वभाव में रहता है और स्वभाव, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। अत: उत्पाद में राग और मिथ्यात्व भी आ गया। आहा...हा...! मिथ्यात्व का उत्पाद, पूर्व की मिथ्यात्व पर्याय के संहार बिना मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं होती और इस मिथ्यात्व की उत्पत्ति और पूर्व के मिथ्यात्व का संहार, ध्रुव के बिना नहीं है, यह तीनों होकर द्रव्य का स्वभाव है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

कोई कहे कि मिथ्यात्व और राग-द्वेष, जीव का स्वभाव नहीं है - तो वह किस अपेक्षा से ? वह तो (स्वभाव) शुद्ध है और ये अशुद्ध हैं, इस अपेक्षा से; वरना अशुद्ध भी उसका स्वभाव है। उससे हुआ, उसका स्वभाव है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है।

जो सर्ग और संहार है, वही स्थिति है, जो स्थिति है... टिकना है, **वही सर्ग और संहार है।...** ध्रुव है, उसी समय नयी समकित की पर्याय उत्पन्न हुई, मिथ्यात्व का नाश हुआ, ध्रुवरूप तत्त्व रहा - भगवान (रहा) आहा...हा...! वह इस प्रकार - अब इसे विस्तार से समझाते हैं।

जो कुम्भ का सर्ग है... जो घट की उत्पत्ति की पर्याय होती है, घड़े की उत्पत्ति की पर्याय होती है.... आहा...हा...! **वही मृत्तिकापिण्ड का संहार है...** वह मृत्तिकापिण्ड जो था, पिण्ड, उस पिण्ड का व्यय-संहार होता है, तब घट की पर्याय का उत्पाद होता है। घट की पर्याय की उत्पत्ति में पूर्व की उपादान की पर्याय का क्षय, वह कारण है। आहा...हा...! समझ में आया ? समकित की उत्पत्ति में, पूर्व का उपादान मिथ्यात्व है, उसका क्षय, वह कारण है। मिथ्यात्व स्वयं उसका कारण है - ऐसा नहीं है। उसका क्षय -संहार (कारण है)। मिथ्यात्व का संहार, वह उत्पत्ति का कारण है क्योंकि पूर्व में था वह उपादानकारण है, उसका क्षय होता है, तब नयी पर्याय होती है। आहा...हा...! यह तो दूसरी बार चलता है।

जो कुम्भ का सर्ग है, वही मृत्तिकापिण्ड का संहार है क्योंकि भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से... अर्थात् घट की उत्पत्ति, उसका जो भाव, उससे भावान्तर-अन्य भाव के अभावस्वभाव से **अवभासन है...** आहा...हा...! इतने शब्दों में (कितना भर दिया है)। भाव अर्थात् घट की पर्याय उत्पन्न हुई अथवा भाव अर्थात्

समकित की पर्याय उत्पन्न हुई, **उस भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से...** यह जो समकितभाव है, इससे अन्यभाव (अर्थात्) मिथ्यात्व के अभावस्वभाव से **(अवभासन है।)** समकित की उत्पत्ति मिथ्यात्व के अभावस्वभाव से प्रकाशित है। कहो, समझ में आया? यह तो दृष्टान्त (है), वरना सभी तत्त्वों में इसी प्रकार ले लेना। ओ...हो...! १०० गाथा!

प्रत्येक द्रव्य की जिस समय में जिस अवसर पर में (पर्याय) होनी है, उस अवसर में उस समय पर्याय होती है, उस पर्याय का कारण संहार है, क्योंकि पर्यायभाव है, उससे भावान्तर संहार है। (अर्थात्) पूर्व की पर्याय के **अभावस्वभाव से अवभासन है (अर्थात्) भाव अन्य भाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है - दिखाई देता है।...** आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! केवलज्ञान की पर्याय - ऐसा जो भाव है, उससे भावान्तर (अर्थात्) पूर्व की पर्याय, वह भावान्तर है, उसके अभावस्वभाव से केवलज्ञान प्रकाशित है। कर्मक्षय से केवलज्ञान प्रकाशित है — (ऐसा नहीं है।) ऐसा अर्थ!

तत्त्वार्थसूत्र में तो ऐसा आता है कि चार कर्म क्षय होते हैं, (तब) केवलज्ञान होता है। यहाँ कहते हैं कि ऐसा नहीं है। वह तो निमित्त का कथन किया है, वस्तुतः तो केवलज्ञान होता है, वह भाव है, उससे अन्यभाव (अर्थात्) पूर्व की पर्याय है, वह अन्यभाव है, उसके अभावस्वभाव से केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है। आहा...हा...! केवलज्ञान के पहले जो चार ज्ञान आदि की अपूर्णदशा थी, वह केवलज्ञान के भाव की अपेक्षा से अन्यभाव है। उस अन्यभाव के अभाव के बिना केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। आहा...हा...! यहाँ तो (जो ऐसा कहते हैं कि) मनुष्यपना हो तो केवलज्ञान होता है, वज्रनाराचसंहनन हो तो केवलज्ञान होता है, यह बात तो रहती नहीं है। आहा...हा...! गुरु की देशना मिले तो समकित होता है, यह बात भी नहीं रहती है। आहा...हा...! कुगुरु विपरीतश्रद्धा की प्ररूपणा करे और दूसरा माने, वह इनसे माना है - ऐसा नहीं है। वहाँ उसकी मिथ्यात्व की पर्याय की उत्पत्ति, पूर्व की मिथ्यात्वपर्याय का संहार होकर यह नयी मिथ्यात्व की पर्याय उत्पन्न हुई है। आहा...हा...! कोई कहे कि हमें कुगुरु मिले, इसलिए यह (मिथ्यात्व) हुआ है। इससे यहाँ इनकार करते हैं। आहा...हा...! हमें ऐसे गुरु मिले,

इसलिए यह हुआ - इससे इनकार करते हैं। आहा...हा...! क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में सदा वर्तता है और वह स्वभाव उत्पाद-व्यय और ध्रुव एक समय में है, उसमें वह द्रव्य वर्तता है। आहा...हा...! यह तुम्हारे बही-खातों में कहीं नहीं आया होगा। लोहे के (व्यापार में) ऐसी बात आती है? आहा...हा...!

यह लोहे के कलश बनते हैं, बर्तन बनते हैं, वह बर्तन की जो पर्याय हुई, वह पूर्व पर्याय जो उपादान था, उसका अभाव होकर हुई है; तुम्हारे साँचे से नहीं हुई है, साँचे के कारीगर से नहीं हुई है - ऐसा कहते हैं। क्यों? भाव अर्थात् समकित की पर्याय अथवा घट की पर्याय, उससे भावान्तर अर्थात् अन्यभाव; भावान्तर अर्थात् अन्यभाव के अभावस्वभाव से अवभासन है (अर्थात्) भाव अन्यभाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है। आहा...हा...! कितनी बात की है! यह पण्डित (विवाद) करते हैं।

यह पदार्थ की परमसत्य व्यवस्था इस प्रकार है। उसकी व्यवस्था में दूसरे पदार्थ के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है। जो पदार्थ है, उसकी जो व्यवस्था होती है, उसमें दूसरे पदार्थ की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। वह व्यवस्था होती है, वह उसके भाव से भावान्तर (अर्थात्) अन्य पूर्व पर्याय, उसके अभाव से होती है। आहा...हा...! यह तो वकालात जैसा लगता है! आहा...हा...!

और जो मृत्तिकापिण्ड का संहार है... जो मिट्टी के पिण्ड का संहार है... आहा...हा...! **वही कुम्भ का सर्ग है...** क्योंकि संहार काल में ही घट की उत्पत्ति है। मृत्तिकापिण्ड का संहार अर्थात् उपादानकारण का क्षय है, उसी समय में घट की उत्पत्ति है। आहा...हा...! बनियों को, व्यापारियों को ऐसा सब याद रखना! यह वस्तुस्थिति है। इस मूल में आपत्ति है, इसलिए विवाद (करते हैं)। (वे कहते हैं कि) सोनगढ़वाले एकान्त कहते हैं कि निमित्त से नहीं होता - तो यह क्या कहते हैं? प्रत्येक द्रव्य की उत्पत्ति की पर्याय उसके अन्य भावान्तर के अभाव के बिना नहीं होती परन्तु निमित्त के बिना नहीं होती - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! (जो) मृत्तिकापिण्ड का संहार है, वही घट की उत्पत्ति है।

क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से... जो संहार है, वह अभाव है। उस अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से, उस अभाव का भावान्तर-अन्यभाव

(अर्थात्) उत्पत्ति का (भाव)। ऐसे **भावस्वभाव से अवभासन है...** आहा...हा...! है? पहले में भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से अवभासन था। इसमें अभाव का भावान्तर अर्थात् अन्यभाव (अर्थात्) भाव, उसके भावस्वभाव से अवभासन है। **(अर्थात् नाश, अन्यभाव के उत्पादरूप स्वभाव से प्रकाशित है...)** आहा...हा...! जहाँ मिथ्यात्व का व्यय हुआ, वहाँ समकितपर्याय प्रकाशित है। आहा...हा...! और समकितपर्याय प्रकाशित है, वहाँ मिथ्यात्व का संहार (अर्थात्) समकित से अन्यभाव का अभाव है। आहा...हा...! यह कल तो आ गया था, भाई कहते हैं फिर से लो। आहा...हा...!

श्रोता : आज अलग प्रकार से आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह फिर वही का वही आये? आहा...हा...! दो (मुद्दे हुए)।

और जो कुम्भ का सर्ग... घट की उत्पत्ति है या समकित की उत्पत्ति है, वह **पिण्ड का संहार है...** यहाँ मृत्तिका की अपेक्षा से पिण्ड का संहार और समकित की अपेक्षा से मिथ्यात्व का संहार... **वही मृत्तिका की स्थिति है...** मिट्टी का ध्रुवपना वहीं है। संहार और उत्पत्ति में ही ध्रुवता है। ध्रुव-अन्वय, व्यतिरेक के बिना नहीं हो सकता। उत्पाद-व्यय व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न चीज है। उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय भिन्न हुए न? उत्पाद भावरूप है, (व्यय) अभावरूप है। उत्पाद भावरूप है, संहार अभावरूप है। वे भाव और अभाव ध्रुव की स्थिति के बिना नहीं हो सकते। आहा...हा...!

जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह पूर्व की पर्याय के अभाव से हुई और संहार हुआ, वह उससे अन्यभाव की उत्पत्ति से हुआ। उत्पत्ति है, वहाँ संहार हुआ और इस संहार और उत्पत्ति का आधार (ध्रुव है)। व्यतिरेक, अन्वय के बिना नहीं होते हैं। व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न वस्तु, वह एकरूप ध्रुव के बिना नहीं होते। आहा...हा...! ऐसी बात! बनियों को फुरसत नहीं है। सत् तो यह है।

परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ (जो कहते हैं, उसे) यह सन्त सादी भाषा में प्रकाशित करते हैं। प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? और तू दूसरे द्रव्य को भी किस प्रकार

देखता है ? तुझे और दूसरे को (जैसा है, वैसा देख) ! तुझे भी ऐसा देख कि उत्पत्ति की पर्याय संहार के बिना नहीं होती। संहार के बिना उत्पत्ति नहीं होती और संहार और उत्पत्ति के बिना अन्वय नहीं होता-ध्रुव नहीं होता। इसी प्रकार तू दूसरे को देख... ! आहा...हा... !

जो कुम्भ का सर्ग-उत्पत्ति (है, वह) पिण्ड का संहार है (और) वही मिट्टी का टिकना है - स्थिति है। **क्योंकि व्यतिरेक...** अर्थात् उत्पाद और व्यय वह व्यतिरेक हैं - भिन्न-भिन्न हैं। व्यतिरेक भिन्न-भिन्न हैं न ? दोनों उत्पाद... उत्पाद... उत्पाद... होवे तो (भिन्न-भिन्न नहीं हो), यह तो एक उत्पाद और एक व्यय, एक उत्पाद और एक व्यय यह व्यतिरेक भिन्न-भिन्न हैं। ये **व्यतिरेक, अन्वय का अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करते...** उत्पन्न और व्यय, वे अन्वय जो ऐसा ध्रुव है, उसे नहीं छोड़ते। ध्रुव के बिना वे व्यतिरेक नहीं होते; व्यतिरेक के बिना वह ध्रुव नहीं होता। आहा...हा... !

श्रोता : दोनों का स्वरूप अलग होने पर भी परस्पर अविनाभावपना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे साथ ही हैं। एक समय में सिद्ध करना है। यह तो एक समय में है। पदार्थ की अवस्था एक समय में - उत्पाद-व्यय और ध्रुव एक समय में है। आहा...हा... ! और वह भी जो उत्पन्न होने का समय है, उसी समय में उत्पन्न होता है और जिस समय में व्यय होना है, उसी समय में व्यय होता है। ध्रुव तो (कायम है) आहा...हा... ! समझ में आता है ? ऐसी बात है। वहाँ कहीं लाडनूँ में नहीं है और कलकत्ता में भी नहीं है। आहा...हा... !

यह बात, बापू ! आहा...हा... ! महासागर है, द्रव्य का महासागर उछलता है। आहा...हा... ! जो कोई जिस क्षण में जिस द्रव्य की पर्याय उसी क्षण में वह होती है - ऐसा। आहा...हा... ! उस उस अवसर में ही (होती है), आगे-पीछे नहीं। उस उस अवसर में होने पर भी, उस भाव से भावान्तर (जो) संहार है, उसके बिना वह भाव नहीं रहता- उत्पन्न नहीं होता और संहार है, (वह) उससे जो अन्य भाव (उत्पाद है), उसके बिना संहार नहीं हो सकता और संहार और उत्पत्ति अर्थात् व्यतिरेकों, अन्वय के बिना - ध्रुव के बिना नहीं हो सकते। है... है... है... है... है... है... ऐसा जो अन्वय। वह उत्पाद और

व्यय तो व्यतिरेक - भिन्न-भिन्न हैं। वह है... ध्रुव... ध्रुव है। वह ध्रुव, व्यतिरेक के बिना नहीं हो सकता। यह (गाथा) दूसरी बार ली है।

और जो मृत्तिका की स्थिति है... जो मिट्टी की ध्रुवता है... जो आत्मा की ध्रुवता है; समकित की उत्पत्ति और मिथ्यात्व का नाश, इसमें आत्मा की ध्रुवता है, आहा...हा...! **वही कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है...** मृत्तिका की स्थिति है, वह कुम्भ की उत्पत्ति (और) पिण्ड का अभाव है। इसी प्रकार आत्मा में, ध्रुव आत्मा है, उसमें समकित की उत्पत्ति और मिथ्यात्व का नाश उसके आधार से है। आहा...हा...! यह अलग प्रकार के कायदे हैं। आहा...हा...! (अज्ञानी तो कहता है) भगवान की भक्ति करो, कल्याण हो जायेगा! यहाँ इनकार करते हैं। मन्दिर बनाओ तो कल्याण हो जायेगा, गुरु की भक्ति बहुत करो तो समकित की पर्याय उत्पन्न हो जायेगी - ऐसा कहते हैं। (यहाँ) इनकार करते हैं।

...वही कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है क्योंकि व्यतिरेकों द्वारा ही अन्वय प्रकाशित होता है... देखा? पहले क्या कहा? व्यतिरेक, अन्वय को नहीं छोड़ते ऐसा कहा था; और यह कहा कि व्यतिरेकों द्वारा ही अन्वय प्रकाशित होता है। दो-दो बातें लेनी हैं न? आहा...हा...! समकित की उत्पत्ति और मिथ्यात्व का नाश, उसमें ध्रुव स्थिति है, वही समकित की उत्पत्ति का समय और वही मिथ्यात्व के नाश का समय है। **क्योंकि व्यतिरेकों द्वारा ही...** (अर्थात्) मिथ्यात्व का नाश और समकित की उत्पत्ति द्वारा ही **अन्वय...** (अर्थात्) ध्रुव **प्रकाशित होता है...** आहा...हा...! मिथ्यात्व का नाश और समकित की उत्पत्ति के द्वारा ध्रुव ज्ञात होता है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! आया वहीं का वहीं। वापिस ध्रुव पर आया! आत्मा में, हाँ! सबमें ऐसा है परन्तु जानने का तो इसे है न? आहा...हा...!

(अब कहते हैं कि) **और यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया तद्नुसार) न माने जाये तो ऐसा सिद्ध होगा कि अन्य सर्ग है...** अर्थात् उत्पत्ति का समय अलग है और **अन्य संहार है...** (अर्थात्) संहार का समय अलग है और **अन्य स्थिति है...** (स्थिति का) समय अलग है - **ऐसा सिद्ध होगा (अर्थात् तीनों पृथक् हैं ऐसा मानने का प्रसंग आ जायेगा।) ऐसा होने पर क्या दोष आता है? सो समझाते हैं...** आहा...हा...!

केवल सर्ग-शोधक... घड़े की उत्पत्ति शोधनेवाला या अकेली समकित की उत्पत्ति शोधनेवाला **(व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) उत्पादनकारण का अभाव होने से...** अर्थात् समकित के लिए मिथ्यात्व उपादान है। गजब बात है न! उपादान (कहा) परन्तु उसका क्षय (है, उसे उपादान कहा है)। उपादान का क्षय, घड़े में पहले जो मिट्टी का पिण्ड है, वह उसका उपादानकारण है परन्तु उसके क्षय से उत्पन्न होगा; यह सीधे उपादान से ही नहीं होगा, उसके अभाव से होगा। गजब बात है! मिथ्यात्व उपादान, समकित उपादेय परन्तु इस उपादान का व्यय-क्षय; क्षय, वह कारण है आहा...हा...! ऐसी चीज है। यह सब तुम्हारे सुधरेल में कहीं नहीं आता। आहा...हा...! वीतराग... वीतराग... कैसी बात! दिगम्बर सन्त! केवलज्ञान के आढ़तिया! ऐसा केवलज्ञान खड़ा रखा है!! आहा...हा...! जहाँ नजर कर वहाँ प्रभु! आहा...हा...!

जो पानी गर्म हुआ है, वह उष्णता की पर्याय-उत्पत्ति, शीतलपर्याय के व्यय से हुई है; अग्नि से नहीं। आहा...हा...! जो उष्ण पानी हुआ, वह शीतल पानी का संहार होकर हुआ है। वह शीतल पर्याय उपादानकारण है, आहा...हा...! उसके अभाव से गर्म अवस्था हुई है, अग्नि से नहीं - ऐसा कौन माने? आहा...हा...! पागल ही कहेंगे। वह एक पण्डित नहीं आया था? (वह कहता था) अग्नि के बिना पानी गर्म होगा? बहुत वर्ष पहले कहीं का आया था न? आहा...हा...! एक पण्डित पत्नी को लेकर आया था, (वह कहता था कि) मनुष्यपने के बिना केवलज्ञान नहीं होता, सँहनन के बिना नहीं होता। यह सब पण्डितों! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि केवलज्ञान के पर्याय की उत्पत्ति... आहा...हा...! अकेली ढूँढ़ने जाये तो **(व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) उत्पादनकारण का अभाव होने से...** अकेली समकित की ही पर्याय ढूँढ़ने जाये तो उपादान जो मिथ्यात्व है, उसके कारण के अभाव से **उत्पत्ति ही नहीं होगी...** क्योंकि पूर्व का उपादानकारण ऐसा का ऐसा रहे और समकित की उत्पत्ति होय - (ऐसा नहीं होता)। आहा...हा...! मृत्तिकापिण्ड ऐसा का ऐसा रहे और घड़े की उत्पत्ति हो - ऐसा नहीं होता।

मिट्टी के पिण्ड का अभाव होवे तो घट की उत्पत्ति होती है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

वीतराग का तत्त्वज्ञान (बहुत सूक्ष्म है) अभी बहुत गड़बड़ चलती है। यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा... इनकी उत्पत्ति है वह राग की उत्पत्ति है, वह बन्ध का कारण है, और वह राग भी पूर्व की पर्याय के व्यय से हुआ है। आहा...हा...! मुझे तो दूसरा कहना है कि भगवान के दर्शन किये इसलिए शुभभाव हुआ - ऐसा नहीं है। वह शुभभाव (भगवान के) दर्शन से नहीं, परन्तु शुभभाव पूर्व के भाव के (अभाव से हुआ है) भले ही पूर्व में शुभ भी हो और अशुभ भी हो, उसके अभाव के कारण भावान्तर हुआ है। शुभ से भावान्तर जो पूर्व की पर्याय, उसके अभाव से शुभभाव होता है; भगवान के दर्शन से शुभभाव होता है - ऐसा नहीं है... ऐसी बातें हैं! आहा...हा...! अरे...! आहा...हा...! यह तो सत्य के मन्त्र हैं! आहा...हा...! जैसे सर्प का जहर चढ़ा हो, उसे मन्त्र से उतारते हैं; इसी प्रकार एकान्त पर से होता है - ऐसे माननेवालों को जहर चढ़ गया है, यह उसके मन्त्र हैं। आहा...हा...!

दो कारण से कार्य होता है - ऐसा आता है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये (ऐसा कहा है)। उसके उचित-योग्य दूसरी वस्तु है। उचित-योग्य (कहा) परन्तु उचित-योग्य है, इसलिए यहाँ पर्याय हुई है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! एक बनिया था, वह अविवाहित था, उमराला के पास, बढौद गाँव है, रोटी बनावे तो आवे नहीं, ऐसे गोल चक्कर (करना) नहीं आवे, उल्टी-सीधी हो जाये, कोने निकल जायें। हम आहार लेने गये थे, वहाँ ऐसी रोटी थी, उस बेचारे ने बनायी, उसे कुछ आता तो नहीं, इसलिए ऐसे कोने निकलते, बहिनों से एक सरीखी निकले, वैसी नहीं निकलती परन्तु वह पर्याय वहाँ उसी प्रकार होने की थी। आहा...हा...! और उस पर्याय का पूर्व कारण आटे का (लोई का) व्यय है - उस प्रकार की पर्याय का व्यय है, वह संहार कारण है। रोटी की उत्पत्ति का कारण उसका बेलन और आदमी कारण नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : सूर्य अस्त हुआ और रात्रि आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उसके कारण नहीं; रात्रि की पर्याय स्वयं के कारण है। अन्धकार की पर्याय की उत्पत्ति, पूर्व की पर्याय के अन्धकार की पर्याय से भावान्तर पूर्व की पर्याय है, उसके अभाव से उत्पन्न हुई है। अभाव से हुई है, यह क्या कहा? पुद्गल

में अन्धकार की उत्पत्ति होवे, वह भाव है, उससे भावान्तर पूर्व में जो अन्धकार नहीं था, उस पर्याय का अभाव होकर यह (अन्धकार) हुआ है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग बैठना कठिन पड़ता है।

वास्तविक वस्तु का स्वरूप भी ऐसा है। छहों द्रव्यों में प्रत्येक द्रव्य सदा स्वयं अपने स्वभाव में वर्तता है, इसलिए उसे वर्तता है, वह उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। इसलिए आत्मा के उत्पाद-व्यय में द्रव्य वर्तता है, इसलिए उसे द्रव्य पर दृष्टि करनी है। आहा...हा...! पर में तो कहाँ (देखना होता है ?) वस्तुस्थिति (ऐसी है, इस प्रकार) पर को तो कहाँ जानना है ? आहा...हा...!

अकेला सर्ग-उत्पत्ति ढूँढ़नेवाला, अकेले घड़े की उत्पत्ति ढूँढ़नेवाला। **(पिण्ड का व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) उत्पादन कारण का अभाव होने से...** अर्थात् मिट्टी के पिण्ड के अभावरूप कारण के कारण **उत्पत्ति ही नहीं होगी...** मिट्टी का पिण्ड है, उसका अभाव नहीं होगा तो घट की उत्पत्ति ही नहीं होगी। आहा...हा...! कुम्हार नहीं है, इसलिए उत्पत्ति नहीं होगी - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात है! आहा...हा...!

मैं इस दुकान पर बैठा और फिर पाँच-पच्चीस लाख रुपये इकट्ठे हुए और यह धूल हुई और यह हुआ... सब गप्प-गप्प है। आहा...हा...!

श्रोता : दुकान पर नहीं गया, घर पर ही बैठा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर पर बैठा है, निरर्थक कल्पना करता है। पर को स्पर्श ही कब करता है ? शरीर को स्पर्श नहीं किया, वाणी को स्पर्श नहीं किया, तुम्हारे लोहे के कारखाने को स्पर्श नहीं किया। आहा...हा...!

प्रश्न : ध्यान भी नहीं रखना ?

समाधान : ध्यान रखे तो भी पर्याय अपने में है; वहाँ कहाँ ध्यान रखा है ? ध्यान की पर्याय तो यहाँ (आत्मा में) है। इस पर्याय की उत्पत्ति तो अपनी पूर्व पर्याय के अभाव से हुई है। सामने वस्तु देखता है, इसलिए उत्पत्ति हुई है ? आहा...हा...! धन्धा, धन्धे के

कारण होता है। आहा...हा...! लोहे का कलश हुआ तो उस लोहे के कलश की उत्पत्ति लोहे के कारक से हुई है और पूर्व का जो लोहे का भाव था, उसका अभाव होकर हुई है और अभाव होकर दो हुए (उत्पाद-व्यय हुए), वह अन्वय के बिना नहीं होते। वे व्यतिरेक लोहा कायम रहे बिना नहीं होते और वह लोहा व्यतिरेक के बिना नहीं होता। व्यतिरेक के बिना लोहा नहीं होता और लोहे के बिना व्यतिरेक नहीं होते। कायम टिकना वह व्यतिरेक के बिना नहीं होता और व्यतिरेक, ध्रुव के बिना नहीं होते। आहा...हा...! ऐसी बात! यह सोनगढ़ का है? आहा...हा...! यह मार्ग ऐसा है, बापू!

अथवा असत् का उत्पाद होगा... देखा? अकेला उत्पाद ढूँढ़ने जाये और पूर्व के कारण का नाश न हो और उसकी उत्पत्ति का मूल कारण ध्रुव न हो, तब तो उत्पाद ही नहीं होगा - एक बात। दूसरी बात - असत् का उत्पाद होगा। संहार के बिना उत्पत्ति नहीं होगी और ध्रुव के बिना असत् का उत्पाद होगा। ध्रुव है, तो उत्पन्न हो; अकेला उत्पाद ढूँढ़े तो ध्रुव के बिना असत् का उत्पाद होगा। आहा...हा...! समझ में आता है या नहीं? ऐसा धर्म करने को कौन सामने देखता है? 'इच्छामि पडिकम्मा, इरिया, विहिया तस्सुतरि कर्णेणं'.... हो गया। लोगस्स बोलकर 'णमोत्थुणं' हो गयी सामायिक! धूल भी नहीं, मिथ्यात्व है। आहा...हा...! यह मैं करता हूँ और इसे मैं पूजता हूँ, यह मैंने पथरा चढ़ाया... (ऐसा मिथ्यात्व छूटे बिना सामायिक आयी कहाँ से)? आहा...हा...!

एक-एक पर्याय की उत्पत्ति, उसके ध्रुव से और उसके संहार से - पूर्व की पर्याय के व्यय से होती है। आहा...हा...! यहाँ तो अभिमान का पानी उतार दे, ऐसा है आहा...हा...! भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने जो पदार्थ की स्थिति देखी तो वे प्रभु ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव में सदा ही वर्तता है, प्रभु! और वह स्वभाव उसका उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। दूसरे में वर्तता है और दूसरे से उत्पाद-व्यय होता है - ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव में वर्तता है और वह स्वभाव, उत्पाद-व्यय और ध्रुव है, उसमें वह वर्तता है। पर-पदार्थ में वर्तता है या पर-पदार्थ से वर्तता है - ऐसा नहीं है, क्योंकि द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है। आहा...हा...! ऐसा करेंगे तो फिर कोई पुस्तक नहीं बनायेगा, मन्दिर नहीं बनायेगा... कब बनाता है? बनाता ही कब है कि वह नहीं बनायेगा? आहा...हा...!

भगवान की पूजा के समय स्वाहा... (करता है), वह स्वाहा की पर्याय जड़ में उत्पन्न हुई है और पूर्व में वह पर्याय नहीं थी; पूर्व में दूसरी पर्याय थी, उस पर्याय का संहार होकर स्वाहा की उत्पत्ति हुई है; उस पूर्व की पर्याय का व्यय और स्वाहा की उत्पत्ति, ध्रुव को-अन्वय को अवलम्बन करती है। व्यतिरेक, अन्वय के बिना-ध्रुव के बिना नहीं होते और ध्रुव, व्यतिरेक के बिना नहीं होता। यह मानता है कि स्वाहा मेरे बिना नहीं होती! स्वाहा...! अरे...रे...! ऐसी बातें! यह नैरोबी में ऐसा चलेगा? आहा...हा...!

प्रश्न : उत्पाद-व्यय-ध्रुव समझाते हो या भेदज्ञान समझाते हो?

समाधान : उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, इसका अर्थ ही है कि प्रत्येक तत्त्व स्वतन्त्र है; दूसरे से अत्यन्त भिन्न है, यह भेदज्ञान है। भेद में तो अभी पर से पृथक् इतनी अपेक्षा है। यहाँ तो है ही ऐसा। आहा...हा...! भेदज्ञान को भी अभेद कहा है। समयसार नाटक में एक जगह भेदज्ञान को विकल्प भी कहा है और जयसेनाचार्यदेव की टीका में भेदज्ञान को अभेद भी कहा है। अभेदज्ञान अर्थात् यहाँ से (पर से) भिन्न पड़ा, इसलिए इसमें (स्व में) अभेद हुआ। अपेक्षा है न?

यहाँ तो यही वस्तु है, वहाँ पर से जुदा, यह बात भी नहीं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में वर्तता है। यह तो पहले शीर्षक में आया है। शीर्षक में नहीं आया? ९९ (गाथा के) भावार्थ में आया था - **प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है...** भावार्थ है? प्रत्येक द्रव्य अर्थात् आत्मा, निगोद का जीव, सिद्ध का जीव, परमाणु या स्कन्ध, **प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है, इसलिए सत् है...** इसलिए वह सत् है और **वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है।** दूसरे का (उत्पाद-व्यय-ध्रुव) दूसरे में और दूसरे का दूसरे में। इसमें किसी को कुछ लेना-देना नहीं होता। आहा...हा...! यह (अज्ञानी) कहता है कि स्त्री-पुत्रादिक को सम्हाले, ध्यान रखते हैं, प्रसन्न होते हैं, सब गप्प-गप्प है, मिथ्यात्व है। आहा...हा...!

असत् का ही उत्पाद होगा... यह एक बात आयी। अब, (कहते हैं) **यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति नहीं होगी...** अब, समस्त (द्रव्यों) पर सिद्धान्त लिया है। जब, कुम्भ की उत्पत्ति व्यय और ध्रुव से अलग नहीं होगी

तो समस्त द्रव्यों की पर्यायों में उत्पत्ति ही नहीं होगी। आहा...हा...! अकेली उत्पत्ति ढूँढ़ने जाने पर भले ही उसी समय में वह पर्याय उत्पन्न हुई, तथापि वह व्यय और ध्रुव के बिना यदि हो तो वह उत्पत्ति ही सिद्ध नहीं होती और उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती तो सभी द्रव्यों की स्थिति सिद्ध नहीं होगी। आहा...हा...!

यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति नहीं होगी (अर्थात् जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी; उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य के किसी भी भाव का...) (अर्थात्) पर्याय का। यहाँ पर्याय की बात है न ? पर्याय का। **(उत्पाद ही नहीं होगा, यह दोष आयेगा) अथवा यदि असत् का उत्पाद हो तो व्योमपुष्प इत्यादि का भी उत्पाद होगा...** क्योंकि यदि ध्रुव के बिना उत्पाद-व्यय होगा - ऐसा कहते हैं; ध्रुव न हो और उत्पाद-व्यय होगा... आहा...हा...! तो असत् का उत्पाद होगा तो व्योमपुष्प... आहा...हा...! (अर्थात्) आकाश के फूल **इत्यादि का भी उत्पाद होगा...** यदि ध्रुव के बिना उत्पाद होगा, यदि अन्वय के बिना व्यतिरेक होगा... आहा...हा...! तो आकाश का फूल भी होगा; गधे के सींग भी होंगे, आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। श्वेताम्बर में ऐसी स्पष्ट बात कहीं नहीं है और ऐसी कठिन पड़ती है, इसलिए दूसरे रास्ते पर चढ़ गये हैं। आहा...हा...!

मूल चीज है, परमाणु स्वयं मूल चीज है। परमाणु में भी जो स्पर्श गुण की पर्याय का उत्पाद और पूर्व पर्याय में जो स्पर्श गुण की जो थोड़ी पर्याय थी, उसका अभाव और ध्रुव। व्यतिरेक ध्रुव के बिना नहीं होते और अन्वय के बिना व्यतिरेक नहीं होते। कोई यह कहे कि एक परमाणु में चार गुण हैं और दूसरे परमाणु में छह गुण हैं, तो वहाँ छह (गुण) इस (दूसरे के) कारण हुआ, उससे यहाँ इनकार करते हैं। आहा...हा...! एक परमाणु में चार गुण स्निग्धता है (और) दो गुण अधिक परिणमन हुआ और दूसरे में छह गुण हैं, तब यह छह (गुण) होता है परन्तु कहते हैं कि यह छह होने की उत्पत्ति का उसका काल है तो उससे हुआ और पूर्व की चार पर्याय थी, उसका संहार हुआ, तब उस छह पर्याय की उत्पत्ति हुई।

(एक व्यक्ति ने ऐसा कहा था कि) गर्म पानी ऐसे का ऐसे हो जायेगा ? वह परमाणु का कहते थे। एक परमाणु में चार गुण स्निग्धता पर्यायरूप से है और छह गुण स्निग्धता

दूसरे परमाणु में है, वे एकत्रित हों तब छह गुण (स्निग्धता) होती है; इसलिए पर से कुछ नहीं होता – (ऐसा कहो) तो यह बात मिथ्या पड़ती है... परन्तु यहाँ कहते हैं कि वह चार गुण की पर्यायवाला (परमाणु) जो उत्पन्न हुआ, उसे उसकी (पूर्व) पर्याय का व्यय होकर और छह (गुण) पर्याय हुई, उसमें पर की अपेक्षा है ही नहीं। आहा...हा...! एक परमाणु में अनन्त गुण की पर्याय उत्पन्न होवे, वह पूर्व की पर्याय के संहार से होती है, परन्तु अनन्त गुणवाला (दूसरा) परमाणु साथ में मिला, इसलिए होती है – ऐसा वस्तु में नहीं है। वस्तु की ऐसी स्थिति है। प्रभु का फरमान है। आहा...हा...! समझ में आया?

मनुष्य मोटर में बैठा है और मोटर चलती है, उसकी भी जिस समय जो पर्याय उत्पन्न है, वह उत्पन्न है और पूर्व की पर्याय का संहार-अभाव है, वह उपादान (कारण) है और (दोनों) ध्रुव के कारण है। वे व्यतिरेक ध्रुव के कारण हैं, ध्रुव अर्थात् अन्वय; अन्वय के कारण वे हैं। अब, उसमें बैठा हुआ मनुष्य ऐसा जानता है कि इसके कारण ऐसे चलता हूँ, उससे इनकार करते हैं। मोटर में बैठा है, इसलिए मोटर चलती है, तब मैं ऐसे... ऐसे... चलता हूँ – ऐसा नहीं है। उसके परमाणु की पर्याय का ही उस प्रकार का उत्पाद, पूर्व का व्यय होकर उत्पाद होता है और ध्रुव के अवलम्बन से यह उसका स्वतन्त्रपना है। एक व्यक्ति मजाक करके कहता था कि इस मोटर में हम जाते हैं, वह मोटर के कारण नहीं – ऐसा सोनगढ़वाले कहते हैं। कोई ब्रह्मचारी था, ऐसी बात आयी थी – सोनगढ़ की मोटर बिना पेट्रोल के चलती है और इनकी मोटर पेट्रोल से चलती है... अरे भगवान! तू क्या करता है? आहा...हा...! मोटर के परमाणुओं में भी जिस परमाणु की गति होने की पर्याय का उत्पाद (होना है), वह पूर्व की पर्याय का संहार होकर और ध्रुव के अवलम्बन से वह होता है। आहा...हा...! गजब बात है! पूरा संसार बदल डाले! आहा..हा...! आया?

...उत्पादन कारण का अभाव होने से उत्पत्ति ही नही होगी अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा। और वहाँ, (१) यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति ही नहीं होगी। (अर्थात् जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी; उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का उत्पाद ही नहीं होगा – यह

दोष आयेगा); अथवा (२) यदि असत् का उत्पाद हो तो... संहार के बिना हो तो उत्पाद नहीं होगा और ध्रुव (जैसा) कुछ नहीं था और अध्धर से हुआ, (जैसे) आकाश का फूल हुआ। आहा...हा... ! **यदि असत् का उत्पाद हो तो व्योम-पुष्प इत्यादि का भी उत्पाद होगा, (अर्थात् शून्य में से भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे)...** आहा...हा... ! पर्याय की उत्पत्ति के समय ध्रुवपना नहीं हो, उत्पाद के समय ध्रुवपना न हो तो शून्य में से उत्पन्न होगा। आहा...हा... !

एक व्यक्ति कहता था – शून्य में से धुँध और धुँध में से यह सब हुआ। पहले शून्य था, उसमें से उठी धुँध; धुँध में से यह सब सृष्टि हुई। स्थानकवासी था, कुछ पता नहीं होता। शून्य में धुँध हुई; धुँध में से यह जगत् हुआ है। अरे...रे... ! यह तो कहते हैं कि अनादि से जो... जो... परमाणु और आत्मा में जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होगी, वह उसके संहार से और ध्रुव से होगी। पर से होती है, यह बात बिलकुल नहीं है। आहा...हा... !

(यह सुनकर ऐसा कहते हैं) हाथ (जोड़कर) बैठे रहो, रोटी, दाल, भात अपने आप हो जायेगा ! परन्तु हाथ को भी कौन कुछ कर सकता है ? ऐसा रहना या नहीं रहना वह हाथ की पर्याय है। 'खाली बैठे रहो अपने आप दाल-भात हो जायेगा' ऐसी खोटी मजाक करता है। अरे...रे... ! बापू ! ऐसा रहने दे, भाई ! यह दाल-भात, शाक की जो पर्याय जिस समय में उत्पन्न होनी है, वह पूर्व की पर्याय का संहार होकर और ध्रुव का आधार लेकर होती है। आहा...हा... ! सोनगढ़ के नाम पर ऐसी मजाक करते हैं। करो बापू ! मजाक तो स्वयं की होती है। आहा...हा... !

(अब कहते हैं कि) **और केवल व्यायारम्भक...** (अर्थात्) पर्याय का अकेला नाश हो, **मृत्तिकापिण्ड का उत्पाद और ध्रौव्य से रहित अकेला व्यय करने जानेवाले मृत्तिकापिण्ड का संहार कारण का अभाव होने से...** आहा...हा... ! संहार का कारण कौन है ? उत्पाद। संहार का कारण-संहार हो, उसका कारण उत्पाद है। उत्पाद का कारण संहार है। संहार का कारण उत्पाद है। है न ? **संहार कारण का अभाव होने से संहार ही नहीं होगा...** उत्पाद नहीं होगा तो संहार ही नहीं होगा आहा...हा... ! **अथवा तो सत् का ही उच्छेद होगा।**

यदि मृत्तिकापिण्ड का व्यय न होगा तो समस्त ही भावों का संहार ही न होगा, (अर्थात् जैसे मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भाव का संहार ही नहीं होगा - यह दोष आयेगा) अथवा (२) यदि सत् का उच्छेद होगा... अकेली ही पर्याय होगी उसे ध्रुव नहीं होगा तो सत् का नाश होगा। **चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा...** चैतन्य भगवान निर्मलानन्द प्रभु का उच्छेद हो जायेगा (परन्तु) ऐसा नहीं होता। **(अर्थात् समस्त द्रव्यों का सम्पूर्ण विनाश हो जायेगा यह दोष आयेगा...)** यह क्या कहा? केवल संहार आरम्भक (अर्थात्) अकेला नाश ही देखनेवाला, उत्पत्ति और ध्रुव नहीं देखनेवाला; उसे उत्पत्ति का अभाव होने पर चैतन्यमूर्ति भगवान नित्य का नाश हो जायेगा। वह कभी भी नष्ट नहीं होता। विशेष कहेंगे.... !

प्रवचन नं. १०९ **दिनाङ्क १९ जून १९७९**

(प्रवचनसार १०० वीं गाथा) उत्पाद का एक बोल आ गया है। क्या कहते हैं? कि प्रत्येक द्रव्य सदा अपने स्वभाव में वर्तता है, यह एक सिद्धान्त (कहा)। परद्रव्य और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न : निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध तो है न?

समाधान : निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ ही यह है कि यह नहीं। एक ज्ञान कराने के लिये दूसरी बात कहते हैं, वरना प्रत्येक द्रव्य निगोद का आत्मा हो या सिद्ध का हो या नरक गति का जीव हो; प्रत्येक (आत्मा) स्वयं का उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव है, उसमें वह वर्तता है; इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसका स्वभाव है।

अब कहते हैं कि यदि अकेला उत्पाद ढूँढ़ने जाये; जैसे कि अकेले समकित को ढूँढ़ने जाये तो मिथ्यात्व के नाश के बिना और समकित की उत्पत्ति का कारण ध्रुव है, (इन) दो कारण के अभाव में समकित की उत्पत्ति ही नहीं दिखाई देगी। समझ में आया? घट की उत्पत्ति को ढूँढ़ने जाये; घड़ा है, उसकी उत्पत्ति को ढूँढ़ने जाये तो घड़े से पूर्व के मिट्टी के पिण्ड के संहार के अभाव में घट की पर्याय उत्पन्न (हुई, ऐसा) सिद्ध ही नहीं

होता और मिट्टी कायम रही है, उससे घट उत्पन्न हुआ है... आहा...हा...! कुम्हार से नहीं। आहा...हा...! ऐसा है। केवल सर्ग-उत्पत्ति ढूँढ़ने जाये तो विरोध आता है।

और **केवल व्ययारम्भक...** दोनों भाषाओं में अन्तर है। उत्पाद में **मृगयमाण** ऐसा था। **मृगयमाण** अर्थात् केवल उत्पत्तिशोधक, ऐसा। **मृगय** अर्थात् शोधना आहा...हा...! अकेली उत्पाद-पर्याय ही देखने जाये तो भी सिद्ध नहीं होगी। उसके पूर्व उपादान कारण के क्षय के बिना वह उत्पाद सिद्ध नहीं होगा।

अब, संहार-व्यय की बात करते हैं। **केवल व्ययारम्भक मृत्तिकापिण्ड का उत्पाद और ध्रौव्य से रहित...** मृत्तिकापिण्ड की ध्रुवता और उत्पाद (रहित) **केवल व्यय करने को उद्यत, संहारकारण का अभाव होने से...** अर्थात् उत्पत्ति के कारण के अभाव से; घट की उत्पत्ति के कारण के अभाव से उसका संहार ही सिद्ध नहीं होगा। है ?

केवल व्ययारम्भक (उत्पाद और ध्रौव्य से रहित केवल व्यय करने को उद्यत मृत्तिकापिण्ड का) संहारकारण का अभाव होने से... अर्थात् उत्पत्ति है, वह संहारकारण का (अभाव) है। उत्पत्ति है, वह संहारकारण का अभाव है। संहारभाव है, वह भाव व्ययरूप तो है परन्तु उत्पत्ति की अपेक्षा से संहारकारण का अभाव है। आहा...हा...! भाव तो तीनों ही कहे - उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों स्वभाव कहे न ? परन्तु यहाँ यदि अकेला व्यय ढूँढ़ने जाये - मिथ्यात्व का नाश अकेला ढूँढ़ने जाये तो समकित की उत्पत्ति और उसके आधार ध्रुव आत्मा के बिना अकेले मिथ्यात्व का नाश (सिद्ध) नहीं (होगा)।

देखो ! यह अँगुली चलती है, अब इसमें उत्पत्ति ऐसे है, उसका अकेला संहार ही ढूँढ़ने जाये तो इस उत्पत्ति के साधन बिना संहार सिद्ध नहीं हो सकेगा। उत्पत्ति इसका कारण है और इसका (उत्पत्ति का) कारण संहार है, इसलिए उत्पत्ति के अभाव से संहार ही नहीं हो सकेगा। आहा...हा...!

प्रश्न : उत्पत्ति नहीं मानो तो संहार कहाँ से होगा ?

समाधान : उत्पत्ति के अभाव में संहार का अभाव सिद्ध नहीं होगा। यहाँ उत्पत्ति है तो पूर्व की पर्याय का संहार है - ऐसा सिद्ध होगा। उत्पत्ति और ध्रुव नहीं है, और संहार-व्यय-नाश (ही ढूँढ़े तो) वह तो अकेला नाश हो गया। उत्पत्ति का कारण और ध्रुव के

कारण बिना व्यय-संहार सिद्ध नहीं हो सकेगा। आहा...हा... ! यह तो दुबारा लिया जा रहा है। बनियों को ऐसा (समझने की) निवृत्ति कहाँ है ?

मृत्तिकापिण्ड का संहारकारण का अभाव (कहा तो) - संहारकारण का अभाव कौन ? (तो कहते हैं) उत्पाद। उस उत्पाद के अभाव से संहार ही सिद्ध नहीं होता। यह उत्पन्न हुआ तो इससे पहले (जो अवस्था थी, उसका) नाश हुआ - यह सिद्ध होगा, वरना उत्पन्न कारण के बिना संहार-व्यय सिद्ध नहीं होगा। आहा...हा... ! ऐसा उपदेश और ऐसी धर्म की विधि अलग! पहले (विधि) सरल थी - दया पालना और व्रत करना... धूल भी नहीं, बापू!

मिथ्यात्व का अकेला व्यय ढूँढ़ने जायेगा तो समकित की उत्पत्ति के कारण बिना मिथ्यात्व का व्यय तुझे नहीं मिलेगा। आहा...हा... ! कोई यह कहे कि मुझे समकित की उत्पत्ति है परन्तु मिथ्यात्व का नाश नहीं है; और मिथ्यात्व का नाश है परन्तु समकित नहीं है - ऐसा कहे तो वह अत्यन्त झूठ है। बात समझ में आती है ? यह तो दृष्टान्त लिये हैं। आहा...हा... ! ऐसा कहे कि मुझे तो अकेले मिथ्यात्व का नाश है; समकित की उत्पत्ति नहीं है तथा आत्मा ध्रुव नहीं है। (तो ऐसा नहीं है।) आहा...हा... ! (दृष्टान्त तो) बहुत दिये हैं। ओ...हो... ! बनिये को-व्यापारवाले को जरा कठिन पड़े, वकीलों को-बुद्धिशालियों को जरा ठीक पड़ता है।

एक-एक परमाणु में... आहा...हा... ! जैसे कि पानी शीतल है, उस शीतल पानी में अकेले शीतलता का संहार ढूँढ़ने जाये तो ऊष्ण की उत्पत्ति के बिना शीतल का व्यय-संहार सिद्ध होगा ही नहीं; और शीतलता का नाश, उत्पत्ति के बिना और ध्रुव के बिना उस शीतलता का नाश होगा ही नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? **संहार ही नहीं होगा...** एक बात। **अथवा तो सत् का ही उच्छेद होगा...** ध्रुव सिद्ध करना है न ? एक तो उसके उत्पादकारण के बिना संहार सिद्ध नहीं होगा; और अथवा सत् का ही उच्छेद होगा। सत् का ही उच्छेद होगा क्योंकि सत् और उत्पाद दो सहित हो तो संहार होता है परन्तु दोनों में एक होवे और दो न हो तो एक भी बात सिद्ध नही होती। आहा...हा... ! थोड़ा सूक्ष्म है। इसीलिए तो यह फिर से लिया है।

वहाँ (१) यदि मृत्तिकापिण्ड का संहार न हो... मिट्टी के पिण्ड का घट की उत्पत्ति के बिना; घट की उत्पत्ति के बिना अकेले मिट्टी के पिण्ड का संहार ढूँढ़े तो वह नहीं मिलेगा और जैसे उस मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा तो **समस्त ही भावों का संहार ही नहीं होगा...** आहा...हा... ! कपड़ा है कपड़ा, वह कपड़ा है मैलवाला। अब उस मैलवाले (कपड़े में) अकेला मैल ढूँढ़ने जाये तो श्वेतपन की पर्याय के बिना मैल का नाश सिद्ध नहीं होगा। श्वेतपन की उत्पत्ति के बिना मैल का संहार सिद्ध नहीं होगा और या वस्त्र स्वयं है, उसका संहार होगा। आहा...हा... ! भाई ! मुम्बई में कहीं सुना नहीं है, आहा...हा... ! यह बात !

देव-गुरु और शास्त्र न हो तो समकित की उत्पत्ति नहीं होगी - ऐसा नहीं है। देव-गुरु और शास्त्र न हों तो समकित की उत्पत्ति नहीं होती - ऐसा नहीं है। मिथ्यात्व का व्यय न हो तो समकित की उत्पत्ति नहीं होती। आहा...हा... ! समझ में आया ? और उत्पत्ति के बिना अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो सत् है, उसका नाश होगा, (क्योंकि) वस्तु सत् है न ? उत्पादकारण के बिना संहार सिद्ध नहीं होगा और उत्पादकारण के बिना सत् का नाश होगा। अकेला संहार ढूँढ़ने जाये, वहाँ ध्रुव का नाश होगा। आहा...हा... ! आचार्यों ने...। (गजब काम किया है !)

(जैसे मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का संहार ही नहीं होगा...) क्योंकि अकेला संहार देखने जाये तो उत्पत्ति और ध्रुव के बिना संहार मिलेगा ही नहीं। सभी वस्तुओं का नाश हो जायेगा — यह दोष आयेगा। आहा...हा... !

अथवा यदि सत् का उच्छेद होगा... अब ध्रुव का लिया... **तो चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा...** यहाँ चैतन्य लिया, देखा ! ध्रुव भगवान ! आहा...हा... ! यदि संहार अकेले ध्रुव के बिना हो तो ध्रुव का-चैतन्य का नाश होता है। आहा...हा... ! वह समकित की उत्पत्ति, मिथ्यात्व के व्यय के कारण से है। मिथ्यात्व का व्यय-संहार उत्पत्ति का कारण है और उस उत्पत्ति के कारण में सत् है, वह व्यतिरेक जो है, वह अन्वय को अवलम्बन कर है। यदि वह व्यतिरेक नहीं मानो तो ध्रुव भी सिद्ध नहीं होगा। ध्रुव अर्थात् अन्वय-कायम रहनेवाला तत्त्व। उत्पाद और व्यय व्यतिरेक - भिन्न-भिन्न अवस्था है परन्तु वह भिन्न-भिन्न अवस्था अकेली नहीं मिलती। उस भिन्न-भिन्न अवस्था के साथ

रहनेवाला अन्वय है, उसके बिना नहीं होती। वह अन्वय व्यतिरेक के बिना नहीं होता और वह व्यतिरेक अन्वय के बिना नहीं होता। यदि व्यतिरेक अन्वय के बिना हो तो ध्रुव का नाश हो जायेगा। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

श्रोता : थोड़ा अधिक स्पष्ट हो तो अधिक अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता है, अन्दर से चलता है वह ठीक; कितनी बात करते हैं। ओ...हो...!

चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा... जो सत् है, (उसका नाश होगा)। अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो उत्पत्ति से रहित संहार नहीं हो सकता और या अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो सत् का संहार हो जायेगा। सत् चैतन्य है, उसका संहार हो जायेगा। दूसरे परमाणु आदि (नहीं लिये हैं)। भगवान चैतन्य (लिया है)! आहा...हा...! अन्दर ध्रुव है, ध्रुव चैतन्य है, उस संहार (और) उत्पत्ति में व्यतिरेक का कारण अन्वय है। यदि अकेला संहार ढूँढ़ने जाये तो उसका कारण जो अन्वय है, उसका नाश होगा। आहा...हा...! यह ऐसी सूक्ष्म बात है। इसे फिर से लेने को कहा। आहा...हा...! आचार्यों की शैली तो बहुत सरल और सीधी! आहा...हा...! **(सर्व द्रव्यों का सम्पूर्ण विनाश हो जायेगा, यह दोष आयेगा।)...** दो हुए।

उत्पाद और व्यय अकेला नहीं है – ऐसा सिद्ध किया। उत्पाद, संहार और ध्रुव के बिना नहीं होता; संहार, उत्पाद और ध्रुव के बिना नहीं होता – ऐसा सिद्ध किया। अब, ध्रुव (की बात करते हैं।) आहा...हा...! **केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली...** इसको ऐसी भाषा की है, देखा! **स्थितिमुपगच्छन्त्या** संस्कृत में ऐसा है। तीनों के शब्द अलग हैं। (संस्कृत टीका में) दूसरी पंक्ति है – **स्थितिमुपगच्छन्त्या** (अर्थात्) स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली, अर्थात् यदि अकेले ध्रुव को मानने जायेगा, आहा...हा...! **केवल स्थिति प्राप्त करने को...** है न? (केवल स्थिति का अर्थ) नीचे है। उत्पाद और व्यय (उत्पाद और व्ययरहित) अकेला ध्रुवपना; अकेला केवल स्थितिपना अकेला अवस्थान (अन्वय व्यतिरेकों सहित ही होता है...) ध्रुव है, वह पर्याय और उत्पाद-व्ययसहित ही होता है और इसलिए ध्रौव्य उत्पाद-व्ययसहित ही होता है अकेला नहीं हो सकता। जैसे उत्पाद

(अथवा व्यय) द्रव्य का अंश है – समग्र द्रव्य नहीं है... आहा...हा...! उत्पाद (अथवा व्यय) द्रव्य का अंश है – समग्र द्रव्य नहीं है। इसी प्रकार ध्रौव्य भी द्रव्य का अंश है–समग्र द्रव्य नहीं है। आहा...हा...! समग्र द्रव्य तो उत्पाद–व्यय और ध्रुव तीन होकर समग्र द्रव्य है।

केवल–अकेली मिट्टी की स्थिति है – ऐसे सिद्ध करने जाये, (इसी प्रकार) आत्मा में ऐसा लो कि आत्मा में (केवल) ध्रुवपना है – ऐसा सिद्ध करने जाये तो मिथ्यात्व का व्यय और समकित की उत्पत्ति के बिना, वह ध्रुवपना सिद्ध नहीं होगा। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! विशिष्टता तो देखो! ध्रुव है, वह मिथ्यात्व के व्यय के बिना और समकित की उत्पत्ति के बिना वह सिद्ध नहीं होगा। इसलिए इसका अर्थ है कि समकित की उत्पत्ति ध्रुव के आश्रय से है, वह उत्पत्ति ध्रुव के बिना नहीं होती। आहा...हा...! और ध्रुव के बिना मिथ्यात्व का व्यय भी नहीं होता क्योंकि दोनों व्यतिरेक भिन्न–भिन्न हैं। एक व्ययरूप है, एक उत्पादरूप है – दोनों भिन्न–भिन्न हैं। इनका अभिन्नरूप एक वस्तु–ध्रुव के बिना यह भिन्न–भिन्न वस्तु सिद्ध नहीं होगी और भिन्न–भिन्न वस्तु के बिना अकेला ध्रुव सिद्ध नहीं होगा। आहा...हा...!

बहुत अच्छी बात है! अन्दर में बैठने की बात है, बापू! यदि तुझे धर्म चाहिए हो तो धर्म की पर्याय की उत्पत्ति में ध्रुव और संहार दोनों चाहिए, दोनों चाहिए। तुझे धर्म की पर्याय की उत्पत्ति करना हो तो उत्पत्ति का मूल कारण ध्रुव और उपादान कारण संहार (दोनों चाहिए)। आहा...हा...! यहाँ क्षणिक उपादान लेना। ध्रुव उपादान जो ध्रुव है, उसके बिना समकित की उत्पत्ति नहीं होगी और मिथ्यात्व के व्यय के बिना समकित की उत्पत्ति नहीं होगी। आहा...हा...! और ध्रुव के बिना समकित की (उत्पत्ति नहीं होगी।) अकेला ध्रुव ढूँढ़ने जाये तो व्यतिरेक के बिना ध्रुव कभी नहीं होता। उत्पाद और व्यय व्यतिरेक अर्थात् भिन्न–भिन्न हैं। उन भिन्न–भिन्न के बिना अकेला नहीं होता और उस अकेले के बिना भिन्न–भिन्न नहीं होते। आहा...हा...! ऐसी बात! अनजान बहिनों–लड़कियों को अनजाना लगता है; जानकार हों उन्हें तो (समझ में आता है!) आहा...हा...! ऐसा मार्ग है।

केवल स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की, व्यतिरेकों सहित स्थिति का–अन्वय का–उसके अभाव होने से... देखा! व्यतिरेकों सहित स्थिति अर्थात्

टिकना। अन्वय का अर्थात् स्थिति का **उसके अभाव होने से स्थिति ही नहीं होगी...** आहा...हा... ! उत्पाद और व्यय के बिना अकेली स्थिति सिद्ध नहीं होगी। ध्रुवतत्त्व वह क्या है ? उत्पाद है-वह पर्याय उत्पन्न है, वह सिद्ध करती है कि स्थिति है; और पूर्व की पर्याय का संहार होता है, वह सिद्ध करता है कि (स्थिति है) । वस्तुत: व्यय अन्दर जाता है-ध्रुव में अन्दर (जाता है) आहा...हा... ! तो अकेला ध्रुव सिद्ध नहीं होता। व्यय और उत्पाद के बिना अकेला ध्रुव सिद्ध नहीं होता और अकेला उत्पाद और व्यय ध्रुव के बिना सिद्ध नहीं होता - ऐसी बात है। कोई कहेगा कि ऐसा धर्म निकाला होगा! सोनगढ़ ने निकाला होगा - ऐसा कहते हैं! यह तो अनादि का भाव है। आहा...हा... ! अनन्त... अनन्त... तीर्थङ्करों का यह एक ही कथन है। आहा...हा... !

सर्वज्ञ भगवान ऐसा कहते हैं कि तू अकेली सर्वज्ञ की पर्याय ढूँढ़ने जायेगा तो उसके पहले की पर्याय का व्यय नहीं हो तो सर्वज्ञ पर्याय उत्पन्न नहीं होगी और सर्वज्ञ पर्याय की उत्पत्ति का मूल कारण (जो) ध्रुव है, उसे नहीं माने तो सर्वज्ञ की उत्पत्ति ही नहीं होगी। आहा...हा... ! जो जैनधर्म का मूल सर्वज्ञ है, सर्वज्ञ है ! सर्वज्ञ का कहा हुआ तत्त्व, वह पदार्थ है। अब यहाँ कहते हैं कि सर्वज्ञपर्याय की उत्पत्ति नहीं है और अकेला त्रिकाली सर्वज्ञ स्वभावी ध्रुव आत्मा ही है... बात जरा सूक्ष्म पड़ेगी! ...त्रिकाली सर्वज्ञ स्वभावी है, उस सर्वज्ञ की पर्याय की उत्पत्ति के बिना वह त्रिकाल सर्वज्ञ स्वभाव सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि यहाँ सर्वज्ञ पर्याय उत्पन्न हुई, तब वहाँ सर्वज्ञ स्वभावी ध्रुव है - ऐसा सिद्ध हुआ। आहा...हा... ! और जब सर्वज्ञ पर्याय ने सर्वज्ञ स्वभाव को सिद्ध किया, तब पूर्व की पर्याय में जो अपूर्णता असर्वज्ञपना था, उसका नाश सिद्ध होता है। आहा...हा... ! इसलिए कोई यह माने कि सर्वज्ञपना नहीं है तो उसे ध्रुवपने की श्रद्धा नहीं है और पूर्व में सर्वज्ञपना नहीं, उसके अभावरूप-संहाररूप जो पर्याय हो (उसका नाश हो), तब सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हो, उसे भी उसने नहीं माना है। सर्वज्ञ होने में पूर्व की पर्याय का व्यय है, वह भी नहीं माना है, सर्वज्ञ नहीं माना और ध्रुव भी नहीं माना क्योंकि जो सर्वज्ञ पर्याय है, वह त्रिकाली सर्वज्ञ स्वभाव में से आती है। त्रिकाली स्वभाव सर्वज्ञ स्वभाव है आहा...हा... ! सूक्ष्म है, भाई! यह सूक्ष्म है परन्तु सुने तो सही!

आत्मा में अनन्त आनन्द जब पर्याय में प्रगट होता है, यहाँ पर्याय में (बात चलती) है न? तो अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय की सिद्धि, पूर्व के दु:ख की पर्याय का अभाव न हो तो आनन्द की पर्याय की उत्पत्ति नहीं होगी। संहारकारण के बिना उत्पत्ति नहीं हो सकेगी क्योंकि सर्वज्ञस्वभाव उत्पन्न हुआ, उसका पूर्व उपादानकारण जो अपूर्ण पर्याय थी उसका क्षय हुआ, उसका क्षय होने पर केवलज्ञान हुआ। आहा...हा...! केवलज्ञान में अपूर्ण स्थिति भी रहे और पूर्ण स्थिति भी रहे – ऐसा नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! यह मार्ग तो अलग प्रकार का है। अभी तो सब गड़बड़ चलती है। वीतराग का तत्त्व सर्वज्ञ परमेश्वर... आहा...हा...!

अनन्त आनन्द की उत्पत्ति अकेली ढूँढ़ने जाये तो पूर्व के दु:ख के अभाव के बिना वह उत्पत्ति नहीं दिखाई देती। आहा...हा...! और उसके ध्रुव बिना (भी सिद्ध नहीं होता) क्योंकि वह तो क्षणिक उत्पन्न हुआ, सर्वज्ञपना भी क्षणिक उत्पन्न हुआ, वह तो व्यतिरेक है। वह व्यतिरेक, अन्वय जो कायम रहनेवाली वस्तु के बिना, वह व्यतिरेक सिद्ध नहीं होगा। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है! आहा...हा...! प्रवचनसार! आहा...हा...!

दिव्यध्वनि! तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि निकली! आहा...हा...! उस दिव्यध्वनि की उत्पत्ति भी उसके पहले की वर्गणा के व्यय के बिना (नहीं होगी)। वर्गणा की पर्याय का व्यय हुआ तो भाषा की पर्याय हुई। अकेली भाषा की पर्याय ढूँढ़ने जाओ तो व्यय और ध्रुव के बिना साबित नहीं होती तथा अकेला ध्रुव परमाणु भी है – ऐसा सिद्ध करने जाओ तो परमाणु व्यतिरेक के बिना सिद्ध नहीं होता। व्यतिरेक अर्थात् उत्पाद और व्यय तथा अन्वय अर्थात् कायम रहनेवाली चीज। आहा...हा...! अन्वय के बिना व्यतिरेक नहीं और व्यतिरेक के बिना अन्वय नहीं। आहा...हा...! ओ...हो...! समझ में आया।

(स्थिति का) अभाव होने के कारण **स्थिति ही नहीं होगी अथवा तो क्षणिक का नित्यत्व होगा...** क्षणिक ही नित्य हो जायेगा। आहा...हा...! अकेली स्थिति ढूँढ़ने जाये तो क्षणिक (है, वह) नित्य हो जायेगा। स्थायी रहनेवाला नित्य वहाँ सिद्ध नहीं होगा। थोड़ी सूक्ष्म बात है। क्या कहा? केवल स्थितिवाला तत्त्व प्राप्त करने जानेवाली मृत्तिका

की व्यतिरेक अर्थात् उत्पन्न और व्यय **सहित स्थिति का-अन्वय का-उसके अभाव होने से...** व्यतिरेक के बिना अकेली स्थिति का अभाव होने के कारण; पर्याय के बिना अकेला द्रव्य सिद्ध नहीं होता इसलिए, आहा...हा...! पर्याय स्वयं ही वस्तु का निर्णय करती है न? निर्णय की पर्याय और उसके पहले मिथ्यात्व की पर्याय दोनों व्यतिरेक हैं। यह दो न हों तो ध्रुव नहीं होगा। आहा...हा...! ध्रुव, व्यतिरेक का है। ध्रुव-अन्वय-स्थित रहनेवाला, उसके यह व्यतिरेक हैं और व्यतिरेक, अन्वय के हैं। आहा...हा...! भाषा अलग है। आहा...हा...! सन्तों ने तो गजब काम किया है, दिगम्बर सन्तों ने... आहा...हा...! संक्षिप्त भाषा में उत्पाद-व्यय और ध्रुव को सिद्ध करते हैं कि जो वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव है, उसमें द्रव्य प्रवर्तता है। उसके स्वभाव में द्रव्य सदा प्रवर्तता है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय और ध्रुव सत् है और सत् द्रव्य लक्षणं है। आहा...हा...! तत्त्वार्थसूत्र!

यदि मृत्तिका की स्थिति न हो तो समस्त ही भावों की स्थिति नहीं होगी... मिट्टी का नाश होवे तो समस्त द्रव्यों का नाश होगा। आहा...हा...! स्थिति-टिकना-टिकता तत्त्व उत्पाद-व्यय के बिना ढूँढ़ने जायेगा तो या तो वह स्थिति ही नहीं रहेगी या उस स्थिति का नाश होगा। समझ में आया? यह तो व्यापारी को कठिन पड़ें ऐसे न्याय हैं! वकालात के न्याय...! Logic से सब आता है। आहा...हा...! 'वीर का मार्ग शूरवीरों का है' बापू! सूक्ष्म बुद्धि चाहिए, इसमें सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। आहा...हा...! द्रव्य को पकड़ने में भी मति-श्रुत की सूक्ष्म बुद्धि हो तो पकड़ सकता है। राग से नहीं, द्वेष से नहीं... दया से नहीं आहा...हा...! स्थूल उपयोग से भी (पकड़ में) नहीं आता है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा! स्थिति है न? स्थिति का अर्थ टिकना (टिकनेवाला) तत्त्व। यदि टिकते तत्त्व की अकेली स्थिति ढूँढ़ने जायेगा, आहा...हा...! तो जो सूक्ष्म उपयोग से ज्ञात होता है, उस सूक्ष्म उपयोग का नाश होता है और या वह सूक्ष्म उपयोग क्षणिक है तो स्थिति भी क्षणिक हो जाती है। आहा...हा...! समझ में आया? यह बात दूसरे प्रकार की है। किसी दिन बाप-दादा ने नहीं सुनी होगी। आहा...हा...! अद्भुत बात है, बापू!

यदि अकेला ध्रुव ढूँढ़ने जाये तो उत्पाद के कारण के बिना और संहार के व्यतिरेक के बिना वह अन्वय सिद्ध नहीं होगा। व्यतिरेकसहित अन्वय है। यदि तू अकेले अन्वय

को सिद्ध करने जायेगा तो व्यतिरेक के बिना अन्वय का नाश हो जायेगा। आहा...हा...! वाह...! अथवा क्षणिक को नित्यपना होगा, अर्थात् वह पर्याय क्षणिक है, वही नित्य होगी। अकेला नित्यपना ढूँढ़ता है और अकेला नित्यपना ढूँढ़े और अनित्य तो ढूँढ़ता नहीं आहा...हा...! इसलिए पर्याय में नित्यपना आ जायेगा। आहा...हा...! ऐसा उपदेश किस प्रकार?

यदि क्षणिक का नित्यत्व हो तो चित्त के क्षणिकभावों का... (अकेले संहार में) चैतन्य का लिया था। यहाँ चित्त की क्षणिक कल्पना (ली है) **चित्त के क्षणिकभावों का भी नित्यत्व होगा (अर्थात् मन का प्रत्येक विकल्प भी त्रैकालिक ध्रुव हो जाये - यह दोष आयेगा।)...** आहा...हा...! अकेली स्थिति ढूँढ़ने जायेगा तो उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय वह स्वयं ही नित्य हो जायेगा। वह नित्य हो जायेगा। व्यतिरेकरहित नित्य है, वह नित्य नहीं रहेगा, पर्याय नित्य हो जायेगी। आहा...हा...! यह तो दुबारा लेने को कहा था। आहा...हा...!

इसलिए द्रव्य को... यह तीन होकर द्रव्य है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप तो द्रव्य है और तीन हैं, वे उसके अंश हैं। वे एक-एक द्रव्य नहीं हैं। उत्पाद-व्यय और ध्रुव एक-एक द्रव्य नहीं हैं। ध्रुव भी एक द्रव्य नहीं है। आहा...हा...! जो ध्रुव दृष्टि में (आता है), निश्चयनय की दृष्टि का जो ध्रुव द्रव्य है, उस ध्रुव को यहाँ अंशरूप से कहा है क्योंकि वे दो (उत्पाद और व्यय) अंश हैं न? इसलिए द्रव्य के तीन अंश हैं, यहाँ तो ज्ञान कराना है न? और वहाँ तो दृष्टि कराना है। आहा...हा...! इस ज्ञेय अधिकार में ज्ञान प्रधान समकित की बात है। आहा...हा...!

सभी द्रव्यों को **उत्तर-उत्तर व्यतिरेकों...** एक के बाद एक, भिन्न-भिन्न अवस्था के **सर्ग के साथ, पूर्व पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ...** (अर्थात्) कायम रहनेवाला ध्रुव-अवस्थान के साथ। (अवस्थान अर्थात्) टिकना, ध्रुव रहना। **अविनाभाववाला...** तीनों का अविनाभावपना है। उत्पाद के बिना व्यय नहीं; व्यय के बिना उत्पाद नहीं; उत्पाद के बिना ध्रुव नहीं; ध्रुव के बिना व्यय नहीं; ध्रुव के बिना उत्पाद नहीं। आहा...हा...! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! (लोगों को) अन्दर की / मूलतत्त्व की (खबर नहीं है।)

इसमें तो वहाँ तक कहा है कि जिसकी जो पर्याय उत्पन्न है, वह दूसरे से तो नहीं; दूसरे से तो वह पर्याय नहीं होती परन्तु उसके व्यय के बिना नहीं होती, और ध्रुव बिना नहीं होगी और व्यय भी कोई करे तो नाश होगा (– ऐसा नहीं है।) लकड़ी मारकर घड़े का चूरा हुआ, इसलिए उससे व्यय हुआ (तो कहते हैं) नहीं; आहा...हा...! मिट्टी का घड़ा था, उसके टुकड़े हुए, वह व्यय हुआ, वह संहार (हुआ), उत्पत्ति का कारण संहार और संहार का कारण उत्पत्ति और स्थिति और संहार दोनों व्यतिरेक हैं। वह व्यतिरेक कायम रहनेवाली मिट्टी के बिना नहीं हो सकते – ऐसा है। यह सब पुराने दिगम्बर हैं और यह स्थानकवासी हैं, वहाँ ऐसा सुना था?

श्रोता : उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो वस्तु का मूल पाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल पाया, वस्तु यह है न? त्रिपदी! श्वेताम्बर में भी यह बात है। भगवान ने त्रिपदी कही – ऐसा आता है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव ऐसा आता है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव कहा – त्रिपदी कही, त्रिपदी! आहा...हा...! फिर तो कल्पित शास्त्र बनाये हैं। अपने में भी आता है। भगवान ने त्रिपदी कही है – ऐसा आता है – उत्पाद-व्यय और ध्रुव।

प्रत्येक वस्तु त्रिपदी है – उत्पाद-व्यय और ध्रुव। अनन्त पदार्थ अपने-अपने कारण से उत्पाद-व्यय और ध्रुव से हैं। उसके उत्पाद के लिए दूसरे द्रव्य की अपेक्षा नहीं है। उसके व्यय के लिए दूसरे की (आवश्यकता नहीं है)। घड़े पर लकड़ी पड़ी, इसलिए घड़ा फूटा है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! टुकड़ों की उत्पत्ति-उत्पाद (हुआ, उसे) फूटने की दशा का संहार कारण है। क्या कहा यह? घड़े की उत्पत्ति थी, उसका नाश हुआ और टुकड़ों की उत्पत्ति हुई, उस उत्पत्ति का मूल (कारण) घट का संहार हुआ, वह संहार उसका कारण है। आहा...हा...! लकड़ी पड़ी इसलिए चूरा हो गया – ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। आहा...हा...! बहुत विचार करने जैसा है।

इसलिए द्रव्य को उत्तर-उत्तर व्यतिरेकों के सर्ग के साथ, पूर्व पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ... स्थिति

के अवस्थान के साथ **अविनाभाववाला, जिसको निर्विघ्न अबाधित त्रिलक्षणतारूप लांछन...** आहा...हा...! उस उस द्रव्य का त्रिलक्षण-तीन लक्षण, ऐसा चिह्न, वह द्रव्य का त्रिलक्षण – ऐसा जो चिह्न; चिह्न अर्थात् निशान, लक्षण, आहा...हा...! उससे **प्रकाशमान है ऐसा अवश्य सम्मत करना।** आहा...हा...! गाथा बहुत (ऊँची आयी है।) आहा...हा...!

अब यह (अज्ञानी) कहता है कि 'मैं पर की दया पालता हूँ' – तो कहते हैं कि उसका टिकना जो है, वह उसकी पर्याय की उत्पत्ति का काल है, इसलिए टिकता है और उसका जब नाश होता है, तब उसकी पूर्व की अवस्था है, उसका व्यय होगा तो नाश होगा। यह कहता है कि 'मैं उसका नाश करता हूँ। मैं उसे जिलाता हूँ और उसका नाश करता हूँ' दोनों सिद्धान्त मिथ्या हैं। 'मैं उसे जिलाऊँ' तो उसकी जो उत्पाद पर्याय है, वह उससे हुई है। उसके बदले यह कहता है कि 'मैं उत्पाद करता हूँ!' फिर उत्पाद होकर मरण होता है– देह छूट जाती है, तब उससे होता है, उत्पाद का नाश होकर और संहार होता है। तब यह कहता है कि 'मैं उसे मार सकता हूँ' आहा...हा...! ऐसा है। धन्य मार्ग, बापू! आहा...हा...! चैतन्य का मार्ग तो देखो! आहा...हा...! जिसे पर के साथ तो कुछ सम्बन्ध ही नहीं है, यहाँ तो यह सिद्ध (करते) हैं।

एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कुछ अवलम्बन हो, निमित्त हो, समीपता हो तो कुछ उसमें हो (– ऐसा नहीं है) उचित निमित्त कहा है; उचित निमित्त हो परन्तु वह उचित निमित्त (कब कहलाता है कि) यहाँ उत्पाद हुआ है, तब दूसरे को उचित निमित्त कहा जाता है परन्तु यह उत्पत्ति (होने का) जब काल है, तब उसे उचित निमित्त का काल कहलाता है परन्तु वह उचित निमित्त आया, इसलिए यहाँ उत्पाद हुआ (– ऐसा नहीं है।) आहा...हा...! यहाँ उत्पाद हुआ, वह पूर्व के व्यय-संहार के कारण उत्पन्न हुआ है और ध्रुव के कारण उत्पन्न हुआ है। उचित निमित्त के कारण न तो व्यय हुआ है और न उत्पाद। आहा...हा...! ऐसी बातें! मुम्बई जैसे में ऐसी बात रखना कठिन पड़ती है। लोग सुनते हैं, मार्ग तो यह है, बात सुनो... सुनो...! आहा...हा...! यह १०० गाथा पूरी हुई। सौ में पूरा किया। सौ में पूर्ण स्वतन्त्रता सिद्ध की।

उत्पाद की पूरी स्वतन्त्रता! जिस-जिस क्षण में उत्पाद होता है, उस-उस क्षण में उसे दूसरे निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं और वह भी उत्पाद होता है, वह उसके अवसर में ही उत्पाद होता है, आगे-पीछे नहीं। आहा...हा...! उसके अवसर में जो उस द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति होती है, तब दूसरे निमित्त की आवश्यकता बिलकुल नहीं है; उसके संहार और ध्रुव का आश्रय अवश्य है, उसका और उसके संहार और ध्रुव का आश्रय है। आहा...हा...! और उस-उस द्रव्य की पर्याय का व्यय होता है, उसे उत्पाद और ध्रुव का कारण है। आहा...हा...! परन्तु यह लकड़ी को तोड़ दिया या रोटी के टुकड़े किये... आहा...हा...! रोटीरूप जो उत्पाद पर्याय थी, उसका नाश होने पर टुकड़े हुए हैं, वह उत्पत्ति हुई। वह उत्पाद था, उसका संहार हुआ, तब टुकड़े हुए। रोटी पूरी उत्पादरूप से थी, उसके टुकड़े हुए, तब उत्पाद का नाश होकर और टुकड़े की उत्पत्ति हुई; दाँत के कारण टुकड़े की उत्पत्ति हुई - ऐसा नहीं है। रोटी के टुकड़े दाँत के कारण हुए हैं - ऐसा नहीं है, ऐसी बातें हैं! आहा...हा...! क्या प्रभु का तत्त्व! आहा...हा...! इसका आत्मा पुकार कर स्वीकार करे! आहा...हा...! निःसन्देह! आहा...हा...! ऐसी चीज है!

(भले ही) लाखों पण्डित विरोध करें कि 'नहीं, दो कारण से कार्य होता है... दो कारण से कार्य होता है।' वह तो दूसरा एक (द्रव्य) है, उसका ज्ञान कराते हैं। दूसरा है, उसका उपचार से ज्ञान कराते हैं। 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' में दो कारण से (कार्य होता है ऐसा) आता है न? आहा...हा...! परन्तु दूसरा कारण है, इसलिए यहाँ उत्पत्ति हुई है - ऐसा नहीं है। उत्पत्ति, उस समय में अपने से पूर्व के व्यय से और ध्रुव के आश्रय से हुई है। आहा...हा...! उत्पत्ति हुई, उस क्षण जो निमित्त हो, उसे उचित निमित्त कहा जाता है। आहा...हा...! इसमें से एक शब्द उल्टा-सीधा होवे तो बड़ा अन्तर पड़ेगा। ऐसा वीतराग धर्म होगा? आहा...हा...!

एक-एक गाथा उत्कृष्ट है! ९९वीं गाथा में (कहा कि) समय-समय में अवसर में होता है, वह अवसर में ही होता है, उसे यहाँ सिद्ध किया। उस पूर्व की पर्याय का व्यय होकर ध्रुवपने रहकर उत्पत्ति होती है, आहा...हा...! और तीन होकर द्रव्य है। तीन, एक-एक द्रव्य नहीं हैं। ध्रुव भले ही त्रिकाल ध्रुव है परन्तु एक अंश है, यहाँ तो प्रमाण का द्रव्य

सिद्ध करना है। निश्चयनय का द्रव्य जो ध्रुव है, उसे यहाँ सिद्ध नहीं करना है। आहा...हा...! इसमें तो समझने के लिये एकाग्रता भी कितनी चाहिए? उस लोहे के (व्यापार में) तो बाट (ऐसे-ऐसे करे) वह तो मजदूरी किया करता है। वह करता है इसका राग! आहा...हा...! वह लोटा नहीं बना सकता, लोटा की जो उत्पत्ति थी, उससे पहले की जो लोटे की अवस्था थी, उसका व्यय होकर और इसकी उत्पत्ति हुई है। (दूसरे ने) ध्यान रखा, इसलिए हुई है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

प्रश्न – ध्यान रखना या नहीं?

समाधान – किन्तु रखे कौन? यहाँ तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, यह तो समयसार तीसरी गाथा में सिद्ध किया है। आहा...हा...! एक द्रव्य-परमाणु या आत्मा अपने गुण और पर्याय का स्पर्श करता है। परद्रव्य को स्पर्श नहीं करता, आहा...हा...! अब वह स्पर्श नहीं करता – ऐसा जो द्रव्य है, उसका उत्पाद-व्यय और ध्रुव स्वभाव है। आहा...हा...! अब (उसमें) उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव है। एक पर्याय की उत्पत्ति, व्यय और ध्रुव के बिना नहीं होती। इनके बिना नहीं होती – ऐसा अवश्य है परन्तु निमित्त के बिना नहीं होती – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी बात थी। भगवान स्पष्ट करते हैं। भगवान ने स्पष्ट किया है न? आहा...हा...! भगवान बोलते हैं! आहा...हा...! आत्मा नहीं बोलता, वाणी बोलती है। आहा...हा...!

वाणी का तो माहात्म्य है न! दूसरे श्लोक में आया है कि अनुभवशील! अनुभवशील शब्द का प्रयोग किया है न? भाई! समयसार दूसरे श्लोक में अनुभवशील की व्याख्या की – सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी! वह अनुभवशील की व्याख्या की। आहा...हा...! उसे सर्वज्ञ की अनुसारिणी निमित्त से कहा है, वह वाणी भी पूज्य है – ऐसा वहाँ कहा है। व्यवहार से पूज्य है, आहा...हा...! ऐसी (स्पष्ट बात) है तो भी विवाद करते हैं, विरोध करते हैं, ऐसा है और वैसा है, चाहे जो करो बापू! यहाँ तो कुछ अन्तर नहीं पड़ना है। आहा...हा...! अब तो छोटे-छोटे लड़के भी बातें करना सीखे हैं, बहुत वर्षों से चलता है न?

श्रोता – लड़के करते हैं, बड़े कम करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – बड़ों को धन्धा है न! लड़कों को पढ़ने का होता है, इसलिए

निवृत्ति बहुत मिलती है और उन्हें धन्धे के कारण (निवृत्ति नहीं मिलती)। धन्धा कितना ? (इस भाई का हाथ कट गया) तो चित्कार नहीं किया। उस समय चित्कार नहीं किया और आँख में से आँसू नहीं; ज्ञायक! बस! ऐसा बोले – होना था वह हो गया। होगा वह होगा, नहीं होगा वह नहीं होगा। आहा...हा...! होता है, वह होता है और तू न हो – ऐसा किसे कहता है। आहा...हा...!

जिस-जिस पर्याय का उत्पाद है, वह होता है, वह होगा और तू कहता है कि यह ऐसा क्यों ? क्यों भी (कैसे कहता है) ? जो है वह होता है, वह उस समय का अवसर है, वही वस्तु का उत्पाद होने का है। आहा...हा...! पहले दृष्टान्त दिया था न! सोने का दृष्टान्त नहीं दिया था! एक सोने का घड़ा था, उसे सोना चाहिए था, वह घड़ा (तुड़वाकर स्वर्ण करे) और जिसे घड़ा चाहिए था, वह घड़ा टूटता तो द्वेष करता है और जिसे टुकड़े (चाहिए थे) वह प्रसन्न होता है। आहा...हा...! चिद्विलास में दृष्टान्त दिया है न! आहा...हा...! कहो इसमें समझ में आता है या नहीं ? लड़कों! थोड़ा-थोड़ा समझ में आता है न थोड़ा-थोड़ा ? समझना तो यह है।

इसका पक्का निर्णय हो जाये, वह ज्ञाता-दृष्टा हो जाता है। आहा...हा...! क्योंकि होना हो वह होता है, उसके कारण में भी संहार और ध्रुव है, अब इसमें दूसरा क्या करेगा ? दूसरे ने आकर ऐसा किया और वैसा किया यह कहाँ है ? दूसरे ने मुझे मारा और दूसरे ने मुझे ऐसा किया, आहा...हा...! कितनी झूठी कल्पना हो जाती है ?

श्रोता – लड़के लड़कों को तो मारते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – कौन मारे ? आहा...हा...! पहले लड़के कहते कि महाराज कहते हैं कि कोई किसी का कर नहीं सकता – (ऐसा कहकर) दूसरों को मारे (फिर कहे कि) मैंने कहाँ किया है ? अरे... प्रभु! यह अँगुली ऐसे होती है, वह भी उसका उत्पाद है इसीलिए ऐसे होती है और उससे पहले की अवस्था का व्यय होकर (ऐसे) होती है। अँगुली में उत्पाद हुआ, वह ध्रुवपने के आश्रय से व्यतिरेक है। अन्वय के आश्रय से व्यतिरेक है, व्यतिरेक के बिना अन्वय नहीं होता, आहा...हा...! किसे मारे और किस पर हाथ उठाये ? आहा...हा...! ऐसी चीज है। १०० (गाथा) पूरी हुई।

गाथा - १०१

अथोत्पादादीनां द्रव्यादर्थान्तरत्वं संहरति -

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।
दव्वम्हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं।। १०१।।

उत्पादस्थितिभङ्गा विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः।
द्रव्ये हि सन्ति नियतं तस्माद्द्रव्यं भवति सर्वम्।। १०१।।

उत्पादव्ययध्रौव्याणि हि पर्यायानालम्बन्ते, ते पुनः पर्याया द्रव्यमालम्बन्ते। ततः समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं, न पुनर्द्रव्यान्तरम्। द्रव्यं हि तावत्पर्यायैरालम्ब्यते, समुदायिनः समुदायात्मकत्वात्; पादपवत्। यथा हि समुदायी पादपः स्कन्धमूलशाखासमुदायात्मकः स्कन्धमूलशाखाभिरालम्बित एव प्रतिभाति, तथा समुदायि द्रव्यं पर्यायसमुदायात्मकं पर्यायैरालम्बितमेव प्रतिभाति। पर्यायास्तूत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्ब्यन्ते, उत्पादव्ययध्रौव्याणामंशधर्मत्वात्; बीजाङ्कुरपादपत्ववत्। यथा किलांशिनः पादपस्य बीजाङ्कुरपादपत्वलक्षणास्त्रयोंऽशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति, तथांशिनो द्रव्यस्योच्छिद्यमानोत्पद्य-मानावतिष्ठमानभावलक्षणास्त्रयोंऽशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति। यदि पुनर्भङ्गोत्पादध्रौव्याणि द्रव्यस्यैवेष्यन्ते तदा समग्रमेव विप्लवते। तथा हि - भङ्गे तावत् क्षणभङ्गकटाक्षितानामेकक्षण एव सर्वद्रव्याणां संहरणाद्द्रव्यशून्यतावतारः सदुच्छेदो वा। उत्पादे तु प्रतिसमयोत्पादमुद्रितानां प्रत्येकं द्रव्याणामानन्त्य-मसदुत्पादो वा। ध्रौव्ये तु क्रमभुवां भावानामभावाद्द्रव्यस्याभावः क्षणिकत्वं वा। अत उत्पादव्ययध्रौव्यै-रालम्ब्यन्तां पर्यायाः पर्यायैश्च द्रव्यमालम्ब्यतां, येन समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं भवति।।१०१।।

अथोत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्येण सह परस्पराधाराधेयभावत्वादन्वयद्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यमेव भवतीत्युपदिशति - **उप्पादट्ठिदिभंगा** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वनिर्विकारस्वसंवेदन-ज्ञानरूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे स्वसंवेदनज्ञानविलक्षणाज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गः, तदुभया-धारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपेण स्थितिरित्युक्तलक्षणास्त्रयो भङ्गाः कर्तारः। **विज्जंते** विद्यन्ते तिष्ठन्ति। केषु। **पज्जएसु** सम्यक्त्वपूर्वकनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपर्यायेण तावदुत्पादस्तिष्ठति स्वसंवेदन-ज्ञानविलक्षणाज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्यायेण ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षण-

स्वकीयस्वकीयपर्यायेषु। **पज्जाया दव्व हि संति** ते चोक्तलक्षणज्ञानाज्ञानत-दुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्था-रूपपर्याया हि स्फुटं द्रव्यं सन्ति। **णियदं** निश्चितं प्रदेशाभेदेऽपि स्वकीयस्वकीयसंज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन। **तम्हा दव्वं हवदि सव्वं** यतो निश्चायाधाराधेयभावेन तिष्ठन्त्युत्पादादयस्तस्मात्कारणादुत्पादादित्रयं स्वसंवेदनज्ञानादिपर्यायत्रयं चान्वयद्रव्यार्थिकनयेन सर्वं द्रव्यं भवति। पूर्वोक्तोत्पादादित्रयस्य तथैव स्वसंवेदनज्ञानादिपर्यायत्रयस्य चानुगताकारेणान्वयरूपेण यदाधारभूतं तदन्वयद्रव्यं भण्यते, तद्विषयो यस्य स भवत्यन्वयद्रव्यार्थिकनयः। यथेदं ज्ञानाज्ञानपर्यायद्वये भङ्गत्रयं व्याख्यातं तथापि सर्वद्रव्यपर्यायेषु यथासंभवं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः।।१०१।।

अब, उत्पादादि का द्रव्य से अर्थान्तरत्व को नष्ट करते हैं; (अर्थात् यह सिद्ध करते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं हैं) -

उत्पाद, व्यय अरु ध्रौव्य तीनों, वर्तते पर्याय में।
पर्याय होती द्रव्य में, इससे सभी वे द्रव्य हैं॥

अन्वयार्थ : [उत्पादस्थितिभङ्गाः] उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय **[पर्यायेषु]** पर्यायों में **[विद्यन्ते]** वर्तते हैं; **[पर्यायाः]** पर्यायें **[नियतं]** नियम से **[द्रव्ये हि सन्ति]** द्रव्य में होती हैं, **[तस्मात्]** इसलिए **[सर्वं]** वह सब **[द्रव्यं भवति]** द्रव्य है।

टीका : उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलम्बन करते हैं, और वे पर्यायें द्रव्य का आलम्बन करती हैं, (अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रय से है और पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं); इसलिए यह सब एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं।

प्रथम तो द्रव्य पर्यायों के द्वारा आलम्बित है (अर्थात् पर्यायें द्रव्याश्रित हैं), क्योंकि समुदायी[१] समुदायस्वरूप होता है; वृक्ष की भाँति। जैसे, समुदायी वृक्ष स्कन्ध, मूल और शाखाओं का समुदायस्वरूप होने से स्कन्ध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित (दिखाई) देता है, इसी प्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही भासित होता है। (अर्थात् जैसे स्कन्ध, मूल शाखाएँ वृक्षाश्रित ही हैं - वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं, उसी प्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं - द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं।)

---

१. समुदायी = समुदायवान समुदाय (समूह) का बना हुआ। (द्रव्य समुदायी है क्योंकि पर्यायों के समुदायस्वरूप है।)

और पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित हैं (अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायाश्रित हैं) क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं (अंशी[1] के नहीं); बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति। जैसे अंशीवृक्ष के बीज अंकुर-वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश, व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं, उसी प्रकार अंशी-द्रव्य के, नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव, और अवस्थित रहनेवाला भाव - यह तीनों अंश व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मों के द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं। किन्तु यदि (१) भंग, (२) उत्पाद और (३) ध्रौव्य को (अंशी का न मानकर) द्रव्य का ही माना जाय तो सारा विप्लव[2] को प्राप्त होगा। यथा - (१) पहले, यदि द्रव्य का ही भंग माना जाय तो क्षण[3] भंग से लक्षित समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार हो जाने से द्रव्यशून्यता आ जायेगी, अथवा सत् का उच्छेद हो जायेगा। (२) यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाय तो समय-समय पर होनेवाले उत्पाद के द्वारा चिह्नित ऐसे द्रव्यों को प्रत्येक को अनन्तता आ जायेगी। (अर्थात् समय-समय पर होनेवाला उत्पाद जिसका चिह्न हो ऐसा प्रत्येक अनन्त द्रव्यत्व को प्राप्त हो जायेगा) अथवा असत् का उत्पाद हो जायेगा; (३) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाय तो क्रमशः होनेवाले भावों के अभाव के कारण द्रव्य का अभाव आयेगा, अथवा क्षणिकपना होगा।

इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा पर्यायें आलम्बित हों, और पर्यायों के द्वारा द्रव्य आलम्बित हो, कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य हैं।

भावार्थ - बीज, अंकुर और वृक्षत्व, यह वृक्ष के अंश हैं। बीज का नाश, अंकुर का उत्पाद और वृक्षत्व का ध्रौव्य - तीनों एक ही साथ होते हैं। इस प्रकार नाश बीज के आश्रित है, उत्पाद अंकुर के आश्रित है, और ध्रौव्य वृक्षत्व के आश्रित है; नाश, उत्पाद और ध्रौव्य बीज अंकुर और वृक्षत्व से भिन्न पदार्थरूप नहीं है। तथा बीज, अंकुर और वृक्षत्व भी वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं है। इसलिए यह सब एक वृक्ष ही हैं। इसी प्रकार नष्ट होता

१. अंशी = अंशोंवाला; अंशों का बना हुआ। (द्रव्य अंशी है।)
२. विप्लव = अन्धाधुन्धी = उथलपुथल; घोटाला; विरोध।
३. क्षण = विनाश जिनका लक्षण हो ऐसे।

हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और ध्रौव्य भाव सब द्रव्य के अंश हैं। नष्ट होते हुए भाव का नाश, उत्पन्न होते हुए भाव का उत्पाद और स्थायी भाव का ध्रौव्य एक ही साथ है। इस प्रकार नाश नष्ट होते भाव के आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होते भाव के आश्रित है और ध्रौव्य स्थायी भाव के आश्रित है। नाश, उत्पाद और ध्रौव्य उन भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। और वे भाव भी द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। इसलिए यह सब, एक द्रव्य ही हैं॥ १०१॥

प्रवचन नं. १०९ का शेष **दिनाङ्क १९ जून १९७९**

अब उत्पाद आदि का द्रव्य से अर्थान्तरत्व को नष्ट करते हैं... (अर्थात्) द्रव्य से वे उत्पाद-व्यय अलग हैं – ऐसा नहीं है। द्रव्य से उत्पाद-व्यय अलग हैं – ऐसा नहीं है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव का द्रव्य से अर्थान्तरपना, अर्थान्तर अर्थात् अन्य अर्थ; अन्य पदार्थपना नष्ट करते हैं। **(अर्थात् यह सिद्ध करते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं हैं...)** यह सब गाथा बहुत अच्छी है, हाँ! १०१ और १०२ और...

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।
दव्वम्हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं।। १०१।।

उत्पाद, व्यय अरु ध्रौव्य तीनों, वर्तते पर्याय में।
पर्याय होती द्रव्य में, इससे सभी वे द्रव्य हैं॥

ओ...हो...! जहाँ-जहाँ जो द्रव्य है, उसमें उत्पन्न पर्याय है, व्यय है और ध्रुव है। आहा...हा...! वह सब द्रव्य है। आहा...हा...! वह सब, वह द्रव्य है। उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव में दूसरा द्रव्य नहीं है। आहा...हा...! है ? उत्पाद-व्यय और ध्रुव द्रव्य से पृथक् नहीं है। आहा...हा...! **उत्पाद, व्यय अरु ध्रौव्य तीनों, वर्तते पर्याय में।** पर्याय में संहार वर्तता है। **पर्याय होती द्रव्य में, इससे सभी वे द्रव्य हैं।**

विशेष कहेंगे...!

प्रवचन नं. ११० दिनाङ्क २० जून १९७९

प्रवचनसार १०१ गाथा। **अब उत्पादादि का अर्थान्तरत्व को...** उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, द्रव्य से पृथक् नहीं हैं - यह सिद्ध करते हैं।

प्रश्न - होवे वह नष्ट होता है या नहीं होवे वह नष्ट होता है ?

समाधान - अर्थान्तरत्व को नष्ट करते हैं (अर्थात्) पृथक् है ही नहीं - ऐसा कहते हैं। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् नहीं हैं। तीन पर्याय है, इन तीन पर्यायस्वरूप एक द्रव्य है - ऐसा सिद्ध करना है। प्रमाण का द्रव्य सिद्ध करना है। निश्चयनय के द्रव्य की (अभी बात नहीं है)। और यह कहा है न ? 'तत्त्वार्थसूत्र' में 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' नहीं कहा; उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (कहा है)। ध्रौव्य अर्थात् ध्रुव का भावपना। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य वह सत् है - ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में कहा है। आहा...हा...! यहाँ 'स्थिति' शब्द भी लेते हैं परन्तु वह स्थिति का एक अंश-भाग लेते हैं। उत्पाद-व्यय की स्थिति विशेष नहीं, एक समय की है और यह कायम की स्थिति है, इस अपेक्षा से इसे (ध्रुव कहते हैं)। उत्पाद अर्थात् सृष्टि; व्यय अर्थात् भंग और ध्रौव्य अर्थात् ध्रुवपना, यह तीन होकर द्रव्य है - ऐसी बात है। यह प्रवचनसार, सर्वज्ञ भगवान ने मूल पदार्थ की व्यवस्था देखी है, उस प्रकार कहता है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, देखो! **उत्पादादि का द्रव्य से...** उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य का **द्रव्य से अर्थान्तरत्व...** अर्थात् पृथक् पदार्थपना नहीं है, इसलिए **नष्ट करते हैं...** (ऐसा कहा है) **(अर्थात् यह सिद्ध करते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य...)** देखा ? इसमें ध्रुव शब्द नहीं लिया है, ध्रौव्य (लिया है)। वहाँ तत्त्वार्थसूत्र में मूल संस्कृत में यह है - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्। ध्रौव्ययुक्तं सत्! ध्रुवयुक्तं सत् — ऐसा नहीं लिया है। उसका भावपना लेना है न ? एक अंश लेना है। **(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं है...)** आहा...हा...! भगवान आत्मा, यह द्रव्य-वस्तु है, इसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना वस्तु से पृथक् नहीं है, वह वस्तु स्वरूप ही है। वह तीन पर्याय है, इस पर्याय के आश्रय से भेद है और तीनों पर्याय, द्रव्य के आश्रय से हैं। लो, ठीक!

प्रात:काल आया था कि ज्ञान की क्रिया के आश्रय से आत्मा है। प्रात:काल यह आया था। ज्ञान की क्रिया के आश्रय से (आत्मा है), इसका अर्थ यह है कि ज्ञान की शुद्ध चैतन्य की परिणति हुई, उसके आश्रय से वह ज्ञात हुआ, इसलिए उसे इसका आधार हुआ – ऐसा कहा है। यहाँ ऐसा नहीं है, यहाँ तो वस्तुस्थिति सिद्ध करनी है। वहाँ (प्रात:काल) संवर का अधिकार था न, (इसलिए ऐसा लिया था)। आहा...हा...! शब्द का थोड़ा अन्तर लगता है परन्तु (भाव में अन्तर बहुत पड़ जाता है) आहा...हा...! यह तो अनन्त तीर्थंकरों, केवलियों ने जो स्वरूप कहा है, उस प्रकार उसे जानना। यह अन्दर आ गया है न ? जो न मानो... यह पहले आ गया है। ९८ (गाथा) ! **दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा। सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ॥** परसमय मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! ९८ गाथा, मूल गाथा! है या नहीं ? आहा...हा...! जिस प्रकार वस्तु है, यदि उस प्रकार न माने तो वह परसमय मिथ्यादृष्टि है, वहाँ ऐसा कहा है। आहा...हा...!

यहाँ तो उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, तीनों एक समय में है। आहा...हा...! उत्पाद की पर्याय का समय, भंग का समय और ध्रौव्य का समय, वह एक ही समय में तीन है। इसलिए यहाँ तीन ऐसे लेंगे। देखो! **(ऐसा सिद्ध करते हैं)** :- **उप्पादट्ठिदि** यहाँ ध्रौव्य को 'स्थिति' शब्द के अर्थ में प्रयोग किया है। **उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।** (अर्थात्) वह पर्याय के भेद हैं। आहा...हा...! तीन (भेद) हुए न ? उत्पाद – स्वसंवेदन से ज्ञात हुआ, असंवेदन का व्यय हुआ और ध्रौव्यपने का टिकना रहा। ये तीनों ही पर्यायें हैं, इनकी पर्याय से जानने में आया; और जानने में क्या आया ? (तो कहते हैं कि) द्रव्य। आहा...हा...! ऐसी बात है।

(हरिगीत) **उत्पाद अरु ध्रौव्य...** देखा ? ध्रौव्य है **और संहार वर्तते पर्याय में, पर्याय होती द्रव्य में इससे सभी वे द्रव्य हैं।** भाई! यहाँ तो मार्ग ऐसा है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा कथित तत्त्व अन्यत्र कहीं नहीं हैं, इसलिए जगत् को कठिन पड़ता है। अभ्यास के बिना (समझ में आये ऐसा नहीं है) और इस प्रकार (अर्थात्) जिस प्रकार है, उस प्रकार न माने वह तो मिथ्यादृष्टि है – ऐसा कहा है। ९८ वीं गाथा में आया था न।

उत्पाद-व्यय एक ही समय में उत्पाद-व्यय विरुद्ध भाव है और उनसे विरुद्ध भाव स्थिति-कायम रहना है। आहा...हा...! यह एक समय रहें और यह टिका रहे, तथापि टिके रहने का ध्रुवपना यहाँ एक समय में लेना है, फिर तीन का समुदाय वह द्रव्य है - (ऐसा कहेंगे) आहा...हा...! ऐसा है। अरे...! ऐसा सुनने को फुरसत नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन होने में भगवान ने जो तत्त्व कहे हैं, उस प्रकार तत्त्व को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला मानें, तब उसे उत्पाद होकर ऐसी सम्यग्दर्शन पर्याय; मिथ्यात्व हुआ वह उसका व्यय हुआ; और जो सदृश्यपना रहा - ध्रौव्यपना रहा वह ध्रुव है। इस ध्रुव का ध्रौव्यपना रहा यह, और तीनों मिलकर फिर द्रव्य है। इसका अर्थ यह कि इसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के लिये दूसरे द्रव्य की आवश्यकता नहीं है। आहा...हा...! आत्मा की धर्म की पर्याय के उत्पाद के लिये और अधर्म की पर्याय की व्यय के लिये और उस वस्तु का ध्रौव्यपना/टिकने के लिये पर की कोई अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी धर्म की विधि! यह कहते हैं।

टीका - उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य... देखा? ध्रौव्य (कहा है)! आहा...हा...! **वास्तव में पर्यायों का अवलम्बन करते हैं...** क्या कहते हैं? आहा...हा...! स्वसंवेदन उत्पन्न होना, सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होना और मिथ्यादर्शन की पर्याय का व्यय और ध्रौव्यपना ये तीनों पर्यायों का अवलम्बन करते हैं। ये तीनों पर्याय हैं-तीन भेद हैं। आहा...हा...! कुछ समझ में आया? किसे पड़ी है कि अन्दर वस्तुस्थिति क्या है? लोहे का सब निश्चित करना हो तो वहाँ सब निश्चित करता है; वकील वकालात का करता है... आहा...हा...! यह सर्वज्ञ परमात्मा (ऐसा फरमाते हैं) एक न्याय बदले तो पूरा तत्त्व विरुद्ध हो जाता है। आहा...हा...!

उत्पादरहित द्रव्य अकेला मानें तो भी मिथ्यादृष्टि हो जाता है; व्ययरहित अकेला द्रव्य मानें तो तत्त्व ऐसा नहीं है, इसलिए मिथ्यादृष्टि हो जाता है और उत्पाद-व्यय को ही मानें और ध्रुव को न मानें तो भी मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...!

प्रश्न - एक को मानें इसमें एक तृतीयांश सच्चा और दो तृतीयांश खोटा - ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

समाधान - एक-एक खोटा, सब खोटा है। ऐसा है प्रभु! क्या हो? आहा...हा...!

एक उत्पाद की पर्याय है, वह नहीं है – ऐसा मानें और अकेला ध्रुव ही है – ऐसा मानें तो वह मिथ्यादृष्टि है। अकेला ध्रुव मानें तो उत्पाद के बिना व्यय नहीं होता तो वह मिथ्यादृष्टि है, नास्ति हो गया–नष्ट हो गया। आहा...हा...! उत्पाद–व्यय दो को ही मानें और कायम स्थितिवाला ध्रौव्यपना न मानें तो भी मिथ्यादृष्टि है। यह ९८ गाथा में कह गये हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म है, बापू! मार्ग, बापू! आहा...हा...!

यह तो ध्रुव और ध्रौव्य के लिये तत्त्वार्थसूत्र देखना पड़ा। तत्त्वार्थसूत्र में यह लिया है। उत्पाद–व्यय–ध्रुवयुक्तं सत् नहीं लिया। समझ में आया? पाँचवें अध्याय में है न? (सूत्र ३०) **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** – यह मूल पाठ है। पहला यह है कि **सद्द्रव्य-लक्षणं** – द्रव्य का सत्–अस्ति वह लक्षण है – एक बात। यह सूत्र है (इनके रचयिता) उमास्वामी हैं। (तत्त्वार्थसूत्र) दशलक्षण पर्व में हमेशा पढ़ा जाता है। पढ़नेवाले को भी खबर नहीं होती और सुननेवाले को भी खबर नहीं होती, यह तो एक–एक न्याय में इतना बड़ा अन्तर है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं – २९ वाँ सूत्र है। **सद्द्रव्यलक्षणं** वह यहाँ कहेंगे। सद्द्रव्यलक्षणं। अब सत् क्या? **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्...** उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं नहीं। ध्रौव्ययुक्तं सत् (अर्थात्) उसका भाव। यह कहीं बीच में आता है, ध्रुव का ध्रौव्यपना लेना, उसका भाव लेना – यह कहीं पढ़ा है, यह तो आज देखा था। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् नहीं कहा। ध्रौव्य... ध्रौव्य...! ऐसी बात है। यह तो वीतरागमार्ग है। उन्होंने पदार्थों का स्वरूप क्या कहा है? – उस प्रकार उसे जानना चाहिए न, आहा...हा...! उसमें कुछ भी विरोध हो तो सम्पूर्ण तत्त्व का विरोध हो जाता है। आहा...हा...! फिर (३१ वाँ सूत्र है) **तद्भावाव्ययं नित्यम्** तद्भाव अव्यय–उसका नाश नहीं उसे नित्य कहते हैं, पाँचवें अध्याय में है। पाँचवें में २९ वाँ और उत्पादव्यय... ३० वाँ (सूत्र है)।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् — यह यहाँ कहते हैं। यहाँ तो विचार क्या आया? – कि तीनों को पर्याय कहा, समझ में आया? भाई! यहाँ तीनों को पर्याय कहा न? इससे विचार आया। उत्पादव्ययध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का अवलम्बन करते हैं। ये तीनों पर्याय हैं, आहा...हा...! भेद है, पूरा द्रव्य नहीं। आहा...हा...! **उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में**

पर्यायों का अवलम्बन करते हैं, और वे पर्यायें द्रव्य का आलम्बन करती हैं... आहा...हा... ! समझ में आया ? **(अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रय से हैं और पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं)...** अवलम्बन से है इसका अर्थ आश्रय किया है। **(...पर्यायों के आश्रय से हैं और पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं)...** ठीक ! सबेरे ऐसा कहा था कि पर्याय के आश्रय से द्रव्य है। **उपयोग में उपयोग है।** जाननक्रिया - जानन... जानन... जानन... श्रद्धा ऐसी जो निर्मल परिणति है, उससे ज्ञात हुआ, इसलिए उसके आधार से ज्ञात हुआ इसलिए वह आधार और आधेय है। आहा...हा... ! यहाँ कहते हैं कि द्रव्य के आश्रय से तीनों हैं। जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही - ऐसी बात है। आहा...हा... ! थोड़ा भी इसे सत्य होना चाहिए और वह परमात्मा सर्वज्ञ के प्रवचन में - दिव्यध्वनि में आया है। वह यह (बात) है। आहा...हा... ! दिव्यध्वनि में तो परमात्मा को भूला दिया है ऐसी शैली है ! ऐसी सीधी बात है। मानों परमात्मा ही यह कहते हों। आहा...हा... ! जगत् को सत्य की प्रसिद्धि करते हैं।

प्रभु, एक बात सुन ! प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य है, वे तीनों पर्यायों के आश्रय है। पर्यायों का अवलम्बन करते हैं, अर्थात् पर्यायों के आश्रय से हैं। ध्रौव्य भी पर्याय के आश्रय से हैं। उत्पाद-व्यय वह तो पर्यायों के आश्रय से है, यह तो ठीक परन्तु ध्रौव्यपना भी एक भाग पड़ा, वह भी पर्याय के आश्रय से है। आहा...हा... ! समझ में आया ? **और पर्यायें...** यह ध्रौव्य जो पर्याय ली थी; उत्पाद-व्यय तो पर्याय है ही परन्तु भेद जो ध्रौव्य लिया वे पर्यायें, द्रव्य के आश्रय से हैं। आहा...हा... ! इन तीनपने का एकरूप द्रव्य, वह द्रव्य के आश्रय से है। आहा...हा... ! ध्रौव्यपना भी द्रव्य के आश्रय से है। उत्पाद-व्ययपना भी द्रव्य के आश्रय से है। समझ में आता है ? यह तो जब अधिकार चलता हो, तब विस्तार आयेगा न ? आहा...हा... !

(पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं); इसलिए यह सब एक ही द्रव्य है... यह उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, पर्याय / भेद के आश्रय से है - पर्याय के आश्रय से है (और) पर्याय, द्रव्य के आश्रय से है। **यह सब एक ही द्रव्य है...** तीनों होकर पूरा एक ही द्रव्य है। यहाँ प्रमाण का (प्रमाण ज्ञान का विषयभूत) द्रव्य सिद्ध करना है अथवा वस्तु पूरी है,

उसे सिद्ध करना है। निश्चयनय का द्रव्य तो अकेला ध्रुव! आहा...हा...! निश्चयनय का द्रव्य वह तो भूतार्थ है, भूतार्थ! वह तो भूतार्थ ध्रुव वह एक नय का विषय है और यहाँ तो ध्रौव्य और उत्पाद-व्यय तीन होकर पर्याय है और वह पर्याय, द्रव्य के आश्रय से है। इसलिए यहाँ प्रमाण का विषय सिद्ध करना है। आहा...हा...! सूक्ष्म लगेगा परन्तु अब मार्ग तो होवे उतना आये, दूसरा क्या हो? चलती प्रथा से दूसरा लगता है। आहा...हा...!

यहाँ तो पर्यायें - विकारी या अविकारी सब लेना। पर्यायें विकारी या अविकारी उत्पाद-व्ययवाली और ध्रौव्य तो शुद्ध है परन्तु यहाँ ये तीनों होकर द्रव्य हैं। सबेरे तो ऐसा कहा कि निर्मल पर्याय के आश्रय से द्रव्य हैं। यहाँ तो विकारी और अविकारी पर्याय और ध्रौव्य ये तीनों पर्याय के आश्रय से हैं और तीनों पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं। ये तीनों द्रव्य से अलग नहीं हैं। आहा...हा...!

प्रश्न - सबेरे ऐसा और दोपहर में ऐसा?

समाधान - वह किस अपेक्षा से है - ऐसा जाने बिना (समाधान नहीं होगा) एक भाई कहते थे, सबेरे में कुछ आता है और (दोपहर में) कुछ (आता है)! (बुद्धि साधारण परन्तु पैसा बहुत हो गया) पैसा मिलना वह कोई बुद्धि के कारण से नहीं है कि बहुत बुद्धि और व्यवसाय करना आता है, इसलिए पैसा अधिक (कमाते) हों - ऐसा होगा? यह तो दृष्टान्त है, वरना तो बहुत सों को ऐसा है न? आहा...हा...!

पर्यायें, द्रव्य के आश्रय से हैं, पर्याय की सिद्धि द्रव्य के आश्रय से है। आहा...हा...! पर्याय का एक भी अंश प्रगट उत्पाद (रूप) है, उसे न माने और अकेला द्रव्य माने तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। अकेला व्यय होकर द्रव्य को माने और उस काल में उत्पाद हुआ है और ध्रौव्य है, उसे न माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। उत्पाद-व्यय को अकेले को माने- बौद्ध! बौद्ध अकेले उत्पाद-व्यय को माने तो वह मिथ्यादृष्टि है और वेदान्ती अकेले ध्रुव को मानते हैं, ध्रुव अकेला ध्रुव - उत्पाद-व्यय नहीं। यह (माननेवाला) भी मिथ्यादृष्टि। आहा...हा...!

यह सब एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं।... (अन्य द्रव्य नहीं।) उत्पाद का द्रव्य अन्य, व्यय का अन्य और ध्रौव्य का अन्य - ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आता है? भाषा

तो सादी है, आहा...हा...! एक-एक गाथा में कितना भरा है! गम्भीरता का पार नहीं! अरे...रे...! स्व-संवेदनज्ञान की उत्पत्ति, वह पर्याय है और असंवेदन, मिथ्यात्व की पर्याय है, वह भी पर्याय है, उसका व्यय है, आहा...हा...! अस्तिरूप तो एक ही पर्याय होती है और व्यय की अपेक्षा से नास्ति को भी पर्याय गिना। आहा...हा...! प्रत्येक द्रव्य को पर्याय अपेक्षा से अस्ति - है पने तो एक ही उत्पाद होता है, व्यय की अपेक्षा से तो पर्याय का अभाव कर डाला और टिकता तत्त्व है, वह भी भावरूप है, उसे पर्याय कहा। ये तीन पर्यायें तीनों पर्याय के आश्रय से हैं। आहा...हा...! और तीनों पर्यायें, द्रव्य के आश्रय से हैं। आहा...हा...! उसमें एक भी पर्याय को न मानें तो द्रव्य के आश्रय से तीन सिद्ध नहीं होते, अर्थात् द्रव्य ही सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है। (अनजान व्यक्ति को तो ऐसा लगता है कि) ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? इसकी अपेक्षा तो दया पालना (इत्यादि सरल था) परन्तु बापू! प्रभु जैसी वस्तु है, वैसा भाव में भासन न हो तो वहाँ स्थिर किस प्रकार हो सकेगा? आहा...हा...! बात समझ में आती है? जिस प्रकार से वस्तु की मर्यादा है, उस प्रकार से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आदि ज्ञान में भासित न हो तो वह पर्याय, ध्रुव में किस प्रकार स्थिर होगी? आहा...हा...! एक ओर पर्याय उत्पन्न है, वह ध्रुव में स्थिर हो अर्थात् उसके सन्मुख हो, आहा...हा...! तथापि वह पर्याय पर्यायरूप से रहकर उत्पन्न हुई है; पर्याय ध्रुव में मिल नहीं गयी है क्योंकि तीन प्रकार सिद्ध करना है न? पर्याय के तीन प्रकार कहना है, फिर पर्याय, द्रव्य के आश्रय से है, वह द्रव्य फिर लिया है, दो बात ली हैं। है?

प्रथम तो... आहा...हा...! **द्रव्य, पर्यायों के द्वारा आलम्बित है...** तीन - उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य। फिर एक बात नहीं। **(अर्थात् पर्यायें द्रव्याश्रित हैं...)** आहा...हा...! यह उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, पर्यायों के आश्रित हैं और पर्यायें, द्रव्य के आश्रित हैं; इसीलिए यह समस्त ही (अर्थात्) तीनों होकर एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं। उत्पाद नया लगता है, इसलिए कोई अन्य कोई नया पदार्थ एकदम सम्यग्दर्शन में, चारित्र में, केवलज्ञान में झलक उठे, इसलिए मानो कि यह कोई अन्य द्रव्य है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! एकदम मिथ्यात्व का व्यय हो जाये, इसलिए मानो यह दूसरा कोई द्रव्य

होगा ? और उत्पाद-व्यय में एकदम टिकता तत्त्व नजर पड़े... आहा...हा... ! इसलिए मानो कि वह अलग ध्रुव होगा ? उत्पाद-व्यय से अलग द्रव्य होगा ? (- ऐसा लगता है परन्तु ऐसा नहीं है) आहा...हा... ! **सब एक ही द्रव्य है... एक ही...** (कहा) है न ? (पहले में) भी ऐसा था। **उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलम्बन करते हैं...** इसमें भी था न ? इसमें भी **वास्तव में पर्यायों का आलम्बन करते हैं और वे पर्यायें द्रव्य का आलम्बन करती हैं... इसलिए यह सब एक ही द्रव्य है...** आहा...हा... !

भगवान आत्मा ! उसकी स्व-संवेदन पर्याय से उत्पन्न हुआ... आहा...हा... ! जो उसकी जाति है - सम्यक्ज्ञान, दर्शन, आनन्द के वेदन से उत्पन्न हुआ। उत्पाद रहा होने पर भी ध्रुव, ध्रुवरूप से रहकर (हुआ है) आहा...हा... ! और वह उत्पन्न हुआ, तथापि पूर्व की पर्यायें जो विकारी थी, मिथ्यात्व की थी, वह अस्तिरूप थी। वह अभी फिर नास्ति हुई, आहा...हा... ! पूर्व में जब अस्ति थी, (तब वे अन्धकारस्वरूप थी)। आहा...हा... ! एकदम अन्धकार का नाश हो गया ! प्रकाश, जलहल ज्योति चैतन्यमूर्ति प्रभु स्व-संवेदन से प्रकाश में आया। आहा...हा... ! विकार (और) मिथ्यात्व की पर्याय से अभावरूप हुआ, तथापि वे दोनों और भाव्य - ध्रौव्य ये तीनों होकर पर्याय कही गयी है। आहा...हा... ! इस पर्याय के आश्रय से तीनों कहे हैं, वहाँ ध्रौव्य को भी पर्याय के आश्रित कहा है - भेद है न, इसलिए ऐसा लिया है। आहा...हा... !

प्रश्न - उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य एक पर्याय के तीन अंश हैं ?

समाधान - एक समय में तीनों पर्यायें हैं, ये तीनों पर्यायें हैं एक समय में ! आहा...हा... ! मूल यह वस्तु चलती नहीं है, इसलिए लोगों को कठिन लगती है; वरना वस्तु की स्थिति को सन्तों ने तो बहुत सरल कर दिया है। आहा...हा... !

दूसरा पैराग्राफ - **प्रथम तो द्रव्य, पर्यायों के द्वारा आलम्बित है (अर्थात् पर्यायें द्रव्याश्रित हैं)...** पर्यायें द्रव्य के आश्रित हैं। सबेरे कहा कि पर्याय के आश्रित द्रव्य है।

श्रोता - आश्रय नहीं कहा था आधार कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री - आश्रय कहो या आधार कहो - (सब एक ही है)। आधार

कहो या द्रव्य को आधेय कहो। पर्याय को आधार और द्रव्य को आधेय (कहो) - यह आया नहीं था? क्या अपेक्षा है? (यह समझना चाहिए।)

प्रभु! पूरी वस्तु पड़ी है, उसका जहाँ पर्याय में भान हुआ; पर्याय में भान होता है न? द्रव्य तो ध्रुव है, भान पर्याय में होता है, तब उसे पूर्व की अवस्था का तो व्यय हो जाता है। अन्धकार था कुछ खबर नहीं थी। जिस वस्तु की पर्याय में कुछ खबर नहीं थी, उसका व्यय होकर उत्पाद होकर, एकदम खबर पड़ जाती है कि यह द्रव्य भगवान है! आहा...हा...! स्थानकवासी में ऐसा किसी दिन सुना था? आहा...हा...! दिगम्बर अर्थात् सन्तों का अमृत है! अमृत का घट! आहा...हा...! जरा शान्ति से धीमे से समझने की बात है, बापू! अनन्त काल का अनजाना मार्ग है, उसे जाना हुआ करना, एक क्षण में जाना हुआ करना! अनन्त काल का अनजाना एक क्षण में जाना हुआ करना! क्योंकि एक क्षण में व्यय होकर उसे जानपने की पर्याय उत्पन्न होती है। आहा...हा...! आहा...हा...! उपयोग में भले ही असंख्य समय में आवे परन्तु काम यहाँ एक समय का होता है - ऐसा कहते हैं। समयान्तर में एकदम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की पर्याय प्रगट हो जाती है। आहा...हा...! ऐसी उसकी सामर्थ्य है!

इसमें थोड़ा समय लेकर निवृत्ति लेकर इसके समस्त पहलुओं का निर्णय करना चाहिए। भाई! ऐसा समय कब मिलेगा? अनन्त काल के... अर...र...! नरक और निगोद के भव, बापू! तुम नाम भले ही कहते हो परन्तु उसके भाव का जरा विचार करो न... नरक और तिर्यंच और...!

प्रश्न - पूर्व में कुछ धर्म किया होगा, इससे रुपये मिले हैं न?

समाधान - धूल में भी रुपये नहीं। 'रुपये मुझे मिले' यही मिथ्यात्वभाव है। परद्रव्य, स्वद्रव्य को मिलेगा? स्वद्रव्य का वह परद्रव्य है? परद्रव्य तो उसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित उसका स्वद्रव्य है, उसके स्थान पर वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला द्रव्य है, वह मेरा है, (यह मान्यता मिथ्यात्व है)। आहा...हा...! गजब बात है बापू!

प्रश्न - पुण्य पानी में गया?

समाधान - पानी में नहीं गया, मिथ्यात्व में गया है। झूठे प्रवाह में गया नाथ! तेरा

सच्चा प्रवाह चाहिए। आहा...हा... ! प्रवाह आया प्रात: में ! वह प्रकाश होने पर अन्धकार का नाश हो जाना चाहिए – ऐसा प्रवाह आया है ! आहा...हा.. !

(यहाँ क्या कहते हैं ?) **प्रथम तो द्रव्य पर्यायों के द्वारा आलम्बित है...** पर्यायें (अर्थात्) उत्पाद–व्यय और ध्रौव्य, द्रव्य के आश्रित हैं। **क्योंकि समुदायी समुदायस्वरूप होता है...** समुदायी = समुदायवान समुदाय (समूह) का बना हुआ। (द्रव्य समुदायी है क्योंकि पर्यायों के समुदायस्वरूप है।) द्रव्य समुदायी है और वह पर्यायों के समुदाय – स्वरूप है। आहा...हा... ! ऐसी भाषा कभी (सुनी नहीं हो) ! दृष्टान्त देकर सिद्ध करेंगे। समुदायी समुदायस्वरूप है, अर्थात् ? समुदायवाला समूह का बना हुआ द्रव्य समुदायी है, क्योंकि वह पर्यायों के समुदायस्वरूप है। समुदायी द्रव्य है और पर्यायें उसका समुदाय है। द्रव्य वह समुदायी है और पर्याय समुदायस्वरूप है। आहा...हा... !

वृक्ष की भाँति।... अब दृष्टान्त देते हैं। बहीखातों के कारण इसे देखने का कभी अवकाश नहीं लिया है। आहा...हा... ! तीन लोक के नाथ जो वाणी छोड़ गये हैं... आहा...हा... ! उस वाणी में क्या है ? कैसा है ? क्यों है ? उसे देखने की फुरसत नहीं है।

श्रोता – वाणी में तो धर्म करने लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – परन्तु धर्म कैसे होगा ? धर्म की पर्याय है न ? धर्म पर्याय है या दूसरा कुछ है ? धर्म जो नहीं हुई (ऐसी) पर्याय है न ? नई होती है इसलिए पर्याय है, यहाँ तो अभी ध्रौव्य को भी पर्याय का भेद कहा। फिर (नहीं थी) और हुई वह तो पर्याय है। धर्म कोई पर्याय है। इस धर्म की पर्याय का उत्पाद होवे, तब अधर्म का व्यय होता है, तब वहाँ ध्रौव्यपना होता है – यह तीनों पर्याय का आलम्बन करते हैं। आहा...हा... ! धर्म की पर्याय, पर्याय को आलम्बित है। धर्म की पर्याय, धर्म की पर्याय के आश्रित है और वह पर्याय, तीनों होकर द्रव्य के आश्रित है। अब दृष्टान्त देते हैं। आहा...हा... !

वृक्ष की भाँति। जैसे समुदायी वृक्ष... पूरा वृक्ष है, वह समुदायी है। आहा...हा... ! **स्कन्ध...** उसका स्कन्ध... स्कन्ध... ! **मूल और शाखाओं का समुदायस्वरूप होने से...** ये सब समुदायस्वरूप हैं। 'समुदायस्वरूप' (कहा है) देखा ? वह समुदायी–वृक्ष समुदायी है, उसके स्कन्ध आदि समुदायस्वरूप हैं। **स्कन्ध, मूल और शाखाओं से**

आलम्बित ही भासित (दिखाई) देता है... उस वृक्ष की जो पर्याय है, वह उसके भेद से भासित होती है, आहा...हा...! वृक्ष तो समुदायस्वरूप है और यह सब समुदाय है, और वह समुदाय से-शाखाओं से आलम्बित ही है। अपनी पर्याय से आलम्बित है - (ऐसा) **(दिखाई देता है) उसी प्रकार....** यह दृष्टान्त हुआ।

वृक्ष समुदायी है - ऐसा कहा न ? वृक्ष समुदायी है। समुदाय ! यह नहीं कहते ? तुम कौन से समुदायवाले हो ? वह समुदायी है, उसके मनुष्य कितने ? - यह समुदाय है। तुम कौन से समुदाय के हो - ऐसा नहीं कहते ? दरिया-परिया का समुदाय, अमुक का समुदाय, किस समुदाय के हो ? (ऐसा पूछे तो कहते हैं) हम 'बोटाद' सम्प्रदाय के हैं। इसी प्रकार यहाँ समुदायी, आहा...हा...! समुदायी अर्थात् समुदायवाला, समुदाय का समूह का बना हुआ। द्रव्य समुदायी है क्योंकि पर्याय के समुदायस्वरूप है आहा...हा...! ऐसी भाषा भी नहीं सुनी होगी। लो, इस प्रकार वृक्ष समुदायी है और उसके स्कन्ध मूल और शाखायें, वे समुदायस्वरूप हैं। वृक्ष समुदायी है और यह स्कन्ध आदि इसके समुदायस्वरूप हैं। **स्कन्ध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित (दिखाई) देता है...** समुदायी का समुदाय वह अपने स्कन्ध मूल और शाखाओं से आलम्बित है। वृक्ष के जो तीन (भेद) कहे... कहा न ? स्कन्ध, मूल और शाखा - इन तीनों **स्कन्ध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही...** है। ये तीन वृक्ष से आलम्बित नहीं हैं। समझ में आया ? समुदायी, समुदायस्वरूप है। जो समुदायस्वरूप है, इन तीन के आलम्बित है। जैसे समुदायी वृक्ष कहा ऐसे समुदायी द्रव्य।

इसी प्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से... वह द्रव्य पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से, **पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही भासित होता है...** आहा...हा...! कोरी सलेट होवे तो उसे समझना सरल पड़ता है, आग्रह न हो, उसे (सरल पड़ता है)। आग्रह पकड़ा हुआ हो, उसे कठिन पड़ता है। आग्रह पकड़ रखा हो, उसे (कठिन पड़ता है) आहा...हा...! समुदायी उसके समुदायस्वरूप है। वृक्ष समुदायी है, उसके मूल, स्कन्ध, शाखा उसके समुदायस्वरूप है, उस समुदायस्वरूप से पर्याय के आश्रित है। है न ? **स्कन्ध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित होता है...**

वृक्ष से नहीं। आहा...हा... ! वृक्ष का मूल स्कन्ध और शाखा, वह मूल, स्कन्ध और शाखाओं से भी आलम्बित है, वृक्ष से नहीं। आ...हा... !

इसी प्रकार समुदायी द्रव्य... यह भगवान आत्मा समुदायी द्रव्य, **पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही भासित होता है...** आहा...हा... ! **समुदायी द्रव्य...** समुदायी अर्थात् पर्यायों के समुदायस्वरूप। समुदायी द्रव्य, उसके पर्यायों के समुदायस्वरूप **होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही भासित होता है।...** वे पर्यायें, समुदायी जो द्रव्य, उसकी पर्यायों का समुदाय है, वह पर्यायों द्वारा आलम्बित भासित होता है... आहा...हा... ! **(अर्थात् जैसे स्कन्ध, मूल और शाखायें वृक्षाश्रित ही है - वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं; उसी प्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं)...** यह दूसरा बोल लिया है। पहले (ऐसा कहा कि) ये तीनों पर्यायें, पर्यायाश्रित है, अब (ऐसा कहते हैं कि) ये तीनों पर्यायें, द्रव्याश्रित हैं। आहा...हा... ! हैं न सामने अन्दर ? जरा सूक्ष्म पड़े परन्तु इसे समझना पड़ेगा या नहीं ? अन्धी दौड़ से समकित नहीं होता - ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! समझे बिना कहीं समकित (नहीं होता और) समकित के बिना सब व्यर्थ हैं - यह सब व्रत, तप, भक्ति, पूजा, और दान एक के बिना की बिन्दियाँ हैं। चार गतियों में भटक कर मरेगा आहा...हा... ! यह चाहे जितने उपवास करे, व्रत पाले, भक्ति करे, दान करे, मन्दिर बनबावे, प्रौषध-प्रतिक्रमण करे, पच्चीस-पचास-दौ-सौ उपवास करे और फिर कुछ प्रभावना दे, एक-एक दो-दो रुपये दे, इस क्रियाकाण्ड में-राग में सब मर जानेवाले हैं। उसमें धर्म मानकर राग करते हैं, वे तो मिथ्यात्व का सेवन करते हैं। अर...र... ! ऐसी बात है !

यहाँ कहते हैं कि वृक्ष समुदायी है। मूल, स्कन्ध और शाखा समुदायस्वरूप है। इसी प्रकार आत्मा, परमाणु कोई भी द्रव्य वह द्रव्य है (अर्थात् कि) समुदायी है और उसकी तीन पर्यायें जो हैं, वे समुदायस्वरूप हैं। ध्रौव्य, व्यय और उत्पाद ये समुदायी के समुदायस्वरूप हैं, समुदायी का समुदायस्वरूप है। आहा...हा... ! इसमें से एक भी पर्याय को निकाल दें, समुदायस्वरूप में से एक को निकाल दें तो सम्पूर्ण समुदायी सिद्ध नहीं होता। आहा...हा... ! इसमें कहीं पण्डिताई का काम नहीं है, इसमें तो रुचि

और पोषण और वस्तु क्या है? – इसकी (जिज्ञासा की) आवश्यकता है, यहाँ पण्डिताई का कुछ काम नहीं है।

श्रोता – यह पुस्तक में नहीं है, आप समझाते हो, इसलिए समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – इसमें सब लिखा है, इसका तो अर्थ होता है।

समुदायी – वृक्ष; समुदायस्वरूप – शाखा, मूल और स्कन्ध! स्कन्ध, मूल और शाखा, आहा...हा...! यह समुदायस्वरूप है, समुदायी नहीं; तीन होकर समुदाय है। इसी प्रकार वस्तु आत्मा है, वह उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य तीन पर्यायों के समुदायस्वरूप है, समुदायी नहीं, समुदायी तो द्रव्य है। आहा...हा...!

द्रव्य, पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही भासित होता है।... पर्यायों, हाँ! **(जैसे स्कन्ध, मूल और शाखायें वृक्षाश्रित ही हैं** – यह दूसरा बोल आया **(वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं; इसी प्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं – द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं)...** अकेला Logic! अकेला न्याय भरा है! आहा...हा...! वकालात के कोर्ट के कानून लिखें हो तद्नुसार (वकालात करते हैं)। सरकार ने किया हो तद्नुसार किया करते हैं।

श्रोता – उसमें भी बुद्धि लगानी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री – उसमें सब अज्ञान लगाना पड़ता है।

आहा...हा...! कितनी बात सिद्ध करते हैं! उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, समुदायस्वरूप है और तीन का एकपना-द्रव्य, वह समुदायी है। समुदायी कहने पर पूरा समुदाय है, यह पूरा समुदाय है (ऐसा कहते हैं)। अब इस समुदाय के व्यक्ति कितने हैं? यह समुदायस्वरूप है, आहा...हा...! इसी प्रकार वृक्ष है, वह समुदायी है और स्कन्ध, मूल और शाखायें समुदायस्वरूप है। इसी प्रकार द्रव्य में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य है, वह पर्यायस्वरूप है, वह समुदायस्वरूप है, समुदायस्वरूप है और तीन का एकरूप वह समुदायी है, आहा...हा...! पाठशाला में पढ़े हों वहाँ ऐसा नहीं आया होगा, उपाश्रय में पढ़ने जाये तो आया नहीं होगा, मन्दिर में नहीं आया होगा। आहा...हा...!

(द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं है)... इसलिए द्रव्यस्वरूप है, उस समुदाय के समुदायस्वरूप है। क्या कहा ? द्रव्य है, वह समुदायी है, और उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य उसके समुदायस्वरूप हैं। समुदाय नहीं परन्तु समुदायस्वरूप हैं, आहा...हा... ! जैसे वृक्ष हैं, उसके मूल स्कन्ध और शाखा हैं, वह उसकी पर्यायें हैं। वह पर्याय-भेद है, वह समुदायस्वरूप है, वह समुदायस्वरूप है, वह समुदायी (अर्थात्) एक-एक नहीं हैं, वे तीनों समुदायस्वरूप हैं, वे तीनों होकर एक समुदायी हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसा उपदेश ! उपाश्रय में जाये तो व्रत करो, तप करो, दया करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो (– ऐसा कहते हैं) और मन्दिरमार्गियों में जाओ तो यात्रा करो, और भक्ति करो (– ऐसा कहते हैं।) आहा...हा... !

प्रश्न – यह सब समझने से लाभ क्या ?

समाधान – द्रव्य पर दृष्टि करना यह लाभ है। पर्याय है, वह समुदायस्वरूप है और समुदायस्वरूप का द्रव्य है, वह समुदायी है; इसलिए तीन के भेद से लक्ष्य छुड़ाकर समुदायी पर दृष्टि करना। आहा...हा... ! उसके लिए यह कहते हैं। जैसा उसका स्वरूप है, वैसा जानकर द्रव्य है, वह समुदायी है (उसकी दृष्टि करना।) जैसे यह पूरा समुदाय होता है न ? सम्प्रदाय ! और उसके जो व्यक्ति आदि हैं, वे समुदायस्वरूप हैं, परन्तु इसे जानने का हेतु क्या ? कि सम्पूर्ण समुदाय कौन ? कि यह स्थानकवासी का सम्प्रदाय है, यह मन्दिरमार्गियों का सम्प्रदाय है। इसी प्रकार आत्मा में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य समुदाय-स्वरूप है और अन्दर आत्मा समुदायी है, वह समुदायस्वरूप द्रव्य में है, वह समुदायस्वरूप उस द्रव्य का है। आहा...हा... ! मूल, स्कन्ध और शाखा वृक्ष के हैं (उसी प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) वे पर्याय के हैं और वे पर्यायें द्रव्य के (आश्रित) हैं। आहा...हा... !

और पर्यायें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित है... तीसरा पैराग्राफ – **पर्यायें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य...** (ध्रौव्य) लिया, देखा ? ध्रौव्य ! ध्रुव नहीं। ध्रुव का ध्रौव्यपना। आहा...हा... ! **पर्यायें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित हैं (अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, पर्यायाश्रित हैं) क्योंकि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं...** आहा...हा... ! तीन हैं, यह अंशों के धर्म हैं; सम्पूर्ण अंशी द्रव्य का यह धर्म नहीं है।

एक-एक पूरे इस अंशी के धर्म नहीं हैं। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य के द्वारा पर्यायें आलम्बित हैं। पर्याय! **उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं, (अंशी के धर्म नहीं)...** अंशी = अंशोंवाला, अंशों का बना हुआ (द्रव्य अंशी है)। देखा, सम्पूर्ण वस्तु है, वह अंशी है और यह तीनों उसके अंश हैं। तीन अंश में एक-एक में पूरा द्रव्य है - ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। ऐसा सुनकर, कहते हैं कि करना क्या? करना यह!

समुदायस्वरूप वह कहीं समुदायी - वस्तु नहीं है। आहा...हा...! इसलिए उसका लक्ष्य छोड़कर और समुदायस्वरूप का समुदायी जो है, वहाँ उसकी दृष्टि करना। आहा...हा...! यह ज्ञानप्रधान कथन है। कुछ समझ में आया? **(उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पर्यायाश्रित है) क्योंकि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं...** यह तीनों अंश हैं, तीनों अंशी नहीं हैं, अंशी के धर्म नहीं हैं, द्रव्य का धर्म ध्रौव्य, द्रव्य का धर्म उत्पाद और द्रव्य का धर्म व्यय ऐसा नहीं है। आहा...हा...! यह तो निवृत्ति लेकर पीछे लगे तो समझ में आये ऐसा है। अभी तो यह चलता नहीं है, अभी तो सब उलटा चलता है, इसलिए यह समझने के लिये इसे निवृत्ति लेनी चाहिए, भाई! आहा...हा...! अरे...! कहाँ जाना है? बापू! चौरासी के अवतार! नरक और निगोद, चींटी और कौआ! वास्तविक तत्त्व की दृष्टि नहीं हो तो फिर इसे ऐसे अवतार होते हैं। आहा...हा...! सब हार जायेगा। इसलिए हार न जाना हो और सत् सिद्ध करना हो तो इसे किस प्रकार समझना पड़ेगा? आहा...हा...!

बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति... क्या कहा? बीज, अंकुर और वृक्षत्व, हाँ! वृक्ष नहीं, वृक्षत्व कहा है न? पहले में वृक्ष कहा था और यहाँ वृक्षपना (कहा है)। आहा...हा...! **बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति। जैसे, अंशी वृक्ष के बीज, अंकुर, वृक्षत्वस्वरूप...** देखा, वृक्षत्वस्वरूप यह भी अंश है। जैसे ध्रौव्य है, वह भी एक अंश है; इसी प्रकार **बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति...** आहा...हा...! बीज का व्यय, अंकुर की उत्पत्ति और वृक्षत्वपना - भावपना, रहना परन्तु तीनों अंश हैं। **जैसे, अंशी वृक्ष के बीज, अंकुर, वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं...** यह तीनों ही एक साथ भासित होते हैं।

उसी प्रकार... (अब) द्रव्य की बात (विशेष कहेंगे)।

प्रवचन नं. १११ दिनाङ्क २१ जून १९७९

(प्रवनसार) १०१ (गाथा का) तीसरा पैराग्राफ है। **पर्यायें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित हैं...** तीनों को पर्याय कहा है। अंश है न? ध्रौव्य भी अंश है। **उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्वारा आलम्बित है... (अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पर्यायाश्रित हैं)...** द्रव्याश्रित नहीं; पर्याय है, वह पर्यायाश्रित है, फिर पर्याय द्रव्याश्रित है - (ऐसा कहेंगे) परन्तु पहली बात पर्याय के आश्रित (कही है)। सूक्ष्म है बापू! बाहर से भक्ति करो, पूजा करो, दान करो... हो गया। अनन्त बार किया और परिभ्रमण करके मरा। १०१ गाथा में वस्तु इतनी अधिक स्वतन्त्र है, वैसा प्रसिद्ध करते हैं।

इस आत्मा में उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य है, यह तीनों पर्यायें **उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्वारा आलम्बित है...** तीनों पर्यायें उसके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्वारा आलम्बित हैं। आहा...हा...! उसके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य दूसरे के आलम्बन से होते हैं, आलम्बन लेना पड़ता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! आत्मा के अथवा परमाणु के जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य हैं, वे पर्यायें अपने उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य के आलम्बित-आश्रित है; पर के आश्रित नहीं। आहा...हा...! पहले तो द्रव्य के आश्रित नहीं हैं; पर्याय, पर्याय के आश्रित है। आहा...हा...! फिर सिद्ध किया - उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं। हैं न?

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य - अवस्था उत्पन्न होती है, पूर्व की अवस्था का व्यय होता है और सृदश्यपने स्थिति टिकती है, यह सब अंशों के धर्म हैं, तीनों अंश हैं - उत्पाद अंश है, व्यय अंश है, और ध्रौव्य अंश है। आहा...हा...! सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति है, वह उत्पाद है; मिथ्यात्व का व्यय है, वह व्यय है और ध्रौव्यपना जो है - कायम रहनेवाला उसका स्वभाव-ध्रुव यह तीनों अपने-अपने अवलम्बन से है, पर्याय के अवलम्बन से है। अभी यहाँ पर्याय की (बात की है)। ये पर्यायें तीनों के आलम्बित है। ये पर्यायें दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करतीं, अवलम्बित नहीं करतीं, अवलम्बन नहीं लेतीं - ऐसा है। बनियों को व्यापार के कारण ऐसी बात समझने की फुरसत नहीं मिलती। क्या होगा (कौन जाने)? जय भगवान! भक्ति-पूजा करके और मरकर जाओ चार गति में भटकने।

आहा...हा... ! बापू! तत्त्व ऐसा है, भाई! उसमें यह सब गाथाएँ तो ऐसी हैं। १००, १०१, १०२ बहुत उत्कृष्ट गाथाएँ हैं। आहा...हा... !

क्योंकि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं (अंशी के धर्म नहीं)... अंशी = अंशोंवाला, अंशों का बना हुआ, (द्रव्य अंशी है) और यह तीन हैं, वे अंश हैं। आहा...हा... ! परन्तु वे द्रव्य के अंश हैं। ये तीनों अंश, अंश के हैं (ऐसा कहा) परन्तु ये अंश, अंशी के हैं, आहा...हा... ! ये दूसरे द्रव्य के कारण उत्पाद-व्यय होता है - ऐसी किसी द्रव्य की स्थिति नहीं है। आहा...हा... ! यह फिर आयेगा।

बीज, अंकुर, वृक्षत्व की भाँति... बीज व्यय है, अंकुर उत्पन्न है और वृक्षत्व है वह ध्रौव्य है। वृक्षत्व, हाँ; वृक्ष नहीं। वृक्षत्वपना, वृक्ष नहीं। वृक्ष पहले आ गया है। वृक्ष स्कन्ध, मूल और शाखाओं का समुदायस्वरूप है, यहाँ तो वृक्षत्वपना लेना है। अंकुर की उत्पत्ति, बीज का व्यय और वृक्षत्व का ध्रौव्यपना। वृक्षत्व, हाँ वृक्षपना। **जैसे अंशी वृक्ष के...** अंशी वह वृक्ष है, उसके **बीज, अंकुर, वृक्षत्व स्वरूप तीन अंश व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यस्वरूप...** आहा...हा... ! **निज धर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं...** आहा...हा... ! इस पंक्ति में सब है, संस्कृत (टीका में) यह है - '**भङ्गोत्पादध्रौव्य-लक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः**' (अर्थात्) अपने धर्म को स्वयं अवलम्बता है। आहा...हा... ! क्या कहते हैं ? सूक्ष्म बात है, बापू!

उत्पाद है - समकित का उत्पाद है, केवलज्ञान का उत्पाद है; अरे... ! मिथ्यात्व का उत्पाद है, वह उत्पाद स्वयं के अवलम्बन से है। दर्शनमोह का उदय है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्व होता है - (ऐसा नहीं है) और समकित की पर्याय का उत्पाद होता है, वह दर्शनमोह का क्षयोपशम है, इसलिए उत्पन्न होता है - ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! ज्ञानगुण की हीन पर्याय है, उसका व्यय होकर अधिक पर्याय हुई; उन (दोनों का) समय तो एक ही है और कायम ध्रुवपना है। ये तीनों अपने-अपने अवलम्बन से रहते हैं। रहा हुआ, ठहरा हुआ, और गया हुआ। रहा हुआ-उत्पाद; ठहरा हुआ-ध्रुव; और व्यय-गया हुआ। आहा...हा... ! ऐसा कभी बाप-दादाओं ने कहीं सुना था ? आहा...हा... ! ऐसी बात... बापू! अन्दर थी, वह आयी। आहा...हा... !

कहते हैं कि **तीनों अंश व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यस्वरूप...** तीनों अंश; भंग अर्थात् व्यय; उत्पाद (अर्थात्) उत्पन्न होना और ध्रौव्यपना **निजधर्मों के द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं...** आहा...हा... ! निजधर्मों द्वारा (अर्थात्) तीनों स्वयं निजधर्म द्वारा आहा...हा... ! पहले कहा था न ? (संस्कृत) टीका में है, उसका यह अर्थ है। आहा...हा... ! भावार्थ में अधिक स्पष्ट किया है। यह किया है, देखो न ! **नष्ट होते हुए भाव का नाश; उत्पन्न होते हुए भाव का उत्पाद; और स्थायी भाव का ध्रौव्य एक ही साथ है। इस प्रकार नाश, नष्ट होते हुए भाव के आश्रित है...** नाश, नष्ट होते हुए भाव के आश्रित है। है न ? **उत्पाद उत्पन्न होते हुए भाव के आश्रित है और ध्रौव्य स्थायीभाव के आश्रित है...** आहा...हा... ! बनियों को जैनधर्म मिला परन्तु बनियों को निवृत्ति लेकर विचार और निर्णय करने का ठिकाना नहीं है। जिन्दगी चली जायेगी। बाहर मानों कुछ भक्ति की, पूजा की, सामायिक की, और प्रौषध किये... धूल भी इसमें कुछ नहीं है। आहा...हा... !

एक बात यह है कि जिस समय उत्पन्न होना है, उस समय (उत्पन्न होगा) – एक बात। यह तो उसका अवसर है। प्रत्येक द्रव्य को – छहों द्रव्य में जिस समय उत्पाद होना है, वह उसका अवसर है – एक बात; और वह उत्पाद स्वयं के कारण से होता है, व्यय के कारण से नहीं, ध्रुव के कारण से नहीं। आहा...हा... ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जो (उत्पन्न होती है), उसका समय है–अवसर है। उस काल में उत्पन्न होती है, उस काल में व्यय होती है और उस काल में ध्रुव रहती है; तीनों का काल एक ही समय है, तथापि तीनों अपने–अपने धर्म को अवलम्बती है। उत्पाद, मिथ्यात्व के व्यय को नहीं अवलम्बता और अन्दर सत्व पड़ा है, उसे वह नहीं अवलम्बता। आहा...हा... ! एक ओर ऐसा कहना कि क्षायिकभाव है, वह आत्मा में नहीं है, आता है न ? और दूसरे प्रकार से कहना कि पर्याय के बिना वह ज्ञात नहीं होता, तथापि पर्याय स्वयं के अवलम्बन से है। प्रगट पर्याय जो जानती है, वह अपने अवलम्बन से है, ध्रुव के अवलम्बन से नहीं। आहा...हा... !

एक ओर यह कहना कि भूतार्थ के आश्रित सम्यग्दर्शन होता है – (समयसार की) ११ वीं गाथा। प्रमत्त–अप्रमत्त पर्याय नहीं है। पर्याय, पर्याय में है परन्तु ज्ञायकभाव में नहीं

है। आहा...हा...! यहाँ कहते हैं कि उत्पाद, उत्पाद के आश्रित है। वह उत्पाद द्रव्य के आश्रित नहीं है। वह उत्पन्न हुआ, वह द्रव्य के आश्रित नहीं है। जो समकित उत्पन्न हुआ, वह द्रव्य के आश्रित नहीं है। आहा...हा...! ऐसा यह सब मुम्बई में कहाँ था? आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म मार्ग है, बापू! यह तो भगवान सन्तों ने - दिगम्बर सन्तों ने गजब (काम) किया है। केवलज्ञानी का केवलज्ञान प्रवाहित किया है! ऐसी बात कहीं नहीं है। दूसरों को दु:ख लगे परन्तु क्या हो? बापू! यह बात दिगम्बरों को सुनने नहीं मिलती, जिनके घर में सत्य है, देखो न! यह घर में पढ़ा है न? यह क्या है? यह संस्कृत में पढ़ा है, वहाँ से निकाला है। यहाँ पर है, देखो न! '**भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः**' स्वधर्म के आलम्बित है। संस्कृत में है न, भाई! स्वधर्म के आलम्बित है। ऐसी बात कहाँ है? देखो तो सही! अमृतचन्द्राचार्य! आहा...हा...! क्योंकि उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य तीनों पर्याय में है और ये तीन पर्याय के आश्रित है, और यह पर्याय द्रव्य के आश्रित है परन्तु यह पर्याय उत्पन्न होती है, उसे व्यय और ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। जो सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, वह अपने धर्म को अवलम्ब कर होती है। आहा...हा...! भले ही (भूतार्थ के) आश्रय से (सम्यग्दर्शन) कहा है परन्तु आश्रय का अर्थ उसमें कहीं चिपकती है - ऐसा नहीं है। **भूदत्थमस्सिदो खलु** यह पर्याय जो हुई है, वह अपने अवलम्बन से हुई है, भले ही लक्ष्य वहाँ गया है परन्तु अवलम्बन स्वयं का है।

वृक्ष के बीज, अंकुर, वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश, व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं... यह वृक्ष का दृष्टान्त हुआ। **उसी प्रकार अंशी द्रव्य के नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और अवस्थित रहनेवाला भाव - यह तीनों अंश व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों के द्वारा आलम्बित...** है। पहला तो दृष्टान्त था। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! शान्ति से समझने योग्य बात है, बापू! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहा...हा...! गहन स्वभाव! द्रव्य का और पर्याय का गहन स्वभाव भगवान ने देखा और वाणी में आया कि भाई! तू यदि धर्म करना चाहता हो तो उस धर्म की जो पर्याय होती है, वह पर्याय के आलम्बन से हुई है। देव-शास्त्र-गुरु के आलम्बन से नहीं, मन्दिर के

आलम्बन से नहीं, देव-दर्शन के आलम्बन से नहीं, आहा...हा...! परन्तु उसके ध्रुव और व्यय के अवलम्बन से नहीं। आहा...हा...!

भूदत्थमस्सिदो खलु भी उसमें कहा था न ? कि वह पर्याय स्वतन्त्ररूप से कर्ता (होकर) लक्ष्य करती है, वह अपने अवलम्बन से लक्ष्य करती है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई ! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव द्वारा कथित वास्तविक तत्त्व जिस प्रकार है, उस प्रकार यह न समझे, तब तक इसकी विपरीतता नहीं मिटेगी। विपरीतता मिटेगी नहीं और परिभ्रमण मिटेगा नहीं। चौरासी के अवतार में मरकर (कहीं का कहीं) जायेगा।

उसी प्रकार अंशी द्रव्य के, नष्ट होता हुआ भाव... व्यय, **उत्पन्न होता हुआ भाव...** समय तो वही, **अवस्थित रहनेवाला भाव...** समय तो वही है। **ये तीनों अंश व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यस्वरूप...** उत्पाद निजधर्म से आलम्बित; व्यय निजधर्म से आलम्बित; ध्रौव्य निजधर्म से आलम्बित **एक साथ ही भासित होते हैं...** भाषा तो सादी है परन्तु अब भाव दूसरा क्या लाना ? तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव की अनुपस्थित में अभी सब गड़बड़ उत्पन्न हुई है। आहा...हा...! कोई कहता है कि भगवान के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म मिटते हैं, समकित होता है, धर्म के कारण हैं। कठिन वेदन होवे तो हो, देव का बड़ा वैभव देखे और हो आहा...हा...! या कोई श्रवण करे तो उसे हो, यह सब अपेक्षाएँ उस समय शुभ था, यह बतलाती है। आहा...हा...! परन्तु होती है धर्म की पर्याय, चाहे तो समकित की, चाहे तो चारित्र की, चाहे तो केवलज्ञान की, उसे उस समय में वह पर्याय उसके आश्रित होती है; व्यय के और ध्रुव के आश्रित नहीं; पर के आश्रित तो नहीं। निसर्गज, अधिगमज (सम्यग्दर्शन) तो फिर कहाँ गया ? निसर्गज, अधिगमज दो प्रकार से समकित होता है, वह दो प्रकार के निमित्त हैं - यह बतलाया है। वरना हुआ है, वह उस समय तो उसके अपने निसर्ग से। उस समय का समय है, उस समय में पर्याय स्वयं को अवलम्बन कर हुई है। आहा...हा...! क्षायिक समकित भी केवली और श्रुतकेवली के समीप होता है। उस समय भी वह पर्याय स्वयं के आश्रित होती है। आहा...हा...! यह शास्त्र के दृष्टान्त देते हैं (इसलिए ऐसा कहते हैं कि) इसमें यह लिखा है, इसमें यह लिखा है। भाई ! यह तो ज्ञान कराया है, बापू ! तुझे पता (नहीं है) आहा...हा...!

वस्तु है – पदार्थ है, वह गम्भीर है, और पदार्थ के तीन अंश पर्यायवाले हैं और वे पर्यायें द्रव्य की हैं। आहा...हा...! वह भी यहाँ अभी पर्याय को कहते हैं। **अंशी द्रव्य के नष्ट...** अर्थात् पूर्व की मिथ्यात्व पर्याय का नाश, अचारित्र का नाश; **उत्पन्न होता हुआ भाव...** (अर्थात्) समकित का भाव, चारित्र का भाव; **अवस्थित रहनेवाला...** (अर्थात्) दोनों में सदृश्यरूप से रहनेवाला **ये तीनों अंश व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यस्वरूप...** तीनों अंश व्यय, उत्पाद, ध्रौव्यस्वरूप – व्ययस्वरूप, उत्पादस्वरूप – ध्रौव्यस्वरूप **निजधर्मों के द्वारा...** अर्थात् अपनी शक्ति से, अपने स्वभाव से **आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं...** आहा...हा...! ऐसी बात! अभी तो बाहर के विवाद (करते हैं कि) इससे होता है और उससे होता है, इससे होता है और उससे होता है, और इससे होता है। परद्रव्य से परद्रव्य में होता है – यह बात तो कहीं रह गयी।

यहाँ तो स्वद्रव्य का ध्रुव है, उससे उत्पाद होता है – ऐसा भी नहीं है। आहा...हा...! उत्पाद, उत्पाद से होता है; पर से होता है – इसका तो प्रश्न ही नहीं है, परन्तु स्व में भी तीन अंशों में एक अंश दूसरे अंश के कारण से नहीं है। आहा...हा...! ऐसा वह सत् है। सत् को हेतु दूसरा निमित्त नहीं हो सकता। आहा...हा...! गजब बात की है। यह सब अपने पहले चल गया है, यह तो फिर से चलता है।

निज धर्मों से... एक-एक अपने-अपने धर्म से आलम्बित परन्तु **(एक साथ ही भासित होता है)...** समय तो एक ही है आहा...हा...! उत्पाद का समय, व्यय का समय और ध्रौव्य का समय तो एक ही है, तथापि तीनों अपने-अपने आलम्बन से हुए एक साथ, एक समय में तीन भासित होते हैं। एक समय में तीन भासित होते हैं। आहा...हा...! ऐसा सत्य है, वह ख्याल में नहीं आता, इसलिए (विरोध करते हैं कि) 'ऐ... सोनगढ़वाले व्यवहार का लोप कर देते हैं,' अरे...! सुन न बापू! यहाँ व्यवहार की तो बात ही नहीं है कि राग होवे तो समकित होता है और कषाय मन्द करे और देव-गुरु की भक्ति करे तो (समकित) होता है – यह तो प्रश्न ही नहीं है। यहाँ तो धर्म की पर्याय होती है, वह पूर्व के व्यय की अपेक्षा से होती है – ऐसा भी नहीं है। धर्म की पर्याय होती है, वह ध्रुव के अवलम्बन से – आश्रय से है। उसका आश्रय है, इसलिए पर्याय हुई है – ऐसा भी नहीं

है। व्यवहार से आश्रय कहा जाता है, वरना तो लक्ष्य ऐसे (स्वसन्मुख) होता है, इसलिए ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...!

किन्तु यदि (भंग-उत्पाद-ध्रौव्य अंशों को न मानकर)... तीन अंश हैं, इन तीनों अंशों को नहीं मानकर **(१) भंग (२) उत्पाद और (३) ध्रौव्य द्रव्य का ही माना जाये तो...** द्रव्य के ही मानने में आवे तो, आहा...हा...! **तो सारा विप्लव को प्राप्त होगा...** अन्धाधुन्धी होगी, ऊथल-पुथल, घोटाला, विरोध उत्पन्न होगा। नीचे (मूल शास्त्र के फुटनोट में) है न? अरे...रे...! आहा...हा...! चौरासी के अवतार... एक-एक में अनन्त अवतार किये, बापू! समकित के बिना इसके भव का अभाव नहीं होगा। आहा...हा...! यह लाख क्रिया करे, व्रत और भगवान के भजन करे, करोड़ों का दान देकर करोड़ों के मन्दिर बनावे, भगवान का भजन करे, णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... यह सब राग है। राग उसके समय में होता है। राग को भी उसके व्यय का आलम्बन नहीं है, पर का तो है ही नहीं। राग हुआ, इसलिए कर्म के निमित्त का आलम्बन है - ऐसा तो है ही नहीं। ऐसी बात है।

यहाँ तो सबका एक ही पुकार है (एक व्यक्ति तो यही लिखा करता है) देखो, यह कर्म के कारण हुआ; देखो! यह कर्म के कारण हुआ... अरे भगवान! बापू! शान्त हो, भाई! यह कोई कल्पित-घर की बात नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा परमात्मा/सन्त वर्णन करते हैं। इसे तुझे (अपने ज्ञान में) बैठाना चाहिए। आहा...हा...!

भंग, उत्पाद और ध्रौव्य **द्रव्य का ही माने जायें तो सारा विप्लव को प्राप्त होगा...** घोटाला होगा, **यथा (१) पहले यदि द्रव्य का ही भंग माना जाये तो क्षणभंग से लक्षित...** क्षण में द्रव्य का नाश हो जायेगा। आहा...हा...! क्षणभंग से लक्षित = क्षण विनाश जिसका लक्षण हो ऐसे। **समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार हो जाने से... क्षण भंग से लक्षित सर्व द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार हो जाने से द्रव्य शून्यता आ जायेगी।...** अर्थात् द्रव्य का अभाव होगा। आहा...हा...! यह क्या कहा? यदि द्रव्य का उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य माना जाये - द्रव्य का उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य माना जाये तो द्रव्य का उत्पाद और द्रव्य का व्यय होने पर द्रव्य का नाश हो जायेगा और द्रव्य

का उत्पाद (होगा अर्थात् कि) नहीं था और द्रव्य (उत्पन्न) हुआ - ऐसा हो जायेगा। समझ में आया?

द्रव्य का ही व्यय माना जाये... पहले व्यय से शुरुआत की है न? **तो क्षणभंग से लक्षित समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार होने से द्रव्यशून्यता आ जायेगी...** एक बोल हुआ। अब इसका ही इसका दूसरा बोल - **अथवा सत् का उच्छेद हो जायेगा।...** आहा...हा...! सत् है, उसका नाश हो जायेगा। यदि भंग, पर्याय का का मानने में आवे तब तो कोई आपत्ति नहीं है परन्तु द्रव्य का भंग मानने में आवे तो द्रव्य सत् है, उसका नाश हो जायेगा। आहा...हा...! ऐसा है। लोग मध्यस्थता से स्वाध्याय नहीं करते। स्वाध्याय करें तो फिर अपनी दृष्टि रखकर करते हैं। शास्त्र की दृष्टि करने को अवलम्बन लें तो बराबर है कि शास्त्र क्या दृष्टि करता है? परन्तु (ऐसा नहीं करके) स्वयं ने जो दृष्टि मानी हो उस दृष्टि से उसका अर्थ करते हैं। आहा...हा...!

अरे...रे...! (ऐसा का ऐसा) अनन्त काल गया। आहा...हा...! यहाँ करोड़पति-अरबोंपति व्यक्ति हो वह दूसरे क्षण में... अरे...रे...! माँस आदि खाता हो तब तो नरक में जाये, परन्तु बनिया हो और माँस आदि न खाये और हो अरबोंपति! आहा...हा...! वह मरकर तिर्यंच में जाये। चूहा हो, बकरी हो... आहा...हा...! मींदड़ी हो, सुअर हो... आहा...हा...! प्रभु... प्रभु... प्रभु...! तिर्यंच योनि, बापू! वस्तु का स्वरूप है। तू तेरे अभिमान में सत्य को नहीं सुने और सत्य को नहीं बैठाये यह तो स्वतन्त्र है। आहा...हा...! यह मिथ्याश्रद्धा है, उसका भी उत्पन्न होने का वह अवसर है और मिथ्यात्व के (उत्पन्न होने में) पूर्व के मिथ्यात्व के व्यय की भी अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! अथवा कोई सम्यग्दृष्टि है और फिर वापिस विपरीत दृष्टि हुई... आहा...हा...! (और ऐसा कहे कि) ऐसा नहीं होता, ऐसा होता है तो भी उस मिथ्यात्व को पूर्व के व्यय की अपेक्षा नहीं है, आहा...हा...! उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं है।

आहा...हा...! अमृत बहाया है! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त गये परन्तु जीवन छोड़ गये! यह जीवन्त ज्योति रह गयी है, आहा...हा...! भले ही स्वर्ग में गये परन्तु उनकी जीवन्त ज्योत जागृत पड़ी है। आहा...हा...! इस प्रकार हम जीये थे - ऐसा कहते हैं।

आहा...हा... ! हमारी धर्म चारित्रपर्याय जो है, वह व्रत, दया, दान के परिणाम हैं, उनसे चारित्रपर्याय उत्पन्न नहीं हुई है, आहा...हा... ! और वह चारित्रपर्याय नहीं थी और हुई, इसलिए उसे द्रव्य का-ध्रुव का आधार है - ऐसा नहीं है। चारित्रपर्याय हुई और पूर्व में अचारित्र था, उसका व्यय होकर हुई; होता तो ऐसा है परन्तु उसे अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यह तो चर्चा करे तो कुछ पार पड़े ऐसा नहीं है। शास्त्र में ऐसे बहुत कथन आते हैं। यह तो तत्त्वार्थसूत्र में नहीं आता ? 'सम्यक्त्व बन्ध का कारण है' लो ! सम्यक्त्व को बन्ध का कारण कहा, तत्त्वार्थसूत्र में। वह तो समकिती जीव को राग का भाव साथ ही है, वह बन्ध का कारण है परन्तु समकितसहित सराग। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है सातावेदनीय बँधती है, वह सराग से बँधती है, सातावेदनीय ! आहा...हा... ! देव आयु बँधती है, वह सराग समकित से बँधती है, ऐसा पाठ है। (ऐसा पढ़कर यह कहते हैं कि) देखो, यह सराग समकित है। अरे... बापू! यह तो रागसहित भाव है, (वह बताना है)। समकित तो समकित है, वह सराग है ही नहीं और समकित से बन्ध है ही नहीं। आहा...हा... !

यह तो पुरुषार्थसिद्धियुपाय में तीन गाथाओं में कहा है, जितने अंश में सम्यग्दर्शन है, उतने अंश में अबन्ध है, जितने अंश में राग है, उतने अंश में बन्ध है; जितने अंश में ज्ञान है, उतने अंश में अबन्ध है, जितने अंश में ज्ञान में राग रहता है (उतने अंश में बन्ध है) इसी तरह जितने अंश में चारित्र और अरागपरिणाम है, उससे अबन्ध है और उस समय जितने अंश में राग है, वह बन्ध का कारण है, दोनों अलग-अलग प्रकार हैं। आहा...हा... !

(यहाँ कहते हैं कि) **पहले, यदि द्रव्य का ही भंग माना जाय तो क्षणभंग से लक्षित...** (अर्थात्) क्षण में सब नष्ट हो जायेगा। **समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार हो जाने से द्रव्य शून्यता आ जायेगी अथवा सत् का उच्छेद हो जायेगा।...** 'है' उसका नाश हो जायेगा। क्षण में नाश हो जायेगा या सत् है, उसका नाश हो जायेगा। आहा...हा... ! यह दो होकर एक बोल हुआ।

(२) यदि द्रव्य का उत्पाद माना जाय तो... आहा...हा... ! वस्तु ही उत्पन्न होती है - ऐसा माना जाये। पर्याय उत्पन्न होती है - ऐसा न माना जाये और वस्तु उत्पन्न

होती है ऐसा माना जाये तो **समय-समय पर होनेवाले उत्पादों द्वारा चिह्नित...** लक्षणवाले **ऐसे द्रव्यों को प्रत्येक को अनन्ता आ जायेगी...** आहा...हा...! प्रति समय द्रव्य उत्पन्न होवे तो ऐसे अनन्त द्रव्य नये उत्पन्न होंगे। आहा...हा...! एक द्रव्य है, उसमें यदि द्रव्य ही (नया) उत्पन्न होवे तो दूसरे समय में (तीसरे समय में, चौथे समय में) ऐसे करते-करते अनन्त द्रव्य उत्पन्न होंगे। आहा...हा...! जरा कठिन बात है। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा का मार्ग कोई अलग है, अभी सम्प्रदाय में तो गड़बड़ चलती है, यह बात आने पर लोगों को (नहीं जँचती, इसलिए वे) एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है... (ऐसा कहते हैं)। अरे भाई! विचार कर बापू! भाई! तू एकान्त क्या (समझकर) कहता है? आहा...हा...!

यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाय तो समय-समय पर होनेवाले उत्पाद के द्वारा चिह्नित ऐसे द्रव्यों को प्रत्येक को अनन्तता आ जायेगी... एक ही द्रव्य अनन्त द्रव्यरूप हो जायेगा, क्योंकि एक समय में द्रव्य उत्पन्न हुआ, दूसरे समय में द्रव्य उत्पन्न हुआ, तीसरे समय में द्रव्य उत्पन्न हुआ; इस प्रकार अनन्त द्रव्य उत्पन्न हो जायेंगे। आहा...हा...! **(अर्थात् समय-समय पर होनेवाला उत्पाद जिसका चिह्न हो ऐसा प्रत्येक द्रव्य अनन्त द्रव्यत्व को प्राप्त हो जायेगा)...** इसका अर्थ किया है। अब दूसरा अर्थ करते हैं। **अथवा असत् का उत्पाद हो जायेगा...** 'नहीं' - उसका उत्पाद हो जायेगा। जगत् में खरगोश के सींग नहीं हैं, गधे के सींग नहीं हैं, वे उत्पन्न हो जायेंगे। 'नहीं' वह उत्पन्न हो जायेगा। आहा...हा...! दो बात हुईं।

(३) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाये... द्रव्य का ही ध्रौव्य अर्थात् ध्रुवपना है - ऐसा **माना जाये तो क्रमशः होनेवाले भावों के अभाव के कारण...** अकेला द्रव्य माना जाये तो उत्पन्न और व्यय क्रमशः होनेवाले (भाव है, जबकि) ध्रुव तो अक्रम है, तो क्रमशः होनेवाले व्यतिरेकों के अभाव के कारण द्रव्य का अभाव होगा। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय ही नहीं माने और अकेला ध्रुव ही मानें तो उत्पाद-व्यय के बिना द्रव्य का नाश हो जायेगा। आहा...हा...! द्रव्य का अभाव होगा, क्योंकि उत्पाद-व्यय से ही द्रव्य है - ऐसा ज्ञात होता है। द्रव्य है, वह व्यतिरेक से अन्वय ज्ञात होता है। अन्वय से अन्वय ज्ञात

नहीं होता; अतः यदि उसे अकेला ध्रुव ही कहो तो व्यतिरेकों अर्थात् भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ तो उसमें नहीं रहीं; अतः उस अवस्था से वह ज्ञात हो - ऐसा नहीं रहा। आहा...हा...! कठिन काम है। मुम्बई जैसे में ऐसा कहे तो कोलाहाल हो, कहेंगे कि कुछ समझ में नहीं आता। आहा...हा...! अमुक-अमुक को भाव आवे, एक-एक अक्षर और एक-एक पंक्ति का अर्थ करने पर... यह तो सिद्धान्त है। भगवान के श्रीमुख से निकला हुआ (सिद्धान्त है)। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारै, रचि आगम उपदेश भविक जीव संसय निवारै' आहा...हा...! यह वाणी है!

यदि द्रव्य का ध्रौव्य ही माना जाये तो क्रमशः होनेवाले भावों के अभाव के कारण... (अर्थात्) एक के बाद एक हों, उत्पाद-व्यय का अभाव होने पर **द्रव्य का अभाव...** होगा। आहा...हा...! **अथवा क्षणिकपना होगा...** द्रव्य को क्षणिकपना कहलायेगा। आहा...हा...! उत्पाद-व्यय का अभाव मानो तो द्रव्य ही क्षणिक हो गया। क्षणिक तो उत्पाद-व्यय पर्याय है। यदि उसका अभाव मानो तो द्रव्य स्वयं ही क्षणिक हो गया। आहा...हा...! वस्तु का स्वरूप जिस प्रकार है, उस प्रकार से यहाँ कहा गया है और उस प्रकार जानकर फिर आत्मसन्मुख हो, तब उसे धर्म की दशा उत्पन्न होती है - ऐसी बात है। तथापि स्व-सन्मुख होता है, वह भी स्वतन्त्ररूप से होता है। आहा...हा...! यह उत्पाद, उत्पाद के आश्रित है। ऐसा कहते हैं कि **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।** यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन का उत्पाद ध्रुव के आश्रित और ध्रुव के कारण नहीं है। आहा...हा...! ध्रुव का कारण नहीं है। यह बात कहीं नहीं है। आहा...हा...!

इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यों के द्वारा पर्यायें आलम्बित हों... क्या कहते हैं? उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य पर्यायों से आलम्बित हों, पर्यायों से उन्हें आश्रय हो, पर्याय का उन्हें आश्रय है, तीन को पर्याय का आश्रय है। आहा...हा...! **और पर्यायों को द्वारा द्रव्य आलम्बित हो...** फिर ये पर्यायें द्रव्य की हैं, उसे आलम्बित हैं। आहा...हा...!

जिससे यह सब एक ही द्रव्य है... तीनों होकर - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होकर एक द्रव्य है। आहा...हा...! उत्पाद का एक अंश द्रव्य नहीं, व्यय का एक अंश द्रव्य नहीं, ध्रौव्य का एक अंश द्रव्य नहीं। आहा...हा...! यह तो 'हल्दी की गाँठ लेकर पंसारी हुआ

जाये – ऐसा नहीं है' ऐसी सूक्ष्म बात है। आहा...हा...! अरे! यह चौरासी के अवतार...! बापू! कहाँ-कहाँ उत्पन्न होता है और अभी समझेगा नहीं और सम्यग्दर्शन के लिये प्रयत्न नहीं करेगा तो कहाँ जाकर उत्पन्न होगा? बापू! (वहाँ) गौशाला नहीं है (अथवा) मौसी बा नहीं बैठी है। आहा...हा...! अनजाने क्षेत्र में, अनजाने वृक्ष में लट होगा। आहा...हा...! तिर्यंच होता है न? फिर मरकर लट होता, बिच्छु होता है, सर्प होता है। आहा...हा...!

पण्डितजी ने सादी भाषा में भावार्थ किया है। **बीज, अंकुर और वृक्षत्व...** वृक्षत्व, हाँ! वृक्ष नहीं। बीज – व्यय; अंकुर-उत्पाद; वृक्षत्व-ध्रौव्य; **यह वृक्ष के अंश हैं...** वृक्षत्व भी वृक्ष का अंश है। आहा...हा...! वृक्षत्व भी वृक्ष का अंश है। बीज भी वृक्ष का अंश है, अंकुर भी वृक्ष का अंश है। **बीज का नाश, अंकुर का उत्पाद और वृक्षत्व का ध्रौव्य (ध्रुवपना)...** देखो! ध्रौव्य का अर्थ किया है न? ध्रौव्य अर्थात् ध्रुवपना **तीनों एक ही साथ होते हैं...** एक समय में हैं।

इस प्रकार नाश बीज के आश्रित है... नाश बीज के आश्रित है। बीज नष्ट होता है न? **उत्पाद अंकुर के आश्रित है...** अंकुर उत्पन्न होता है न? **और ध्रौव्य वृक्षत्व के आश्रित हैं...** आहा...हा...! **नाश, उत्पाद और ध्रौव्य, बीज अंकुर और वृक्षत्व से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं...** अंकुर का उत्पाद, बीज का नाश और वृक्षत्व का रहना यह वृक्ष से भिन्नरूप नहीं है। **इसलिए यह सब एक वृक्ष ही है...** यह तो लोगों को समझने के लिये दृष्टान्त कहा। आहा...हा...!

इसी प्रकार नष्ट होता हुआ भाव... प्रत्येक द्रव्य का व्यय होता हुआ भाव, **उत्पन्न होता हुआ भाव...** उत्पन्न होता हुआ भाव, **और ध्रौव्यभाव सब द्रव्य के अंश हैं...** तीनों वस्तु के अंश हैं। आहा...हा...! यह अंशी और अंश और... यह पुस्तक में नहीं आता और सुनने में भी नहीं आता। तुम्हारे बहीखातों में यह सब आता है? यह सेठ रहे, बड़ा धन्धा है – वहाँ ऐसा आता है? आहा...हा...! **इसी प्रकार नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और ध्रौव्यभाव सब द्रव्य के अंश हैं।**

अब स्पष्ट कर दिया। **निज धर्मों से आलम्बित...** अन्दर (टीका में) था न? उसका स्पष्टीकरण किया कि **नष्ट होते हुए भाव का नाश...** आहा...हा...! **नष्ट होते**

हुए भाव का नाश, उत्पन्न होते हुए भाव का उत्पाद और स्थायीभाव का ध्रौव्य एक ही साथ है... आहा...हा... ! अब इसका स्पष्ट किया। **इस प्रकार नाश, नष्ट होते हुए भाव के आश्रित है...** आहा...हा... ! क्या कहा ? मिथ्यात्व का नाश, मिथ्यात्व के नाश के आश्रित है। आहा...हा... ! मिट्टी का पिण्ड है, उसका व्यय होकर घड़ा होता है परन्तु वह पिण्ड, पिण्ड के आश्रित है, वह पिण्ड मिट्टी के आश्रित नहीं और वह पिण्ड घड़ा उत्पन्न हुआ, उसके आश्रित नहीं। आहा...हा... ! ऐसा है। **नाश, नष्ट होते भाव के आश्रित है...** देखा ! व्यय, व्यय के आश्रित है। आहा...हा... !

उत्पाद, उत्पन्न होते हुए भाव के आश्रित है... प्रत्येक द्रव्य के प्रति समय जिस अवसर में वे ही परिणाम होते हैं, वह उत्पाद, उत्पाद के आश्रित हैं। आहा...हा... ! कोई ऐसा कहे कि ग्यारहवें गुणस्थान में तो कर्म का उदय नहीं, उपशम है। अब जब कर्म का उदय आवे तब ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे आता है – (यह बात) ठीक नहीं है ? ग्यारहवें से नीचे आता है, (तब) ध्यान तो अन्दर है तो किस कारण नीचे आता है ? राग का–लोभ का उदय आया इसलिए ? उससे यहाँ इनकार करते हैं। आहा...हा... ! इस ग्यारहवें में जो लोभ का उदय आया, वह उदय आने का–उत्पाद होने का उसका अवसर था और उस उत्पाद को कर्म की अपेक्षा नहीं परन्तु उसे व्यय और ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं है। आहा...हा... ! कहीं कभी ऐसा सुना था ? ये सब पुराने दिगम्बर हैं। ऐसा मार्ग है।

दिगम्बर जैनधर्म अर्थात् क्या ? आहा...हा... ! दिगम्बर धर्म ऐसा कहता है कि उत्पाद, उत्पाद के आश्रित है। मिथ्यात्व का उत्पाद, समकित की उत्पाद, चारित्र का उत्पाद; एक परमाणु में चार परमाणु की पर्याय का उत्पाद और फिर छह पर्याय का उत्पाद इस समय छह पर्याय का उत्पाद, उत्पाद के आश्रित है। यद्यपि दूसरा छह (गुणवाला) था, और यहाँ चार (गुणवाला) था, इसलिए यहाँ छह (गुणवाला) हुआ – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! **गुणे अधिको** – ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में आता है न ? दो गुण अधिक, उनके कारण होते हैं, यह तो उसे ज्ञान कराया है। आहा...हा... ! वरना तो यह चार गुण की स्निग्धता की पर्यायवाला परमाणु छह गुण की स्निग्धता की परमाणु के कारण, चार गुण की स्निग्धता, छह गुण की स्निग्धता हुई है – ऐसा नहीं है। छह गुण अर्थात्

पर्याय, हाँ! उस अवसर में छह गुण की पर्याय का उत्पाद है, वह उत्पाद के आश्रित है; पर के आश्रित नहीं। चार का व्यय हुआ, उसके आश्रित नहीं, परमाणु के आश्रित नहीं। आहा...हा...! मध्यस्थ होकर एक बार दो-चार दिन, आठ दिन सुने फिर (अभिप्राय दे) आहा...हा...!

श्रोता - लोग ऐसा कहते हैं कि सुनने जायें तो कान पकड़ाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ, ऐसा कहते हैं। 'कान' - जी (नाम) है न? तो कान पकड़ाते हैं - जी कराते हैं। जी... हाँ...! यहाँ कानजी भी नहीं और कुछ नहीं। यहाँ तो आत्मा हैं। कान पकड़कर हाँ करावे (ऐसा कहते हैं।) उनके पास जायें तो हाँ कराते हैं तो (हम) बदल जाते हैं। एक बाई कहती थी कि उनके पास नहीं जाना। (लड़के का पिता) उद्घाटन के समय आया था, उसकी माँ नहीं आयी थी, वे दोनों वहाँ भावनगर आये थे और (हमें) वहाँ भावनगर आना हुआ। (तब जाने को कहा तो कहती है) नहीं, लड़का पूरा बदल गया है। वहाँ जायेंगे तो सब बदल जायगा, हाँ! वहाँ कुछ जादूगर लगता है! ऐसी बात करते हैं। आहा...हा...! यह तो वीतराग का मार्ग ही जादूगर है, बापू! इसकी वीतराग के मार्ग की जादूगरी...! आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) **नाश नष्ट होते भाव के आश्रित हैं; उत्पाद, उत्पाद होते भाव के आश्रित है; और ध्रौव्य स्थायी भाव के आश्रित है; नाश, उत्पाद, ध्रौव्य इन भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं है...** क्या कहा? नाश - उत्पाद और ध्रौव्य वह उनके भावों से अलग नहीं है। आहा...हा...! उसका अपना भाव है, उत्पाद का उत्पादरूप भाव है, व्यय का व्ययरूप भाव है। व्यय कहीं कम नहीं है, तीनों ही सत् कहे है न? उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् कहा है। व्यय को भी सत् कहा है। अभावरूप से है परन्तु सर्वथा अभाव नहीं होता। वह व्यय होकर द्रव्य में जाता है, इसलिए व्यय को भी सत् कहा है। अरे...रे...! तीनों ही सत्! उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और सद्द्रव्य लक्षणं। आहा...हा...!

नाश, उत्पाद और ध्रौव्य उन भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं है और वे भाव भी... (अर्थात्) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, **वे भाव भी द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं**

है... आहा...हा... ! यह क्या कहा ? अपना भाव अपने भाव से तो भिन्न नहीं है, अपना भाव अपने भाव से भिन्न पदार्थ नहीं है परन्तु फिर कहते हैं कि ये तीनों ही जो भाव हैं, वे द्रव्य के हैं; द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। आहा...हा... !

पहले ऐसा कहा कि प्रत्येक द्रव्य में समय-समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है, वह तो उसका समय है, वह स्वयं के भाव से है, वह दूसरे के भाव से नहीं है। फिर कहते हैं कि ये तीनों भाव पर्याय के हैं, इसलिए पर्याय उस-उस समय अपने-अपने कारण से है। व्यय के कारण से उत्पाद और उत्पाद के कारण से ध्रुव - ऐसा नहीं है परन्तु ये तीनों ही पदार्थ द्रव्य से भिन्न नहीं हैं, द्रव्य के भेद हैं। आहा...हा... ! **इसलिए यह सब एक द्रव्य ही है...** देखा ? एक द्रव्य ही है (- ऐसा कहा है)।

आहा...हा... ! ऐसी टीका करते समय सन्तों की कितनी दृष्टि... ! आहा...हा... ! दिगम्बर मुनि ! जंगलवासी अमृतचन्द्राचार्य ! नग्न एक मोरपिच्छी-कमण्डल पड़ा हो, उसकी भी कुछ नहीं पड़ी है, आहा...हा... ! लिखने के काल में लिखा गया, वह ताड़पत्र भी वहाँ पड़े रहे, स्वयं चले जाते हैं। पीछे से (श्रावकों को) पता पड़ता है कि यह महाराज (लिखते हैं, इसलिए) वे ले जाते हैं - ऐसे वीतरागी मुनि थे। लिखे हुए ताड़पत्र हों, वे वहाँ के वहाँ पड़े रहते हैं, आहा...हा... !

इस टीका की - इन अक्षरों की पर्याय हुई, वह उत्पाद उत्पाद से हुआ है। इस अक्षर की जो उत्पत्ति है, वह कलम से नहीं, आचार्य से नहीं, आचार्य के विकल्प से नहीं और स्याही से नहीं और यह उत्पत्ति हुई है, वह पूर्व के व्यय और ध्रुव की अपेक्षा से भी नहीं - ऐसी बात !

अब, यह गाथा बहुत उत्कृष्ट है ! १०२... जन्मक्षण कहेंगे। आहा...हा... ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का जन्मक्षण है। प्रत्येक द्रव्य को पर्याय का जन्मक्षण है, उस समय का काल है; इसलिए वह जन्म-उत्पन्न होती है। आहा...हा... ! प्रत्येक वस्तु को वह पर्याय उत्पन्न होती है, वह उसका समय है। जन्म-उत्पत्ति का वह काल है। आहा...हा... ! यह फिर विशेष कहा जायेगा।

गाथा - १०२

अथोत्पादादीनां क्षणभेदमुदस्य द्रव्यत्वं द्योतयति -

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं।
एक्कम्हि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं।। १०२।।

समवेतं खलु द्रव्यं संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः।
एकस्मिन् चैव समये तस्माद्द्रव्यं खलु तत्त्रितयम्।। १०२।।

इह हि यो नाम वस्तुनो जन्मक्षणः स जन्मनैव व्याप्तत्वात् स्थितिक्षणो नाशक्षणश्च न भवति। यश्च स्थितिक्षणः स खलूभयोरन्तरालदुर्ललितत्वाज्जन्मक्षणो नाशक्षणश्च न भवति। यश्च नाशक्षणः स तूत्पद्यावस्थाय च नश्यतो जन्मक्षणः स्थितिक्षणश्च न भवति। इत्युत्पादादीनां वितर्क्यमाणः क्षणभेदो हृदयभूमिमवतरति। अवतरत्येवं यदि द्रव्यमात्मनैवोत्पद्यते आत्मनैवावतिष्ठते आत्मनैव नश्यतीत्यभ्युपगम्यते। तत्तु नाभ्युपगतम्। पर्यायाणामेवोत्पादादयः, कुतः क्षणभेदः। तथा हि - यथा कुलालदण्डचक्रचीवरारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एव वर्धमानस्य जन्मक्षणः स एव मृत्पिण्डस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य मृत्तिकात्वस्य स्थितिक्षणः, तथा अन्तरङ्गबहिरङ्गसाधनारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एवोत्तरपर्यायस्य जन्मक्षणः स एव प्राक्तनपर्यायस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य द्रव्यत्वस्य स्थितिक्षणः। यथा च वर्धमानमृत्पिण्डमृत्तिकात्वेषु प्रत्येकवर्तीन्यप्युत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिन्यां मृत्तिकायां सामस्त्येनैकसमय एवावलोक्यन्ते, तथा उत्तरप्राक्तनपर्यायद्रव्यत्वेषु प्रत्येकवर्तीन्यप्युत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिनि द्रव्ये सामस्त्येनैकसमय एवावलोक्यन्ते। यथैव च वर्धमानपिण्डमृत्तिका-त्ववर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि मृत्तिकैव, न वस्त्वन्तरं; तथैवोत्तरप्राक्तनपर्यायद्रव्यत्व-वर्तीन्यप्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्यमेव, न खल्वर्थान्तरम्।।१०२।

अथोत्पादादीनां पुनरपि प्रकारान्तरेण द्रव्येण सहाभेदं समर्थयति समयभेदं च निराकरोति - **समवेदं खलु दव्वं** समवेतमेकीभूतमभिन्न भवति खलु स्फुटम्। किम्। आत्मद्रव्यम्। कैः सह। **संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं** सम्यक्त्वज्ञानपूर्वकनिश्चलनिर्विकारनिजात्मानुभूति-लक्षणवीतरागचारित्र-पर्यायेणोत्पादः तथैव रागादिपरद्रव्यैकत्वपरिणतिरूपचारित्रपर्यायेण नाशस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्था-रूपपर्यायेण स्थितिरित्युक्तलक्षणसंज्ञित्वोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह। तर्हि किं बौद्धमतवद्भिन्नभिन्नसमये त्रयं

भविष्यति। नैवम्। **एक्कम्मि चेव समये** अङ्गुलिद्रव्यस्य वक्रपर्यायवत्संसारिजीवस्य मरणकाले ऋजुगतिवत् क्षीणकषायचरमसमये केवलज्ञा-नोत्पत्तिवदयोगिचरमसमये मोक्षवच्चेत्येकस्मिन्समय एव। **तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं** यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेणैकसमये भङ्गत्रयेण परिणमति तस्मात्संज्ञालक्षण-प्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशानामभेदात्त्रयमपि खु स्फुटं द्रव्यं भवति। यथेदं चारित्राचारित्रपर्यायद्वये भङ्गत्रयमभेदेन दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेष्ववबोद्धव्यमित्यर्थः।।१०२।।

अब, उत्पादादि का क्षणभेद निरस्त[१] करके वे द्रव्य हैं यह समझाते हैं –

उतपाद, व्यय अरु ध्रौव्य नामक, अर्थ से जो युक्त है।
अरु 'द्रव्य' एक ही समय में, इन तीन से संयुक्त है॥

अन्वयार्थ : [द्रव्यं] द्रव्य **[एकस्मिन् च एव समये]** एक ही समय में **[संभव-स्थितिनाशसंज्ञितार्थैः]** उत्पाद, स्थिति और नाश नामक अर्थों[२] के साथ **[खलु]** वास्तव में **[समवेतं]** समवेत[३] (एकमेक) है; **[तस्मात्]** इसलिए **[तत् त्रितयं]** यह त्रितय[४] **[खलु]** वास्तव में **[द्रव्यं]** द्रव्य है।

टीका : (प्रथम शंका उपस्थित की जाती है :–) यहाँ, (विश्व में) वस्तु का जो जन्मक्षण है, वह जन्म से ही व्याप्त होने से स्थितिक्षण और नाशक्षण नहीं है, (वह पृथक् ही होता है); जो स्थितिक्षण हो वह दोनों के अन्तराल में (उत्पादक्षण और नाशक्षण के बीच) दृढ़तया रहता है, इसलिए (वह) जन्मक्षण और नाशक्षण नहीं है; और जो नाशक्षण है वह, – वस्तु उत्पन्न होकर और स्थिर रहकर फिर नाश को प्राप्त होती है इसलिए, – जन्मक्षण और स्थितिक्षण नहीं है; – इस प्रकार तर्कपूर्वक विचार करने पर उत्पादादि का क्षणभेद हृदय भूमि में उतरता है (अर्थात् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समय भिन्न-भिन्न होता है, एक नहीं होता, – ऐसी बात हृदय में जमती है।)

(यहाँ उपरोक्त शंका का समाधान किया जाता है –) इस प्रकार उत्पादादि का क्षणभेद हृदयभूमि में तभी उतर सकता है, जब यह माना जाये कि 'द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही ध्रुव रहता है और स्वयं ही नाश को प्राप्त होता है!' किन्तु ऐसा तो माना

---

१. निरस्त करके = दूर करके; नष्ट करके; खण्डित करके; निराकृत करके।
२. अर्थ = पदार्थ (८७ वीं गाथा में समझाया गया है, तदनुसार पर्याय भी अर्थ है।)
३. समवेत = समवायवाला, तादात्म्यसहित जुड़ा हुआ, एकमेक।
४. त्रितय = तीन का समुदाय।(उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इन तीनों का समुदाय वास्तव में द्रव्य ही है।)

नहीं गया है; (क्योंकि यह स्वीकार और सिद्ध किया गया है कि) पर्यायों के ही उत्पादादि हैं; (तब फिर) वहाँ क्षणभेद-कहाँ से हो सकता है? यह समझाते हैं -

जैसे कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कार की उपस्थिति में जो रामपात्र का जन्मक्षण होता है वही मृत्तिकापिण्ड का नाशक्षण होता है, और वही दोनों कोटियों[1] में रहनेवाले मिट्टीपन का स्थितिक्षण होता है; इसी प्रकार अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग साधनों द्वारा किये जानेवाले संस्कारों की उपस्थिति में, जो उत्तर-पर्याय का जन्मक्षण होता है, वही पूर्व पर्याय का नाशक्षण होता है, और वही दोनों कोटियों में रहनेवाले द्रव्यत्व का स्थितिक्षण होता है।

और जैसे रामपात्र में, मृत्तिकापिण्ड में और मिट्टीपन में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येकरूप में (प्रत्येक पृथक्-पृथक्) वर्तते होने पर भी त्रिस्वभावस्पर्शी मृत्तिका में वे सम्पूर्णतया (सभी एकसाथ) एक समय में ही देखे जाते हैं; इसी प्रकार उत्तरपर्याय में, पूर्वपर्याय में और द्रव्यत्व में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येकतया (एक-एक) प्रवर्तमान होने पर भी त्रिस्वभावस्पर्शी[2] द्रव्य में वे सम्पूर्णतया (तीनों एक साथ) एक समय में ही देखे जाते हैं।

और जैसे रामपात्र, मृत्तिकापिण्ड तथा मिट्टीपन में प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य मिट्टी ही हैं, अन्य वस्तु नहीं; उसी प्रकार उत्तरपर्याय, पूर्वपर्याय, और द्रव्यत्व में प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य द्रव्य ही हैं, अन्य पदार्थ नहीं॥ १०२॥

प्रवचन नं. ११२ **दिनाङ्क २२ जून १९७९**

(प्रवचनसार १०२ गाथा) **अब, उत्पादि का क्षणभेद...** है न? बहुत अधिकार चल गया है। द्रव्य जो वस्तु है - आत्मा या परमाणु में एक-एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीन होते हैं। तो कहते हैं कि उत्पाद, व्यय, ध्रुव का क्षणभेद (अर्थात्) समयभेद नहीं है। जो द्रव्य में उत्पाद, व्यय और ध्रुव है, वह एक समय में है, क्षणभेद नहीं। जिस

१. कोटि = प्रकार (मिट्टीपन तो पिण्डरूप तथा रामपात्ररूप - दोनों प्रकारों में विद्यमान है।)
२. त्रिस्वभावस्पर्शी = तीनों स्वभावों को स्पर्श करनेवाला। (द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य - इन तीनों स्वभावों को धारण करता है।)

समय उत्पाद होता है, उसी समय पूर्व की (पर्याय का) व्यय होता है, उसी समय ध्रौव्यरूप से तो (स्थायी रहता है)।

उत्पादादि का क्षणभेद निरस्त करके... (निरस्त अर्थात्) दूर करके, नष्ट करके, खण्डित करके, निरावृत्त करके, **वे द्रव्य हैं, यह समझाते हैं** – ये तीनों होकर द्रव्य हैं। यह प्रमाण का द्रव्य है। त्रिकाली द्रव्य जो सम्यग्दर्शन का आश्रय है, वह नय का द्रव्य है और यह द्रव्य है, वह प्रमाण का द्रव्य है। सम्पूर्ण ध्रुव वस्तु यह भी इसमें ख्याल में आवे और उत्पाद, व्यय (भी) ख्याल में आवे तो दोनों का ज्ञान हो, वह प्रमाणज्ञान है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, यदि वैसा ज्ञान न करे, विरुद्ध ज्ञान करे तो मिथ्यादृष्टि होता है। यह ९८ (गाथा में) कहा गया है। आहा...हा...! आगम ने जिस प्रकार वस्तु की मर्यादा जानी है और कही है, यदि उस प्रकार न माने तो परसमय है, मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! इसलिए कहते हैं।

श्रोता – सारा जगत मिथ्यादृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री – बहुत मिथ्यादृष्टि है, बहु भाग! तत्त्व की खबर कहाँ है? बाड़ा में जन्में इसीलिए (मान लेते हैं कि) हम जैन हैं परन्तु जैन क्या कहते हैं? इस तत्त्व की (खबर नहीं होती)। यहाँ तो उत्पाद, व्यय और ध्रुव की (बात से) शुरु किया है।

प्रत्येक पदार्थ को प्रत्येक समय में–अवसर में जो पर्याय होती है, वह उत्पाद है और उस क्षण में पूर्व की पर्याय का व्यय होता है और उसी क्षण ध्रौव्यपने रहता है। इस पर्याय के तीन भेद हैं। फिर शिष्य शंका करेगा।

प्रश्न – जिस काल में जन्मे, उसी काल में ही थोड़े ही मर जाते हैं?

समाधान – जिस काल में जन्मता है, उस (काल में) पूर्व का व्यय होता है न? पूर्व की अवस्था व्यय होती है, पूर्व भव का मरण था, उसका व्यय होता है और यहाँ जन्मता है, समय एक है। आहा...हा...! जिस समय में देह छूटा है, (उस समय में) उसकी अपनी पर्याय की योग्यता से वहाँ से छूटा है, वह व्यय होकर अन्यत्र उपजता है – जन्मता है, (उसका) समय एक है।

सिद्ध भगवान सिद्ध हुए, देह से भिन्न हुए, पूर्णानन्द केवलज्ञान, पूर्ण शान्ति प्राप्त हुई, वे भी यहाँ से छूटकर जायें तो एक समय में ही जाते हैं। यहाँ मुक्ति हुई है, केवलज्ञान और पूर्णानन्द (प्रगट हुआ है।) (यहाँ से सिद्धालय में) जाने पर मार्ग का एक समय है। आहा...हा...! इस उत्पाद का यही समय है और संसार के अभाव का व्यय है; सिद्धपने का उत्पाद है और संसार की पर्याय का व्यय है और ध्रौव्य तो है - एक समय में तीन है। यह विषय चलता नहीं है, इसलिए क्या हो? लोगों को (कठिन पड़ता है) -

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं।
एक्कम्हि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं।।१०२।।

उतपाद, व्यय अरु ध्रौव्य नामक, अर्थ से जो युक्त है।
अरु 'द्रव्य' एक ही समय में, इन तीन से संयुक्त है॥

आहा...हा...! मुनियों ने भी जंगल में रहकर (गजब काम किया है)!

टीका - (प्रथम शंका उपस्थित की जाती है :-)... शंकाकार शंका करता है। **यहाँ, (विश्व में) वस्तु का जो जन्मक्षण है...** समस्त भाषा अलग प्रकार की है। जो वस्तु है न? आत्मा या परमाणु, उसकी जो अवस्था होती है, उसका जन्मक्षण है। उसी समय वह उत्पत्ति का काल है। आहा...हा...! वह आत्मा का किया होता है - ऐसा नहीं है। आत्मा की पर्याय भी जन्मक्षण है। आहा...हा...! जिस समय में उसे पर्याय उत्पन्न होनी है, वह उसका जन्म का-उत्पत्ति का काल है। अब यह शिष्य की शंका है कि **जन्मक्षण है, वह जन्म से ही व्याप्त होने से...** शिष्य शंका करता है कि उत्पत्ति का क्षण है, वह उत्पत्ति के क्षण के साथ सम्बन्ध रखता है - ऐसी बात है। लोगों को अभ्यास नहीं है, धर्म क्या है? (इसका पता नहीं है।)

यह तो वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा जाने हुए छह द्रव्यों और एक-एक को उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन पर्यायों और उन पर्यायों का समुदाय पूरा द्रव्य (कैसा होता है) वह यहाँ सिद्ध करना है। शिष्य कहता है कि जो उत्पत्ति का क्षण है, (वह) **जन्म से ही व्याप्त होने से स्थितिक्षण और नाशक्षण नहीं है...** ऐसा वह कहता है। जिस समय

उत्पन्न हो, (दृष्टान्तरूप से) राग उत्पन्न हुआ, समकित उत्पन्न हुआ तो वह उत्पन्न होता है, उस समय में क्षय-नाश और ध्रुवता कैसे होगी ? उत्पन्न होता है, उस समय में नाश और उस समय में ध्रुव कैसे होगा ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। सब बात Logic से है परन्तु अभ्यास नहीं है, इसलिए अनजान को तो ऐसा लगता है कि यह ऐसा क्या कहते हैं ? यह जैनधर्म ऐसा होता होगा ! जैनधर्म की खबर ही कहाँ है ? सम्प्रदाय बनाकर बैठे हैं। आहा...हा... !

(जो जन्मक्षण हो वह) **स्थितिक्षण और नाशक्षण नहीं है...** क्या कहते हैं ? शिष्य का प्रश्न है कि जिस द्रव्य में जिस क्षण में जो पर्याय उत्पन्न होती है, उस क्षण में क्षय और ध्रौव्य उस समय नहीं हो सकता। उस समय नहीं हो सकता है। – ऐसा शिष्य का प्रश्न है न ? **(वह पृथक् ही होता है)...** (अर्थात्) प्रत्येक की स्थिति अलग होती है। द्रव्य में जिस समय-जिस अवसर में जो पर्याय होती है, उस पर्याय का क्षण और व्यय का क्षण और ध्रुव का क्षण अलग होता है। तीन का एक क्षण (होवे तो फिर) तीन कैसे हुए ? तीन का एक ही समय हो तो तीन कैसे ? इसलिए उनकी उत्पत्ति का क्षण अलग, व्यय का क्षण अलग और ध्रुव का (क्षण) अलग है – ऐसा शिष्य का प्रश्न है। आहा...हा... !

जो स्थितिक्षण हो... जो टिकने का समय हो, आत्मा और परमाणु को टिकने का समय हो, **वह दोनों के अन्तराल में...** आहा...हा... ! **(अर्थात् उत्पादक्षण और नाशक्षण के बीच) दृढ़तया रहता है, इसलिए...** स्थिति तो कब रहती ? कि उत्पन्न और व्यय है, उसके बीच में रहे तो। (उत्पाद और व्यय के) बीच में स्थिति रहे, अभाव हो फिर स्थिति रहे और उत्पन्न हो इससे पहले स्थिति रहे, तुम तो (कहते हो कि) एक समय में स्थिति... एक समय में स्थिति है। आहा...हा... ! क्या कहा ? (स्थितिक्षण है न ?) **(उत्पादक्षण और नाशक्षण के बीच) दृढ़तया रहता है, इसलिए (वह) जन्मक्षण और नाशक्षण नहीं है...** दो, उत्पत्ति और ध्रुव के-स्थिति के बोल हुए।

और जो नाशक्षण है वह... द्रव्य में जो नाश का काल है, आत्मा में अथवा परमाणु में अभाव का-नाश का काल है। (स्थितिक्षण, उत्पादक्षण और नाशक्षण के बीच) **दृढ़तया रहता है, इसलिए वह जन्मक्षण और नाशक्षण नहीं है...** आहा...हा... !

दृढ़तया रहता होने से वह स्थिति हुई। जन्म और नाशक्षण में बीच में दृढ़तया रहनेवाली स्थिति है, उसे टिकना (स्थियीत्व) कहते हैं परन्तु उत्पत्ति के साथ उपजे भी अवश्य और वह का वह टिके, वह का वह नष्ट हो? ऐसा प्रश्न है। वह का वह उत्पन्न हो, वह का वह क्षय हो, वह का वह टिके? ऐसा कैसे? कुछ समझ में आता है? आहा...हा...!

जो नाशक्षण है वह, – वस्तु उत्पन्न होकर और स्थिर रहकर फिर नाश को प्राप्त होती है इसलिए... पहले तो वस्तु उत्पन्न हो और टिक कर रहे, वस्तु उपजे, थोड़ी देर रहे और फिर नाश हो। क्या कहा? शिष्य का प्रश्न है। वस्तु उपजे और थोड़ी देर टिके और फिर नाश होवे। तुम तो (कहते हो कि) एक समय में तीनों होते हैं... एक समय में तीनों होते हैं। इतना तो समझ में आया न? ऐसा प्रश्न भी अभी कहाँ है?

वस्तु उत्पन्न होकर और स्थिर रहकर फिर नाश को प्राप्त होती है इसलिए... उत्पन्न हो, थोड़ी देर टिके फिर नष्ट हो या उत्पन्न हो और उसी समय नाश हो जाये? उत्पन्न हो और (तुरन्त नाश हो) तो टिकना नहीं रहता। उपजे उस समय नाश हो जाये तो टिकना तो रहता नहीं। ऐसा उपदेश! यहाँ तो तत्त्व की बात है। जिसे मूल तत्त्व का ज्ञान नहीं है, उसे धर्म ही नहीं होता। वह दया और व्रत करे वह सब संसार-राग है, (उसके फल में) नरक-निगोद में परिभ्रमण करता है। आहा...हा...! ऐसी बात है।

शिष्य का प्रश्न है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन (एक समय में है ऐसा) सुनकर उसे प्रश्न उत्पन्न हुआ है कि (जो) जन्म है-उत्पत्ति का क्षण है, वह स्थिति का और नाश का क्षण कैसे होगा? उत्पन्न होता है और स्थिर रहता है और उस समय फिर नाश होता है – ऐसा कैसे होगा? और स्थायी तत्त्व है, उसे उत्पाद और व्यय हो तो ऐसे कैसे होगा? बीच में हो, उपजे, टिके और नाश हो। उपजे पहले समय में, टिके बाद के समय में और नाश हो उसके बाद के समय में, परन्तु उत्पन्न हो और तुरन्त नाश हो – (ऐसा कैसे होगा)? प्रश्न समझ में आता है? तीन भेद बताते हैं इतना।

इस प्रकार तर्कपूर्वक विचार करने पर उत्पादादि का क्षणभेद हृदयभूमि में उतरता है... शिष्य कहता है कि इस प्रकार हमें समझ में आता है कि उत्पाद का काल अलग, ध्रुव का काल अलग; अभी तो उत्पन्न होता है, वह टिके कहाँ से? (इसलिए)

टिकना अलग और नाशपन का (समय) अलग। आहा...हा...! ऐसा प्रश्न है। बाड़ा में (सम्प्रदाय में) पड़े हैं, उन्होंने तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव सुना नहीं होगा कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव क्या है ? आहा...हा...! इस प्रकार हृदय भूमि में उतरता है **(अर्थात् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समय भिन्न-भिन्न होता है, एक नहीं होता, - ऐसी बात हमारे हृदय में जमती है।)...** शिष्य का प्रश्न है। यह हमें जमती है, क्योंकि उत्पन्न हो, उस उत्पन्न हुए का व्यय हो ? उत्पन्न होता है, उस समय स्थिर हो ? उत्पन्न हुआ, बीच में स्थिति रही और फिर नाश हो - ऐसे तीन भेद पड़ना चाहिए न ? तुम तो उत्पाद, व्यय और ध्रुव... उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक ही समय में कहते हो। आहा...हा...! अब इसका उत्तर (कहते हैं) ।

(यहाँ उपरोक्त शंका का समाधान किया जाता है :-) इस प्रकार उत्पादादि का क्षणभेद हृदयभूमि में तभी उतर सकता है, जब यह माना जाय कि द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न होता है,... देखा! द्रव्य उत्पन्न हो, द्रव्य व्यय हो और द्रव्य टिके - ऐसा हो तब तो तुम्हारी बात सही है। यहाँ तो द्रव्य की पर्याय उपजती है और द्रव्य की पर्याय उस समय व्यय होती है और उस समय में द्रव्यरूप से टिका रहे उसकी बात है। द्रव्य उत्पन्न होता है और द्रव्य व्यय को प्राप्त होता है - ऐसा कहाँ कहा है ? समझ में आया ? ऐसी जैन की बातें! व्यापारी को पूरे दिन पाप के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, उसमें फिर ऐसा सुनने को नहीं मिलता, अब उसे निर्णय क्या करना ? अरे...रे...! ढोर की तरह जिन्दगी चली जाती है, सारी जिन्दगी ढोर की तरह है, भले ही पाँच, पचास लाख करोड़ इकट्ठे किये हों। आहा...हा...!

वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर (द्वारा कथित) द्रव्य का-तत्त्व का स्वरूप इस प्रकार है, वह जिस प्रकार है उस प्रकार समझ में न आवे तो वह परिभ्रमण करेगा। आहा...हा...! भले ही वह व्रत और तप करता हो, तथापि परिभ्रमण कर मरेगा। आहा...हा...!

जब यह माना जाये कि द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही ध्रुव रहता है और स्वयं ही नाश को प्राप्त होता है। किन्तु ऐसा तो माना नहीं गया है;... ऐसा तुमसे किसने कहा ? ऐसा कहते हैं - द्रव्य-पदार्थ उत्पन्न होता है, द्रव्य नष्ट होता है, द्रव्य ध्रुव रहता है - ऐसा तुमसे किसने कहा ? हमने तो उसकी पर्याय के तीन प्रकार किये हैं, एक

समय में तीन पर्याय होती हैं। **....किन्तु ऐसा तो माना नहीं गया है...** आहा...हा...! है ? **पर्यायों के ही उत्पादादि हैं...** अवस्था का उत्पाद है। अवस्था क्या और द्रव्य क्या ? (इसकी भी बहुतों को खबर नहीं होती।)

द्रव्य जो स्थायी वस्तु है, उसकी यह तीन अवस्थाएँ हैं, ये तीन अवस्थाएँ होकर पूरा द्रव्य है। वह द्रव्य स्वयं उत्पन्न हो, नष्ट हो और ध्रुवरूप (रहे) - ऐसा तुझे किसने कहा ? वे तीन तो पर्यायें हैं। पर्याय उत्पन्न होती है, उस समय पूर्व की (पर्याय का) व्यय होता है और (इन दोनों समय कायम रहता है) वह ध्रुव है। एक समय में तीनों रहते हैं, आहा...हा...! यह समझकर भी फिर इसे जाना ध्रुव में है। आहा...हा...! उत्पाद, व्यय और ध्रुव पर्याय के हैं परन्तु यह तीन पर्याय के हैं - ऐसा समझकर फिर पर्याय में दृष्टि रखना है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! इसमें पर्याय आ जाती है। जो पर्याय त्रिकाली ज्ञायक भगवान का आश्रय करती है, वहाँ ज्ञायकभाव भी आ जाता है और पर्याय निर्णय करती है, वह पर्याय भी आ जाती है। वह निर्णय करती है, तब मैं तो परमात्मा-निज परमात्मद्रव्य हूँ, मैं पर्याय हूँ - ऐसा नहीं। आहा...हा...! मैं तो निज परमात्मद्रव्य त्रिकाली निरावरण ऐसी अन्दर चीज हूँ, अखण्ड हूँ, एक हूँ, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय हूँ, ज्ञान में प्रत्यक्ष ज्ञात हो उसस्वरूप हूँ, अविनश्वर हूँ, शुद्ध पारणामिक सहज स्वभावभाव लक्षण वह निज परमात्मद्रव्य ही मैं हूँ। पर्याय ऐसा जानती है कि यह मैं हूँ। पर्याय ऐसा नहीं जानती कि मैं पर्याय हूँ परन्तु पर्याय आ गयी। पर्याय ने निर्णय किया न ? निर्णय करनेवाले का अस्तित्व आ गया। दृष्टि पड़ी है ध्रुव पर, यह ध्रुव है, वह मैं हूँ। आहा...हा...! वीतराग के घर की ऐसी बातें हैं।

पर्यायों के ही उत्पादादि हैं... है ? पर्याय के उत्पाद-व्यय हैं। **(यह स्वीकार और सिद्ध किया गया है)...** ऐसा स्वीकार और सिद्ध किया गया है। पर्याय स्वयं अवस्था है। वस्तु की एक अवस्था उत्पन्न होती है, वस्तु उत्पन्न नहीं होती; वस्तु तो अनादि है, उसकी पर्याय एक समय में उत्पन्न होती है; उसी समय पूर्व की पर्याय का व्यय होता है; उसी समय में स्थायी तत्त्व है। तूने यह कहा कि उत्पाद और व्यय के बीच ध्रुव है, उत्पन्न हो, थोड़ी देर टिके, फिर व्यय हो, ऐसा कहा न ? प्रश्न भी सूक्ष्म है। उत्पन्न हो,

थोड़ी देर टिके और फिर नष्ट हो जाये। नाश और उत्पाद के बीच ध्रुव होता है (तो कहते हैं कि) ऐसा नहीं है। हमने तो पर्यायों के उत्पाद, व्यय और ध्रुव कहे हैं; द्रव्य के उत्पाद, व्यय और ध्रुव नहीं कहे हैं। आहा...हा...!

वहाँ क्षणभेद-कहाँ से हो सकता है?... जहाँ पर्याय के तीन भेद स्वीकार किये गये हैं, वहाँ कालभेद, क्षणभेद, समयभेद कहाँ से हो सकते हैं? आहा...हा...! द्रव्य के (उत्पादादिक) स्वीकार किये जायें तो ऐसा होगा परन्तु द्रव्य का स्वीकार तो त्रिकाली द्रव्य है। द्रव्य उत्पन्न नहीं होता, द्रव्य नष्ट नहीं होता, द्रव्य टिकता भी नहीं, वह तो एक अंश उत्पन्न होता है, एक अंश व्यय होता है और एक अंश ध्रुव रहता है। यह तीनों मिलकर द्रव्य है। आहा...हा...! तथापि सम्यग्दर्शन का विषय तीन नहीं है। आहा...हा...! यह तो ज्ञान कराया है। (सम्यग्दर्शन का) विषय तो ध्रुव है।

परमपारणामिक सहजात्मस्वरूप भगवान! सहजात्मस्वरूप परमात्मस्वरूप पूर्ण ज्ञान आनन्द से भरपूर परमात्मा! स्वयं परमात्मा है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय आ गयी। पूर्व की पर्याय का व्यय आया, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति आयी। मिथ्यात्व का व्यय आया, समकित की उत्पत्ति आयी और ध्रुव (कायम) रहा परन्तु इसके विषय में उत्पाद-व्यय-पर्याय नहीं आते। आहा...हा...! यह धर्म ऐसा किस प्रकार का होगा? स्थानकवासी उपाश्रय में जायें तो सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, छहपरखी ऐसा करो और वैसा करो – ऐसा होता है। मन्दिरमार्गी में जाओ तो भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करो। दिगम्बर में जाओ तो प्रतिमा ले लो, वस्त्रादि का त्याग कर दो – (ऐसा आता है) परन्तु बापू! मूल तत्त्व की दृष्टि के बिना (यह सब व्यर्थ है)। भावभासन क्या है? उसके ज्ञान में यह स्थिति है – ऐसा भासन हुए बिना उसकी प्रतीति किस प्रकार होगी? जो वस्तु ज्ञात नहीं हुई उसकी प्रतीति कैसी? अपने आ गया है कि गधे के सींग नहीं है तो इसे नहीं दिखते तो उनकी प्रतीति किस प्रकार हो? (समयसार) १७-१८ गाथा! आहा...हा...! जिस वस्तु का अस्तित्व ख्याल में ही नहीं और ख्याल ही नहीं, उसकी श्रद्धा भी किस प्रकार? आहा...हा...! ऐसा बाड़ा बाँधकर बेचारे अनन्त काल से परिभ्रमण करते हैं। 'बाड़ा बाँधकर बैठे रे, अपना पंथ करने' वस्तु भगवान! जिनेन्द्रदेव केवलज्ञानी ने वस्तु का जो स्वरूप देखा, उस प्रकार न समझकर, समझे बिना सामायिक

और प्रौषध करके (माना कि धर्म हुआ)। धूल में भी नहीं। सामायिक भी नहीं और प्रतिक्रमण भी नहीं, यह वर्षीतप करते हैं, सब एक के बिना की शून्य हैं। मिथ्यात्व का पाप बढ़ाते हैं। आहा...हा...! आत्मा में पर का ग्रहण-त्याग नहीं होता और मानता है कि मैंने इतना छोड़ा, मैंने इतना त्यागा, यह सब मिथ्यात्व है। आहा...हा...! कठिन बात है।

(यहाँ पर कहते हैं कि) मिथ्यात्व की उत्पत्ति के समय में पूर्व की मिथ्यात्व की पर्याय का व्यय है, दोनों का समय एक है। आहा...हा...! और समकित की उत्पत्ति के समय उपादान की पर्याय का क्षय है, पूर्व की पर्याय उपादान है। स्वामी कार्तिकेय में आया है - पूर्व पर्याययुक्तं द्रव्य उपादान बाद की उत्तरपर्याययुक्तं द्रव्य उपादेय - अर्थात् जिस समय में समकित हुआ, उसी समय में मिथ्यात्व व्यय है। पूर्व का जो उपादान था, मिथ्यात्व, हाँ! इस समकित का उपादान मिथ्यात्व! परन्तु उसका क्षय — उपादान का क्षय वह कारण है - भाषा ऐसी है। आहा...हा...! अव्रत का भाव; सच्चा व्रत, हाँ! अभी व्रत कहाँ है? यह अव्रत का भाव फिर जो व्रत है - स्थिरता है, उसका उपादान अव्रत है, उसका अभाव उपादान है। आहा...हा...! बात तो (ऐसी है कि) इसमें जो चारित्रदोष है, उस चारित्रदोष का अभाव चारित्र की उत्पत्ति का कारण है। आहा...हा...!

श्रोता - पूर्व की पर्याय का व्यय...।

पूज्य गुरुदेवश्री - एक समय में होता ही है, एक उत्पन्न होता है और व्यय होता है; इसलिए तीनों को सत् कहा है न? भले ही उत्पाद एक ही समय की पर्याय है, एक ही उत्पाद रहता है, तथापि उत्पाद को और ध्रुव को सत् कहा है - ऐसा नहीं है; 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' कहा है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म है, भाई! नयी पर्याय उत्पन्न हो पूर्व पर्याय का व्यय और नित्य का टिकना - ऐसा करके सत् कहा है। अकेले ध्रुव को सत् नहीं कहा, अकेले उत्पाद को सत् नहीं कहा है, अकेले व्यय को सत् नहीं कहा है। आहा...हा...! 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' और 'सत्द्रव्य लक्षणं' यह सत् द्रव्य का लक्षण है। आहा...हा...!

यह समझाते हैं :- जैसे कुम्हार,... देखो! इसमें गड़बड़ उत्पन्न हो - ऐसा है। **कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कार की उपस्थिति**

में... देखा! यह निमित्त हैं, इनकी हाजिरी में; घड़े की पर्याय इनसे नहीं हुई परन्तु इनकी उपस्थिति है। आहा...हा...! **कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कार की उपस्थिति में...** संस्कार की उपस्थिति में... **जो रामपात्र का जन्मक्षण होता है...** रामपात्र का जन्म होता है, रामपात्र! सकोरा! यह एक दृष्टान्त आता है – एक बहिन थी, उसे धर्म का कुछ नहीं था। फिर उसने अन्त में (मरण के समय) एक लड़के को (ऐसा हुआ कि) किसी प्रकार यह राम का नाम लेती है? (इसलिए) सकोरा बतलाया (और पूछा कि) बा, इसका नाम क्या है? वह कहती, सकोरा! उसे कहलवाना था रामपात्र! उन लोगों में आता है। राम मोक्ष पधारे परन्तु वे तो कर्ता मानते हैं न? उन्हें ऐसा कि (अन्त समय में) राम का नाम आवे तो भी ठीक होता है। इसलिए सकोरा बताया (और पूछा) बा! यह क्या है? तो कहा सकोरा; रामपात्र है ऐसा तो नहीं कहती। आहा...हा...!

क्या कहा? **कुम्हार, दण्ड, चक्र और डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कार...** यह निमित्त, निमित्त है। निमित्त की **उपस्थिति में...** निमित्त से नहीं परन्तु निमित्त की उपस्थिति में, घट की पर्याय होती है, तब अनुकूल निमित्त हो परन्तु उस अनुकूल निमित्त से घड़ा नहीं हुआ। यह दण्ड, चक्र और कुम्हार से घट की पर्याय नहीं हुई परन्तु उपस्थिति है। पहले आ गया है कि उचित... उचित...! उचित (निमित्त की) उपस्थिति में कहा है – ऐसा पकड़े। इसका बहुत विरोध आया है। 'निमित्त से नहीं होता, निमित्त से नहीं होता (ऐसा कहकर) एकान्त करते हैं।' करुणादीप (एक समाचार पत्र) में यही आता है न? निमित्त होता है परन्तु वह पर को स्पर्श नहीं करता। इस कुम्हार से घड़ा होता ही नहीं। इसी प्रकार दण्ड, चक्र से भी घड़ा नहीं होता। आहा...हा...! घड़ा तो मिट्टी की पर्याय से होता है। आहा...हा...! घड़ा मिट्टी की पर्याय है, मिट्टी से घड़ा हुआ है, वह मिट्टी की पर्याय है, द्रव्य से वह पर्याय हुई है। कुम्हार द्रव्य है कि उससे यह पर्याय हो? क्या कहा समझ में आया? आहा...हा...! कुम्हार (मिट्टीरूप) द्रव्य है कि उसकी पर्याय यह घड़ा है? आहा...हा...! दण्ड, चक्र आदि हो यह मिट्टी के घड़े की वस्तु है कि (जिससे) उनकी यह पर्याय है? आहा...हा...! थोड़े अन्तर से बहुत अन्तर! देखो! (यह कहा) संस्कार की उपस्थिति में। इसके बिना नहीं होता – ऐसा कहते हैं।

रामपात्र का जन्मक्षण होता है... रामपात्र मिट्टी से उत्पन्न हुआ है। **वही मृत्तिकापिण्ड का नाशक्षण है...** रामपात्र उत्पन्न हुआ, उसी क्षण में मिट्टी के पिण्ड का व्यय होता है। मिट्टी के पिण्ड का व्यय-नाश होकर घट की पर्याय होती है। आहा...हा...! यह दण्ड, चक्र घट की पर्याय को उत्पन्न नहीं करते परन्तु उनकी उपस्थिति होती है। आहा...हा...! **वही मृत्तिकापिण्ड का नाशक्षण होता है...** किसकी? घड़ा उत्पन्न हुआ वह, रामपात्र (उत्पन्न हुआ, वह) रामपात्र का जन्मक्षण ही मृत्तिकापिण्ड का नाशक्षण है **और वही दोनों कोटियों में रहनेवाले मिट्टीपन का स्थितिक्षण होता है...** वह (शिष्य) कहता था कि उत्पाद और व्यय के बीच ध्रुव होता है। उत्पन्न हो, कुछ टिके फिर नष्ट हो न? परन्तु तू बात करता है द्रव्य की; और यहाँ तो पर्याय की बात है, यह तीनों पर्यायें है। आहा...हा...! इस पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता और व्ययरहित द्रव्य नहीं होता, ध्रुव रहित द्रव्य नहीं होता। इन तीनों का क्षण तो एक ही है। आहा...हा...! परन्तु इसमें धर्म क्या है? बापू! जिसने ऐसा जाना उसे आत्मा में धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन की पर्याय स्व के लक्ष्य से पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय स्वतन्त्र है। वह पर्याय उत्पन्न हुई, उस क्षण में मिथ्यात्व का व्यय है और उसी समय आत्मा ध्रौव्य-अस्ति है। जिसके लक्ष्य से हुआ, उससे हुआ नहीं परन्तु उसके लक्ष्य से हुआ। आहा...हा...!

प्रश्न - उसका जन्मक्षण था तब हुआ न?

समाधान - वह तो उसका जन्मक्षण था। इसलिए ध्रुव में से-आत्मा में से हुआ और पूर्व की मिथ्यात्व (पर्याय का) व्यय हुआ। ऐसा यहाँ चलता है, बाहर में (नहीं चलता) बनियों को अकेले पाप के कारण फुरसत नहीं है, पूरे दिन धन्धा... धन्धा... धन्धा, अकेले पाप के पोटले बाँधते हैं और फुरसत हो तो स्त्री-पुत्रादिक के साथ क्रीड़ा करता है फिर छह-सात घण्टे नींद में... यह मजदूर जैसी दशा है। आहा...हा...! भगवान क्या कहते हैं और तत्त्व क्या है? इसका निर्णय करने का समय नहीं मिलता। सुनने का (समय) नहीं मिलता, वह निर्णय कब करेगा? आहा...हा...! यह तो दया पालो, व्रत पालो, ब्रह्मचर्य ले लो, अरे...! परन्तु यह ब्रह्मचर्य ही शुभभाव है, धर्म कहाँ था? काया से शील-ब्रह्मचर्य पालन, वह तो पुण्य-शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं है। आहा...हा...!

जगत् को कठिन पड़ता है अपूर्व बात है। अनन्त... अनन्त काल में यह बात इस प्रकार से नहीं समझा, दूसरी प्रकार से खतौनी करके इसमें सब विपरीतता की है। आहा...हा... ! अथवा इस प्रकार जाना हो तो उसका प्रयोजन दूसरा होता है – मान प्राप्त करने का (होता है)। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है – तो वह भी असत् ज्ञान हुआ, ज्ञान सच्चा होने पर भी प्रयोजन दूसरा है, दूसरे मुझे जानें, इसे यह आता है, इस हेतु से दूसरों से कहे वह भी मिथ्याज्ञान है। आहा...हा... ! वीतराग... वीतराग... वीतराग... !

वही दोनों कोटियों में रहनेवाले मिट्टीपन का स्थितिक्षण होता है; इसी प्रकार अन्तरंग और बहिरंग... यह क्या कहा ? पहले रामपात्र का दृष्टान्त दिया था। रामपात्र में कुम्हार, चाक आदि संस्कार का निमित्त होता है परन्तु उससे उत्पन्न नहीं होता। अब समस्त द्रव्यों पर घटित करते हैं। **इसी प्रकार अन्तरंग और बहिरंग साधनों द्वारा...** है ? बहिरंग साधन ! एक अन्तर साधन है, एक निमित्त है। उसके साथ साधन का आरोप दिया। आहा...हा... ! अन्तरंग-आत्मा की स्थिति (और) प्रत्येक द्रव्य की अपनी (स्थिति) और बहिरंग-बाह्य का निमित्त इनके **साधनों द्वारा किये जानेवाले संस्कारों की उपस्थिति में...** वहाँ संस्कार की उपस्थिति है। कुम्हार को ख्याल होता है न ? घड़ा ऐसे करना। दूसरे को ख्याल होता है कि इसे ऐसे करना ? शीषपैन को ऐसे करना, अमुक करना – ऐसा ख्याल होता है-संस्कार होता है परन्तु उस संस्कार की उपस्थिति में कार्य स्वतन्त्र होता है, संस्कार के कारण नहीं। आहा...हा... ! एक बीड़ी का व्यापारी बीड़ी में होशियार होता है। बटन का व्यापार है न ? बटन, पैन उसमें होशियारी है, वह संस्कार है परन्तु इस संस्कार से उसमें कुछ होता है – ऐसा नहीं है परन्तु संस्कार की उपस्थिति होती है – ऐसा है। इसमें विवाद उठाते हैं।

अन्तरंग और बहिरंग साधनोंवाला किये जानेवाले संस्कारों की उपस्थिति में... देखा ! आहा...हा... ! (दृष्टान्त में) ऐसा था न ? **डोरी द्वारा आरोपित किये जानेवाले संस्कार की उपस्थिति में...** रामपात्र में ! रामपात्र – यह आत्मा रामपात्र है ! आहा...हा... ! आत्माराम है, उसे निमित्तरूप गुरु के संस्कार आदि हों परन्तु सम्यग्दर्शन का उत्पन्न होना स्वयं से होता है, वह पर से नहीं होता, वह आत्माराम ! 'निज पद रमैं सो राम

कहिये' - भगवान स्वयं अपने स्वरूप में रमे तो राम कहते हैं। आहा...हा...! यह आत्माराम! राग में एकाकार होकर रमता है, उसे हराम कहते हैं। आहा...हा...! ऐसा है।

अन्तरंग और बहिरंग साधनों द्वारा... इसमें बहिरंग साधन आया - निमित्त आया। देखो!

श्रोता - उपस्थिति न हो तो नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री - यह प्रश्न ही नहीं है न? यहाँ तो होने के काल में वहाँ यह होता है, इतना बस! पहले तो यह बात आ गयी है कि अपने-अपने अवसर में होता है, उसका जन्मक्षण भी इसमें आ गया। जन्मक्षण है, उस काल में ऐसे निमित्त होते हैं। निमित्त उसे कहते हैं कि जो अनुकूल हो, परन्तु अनुकूल हो, इसलिए पर के लिए कुछ करता है - ऐसा नहीं है। थोड़े से अन्तर में बड़ा अन्तर है। आहा...हा...! (कुम्हार को) ख्याल में होता है कि इसका घड़ा ऐसा होता है, इसका ऐसा होता है, रामपात्र ऐसे होता है अथवा इसकी पर्याय ऐसे उत्पन्न होती है - ऐसा ख्याल होता है, उस ख्याल की उपस्थिति में वहाँ सामने पर्याय उत्पन्न होती है, वह उसके कारण होती है - अन्तरंग कारण से (होती है)। आहा...हा...!

अन्तरंग और बहिरंग साधनों द्वारा... यहाँ यह सब विवाद आता है। 'सोनगढ़वाले' बाह्यसाधन नहीं मानते। (कहते हैं कि) बाह्यसाधन बिना कार्य होता है परन्तु दो के बिना कार्य नहीं होता... परन्तु जो अन्तरंग साधन है, उसमें बाह्यसाधन होता है... होता है परन्तु उससे यह नहीं होता। संवत् २०१३ की साल में (एक पण्डित को विरोध था), अब निश्चित किया कि सोनगढ़वाले निमित्त को नहीं मानते - ऐसा नहीं है, वे निमित्त को मानते हैं परन्तु निमित्त से कार्य नहीं होता - ऐसा मानते हैं - ऐसा समाचार-पत्र में आया है। आहा...हा...! अर्थात् गहराई से विचारने का है कहाँ? व्यापार के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, फिर सिर पर बैठा हो वह जो कहे उसे जय महाराज, जय प्रमाण! जाओ! आहा...हा...!

अंतरंग और बहिरंग साधनों द्वारा... देखा! **किये जानेवाले...** किये जानेवाले **संस्कारों की उपस्थिति में, जो उत्तरपर्याय का जन्मक्षण होता है...** जो उत्तरपर्याय

होने की है, उसका जन्मक्षण होता है, **वही पूर्व पर्याय का नाशक्षण होता है, और वही दोनों कोटियों में रहनेवाले द्रव्यत्व का स्थितिक्षण होता है।...** आचार्यों ने करुणा करके कितना (समाहित कर दिया है) ! सरल भाषा, सादी भाषा वह तो संस्कृत में रचित है। यह तो गुजराती है।

और जैसे रामपात्र में, मृत्तिकापिण्ड में और मिट्टीपन में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येक रूप में (प्रत्येक पृथक्-पृथक्) वर्तते होने पर भी... अब यहाँ द्रव्य सिद्ध करना है। आहा...हा... ! जैसे रामपात्र उत्पन्न होता है, मृत्तिकापिण्ड का व्यय होता है और मिट्टीपने से कायम रहता है परन्तु इसमें **उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येक रूप में (प्रत्येक पृथक्-पृथक्) वर्तते होने पर भी...** पृथक्-पृथक् प्रकार के लक्षणों से वर्तते होने पर भी... एक काल में अलग-अलग प्रकार है, उत्पाद का लक्षण अलग, व्यय का लक्षण अलग और ध्रुव का अलग है। आहा...हा... ! **एक समय में ही देखे जाते हैं...** मिट्टी के पिण्ड का नाश घट की उत्पत्ति और मिट्टी का कायम रहना एक समय में देखा जाता है। एक समय में ही देखा जाता है। आहा...हा... !

उसी प्रकार... पहला दृष्टान्त हुआ। **उत्तरपर्याय में...** अर्थात् उत्पन्न होती है उस पर्याय में। उत्पन्न होती है उस पर्याय में, **पूर्वपर्याय में...** (अर्थात्) व्यय में। आहा...हा... ! **और द्रव्यत्व में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येकतया (एक-एक) प्रवर्तमान होने पर भी...** प्रत्येक एक ही समय में भिन्न-भिन्न वर्तता होने पर भी आहा...हा... ! **त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य में वे सम्पूर्णतया...** आहा...हा... ! वे तीनों द्रव्य में समाहित हो जाते हैं। उनका जो द्रव्य है, (उसमें समा जाते हैं)। तीनों पर्यायें तीन द्रव्य नहीं हैं। तीन पर्यायें तीन द्रव्य नहीं हैं, तीनों पर्यायें द्रव्य में है, वे द्रव्य है। पर्याय पर्याय के आश्रित कही थी, फिर पर्याय द्रव्य के के आश्रित कही। आहा...हा... ! बात तो बहुत आगे आ गयी है।

द्रव्यत्व में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य प्रत्येकतया (एक-एक) प्रवर्तमान होने पर भी... (अर्थात्) उत्पाद, उत्पादरूप से, व्यय व्ययरूप से, ध्रौव्य ध्रौव्यरूप से (वर्तते) होने पर भी, **त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य...** आहा...हा... ! इन तीनों स्वभाव को स्पर्शनेवाला द्रव्य...; द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों स्वभाव को धारण करता है। ऐसे स्वभाव

को द्रव्य धारण करता है। आहा...हा...! है ? एक आत्मा में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, मिथ्यात्व का व्यय और ध्रुववस्तु – ये तीन होने पर भी प्रत्येकरूप से तीन होने पर भी एक द्रव्य का स्वरूप है, दूसरे द्रव्य का स्वरूप नहीं है। यह इनके द्रव्य का स्वरूप है। समझ में आया ? आहा...हा...! (इस प्रकार) **प्रवर्तमान होने पर भी त्रिस्वभावस्पर्शी...** देखा! त्रिस्वभावस्पर्शी! द्रव्य त्रिस्वभावस्पर्शी है। यह उत्पाद, व्यय और ध्रुव स्वभाव है और स्वभाव में द्रव्य वर्तता है – ऐसा पहले आ गया है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव स्वभाव है और स्वभाव में द्रव्य सदा वर्तता है। आहा...हा...! इस प्रकार यहाँ पर उत्पाद, व्यय और ध्रुव प्रत्येक तीन होने पर भी त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य को स्वयं स्पर्श करते हैं। आहा...हा...!

त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य में वे सम्पूर्णतया (तीनों एक साथ) एक समय में ही देखे जाते हैं।... द्रव्य में एक समय में तीनों एक साथ देखे जाते हैं। पहले (सरल था) – इच्छामि पडिक्कमा ईरिया, विहिया... इच्छामि दुक्कणं... हो गया। लो, तस्ससूतरि-करणेनन... हो गयी सामायिक! धूल भी नहीं कुछ। भाषा होती है, वह जड़ है; अन्दर विकल्प उत्पन्न होता है, वह राग है; भगवान भाषा और राग से भिन्न है, इसका तो पता नहीं है। आहा...हा...! उसे सामायिक कहाँ से होगी ? आहा...हा...! सामायिक अर्थात् समता का लाभ। समता का लाभ कब होता है ? वीतरागस्वरूप ध्रुव आत्मा है, उस पर लक्ष्य करके जो वीतरागता की उत्पत्ति होती है, तब रागपने का व्यय होता है और वीतरागपने की उत्पत्ति होती है, तब अभी पहला समकित होता है, फिर उसमें स्थिर हो – स्वरूप में स्थिर हो, तब सामायिक होती है। आहा...हा...! ऐसा है।

यह समझ में आता है न ? **त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य में वे सम्पूर्णतया (तीनों एक साथ) एक समय में ही देखे जाते हैं।...** उत्पाद का समय अलग, व्यय का समय अलग, ध्रुव का अलग – ऐसा जो तूने कहा था, वैसा नहीं है। आहा...हा...! यह त्रिस्पर्शी भाव-तीन स्पर्शी भाव द्रव्य है। आहा...हा...! अन्त में वहाँ ले गये हैं। इतना अधिक कह-कहकर (यहाँ ले आये कि) त्रिस्पर्शी द्रव्य है। एक स्पर्शी पर्याय है, उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक स्पर्शी पर्याय है और द्रव्य है, वह त्रिस्पर्शी द्रव्य है। आहा...हा...! एक घण्टा ऐसा आवे उसमें कभी बाप-दादा ने सुना नहीं हो। **एक समय में ही देखे जाते हैं।...** किसमें ? **त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य में...** तीन स्वभाव से स्पर्शित द्रव्य। आहा...हा...!

और जैसे रामपात्र,... (अर्थात्) उत्पत्ति, **मृत्तिकापिण्ड...** व्यय **मिट्टीपन में प्रवर्तमान...** मिट्टी ध्रुव (उसमें) **प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य मिट्टी ही हैं...** तीनों मिट्टी ही हैं। आहा...हा...! इसी प्रकार सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, मिथ्यात्व का व्यय और आत्मा का ध्रुवपना ये तीनों ही आत्मा ही हैं। तीनों आत्मा हैं। ३८ वीं गाथा में कहते हैं कि त्रिकाली आत्मा वही वास्तविक आत्मा है (नियमसार) शुद्धभाव अधिकार की पहली गाथा - **जीवादिबहित्तच्चंहेयमुवादेयमप्पणो अप्पा** त्रिकाली स्वभावभाव भगवान परम स्वभावस्वरूप ही एक आदरणीय है। आहा...हा...! यह वस्तु स्थिति है।

यहाँ तो (ज्ञान कराते हैं कि) **रामपात्र, मृत्तिकापिण्ड तथा मिट्टीपन में प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य मिट्टी ही हैं...** पहले कहा था कि त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य ही है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्य ही है। इस प्रकार यह मिट्टी ही है। आहा...हा...! इसमें याद क्या रखना? ऐसा किस प्रकार का उपदेश? पहले कुछ समझ में तो आता था - लोगस्स उज्जजोयगरे धम्म तित्थयरेझिणे... जाओ! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू!

अरे...रे...! भवभ्रमण का अभाव... भवभ्रमण-चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है, कौवे के, कुत्ते के... नरक के भव करके (मर गया है)। इस भव का अभाव सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होगा और यह सम्यग्दर्शन आत्मा में द्रव्य के आश्रय से होगा, दूसरे के आश्रय से नहीं होगा। आहा...हा...!

जैसे रामपात्र, मृत्तिकापिण्ड तथा मिट्टीपन में प्रवर्तमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य मिट्टी ही है, अन्य वस्तु नहीं है... आहा...हा...! देखा? वहाँ अन्य वस्तु नहीं आयी (इसलिए) अन्य वस्तु से वह नहीं हुआ। आहा...हा...! **उसी प्रकार...** प्रत्येक द्रव्य की **उत्तर पर्याय...** अर्थात् बाद की पर्याय **पूर्व पर्याय और द्रव्यत्व में प्रवर्तमान...** आहा...हा...! **उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य द्रव्य ही हैं...** यह उत्पाद, व्यय और ध्रुव वस्तु ही है। दूसरी वस्तु की उपस्थिति हो परन्तु उपस्थिति है, उस वस्तु से यह वस्तु है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अद्भुत गाथा! उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों एक ही द्रव्य है। दूसरे को बहिरंग साधन - निमित्त भले ही कहा हो, इस कारण अवस्तु हो जाती है, उसे वस्तु होती है और अपने से नहीं होती - ऐसा नहीं है। **अन्य पदार्थ नहीं।** विशेष कहेंगे...!

गाथा - १०३

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्यनेकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति -

पाडुब्भवदि य अण्णो पज्जाओ पज्जओ वयदि अण्णो।
दव्वस्स तं पि दव्वं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं।।१०३।।

प्रादुर्भवति चान्यः पर्यायः पर्यायो व्येति अन्यः।
द्रव्यस्य तदपि द्रव्यं नैव प्रणष्टं नोत्पन्नम्।।१०३।।

इह हि यथा किलैकस्त्र्यणुकः समानजातीयोऽनेकद्रव्यपर्यायो विनश्यत्यन्यश्चतुरणुकः प्रजायते, ते तु त्रयश्चत्वारो वा पुद्गला अविनष्टानुत्पन्ना एवावतिष्ठन्ते; तथा सर्वेऽपि समानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च, समानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते। यथा चैको मनुष्यत्वलक्षणोऽसमानजातीयो द्रव्यपर्यायो विनश्यत्यन्यस्त्रिदशत्वलक्षणः प्रजायते, तौ च जीवपुद्गलौ अविनष्टानुत्पन्नावेवावतिष्ठेते; तथा सर्वेऽप्यसमानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च, असमानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते। एवमात्मना ध्रुवाणि द्रव्यपर्यायद्वारेणोत्पाद-व्ययीभूतान्यु-त्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्याणि भवन्ति।।१०३।।

एवमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपलक्षणव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतम्। अथ द्रव्यपर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्याणि दर्शयति - **पाडुब्भवदि य** प्रादुर्भवति च जायते। **अण्णो** अन्यः कश्चिदपूर्वानन्तज्ञानसुखादिगुणास्पदभूतः शाश्वतिकः। स कः। **पज्जाओ** परमात्मावाप्तिरूपः स्वभावद्रव्यपर्यायः। **पज्जओ वयदि अण्णो** पर्यायो व्येति विनश्यति। कथंभूतः। अन्यः पूर्वोक्तमोक्षपर्यायाद्भिन्नो निश्चयरत्न त्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपस्यैव मोक्षपर्यायस्योपादानकारणभूतः। कस्य संबन्धी पर्यायः। **दव्वस्स** परमात्मद्रव्यस्य। **तं पि दव्वं** तदपि परमात्मद्रव्यं **णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं** शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नव नष्टं न चोत्पन्नम्। अथवा संसारिजीवापेक्षया देवादिरूपो विभावद्रव्यपर्यायो जायते मनुष्यादिरूपो विनश्यति तदेव जीवद्रव्यं निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टं, पुद्गलद्रव्यं वा द्व्यणुकादिस्कन्धरूप-स्वजातीयविभावद्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेऽपि निश्चयेन न चोत्पन्न न च विनष्टमिति। ततः स्थितं

यतः कारणादुत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण द्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेऽपि द्रव्यस्य विनाशो नास्ति, ततः कारणाद्रव्यपर्याया अपि द्रव्यलक्षणं भवन्तीत्यभिप्रायः।।१०३।।

अब, द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को अनेकद्रव्यपर्याय[१] द्वारा विचारते हैं –

उपजे दरव की अन्य पर्यय, अन्य कोई विनशती।
पर द्रव्य न तो नष्ट है, उत्पन्न भी होता नहीं॥

अन्वयार्थ : [द्रव्यस्य] द्रव्य की **[अन्यः पर्यायः]** अन्य पर्याय **[प्रादुर्भवति]** उत्पन्न होती है **[च]** और **[अन्यः पर्यायः]** कोई अन्य पर्याय **[व्येति]** नष्ट होती है; **[तदपि]** फिर भी **[द्रव्यं]** द्रव्य **[प्रणष्टं न एव]** न तो नष्ट है, **[उत्पन्नं न]** न उत्पन्न है (– वह ध्रुव है।)

टीका : यहाँ (विश्व में) जैसे एक त्रि-अणुक समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है और दूसरी चतुरणुक[२] (समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है; परन्तु वे तीन या चार पुद्गल (परमाणु) तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं (–ध्रुव हैं); इसी प्रकार सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें विनष्ट होती हैं और उत्पन्न होती हैं, किन्तु समानजातीय द्रव्य तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं (–ध्रुव हैं)।

और, जैसे एक मनुष्यत्वस्वरूप असमानजातीय द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है और दूसरी देवत्वस्वरूप (असमानजातीय द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है, परन्तु वह जीव और पुद्गल तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं; इसी प्रकार सभी असमानजातीय द्रव्यपर्यायें विनष्ट हो जाती हैं और उत्पन्न होती हैं, परन्तु असमानजातीय द्रव्य तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं।

इस प्रकार अपने से (द्रव्यरूप[३] से) ध्रुव और द्रव्यपर्यायों द्वारा उत्पाद-व्ययरूप ऐसे द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं॥ १०३॥

१. अनेकद्रव्यपर्याय = एक से अधिक द्रव्यों के संयोग से होनेवाली पर्याय।
२. चतुरणुक = चार अणुओं का (परमाणुओं का) बना हुआ स्कंध।
३. 'द्रव्य' शब्द मुख्यतया दो अर्थों में प्रयुक्त होता है : (१) एक तो सामान्य - विशेष के पिण्ड को अर्थात् वस्तु को द्रव्य कहा जाता है; जैसे - 'द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है'; (२) दूसरे - वस्तु के सामान्य अंश को भी द्रव्य कहा जाता है; जैसे 'द्रव्यार्थिकनय' अर्थात् सामान्यांशग्राही नय। जहाँ जो अर्थ घटित होता होवे वहाँ वह अर्थ समझना चाहिए।

प्रवचन नं. ११३ **दिनाङ्क २३ जून १९७९**

प्रवचनसार गाथा १०३। गाथा १०२ में आ गया है कि प्रत्येक पदार्थ - यह आत्मा है या परमाणु; प्रत्येक द्रव्य उसकी पर्याय का जन्मक्षण हो, तब उत्पन्न होता है। समझ में आया ? तत्त्व की सूक्ष्म बात चलती है। परमाणु अथवा आत्मा की पर्याय उत्पन्न होने का काल हो वह जन्मक्षण है, वह तब होती है, आगे-पीछे नहीं होती और दूसरे के हस्तक्षेप से नहीं होती। आहा...हा...!

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु उसकी वर्तमान समय की अवस्था से उत्पन्न होता है, वह जन्मक्षण है। आहा...हा...! ऐसा निर्णय करे कि आत्मा में भी जिस समय जो अवस्था होनी है, वह होती है तो उसका तात्पर्य द्रव्यस्वभाव पर इसकी नजर जाये - ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म बहुत सूक्ष्म है। अन्दर आत्मवस्तु देह से भिन्न है, यह (शरीर) तो मिट्टी है, जड़, हड्डियाँ, चमड़ी है, अन्दर चैतन्य है, उसकी भी जिस समय में जो अवस्था होनी है, वह उसका जन्मक्षण है। वह होनी थी सो हुई। अब, उसमें धर्म क्या करना ? (तो कहते हैं कि) जो होनी है, वह होती है। यह द्रव्य की पर्याय है तो उसे पर्याय में होती है, उसकी नजर छोड़कर और द्रव्य की नजर करना। आहा...हा...! क्योंकि वह तो होगी ही, उस समय में पर्याय होगी। जिस समय जो पर्याय होनी है, वह होगी, इसलिए उसके अवसर में वह होगी - ऐसा निर्णय करनेवाला, पर्याय को द्रव्य की ओर झुका लेगा। वस्तु भगवान चिदानन्द प्रभु की ओर पर्याय झुके तो उसे आनन्द का अंश-स्वाद आवे। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द! यह इन्द्रियों के विषयों में कल्पना से मानता है, वह तो अज्ञानी, मूढ़ जीव पर में, स्त्री में, शरीर में, इन्द्रिय के विषय में सुख मानता है, वह तो मिथ्याभ्रम है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है और वह जिसे चाहिए हो तो उसे वर्तमान पर्याय होती है, उस-उस समय में होती है, उसकी ओर की नजर छोड़कर... आहा...हा...! जो ध्रुव भगवान आत्मा है, (उसकी दृष्टि करना।) उत्पाद, व्यय और ध्रुव (तीन कहे हैं।) जिस समय में पर्याय उत्पन्न हुई, (पूर्व की पर्याय) व्यय हुई और ध्रुवपने रहा - ये तीनों पर्यायें, द्रव्य के आश्रित हैं। द्रव्य के हैं तो द्रव्य पर दृष्टि

करना – ऐसी बात है। दुनिया के पाप के कारण पूरे दिन फुरसत नहीं मिलती है, वह ऐसा तत्त्व कहाँ सुनेगा ? आहा...हा... ! यह १०२ गाथा में कहा था। एक-एक द्रव्य में उत्पाद, व्यय और ध्रुव है और तीनों द्रव्य के (भेद हैं) तीन होकर द्रव्य है – ऐसा १०२ (गाथा में) कहा था। समझ में आया ?

अब, १०३ (गाथा में) **द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को अनेकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं...** अधिक परमाणु आदि इकट्ठे होकर पर्याय हो या आत्मा असमानजातीय है, यह समानजातीय परमाणु हैं। देखो ! यह अंगुली है, वह समानजातीय रजकण है और इन समानजातीय की जो पर्याय होती है, वह इनसे इनके काल में होती है, आत्मा उसे नहीं कर सकता। आत्मा अंगुली नहीं हिला सकता। तत्त्व ऐसा है बापू ! आहा...हा... ! वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ ! उन्होंने जो देखा ऐसा कहा और उसे अन्तर में (अनुभव किया)। आहा...हा... !

नियमसार में एक शब्द है, पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की है न ? 'सकल समूह के हितकारी के लिये यह कहता हूँ' ऐसा शब्द है। सकल भव्यजन – लायक, हाँ ! अभव्य नहीं। आहा...हा... ! सकल भव्यजीवों का समूह है, उसके हितकारी के लिये यह शास्त्र है। नियमसार है ? कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने मूल पाठ किया है, यह तो टीकाकार कहते हैं कि इसके लिये यह कहा जाता है। ऐसा शब्द है – सकल भव्य समूह को... यह आया... अब पहली गाथा की टीका में पीछे है। **सकल भव्य समूह को हितकर...** यह शब्द है। सकल भव्य जीव समूह को हितकर यह नियमसार शास्त्र है। आहा...हा... ! पहली ही गाथा में है, हाँ ! टीका... टीका... कलश में नहीं। आहा...हा... ! इसकी पर्याय को आना हो, तब आये न !

यहाँ कहते हैं – **अब द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को अनेकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं** –

पाडुब्भवदि य अण्णो पज्जाओ पज्जओ वयदि अण्णो।
दव्वस्स तं पि दव्वं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं।। १०३।।

नीचे हरिगीत –

उपजे दरव की अन्य पर्यय, अन्य कोई विनशती।
पर द्रव्य न तो नष्ट है, उत्पन्न भी होता नहीं॥

अनजान मनुष्य को बात जरा सूक्ष्म लगेगी। लोगों को तत्त्व का अभ्यास नहीं है। यह तो वीतरागसर्वज्ञ परमात्मा का जाना हुआ तत्त्व तद्नुसार समझे तो आगे बढ़ सकता है। जिस प्रकार से है, उस प्रकार न समझे तो मिथ्यादृष्टि होता है। वस्तु की स्थिति जिस प्रकार है – ऐसा न माने तो मिथ्यादृष्टि होता है।

टीका – १०३ की टीका! **यहाँ (विश्व में) जैसे एक त्रि-अणुक...** (अर्थात्) तीन परमाणु **समानजातीय...** है? यह तीन परमाणु, सूक्ष्म Point! यह (अंगुली) कोई एक नहीं है, टुकड़े करते... करते... करते... करते अन्तिम Point रहे उसे परमाणु कहते हैं। यह **त्रि-अणुक समानजातीय...** है न? **अनेक द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है...** आहा...हा...! इस त्रि-अणुक की जो पहली समानजातीय द्रव्यपर्याय थी, वह विनष्ट होती है **और दूसरी चतुरणुक (समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है...** क्या कहा? दो परमाणुओं में जो पहली पर्याय है, उसका नाश होता है और तीसरा परमाणु इकट्ठा होता है तो तीन परमाणु की पर्याय उत्पन्न होती है। दो का व्यय हुआ, तीन की उत्पत्ति हुई। यहाँ तो बहुत सूक्ष्म सिद्ध करते हैं।

यह भाषा, आत्मा कभी कर सके – ऐसा तीन काल में नहीं है। यह हाथ, आत्मा, तीन काल में हिला नहीं सकता। आहा...हा...! यह दो परमाणु हैं ये तीन में जब समानजातीय आया तब दो था वह विनष्ट हुआ और तीन की उत्पत्ति हुई परन्तु उसके कारण हुई, आत्मा से नहीं। आहा...हा...! (इस प्रकार) **(समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है परन्तु वे तीन या चार पुद्गल (परमाणु) तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं...** क्या कहा? पहला त्रि-अणुक था न? त्रि-अणुक (अर्थात्) तीन (अणुक)। वह अनेक द्रव्यपर्याय विनष्ट होने पर **दूसरी चतुरणुक...** तीन परमाणुओं की पर्याय तो थी परन्तु इस चौथे परमाणु में जब जुड़ा तब चार परमाणु की पर्याय नयी हुई, वह उत्पन्न हुई, तीन परमाणु की पर्याय विनष्ट हुई (और) परमाणुपने कायम रहे। यह पूरे दिन हम करते हैं... करते हैं, दुकान पर बैठे हुए हम व्यापार करते हैं, यह करते हैं... भगवान इनकार करते हैं। दुकान

पर बैठा हो तो यह हम करते हैं, इसका ऐसा करते हैं, उसका वैसा करते हैं, उसका वैसा करो... भाषा का स्वामी होता है, शरीर की क्रिया का स्वामी होता है, पैसा दे उसका स्वामी होता है, पैसा ले उसका स्वामी होता है – यहाँ इनकार करते हैं। आहा...हा...!

श्रोता – त्यागी तो इनकार ही करेंगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री – वस्तु का स्वरूप ऐसा है। त्यागी अर्थात् क्या? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जो तीन परमाणु हैं और उन तीन परमाणुओं की पर्याय तो होती है, अब जब ये चार परमाणु होते हैं, तब चार की पर्याय उत्पन्न होती है और तीन का विनाश होता है, परमाणु तो कायम हैं। आहा...हा...! यह अनन्त (परमाणु का) है। दृष्टान्त तीन का और चार का दिया है, वरना यह अनन्त हैं। अब ये अनन्त परमाणु हैं, उनकी पर्याय है, वह वर्तमान उत्पन्न है। अब उनकी पर्याय में जब दूसरी पर्याय होती है, तब उस दूसरी पर्यायरूप से उत्पन्न हैं और इस पहली पर्यायरूप से व्यय है परन्तु ऐसा चलने की उत्पन्न पर्याय का कर्ता परमाणु है। आत्मा हाथ को हिलाता है – (ऐसा नहीं है) आहा...हा...! तब यह पूरे दिन क्या करता है? पूरे दिन अभिमान करता है। 'मैं करूँ... मैं करूँ यही अज्ञान है।' आहा...हा...!

यह अंगुली एक है, यह पर्याय है। अब ऐसे हुई तो दो की एक पर्याय हुई, इसकी एक पर्याय का नाश हुआ, दो हुई उसकी उत्पत्ति हुई परन्तु परमाणु है, वह तो कायम है। वह उत्पन्न हुआ, विनष्ट हुआ वह स्वयं से हुआ है, आत्मा से नहीं। आहा...हा...! यह तीन परमाणुओं का तो दृष्टान्त दिया है। तीन परमाणु समानजातीय है न? (वह समानजातीय) **अनेक द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है और दूसरी चतुरणुक (समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है परन्तु वे तीन या चार पुद्गल (परमाणु) तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं...** कहीं परमाणु नष्ट नहीं होते; पर्याय विनष्ट और उत्पाद होती है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म!

गन्ने का टुकड़ा है, एक गन्ने का टुकड़ा है। अब कहते हैं कि इस गन्ने की जो पर्याय है, वह जब ऐसे (सञ्चे के साथ) घिसी तो वह पर्याय बदल गयी और नयी पर्याय हुई। वह पर्याय गन्ने से हुई है सञ्चे से नहीं – ऐसा कौन मानेगा? क्या कहा? जो गन्ने

का रस निकला है, वह सञ्चे से नहीं निकला है, उस रस की पर्याय पहले गन्ने के रूप में थी, उस पर्याय का व्यय होकर रस की पर्याय उत्पन्न हुई और परमाणु कायम रहे।

प्रश्न – मशीन में डालकर (रस निकला है) या अपने आप ?

समाधान – मशीन में कौन डाले ? ऐसा काम है, बापू! कठिन काम है। वीतराग सर्वज्ञदेव... आहा...हा...! अभी तो सब गड़बड़ चली है – पर की दया पालो (– ऐसा कहते हैं) पर के – उसके शरीर के परमाणु हैं और आत्मा हैं, इस समय उनकी असमानजातीय पर्याय है, इस समय वह पर्याय है, तत्पश्चात् दूसरे समय में इस पहली पर्याय का व्यय होता है, दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है और परमाणु तथा आत्मा तो कायम रहते हैं – ऐसी बात है। यह तो सिद्धान्त है, फिर इसमें से दृष्टान्त देने हों, (इतने दिये जा सकते हैं)।

प्रश्न – धर्म करना है, उसमें यह सब समझने की आवश्यकता पड़ती है ?

समाधान – सत्य धर्म करना या नहीं ? तो वस्तु की सत्यता किस प्रकार है ? (यह समझना पड़ेगा)। धर्म सत्य से होता है या असत्य से होता है ? अतः वस्तु का सत्य स्वरूप किस प्रकार है ? इसके भान बिना इसे धर्म कहाँ से होगा ? आहा...हा...! पर का अभिमान करे कि मैंने यह किया... मैंने यह किया... पूरे दिन सबेरे से सायं तक व्यापार में लवलीन! स्त्री-पुत्रादिक को प्रसन्न करने में तल्लीन! आहा...हा...! और खाने के समय आहार और पानी ऐसे आये हों तो ऐसे तृप्ति... तृप्ति... लगती है (और) ओ...ई...या... करता है!

श्रोता – उस दिन तो स्वर्ण का सूरज उगता है!

पूज्य गुरुदेवश्री – धूल भी सोने का सूरज नहीं है, वहाँ पाप का सूरज है। मैंने किया... मैंने किया...! आहा...हा...! कठिन काम, भाई! वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं, उनकी यह वाणी है। आहा...हा...! कठिन बात है।

यह चश्मा है न ? इस चश्मे की जो ऐसी (टेड़ी) पर्याय है, उस पर्याय का व्यय होकर ऐसी (सीधी) होती है, वह परमाणु के कारण होती है, हाथ के कारण नहीं। उसकी पहली पर्याय का व्यय हुआ, दूसरी पर्याय की उत्पत्ति हुई (और) परमाणु द्रव्यरूप से कायम रहे हैं। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं! अन्य (बातें तो) दया पालो, व्रत करो, उपवास करो... यह चलती हैं। दया पालन नहीं कर सकता और दया पालो – (ऐसा कहे) यह

बात खोटी-झूठी है। परद्रव्य की पर्याय को आत्मा नहीं कर सकता है। आहा...हा... ! व्रत और तप के परिणाम हों तो वह तो शुभराग है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहा...हा... ! वह शुभराग भी उस काल में होता है, वह जन्मक्षण है और पूर्व की पर्याय का व्यय होता है। द्रव्य कायम रहता है। जो ऐसा निर्णय करता है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। द्रव्य पर जाने पर शुभभाव का व्यय होकर, समकित की पर्याय उत्पन्न होती है और आत्मा सम्पूर्ण ऐसा का ऐसा रहता है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है !

इसी प्रकार सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें... देखा ? पहला तो दृष्टान्त दिया, तीन परमाणु और चार परमाणुओं का दृष्टान्त दिया। **इसी प्रकार सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें...** इस शरीर के, लकड़ी के, पुस्तक के... आहा...हा... ! समस्त परमाणु-पुद्गल आहा...हा... ! है ? **द्रव्यपर्यायें विनष्ट होती हैं...** यह द्रव्य की वर्तमान अवस्था है, वह नष्ट होती है और फिर दूसरी अवस्था **उत्पन्न होती है, किन्तु समानजातीय द्रव्य तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं (- ध्रुव हैं)।** आहा...हा... ! तीन और चार परमाणुओं का दृष्टान्त देकर (कहते हैं कि) तीन परमाणुओं का पिण्ड-स्कन्ध था, वह चाररूप हुआ तो तीन परमाणु की पर्याय का व्यय हुआ, चाररूप उत्पन्न हुआ और परमाणु (वही का वही रहा)। इसी प्रकार सभी द्रव्यों का ले लेना - ऐसा कहते हैं। सभी समानजातीय परमाणु ! आहा...हा... ! गजब बात है !

यह थाम्बली है, लो ! थाम्बली है न ? इसकी वर्तमान पर्याय दिखती है, वह बहुत परमाणुओं के पिण्ड की पर्याय है, वह पर्याय बदलती है और फिर उसमें नयी अवस्था होती है और परमाणु कायम रहते हैं। वह वहाँ कारीगर ने किया या (दूसरे ने) ध्यान रखा इसलिए हुआ - ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! क्या प्रभु की वाणी ! आहा...हा... !

जैसे तीन परमाणु और चार परमाणु की बात की कि तीन परमाणु अकेले थे, उनकी पर्याय और चौथा (सम्मिलित) हुआ, उसकी पर्याय नयी उत्पन्न हुई और तीन की विनष्ट हुई, परमाणु वही के वही रहे। इसी प्रकार इस जगत में जितने पदार्थ हैं-यह जड़... आहा...हा... ! एक परमाणु से लेकर अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध - पुस्तक के, अंगुली के, हाथ के, जीभ के, दाल-भात-रोटी के टुकड़ों के... आहा...हा... ! सामने दाल-भात-

रोटी है, उस रोटीरूप बहुत परमाणुओं की समानजातीय पर्याय है। अब उस रोटी का टुकड़ा हुआ, तब पहली पर्याय का व्यय हुआ और नयी ग्रासरूप पर्याय उत्पन्न हुई और परमाणु कायम रहे। वह किसके कारण? यह टुकड़ा किया (दाँत के) कारण नहीं, वह पुद्गल के कारण टुकड़ा हुआ है। ऐसी बात! बनियों को फुरसत नहीं मिलती और ऐसी सूक्ष्म बातें उन्हें (समझनी हैं)।

श्रोता - जिसे गरज होगी वह आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री - सत्य बात है। जिसे गरज होगी वह आयेगा - ऐसी बात कहाँ है? आहा...हा...!

यह कपड़ा है, वह ऐसे है न? अभी ऐसी अवस्था है, वह फिर ऐसा (ऊँचा) होता है, इसमें पहली अवस्था का व्यय होता है, दूसरी अवस्था का उत्पाद होता है और परमाणु कायम रहते हैं। अंगुली से वस्त्र ऊँचा हुआ - ऐसा नहीं है।

श्रोता - अंगुली से नहीं परन्तु अंगुली की मदद से हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री - अंगुली के परमाणु, अपने अनन्त परमाणु की पर्यायरूप से उत्पन्न हुए - ऐसा है, भगवान! यह तो क्या बात, बापू! जगत् से अलग है। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, जिन्होंने एक समय में तीनकाल तीन लोक जाना है, उन प्रभु की वाणी यह आया है। आहा...हा...!

जैसे तीन परमाणु की पर्याय का व्यय, चार का उत्पाद और परमाणुरूप से कायम (रहना) ऐसे अनन्त परमाणुओं का... यह क्या कहलाता है? यह कागज, यह लकड़ी, यह नाक, जीभ ये अनन्त परमाणुओं की पर्याय है, यह समानजातीय (पर्याय है)। समान है न? परमाणु-परमाणु (समान है)। यह जिस समय उत्पन्न हुई, उस समय वह अनन्त परमाणु की पर्याय है, दूसरे समय में अनन्त परमाणुओं में से कितने ही परमाणु निकल गये तो वह पर्याय उत्पन्न हुई और परमाणु कायम रहे। वह (परमाणु तो) स्वयं ने निकाल दिया - ऐसा नहीं है।

रोटी खाते हैं, उसमें अन्दर कंकड़ आया और ऐसे निकाल दिया। कहते हैं कि यह आत्मा से नहीं हुआ - ऐसा कहते हैं।

प्रश्न – परन्तु कंकड़वाला भाग हो तो निकाल देना न ?

समाधान – निकाला... ! ऐसी बातें हैं। पागल जैसी बातें हैं, दुनिया पागल, कुछ खबर नहीं है, कहाँ जाते हैं ? क्या करते हैं (इसकी कुछ खबर नहीं है) ? महीने में पाँच-पाँच हजार का वेतन हो परन्तु कुछ भी भान नहीं है। आहा...हा... !

यहाँ परमात्मा तीन अणु और चार अणु का दृष्टान्त देकर... आहा...हा... ! फिर सभी द्रव्य कहे न ? देखा ? आहा...हा... ! **इसी प्रकार सभी समानजातीय...** सब में तो अनन्त जितने (हैं वे) सब (आ गये) आहा...हा... ! **सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें विनष्ट होती हैं और उत्पन्न होती हैं, किन्तु समानजातीय द्रव्य तो अविनष्ट...** (रहते हैं) ये परमाणु कहीं नष्ट नहीं होते और उत्पन्न नहीं होते, ये ध्रुव रहते हैं, बहुत कठिन बात की है। आहा...हा... !

१०२ (गाथा में) जन्मक्षण कहा था। जितने अनन्त सभी द्रव्य भगवान ने देखे हैं – अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, इन प्रत्येक की पर्याय की उत्पत्ति का जन्मकाल-उत्पत्ति काल होता है, तब वह होती है। अब यहाँ इससे आगे ले गये हैं कि समानजातीय के परमाणु तीन हैं और चार हैं। ये तीन के चार हुए, तब तीन की पर्याय का व्यय हुआ और चार की पर्याय का (उत्पाद हुआ); किसी ने मिलाकर इकट्ठे किये, इसलिए हुए – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

शीशपेन की ऐसे अणी निकालते हैं, अणी ! यह शीशपेन है, वह अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है। अब अभी उसकी जो पर्याय है, वह पूरी है, फिर ऐसे........ (अणी निकलने लगी) तब जो अनन्त परमाणुओं की पर्याय थी, उस समय उस पर्याय का नाश हुआ और सूक्ष्म अथवा सुन्दर पर्याय का उत्पाद हुआ परन्तु वह परमाणु से उत्पन्न हुई है, चाकू से नहीं, अन्य से नहीं। आहा...हा... ! चाकू से ऐसा छिला गया यह नहीं, चाकू शीशपेन को छूता ही नहीं, बापू ! यह तो तत्त्वदृष्टि का विषय है। यह कॉलेज है-तत्त्व की कॉलेज है। आहा...हा... !

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा तीन परमाणुओं और चार परमाणुओं का दृष्टान्त देकर (कहते हैं कि) **सभी समानजातीय...** आहा...हा... ! **द्रव्यपर्यायें विनष्ट होती**

हैं... आहा...हा... ! गेहूँ का आटा है। उस आटे से हलुवा होता है तो कहते हैं कि आटे की पर्याय विनष्ट हुई, हलुवा की पर्याय उत्पन्न हुई और परमाणु तो कायम रहे। इस महिला ने हलुवा बनाया यह बात सत्य नहीं है – ऐसा कहते हैं।

श्रोता – कोई बनायेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री – बनायेगा नहीं ? बने बिना रहेगा नहीं – ऐसा है।

चूल्हे में थोड़ी अग्नि हो फिर ऐसी लकड़ियाँ अधिक डाले, अब (अधिक लकड़ियाँ डाले तब) पहले की जो थोड़ी पर्याय थी, उसका व्यय हुआ और अग्नि उत्पन्न हुई, परमाणु कायम रहे। इसलिए किसी व्यक्ति ने अन्दर लकड़ी डाली, इस बात में कोई दम नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा है। यहाँ तो आचार्य ने (सब में सिद्धान्त) समाहित कर दिया है। **सभी समानजातीय...** बस ! तीनों काल की सभी ! पहला तो दृष्टान्त दिया था। आहा...हा... ! अभी तो ऐसी बात सुनने नहीं मिलती, उसे क्या करना और कहाँ जाना ? यह तो जहाँ हो, वहाँ हम करते हैं और यह किया... यह किया... यह किया... ! आहा...हा... ! मैंने पुस्तक बनायी, मकान बनाया... प्रभु इनकार करते हैं, भाई ! यह परमाणु की पहली पर्याय अमुक थी, वह फिर दूसरे बहुत परमाणु मिलकर दूसरी पर्याय हुई और परमाणु कायम रहे; (इसलिए) तूने उसमें कुछ किया है – ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

प्रश्न – अपने में तो राग किया है न ?

समाधान – यह तो राग किया। पूर्व पर्याय में दूसरा राग था, उसका व्यय हुआ और इस राग का उत्पाद हुआ और आत्मा तो ऐसा का ऐसा रहा। आहा...हा... ! बनिये को व्यापार में बहुत समान काम ! पूरे दिन व्यापारी के साथ माथापच्ची करे और यह कहते हैं कि व्यापार कर नहीं सकता। यह दुकान की गद्दी पर बैठे और तुम्हारे क्या (कहलाता है ?) लोहखण्ड... लोहखण्ड...यह लोहे के कलश उत्पन्न हुए इससे पहले पर्याय लोहे की थी, फिर यह कलश की हुई, वह उसके कारण हुई है, कारीगर के कारण नहीं, सञ्चे के कारण नहीं। बात तो सादी है ! आहा...हा... !

(कहते हैं) भाई ! हाथ हिलने का कार्य भी यह अवस्था तो जड़ की है, सभी समानजातीय कहा न ? पहले तीन और चार (परमाणुओं का) दृष्टान्त दिया था। (इस

प्रकार) यह सभी समानजातीय हैं, यह समानजातीय की पर्याय जो ऐसी है और फिर ऐसी होती है, उसमें यह परमाणु कायम रहकर इस अवस्था का नाश हुआ और इस अवस्था का उत्पाद हुआ परन्तु यह हुआ किसके कारण ? यह परमाणु के कारण हुआ। अन्दर आत्मा है, इसलिए उसके कारण ऐसा हुआ है – इस बात में दम नहीं है। ऐसा तत्त्वज्ञान! आहा...हा...! यह तो तत्त्वज्ञान की कॉलेज है, यह साधारण बात नहीं है। आहा...हा...! भाषा तो सादी आती है, भाव तो जैसा (है वैसा है) ।

यहाँ तो यह कहा है कि जैसे यह तीन और चार पुद्गल (कायम है), उनकी तीन की पर्याय थी, वह नष्ट हुई और चार की पर्याय इकट्ठी हुई; **इसी प्रकार समानजातीय द्रव्यपर्यायें...** आहा...हा...! देखो न ? इस प्रकार बात की है। द्रव्यपर्याय अर्थात् व्यंजनपर्याय – एक द्रव्य की पर्याय की बात नहीं है। समानजातीय की इकट्ठी लेकर बात की है। **द्रव्यपर्यायें विनष्ट होती हैं और उत्पन्न होती हैं, किन्तु समानजातीय द्रव्य तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं...** यह एक बात समानजातीय की थी।

अब, दूसरी असमानजातीय (की बात करते हैं।) आहा...हा...! असमानजातीय अर्थात् यह मनुष्य (शरीर) जड़ है और भगवान चैतन्य अरूपी है, दोनों एक जाति नहीं हैं। अन्दर चैतन्यस्वरूप जानने-देखनेवाला प्रभु, अरूपी – वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित है और यह वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवाली मिट्टी-धूल है, दोनों असमानजातीय हैं, दोनों समान नहीं हैं। परमाणु-परमाणु ये सब समान हैं परन्तु यह आत्मा और शरीर दो समानजातीय, नहीं असमानजातीय है।

(कहते हैं) **और, जैसे एक मनुष्यत्वस्वरूप...** (अर्थात्) मनुष्य की पर्याय, योग्यता **असमानजातीय द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है...** आहा...हा...! एक **मनुष्यत्वस्वरूप असमानजातीय...** क्योंकि मनुष्य का शरीर और आत्मा दोनों अलग जाति है, एक जाति नहीं; असमानजातीय है। आहा...हा...! थोड़ी भाषा में भी कितना समाहित कर दिया है! **एक मनुष्यत्वस्वरूप असमानजातीय द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है और दूसरी देवत्वस्वरूप...** क्या कहते हैं ? यहाँ पर जो आत्मा और देह है, (वह) असमानजातीय है, दोनों एक जाति नहीं है। इसका व्यय होगा और देव में जायेगा, तब देव की पर्याय

उत्पन्न होगी, वह भी असमानजातीय है। यहाँ मनुष्य में असमानजातीय विनष्ट होगी और आत्मा तो अन्दर कायम है। आत्मा कायम है और ये परमाणु समानजातीय हैं, वे कायम हैं। आहा...हा...!

यहाँ से मनुष्य का आत्मा देव में जाये तो कहते हैं कि इसकी (मनुष्य की) पर्याय विनष्ट होकर (देव की) नयी पर्याय उत्पन्न की, (वह) कर्म से नहीं, कर्म के कारण यहाँ से देवलोक में जाये – ऐसा नहीं। देवलोक का क्यों डाला? (क्योंकि) मुनि तो देवलोक में ही जानेवाले हैं, पञ्चम काल के मुनि। आहा...हा...! स्वर्ग में जानेवाले हैं, इसलिए उन्होंने कहा कि यह मनुष्यपना है, वह असमानजातीय — आत्मा की जाति अलग है, इस जड़ की जाति अलग है; इसलिए दोनों असमान हैं, दोनों समान नहीं हैं। यह असमानजातीय मनुष्यपर्याय का नाश होकर और असमानजातीय देवपर्याय की उत्पत्ति होगी और इसमें परमाणु तथा आत्मा हैं, वे तो कायम रहनेवाले हैं। पर्याय में उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, वह उत्पन्न और विनष्ट कर्म के कारण होते हैं – ऐसा नहीं है। यहाँ मनुष्य की गति पूर्ण हो गयी है, वह कर्म के कारण पूर्ण हुई है – ऐसा नहीं है, जो जीव और पुद्गल की वह पर्याय उतनी उस प्रकार से वहाँ रहने की थी, आहा...हा...हा...!

वह नाथ आती है न? क्या कहलाती है? बैल को (नाक में) नाथ डालते हैं। यहाँ कहते हैं कि कोई किसी को ले जाये – ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहा...हा...हा...! यह नाथ है, वह नाक को स्पर्श नहीं करती। अलग प्रकार है, भाई! आहा...हा...! अनन्त काल से भटकता है, दु:खी है। चौरासी के अवतार किये, सत्य समझे बिना विपरीत समझा और विपरीत मानता है, वह परिभ्रमण करके मरेगा। आहा...हा...!

जैसे एक मनुष्यत्वस्वरूप असमानजातीय द्रव्यपर्याय विनष्ट होती है और दूसरी देवत्वस्वरूप (असमानजातीय द्रव्यपर्याय) उत्पन्न होती है परन्तु वह जीव और पुद्गल तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं... जीव तो जीवरूप रहता है। जीव, मनुष्य की पर्याय में था, वह देवपर्याय में हुआ। इस देह की मनुष्य पर्याय में जो परमाणु थे, वे देवरूप से दूसरी (पर्याय) हुई, (तथापि परमाणु कायम रहे)। आहा...हा...! गजब बात है! उस-उस समय हो, और उस-उस समय उत्पन्न और विनष्ट समानजातीय या

असमानजातीय में स्वयं के कारण होता है, आहा...हा... ! ऐसी बात है।

कल बहिरंग और अन्तरंग कारण नहीं आया था। अन्तरंग और बहिरंग कारण आया था या नहीं ? इसमें नहीं आया था ? इस प्रवचनसार में आया था... (१०२ में गाथा) **अन्तरंग और बहिरंग साधनों से किये जानेवाले संस्कारों की उपस्थिति में...** आहा...हा... ! है ? यह तो एक बहिरंग निमित्त होता है, उसका ज्ञान कराया है परन्तु निमित्त से कुछ भी इसमें होता है (ऐसा नहीं है) । इसकी पर्याय से दूसरे का उत्पाद हो या स्कन्ध हो, निमित्त आकर स्कन्ध (करे – ऐसा नहीं है) । आहा...हा... ! कुल्हाड़ा आया, कुल्हाड़ा ! उसे ऐसे लकड़ी में मारा, इसलिए वहाँ टुकड़े हुए (– ऐसा नहीं है) । कहते हैं कि लकड़ी को कुल्हाड़ा ने स्पर्श ही नहीं किया, मात्र उस लकड़ी की जो पहली अवस्था थी, वह नष्ट होकर दूसरी अवस्था हुई, वह स्वयं के कारण से हुई है। आहा...हा... ! पागल कहें ऐसा है ! पागल जैसी बातें लगती हैं कि ऐसी कैसी (बात) ! परमात्मप्रकाश में कहते हैं न ? कि पागल लोग धर्मी को भी पागल कहें, ऐसी यह चीज है। आहा...हा... !

देखो ! हम कुछ नहीं कर सकते, कुछ नहीं कर सकते... (ऐसा तुम कहते हो तो) प्ररूपणा किसलिए करते हो ? परन्तु कौन करता है ? बापू ! यह भाषा जिस काल में आनी हो, उस काल में आती है। आहा...हा... ! यह आत्मा का कर्तव्य नहीं है, बापू ! तुझे पता नहीं है। आहा...हा... ! भाषा हुई, वह समानजातीय अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है। भाषा समानजातीय अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है, यह स्कन्ध पहले वर्गणारूप पर्याय थी, उस पर्याय का व्यय होकर भाषारूप (पर्याय) हुई (और) परमाणु कायम रहे हैं; आत्मा में भाषा की है। अथवा यह जीव आत्मा हिलाता है, इस बात में कोई दम नहीं है।

लोग यह कहते हैं कि चबा-चबाकर खाना, पेट में दाँत नहीं हैं... ऐसा नहीं कहते ? चबा-चबाकर खाना (क्योंकि) पेट में कोई दाँत नहीं हैं। कौन खाये ? अरे... ! प्रभु ! आहा...हा... ! गजब बात है। यह दाँत जो हिलते हैं, वे पहले स्थिर थे फिर हिले, उस स्थिर की पर्याय का व्यय हुआ और हिलने की पर्याय का उत्पाद हुआ, परमाणु हैं वे कायम रहे; परमाणु से (टुकड़े) हुए हैं, आत्मा से नहीं, जीभ से नहीं। आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म बात है ! यह तो सिद्धान्त है न ! भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थङ्करदेव विराजमान हैं,

महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वहाँ कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र रचना की है।

श्रोता - यह दिव्यज्ञान वहाँ से लाये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ, आहा...हा...! पुराने पण्डित तो यह कहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का नहीं करता (- ऐसा जो मानता है, वह) दिगम्बर जैन नहीं है। कर सके, अरे... भगवान! तू तेरी पर्याय में उत्पाद-व्यय कर, दूसरे का द्रव्य है, उसमें उसके उत्पाद-व्यय नहीं हैं क्या? और उसके द्रव्य के कारण वह उस काल में उत्पन्न नहीं हैं? उस काल में उत्पन्न (होने का) जन्मक्षण है, उसका व्यय होकर दूसरी पर्याय होती है- उत्पन्न होती है और परमाणु कायम रहते हैं, (इसमें) दूसरा क्या करेगा? आहा...हा...! सब (कहीं) सुना नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता - सारा नया बनाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री - नया? आहा...हा...! यह भगवान का फरमान है! तीर्थंकरदेव केवली जिनेश्वरप्रभु का फरमान है कि तीन परमाणुओं का जब चार परमाणु होवे, तब तीन परमाणु की पर्याय का व्यय होता है और चार की उत्पत्ति होती है परन्तु परमाणु तो कायम रहते हैं, यह समानजातीय का दृष्टान्त (दिया है)।

अब, आत्मा और शरीर असमानजातीय है। यहाँ पर अभी आत्मा की मनुष्यपर्याय है। फिर देव में जायेगा तब देव की पर्याय होगी। वह समय-समय इसकी पर्याय बदलती है, उसमें पूर्व की पर्याय विनष्ट होती है, नयी पर्याय उत्पन्न होती है और आत्मा का कायमपना है। इसी प्रकार इस शरीर के परमाणु में भी प्रति समय पर्याय होती है (उत्पन्न होने का) जो क्षण है, उस क्षण में उत्पन्न होती है, उस जन्मक्षण का दूसरी पर्याय में नाश होता है, क्योंकि दूसरी पर्याय का जन्मक्षण भी वही है। आहा...हा...!

प्रश्न - शुभभाव हुआ तब देवलोक में गया न?

समाधान - यह सब गया, पहले समय शुभभाव हो, वह दूसरे समय में विनष्ट हो जाता है, फिर नयी (पर्याय) उत्पन्न होती है। यह शुभभाव आत्मा से हुआ है, कर्म से नहीं।

कर्म मन्द पड़े, इसलिए शुभभाव हुआ (– ऐसा नहीं है) । आहा...हा... ! कठिन काम, बापू ! यह शिक्षा अलग प्रकार की है । किसी दिन नहीं मिली और दरकार भी नहीं की है । कमाना और स्त्री-पुत्रादिक को प्रसन्न रखना, खेलना और प्रसन्न होना, यह सब तो पशु जैसा अवतार है । आहा...हा... !

ऐसा प्रभु आत्मा है, कहते हैं कि वह पर का पत्ता हिला नहीं सकता । आहा...हा... ! यह पत्ता हिलता है न ? यह हवा से नहीं हिलता – ऐसा कहते हैं । यह ध्वजा है न ध्वजा ? यह हवा से नहीं हिलती; यह ध्वजा जो ऐसी है, वह ऐसी-ऐसी होती है, उस पूर्व की पर्याय का व्यय, नवीन पर्याय का उत्पाद और समानजातीय परमाणु का टिका रहना (होता है) । इस हवा के कारण ध्वजा नहीं हिलती – ऐसी बात है ।

श्रोता – भगवान बनने की बात है ।

पूज्य गुरुदेवश्री – भगवान बनने की बात है, बापू ! आहा...हा... ! भाई ! भगवान ही है, प्रभु ! तू ज्ञाता-दृष्टा है । भगवान का अर्थ यह है कि तू ज्ञाता-दृष्टा है । यह ज्ञाता -दृष्टा अपनी पर्याय में भी करना यह भी नहीं । आहा...हा... ! इसे भी जाने ऐसा है, तो पर की पर्याय को करे यह तो तीन काल में नहीं कर सकता । आहा...हा... ! हमने यह किया, हमने यह किया... इतना सुधार किया, इतनी व्यवस्था की... अव्यवस्था थी, उसकी व्यवस्था की... आहा...हा... ! हमारे कुँवरजी भाई को तो इतना (अभिमान था कि) मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... यह किया, क्या है यह ? मैंने किया... दूसरे की दुकान नहीं चली, नहीं चली हो तो (नहीं चली हो) । यहाँ चली वह तो पुण्य के कारण होती है, पुण्य है वह निमित्त है, वह तो समानजातीय के परमाणु हैं, उनकी पर्याय वहाँ होती है, वे पुण्य के परमाणु समानजातीय के हैं, उनसे यह बाहर का होता है – ऐसा भी नहीं है । पुण्य के कारण पैसा आता है – ऐसा नहीं है । यह कहते हैं । आहा...हा... !

श्रोता – पैसा आता तो दिखता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री – ऐसे आवें... ऐसे आवें... ! आना हो वे यहाँ आते हैं परन्तु फिर भी पैसे की जो पूर्व की पर्याय थी, उसका व्यय होकर और यह उत्पन्न हुआ, परमाणु कायम रहे; कर्म के कारण नहीं, परमाणुओं के कारण – ऐसा हुआ है । आहा...हा... !

अद्भुत काम! आत्मा को पंगु बना दिया है! पंगु नहीं बनाया; अनन्त ज्ञान की ज्ञातादृष्टा की शक्ति का विकास किया है। आहा...हा...! प्रभु! तू जानने-देखनेवाला है! दूसरी बात छोड़ दे! आहा...हा...! आहा...हा...! किसी का कर दूँ, स्त्री का कर दूँ... स्त्री को अर्धांगिनी कहते हैं! आहा...हा...! धूल भी अर्धांगिनी नहीं है, उसका शरीर अलग, उसकी आत्मा अलग; उसकी आत्मा की पर्याय और उसके शरीर की पर्याय उससे होती है। वहाँ तुझसे होती है? आहा...हा...! थोड़े में कितना भर दिया है? आहा...हा...!

इसी प्रकार सभी असमानजातीय द्रव्यपर्यायें... पहले यह लिया है! देखो, है न? पहले में समानजातीय का दृष्टान्त लिया, फिर समस्त समानजातीय द्रव्य का ले लिया। आहा...हा...! सारी दुनिया के पुद्गलद्रव्य (ले लिये)। चार अरूपी हैं – धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल। **वह जीव और पुद्गल तो अविनष्ट और अनुत्पन्न ही रहते हैं, इसी प्रकार सभी असमानजातीय...** आहा...हा...! नारकी का शरीर और नारकी का जीव, वह असमानजातीय (द्रव्यपर्याय है) और नारकी के शरीर का जिस समय व्यय होता है, उसी समय शरीर के परमाणु अन्यरूप परिणमते हैं और आत्मा का वहाँ व्यय हो तो मनुष्यपने में आता है या तिर्यञ्चपने में आवे, उसका उत्पाद होता है; पहले का व्यय होता है और आत्मा तो कायम है। कर्म के कारण नरक से आया है - ऐसा भी नहीं है, कर्म के कारण नरक में गया है - ऐसा भी नहीं है। श्रेणिक राजा ने नरक का आयुष्य बाँधा है, इसलिए उन्हें कर्म नरक में ले गये हैं - ऐसा नहीं है। वह जीव की पर्याय का उत्पाद काल ही उस प्रकार का अन्दर जाने का हुआ, पूर्व की पर्याय का व्यय, नयी (पर्याय) का उत्पाद और आत्मा का कायम रहना। आहा...हा...!

यह सब किसने किया होगा? भगवान कहते हैं कि मैंने नहीं किया, मैं तो (ज्ञाता-दृष्टा हूँ) वाणी ऐसी थी, वाणी वाणी के कारण आयी थी। सर्वज्ञभगवान कहते हैं कि मैंने वाणी को नहीं किया, मैंने वाणी को उत्पन्न नहीं किया, क्योंकि समानजातीय परमाणु में पहले वाणी की पर्याय नहीं थी, फिर उत्पन्न हुई, परमाणु कायम रहे, वे तो भाषा के कारण हैं। इसका भी यहाँ विवाद था। पालीताना! (संवत् १९९५ में) गये थे (तब एक साधु कहने लगा) खोटी बात है। केवली भी पहले भाषा ग्रहण करते हैं, पहले समय भाषा

ग्रहण करते हैं, दूसरे समय छोड़ते हैं। वे ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं! अरे...रे...! ऐसी बातें! और उन्हें माननेवाले भी मिलते हैं। झूठ! अनादि से झूठ का सेवन किया है तो झूठे तो मिलेंगे ही न! आहा...हा...! कर्म के कारण होता है – ऐसा वे कहते हैं। यह चर्चा तो हो गयी न? 'खेड़ावाले' (श्वेताम्बर भाई थे) पहले यहाँ आये तो कुछ नहीं रुचे, अच्छा नहीं लगे, क्योंकि एकदम अनजानी बात है न! और फिर परिचय करने पर लगा कि बात तो कुछ दूसरी लगती है, फिर इन लोगों ने ५० प्रश्न रखे कि इसका उत्तर दो। यदि ठीक लगेगा तो मैं इसमें से नहीं निकलूँगा। उन्हें कोई उत्तर ठीक नहीं मिला। अन्त में (वे साधु) कहते हैं – मेरे साथ चर्चा करो, हम चर्चा करेंगे, पहले स्वीकार करो कि कर्म से विकार होता है, यह पहले स्वीकार करो। इन्होंने कहा कि यह मुझे मान्य नहीं है। विकारी पर्याय है, वह तो जीव की जीव में अस्तित्व के कारण होती है। आहा...हा...!

कर्म की पर्याय है, वह कर्म में कर्म के कारण होती है। ज्ञानावरणीय पर्याय होती है, वह कर्म के परमाणुओं की पर्याय जो पहले कर्मयोग्य नहीं थी, उसका व्यय होकर कर्मरूप हुई, आत्मा ने राग-द्वेष किया इसलिए वह ज्ञानावरणीय की पर्याय हुई – ऐसा नहीं है। इसमें कितना फेरफार करना! यह सब तो पागल कहलाये ऐसा है। यह सब संसार के चतुर तो पागल कहें – ऐसा है। आहा...हा...! भाई! मार्ग अलग है, बापू! क्योंकि अनन्त आत्माएँ और अनन्त परमाणु हैं, वे अनन्तरूप से कब रह सकते हैं? कि उस-उस काल के अपने परिणाम में परिणमित होते रहें तो (अनन्तरूप) रह सकते हैं परन्तु दूसरे को परिणमित कर दे और दूसरे से यह परिणमित हो तो अनन्त पृथक्रूप से नहीं रह सकते। आहा...हा...! वीतरागमार्ग अलौकिक है, बापू! ऐसा कहीं नहीं है! परमेश्वर के सिवाय यह बात कहीं नहीं है। सम्प्रदाय में नहीं है। सम्प्रदायवाले तो अभी सब उलटा मानते हैं – दया पालो, व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो। आहा...हा...!

यहाँ तो परमात्मा की पूजा करने पर जो वाणी बोली जाती है, उस पर्याय की उत्पत्ति भाषा से हुई है। स्वाहा! – यह भाषा की पर्याय हुई है, आत्मा से नहीं; और भगवान को ऐसे चावल चढ़ाते हैं, नारियल चढ़ाते हैं, वह इस अंगुली से और आत्मा से नहीं। यह चावल की पर्याय इस प्रकार वहाँ (जाने की थी)। (चावल हाथ में थे उस) पूर्व की पर्याय

का व्यय हुआ, वहाँ गयी, वह उत्पन्न हुई और परमाणु वहाँ रहनेवाले हैं, इसलिए वहाँ गयी। आत्मा ने वहाँ छोड़े हैं, इसलिए चावल के परमाणु गये हैं - ऐसा नहीं है। अरे... अरे... ! ऐसी बात कान में तो पड़े ! कुछ है, कुछ बात है - ऐसा तो लोगों को होता है न! अभी तक मानते हैं, उसकी अपेक्षा कुछ दूसरी बात है, बापू!

इस प्रकार अपने से (अर्थात् द्रव्यरूप से) ध्रुव... है न ? इस द्रव्य के दो अर्थ करना। नीचे है - द्रव्य शब्द मुख्यरूप से दो अर्थों में प्रयुक्त होता है; (१) एक तो सामान्य - विशेष के पिण्ड को, अर्थात् सामान्य माने त्रिकाल रहना और पर्याय विशेष ये दो होकर भी द्रव्य कहलाते हैं। सामान्य, विशेष के पिण्ड को अर्थात् वस्तु को द्रव्य कहते हैं, जैसे कि द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है; इस प्रकार द्रव्य कहा जाता है। (२) दूसरा - वस्तु के सामान्य अंश को भी द्रव्य कहा जाता है... क्या कहा ? उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों होकर एक है, उसे भी द्रव्य कहा जाता है और नय की अपेक्षा से ध्रुव है, उसे भी द्रव्य कहा जाता है। आहा...हा... ! द्रव्य कहने में दो प्रकार हैं। उत्पाद, व्यय तो है, यह उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन मिलकर द्रव्य है - ऐसा भी कहा जाता है, यह प्रमाण का (द्रव्य) और उत्पाद-व्यय रहित अकेले त्रिकाली का लक्ष्य कराने के लिये ध्रुव को भी द्रव्य कहते हैं। - यह नय का द्रव्य है; और उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित पूरा द्रव्य वह प्रमाण का द्रव्य है। अरे... अरे... ! प्रमाण क्या और नय क्या ? वस्तु स्थिति ऐसी है।

अपने से... (अर्थात् द्रव्यरूप से)... द्रव्य के दो विभाग लिये हैं न ? **ध्रुव और द्रव्यपर्यायों द्वारा उत्पाद-व्ययस्वरूप ऐसे द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं।** प्रत्येक द्रव्य/ प्रत्येक पदार्थ, उत्पाद-व्यय और ध्रुवस्वरूप है; इस प्रकार द्रव्य कहते हैं और एक उत्पाद-व्यय को छोड़कर त्रिकाली को भी द्रव्य कहते हैं। द्रव्य कहने के ऐसे दो प्रकार हैं।

विशेष कहेंगे.....

गाथा – १०४

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति -

परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदविसिट्ठं।
तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेव त्ति।। १०४।।

परिणमति स्वयं द्रव्यं गुणतश्च गुणान्तरं सदविशिष्टम्।
तस्मादगुणपर्याया भणिताः पुनः द्रव्यमेवेति।। १०४।।

एकद्रव्यपर्याया हि गुणपर्यायाः, गुणपर्यायाणामेकद्रव्यत्वात्। एकद्रव्यत्वं हि तेषां सहकारफलवत्। यथा किल सहकारफलं स्वयमेव हरितभावात् पाण्डुभावं परिणमत्पूर्वोत्तरप्रवृत्तहरित-पाण्डुभावाभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं हरितपाण्डुभावाभ्यां सममविशिष्ट-सत्ताकतयैकमेव वस्तु, न वस्त्वन्तरं; तथा द्रव्यं स्वयमेव पूर्वावस्थावस्थितगुणादुत्तरावस्थावस्थितगुणं परिणमत्पूर्वोत्तरावस्थावस्थितगुणाभ्यां ताभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं पूर्वोत्तरावस्थावस्थितगुणाभ्यां सममविशिष्टसत्ताकतयैकमेव द्रव्यं, न द्रव्यान्तरम्। यथैव चोत्पद्यमान पाण्डुभावेन व्ययमानं हरितभावेनावतिष्ठमानं सहकारफलत्वेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येक-वस्तुपर्यायद्वारेण सहकारफलं, तथैवोत्पद्यमानमुत्तरावस्थावस्थितगुणेन व्ययमानं पूर्वावस्थावस्थित-गुणेनावतिष्ठमानं द्रव्यत्वगुणेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण द्रव्यं भवति।।१०४।।

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याणि गुणपर्यायमुख्यत्वेन प्रतिपादयति - **परिणमदि सयं दव्वं** परिणमति स्वयं स्वयमेवोपादानकारणभूतं जीवद्रव्यं कर्तृ। कं परिणमति। **गुणदो य गुणंतरं** निरुपरागस्वसंवेदनज्ञानगुणात् केवलज्ञानोत्पत्तिबीजभूतात्सकाशात्सकलविमलकेवलज्ञानगुणान्तरम्। कथंभूतं सत्परिणमति। **सदविसिट्ठं** स्वकीयस्वरूपत्वाच्चिद्रूपास्तित्वादविशिष्टमभिन्नम्। **तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेव त्ति** तस्मात् कारणान्न केवलं पूर्वसूत्रोदिताः द्रव्यपर्यायाः द्रव्यं भवन्ति, गुणरूपपर्याया गुणपर्याया भण्यन्ते तेऽपि द्रव्यमेव भवन्ति। अथवा संसारिजीवद्रव्यं मतिस्मृत्यादिविभावगुणं त्यक्त्वा श्रुतज्ञानादिविभावगुणान्तरं परिणमति, पुद्गलद्रव्यं वा पूर्वोक्तशुक्लवर्णादिगुणं त्यक्त्वा रक्तादिगुणान्तरं परिणमति, हरितगुणं त्यक्त्वा पाण्डुरगुणान्तरमाम्रफलमिवेति भावार्थः।।१०४।।

अब, द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एकद्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं –

द्रव्य-सत् दोनों अभिन्न, गुण से गुणान्तर परिणमे।
इससे गुण-पर्याय को, एक द्रव्यमय है कहा अरे!॥

अन्वयार्थ : [सदविशिष्टं] सत्तापेक्षा से अविशिष्टरूप से, **[द्रव्यं स्वयं]** द्रव्य स्वयं ही **[गुणतः च गुणान्तरं]** गुण से गुणान्तररूप **[परिणमते]** परिणमित होता है, (अर्थात् द्रव्य स्वयं ही एक गुणपर्याय में से अन्य गुणपर्यायरूप परिणमित होता है, और उसकी सत्ता गुणपर्यायों की सत्ता के साथ अविशिष्ट - अभिन्न - एक ही रहती है), **[तस्मात् पुनः]** और उससे **[गुणपर्यायाः]** गुणपर्यायें **[द्रव्यम् एव इति भणिताः]** ही कही गई है।

टीका : गुणपर्यायें एकद्रव्यपर्यायें हैं, क्योंकि गुणपर्यायों को एक द्रव्यपना है, (अर्थात् गुणपर्यायें एकद्रव्य की पर्यायें हैं, क्योंकि वे एक ही द्रव्य हैं - भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं।) उनका एकद्रव्यत्व आम्रफल की भाँति है। जैसे - आम्रफल स्वयं ही हरितभाव में से पीतभावरूप परिणमित होता हुआ, प्रथम और पश्चात् प्रवर्तमान हरितभाव और पीतभाव के द्वारा अपनी सत्ता का अनुभव करता है, इसलिए हरितभाव और पीतभाव के साथ अविशिष्ट सत्तावाला[१] होने से एक ही वस्तु है, अन्य वस्तु नहीं; इसी प्रकार द्रव्य स्वयं ही पूर्व अवस्था में अवस्थित गुण में से उत्तर अवस्था में अवस्थित गुणरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर अवस्था में अवस्थित उन गुणों के द्वारा अपनी सत्ता का अनुभव करता है, इसलिए पूर्व और उत्तर अवस्था में अवस्थित गुणों के साथ अवशिष्ट सत्तावाला होने से एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं।

(आम के दृष्टान्त की भाँति, द्रव्य स्वयं ही गुण की पूर्व पर्याय में से उत्तरपर्यायरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर गुणपर्यायों के द्वारा अपने अस्तित्व का अनुभव करता है, इसलिए पूर्व और उत्तर गुणपर्यायों के साथ अभिन्न अस्तित्व होने से एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं; अर्थात् वे वे गुण-पर्यायें और द्रव्य एक ही द्रव्यरूप हैं, भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं हैं।)

---

१. अविशिष्ट सत्तावाला = अभिन्न सत्तावाला; एक सत्तावाला; (आम की सत्ता हरे और पीले भाव की सत्ता से अभिन्न है, इसलिए आम और हरितभाव तथा पीतभाव एक ही वस्तु हैं, भिन्न नहीं।)

और, जैसे पीतभाव से उत्पन्न होता हरितभाव से नष्ट होता और आम्रफलरूप से स्थिर रहता होने से आम्रफल एक वस्तु की पर्यायों द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है, उसी प्रकार उत्तर अवस्था में अवस्थित गुण से उत्पन्न, पूर्व अवस्था में अवस्थित गुण से नष्ट और द्रव्यत्व गुण से स्थिर होने से, द्रव्य एक द्रव्यपर्याय के द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

भावार्थ : इससे पूर्व की गाथा में द्रव्यपर्याय के द्वारा (अनेक द्रव्यपर्यायों के द्वारा) द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये थे। इस गाथा में गुणपर्याय के द्वारा (एक द्रव्यपर्याय के द्वारा) द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये हैं॥ १०४॥

प्रवचन नं. ११४ दिनाङ्क २४ जून १९७९

प्रवचनसार गाथा १०४। ऊपर का शीर्षक। - **अब द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक द्रव्यपर्याय द्वारा विचारते हैं :**- भाषा तो अध्यात्म की है, भाई! क्या कहते हैं? कि द्रव्य अर्थात् वस्तु; आत्मा वस्तु है, यह जड़ परमाणु-यह (शरीर) कोई एक चीज नहीं है इसके अंश करते-करते... अन्तिम Point रहे, उसे परमाणु कहते हैं - उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसे अनन्त द्रव्य हैं और अनन्त आत्माएँ हैं। उस प्रत्येक आत्मा के उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य है। नयी अवस्था उत्पन्न हो, पूर्व की अवस्था व्यय हो और सदृश ध्रुवरूप कायम रहे - ऐसा उसका स्वभाव है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का (ऐसा स्वभाव है) इसके द्वारा विचार करते हैं। यह तो शीर्षक लिया है, हाँ!

परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदविसिट्ठं।
तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेव त्ति।। १०४।।

द्रव्य-सत् दोनों अभिन्न, गुण से गुणान्तर परिणमे।
इससे गुण-पर्याय को, एक द्रव्यमय है कहा अरे!॥

सूक्ष्म बात है, भाई! **गुण-पर्यायें एक द्रव्यपर्यायें हैं...** यह क्या कहा? जैसे कि यह आत्मा है, उसका गुण है - ज्ञान, दर्शन, आनन्द। ध्रुव आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है, सत्-शाश्वत् रहनेवाला है और उसके गुण अर्थात् शक्तियाँ - स्वभाव भी शाश्वत् है,

उसकी पर्यायें अर्थात् अवस्थाएँ बदलती हैं, उसे पर्याय कहते हैं। तो कहते हैं कि गुण-पर्यायें (अर्थात्) इन गुणों की जो अवस्थाएँ हैं, वह द्रव्य है, द्रव्य से पृथक् वस्तु नहीं है। सूक्ष्म बात है। आहा...हा..! आत्मा के गुण-पर्याय कहा - ऐसे ही परमाणु में परमाणु के हैं। यह परमाणु है - यह अंगुली है। यह तो इसकी अभी अवस्था है, पहली अवस्था आटे की थी उसके पहले धूल की, परमाणु रजकण जो है, वे तो सदा से हैं, उन रजकण की अवस्था रूपान्तर होती है, वह रजकण के गुण हैं, उसमें एक-एक परमाणु - Point है, उसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुण है और वह गुण त्रिकाल है और उसकी वर्तमान अवस्था बदलती है, वह उसकी पर्याय है। वह गुण और पर्याय होकर द्रव्य है - ऐसी बात है।

श्रोता - गुण अर्थात् तो लाभ; इस दवा ने यह गुण किया, इसलिए लाभ हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री - गुण अर्थात् शक्ति। वस्तु है - जो आत्मा और परमाणु है, उनमें जो शक्तियाँ हैं, उन्हें यहाँ गुण कहते हैं। जैसे आत्मा है तो उसमें गुण है - जानना-देखना, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियाँ उसमें है अर्थात् गुण है और उसकी वर्तमान हालत-बदलना, वह उसकी पर्याय है। वह गुण और पर्याय है, सो द्रव्य है। गुण और पर्याय, वह द्रव्य से अलग वस्तु नहीं है। यह तो कठिन काम है, बापू! यह तो वीतराग की कॉलेज है। कितना ही अभ्यास हो तो ही समझ में आये। अभी तो यह चलता नहीं है, सब गड़बड़-गड़बड़ (चली है)।

गुणपर्यायें एक द्रव्यपर्यायें हैं... इसमें समझ में आया? आत्मा वस्तु है। यह (शरीरादि) तो जड़-मिट्टी है। वाणी जड़-धूल है। अन्दर जो चैतन्यस्वरूप आत्मा है, जाननेवाला है, उसमें जानना-देखना आनन्दादि गुण है, उन गुणों की वर्तमान अवस्था, जिस क्षण में जिसकी अवस्था रूपान्तर हो, वह अवस्था और वह गुण — गुण-अवस्था, वह द्रव्य है - वह वस्तु है। उसके गुण और उसकी वर्तमान अवस्था उसके द्रव्य से पृथक् नहीं है। कठिन काम! इसलिए दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता है - ऐसा तीन काल में नहीं है। आहा...हा...! **गुणपर्यायें एक द्रव्यपर्यायें हैं...** इतने शब्दों का यह अर्थ है, यह तो सिद्धान्त है।

क्योंकि गुणपर्यायों को एक द्रव्यपना है... आत्मा में जो गुण है – ज्ञान, दर्शन और आनन्द (और) उनकी होनेवाली दशाएँ, यह सब द्रव्य है। आत्मा वस्तु है, दो, गुण-पर्याय होकर आत्मा वस्तु है। परमाणु में भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण है और यह अवस्था है। वह परमाणु की अवस्था है। अभी यह रक्त की अवस्था है, वह परमाणु है, उसकी अवस्था है। उसकी पहली अवस्था आटारूप थी, रोटीरूप थी, आटारूपपने से पहले गेहूँरूप, उससे पहले कंकड़रूप; पलटते-पलटते-पलटते अवस्था पलटी, वह अवस्था कहलाती है और उसमें कायम रहनेवाली शक्तियाँ हैं – वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, वह गुण कहलाते हैं और उन गुण और पर्यायों का समूह वह द्रव्य-वस्तु है। तीन होकर वस्तु है। कठिन काम है, बापू! अभी मूल तत्त्व का अभ्यास चला गया है, ऊपर की बातें करते हैं। एक तो व्यापार के कारण निवृत्त नहीं होते। अपने पाप के धन्धे! भले ही फिर पाँच हजार, दस हजार कमाता हो, आहा...हा...!

यह आत्मा अन्दर वस्तु है, वह गुणपर्यायरूप द्रव्य है; वह शरीररूप नहीं है, वाणीरूप नहीं है; वस्तुतः तो पुण्य और पाप के विकार, वर्तमान पर्याय में है, वह पर्याय और त्रिकाली गुण का समुदाय – ऐसा होकर द्रव्य संधता है। कुछ समझ में आता है ? समझ में आता है या नहीं ? क्या कहते हैं ? ऐसा कहते हैं, प्रभु! कि कोई भी तत्त्व है – यह आत्मा है, यह जड़ परमाणु, वह अन्दर द्रव्य-वस्तु है। द्रव्य अर्थात् पदार्थ; वह पदार्थ शक्तिरहित नहीं होता, वह पदार्थ शक्तिवान् है – पदार्थ स्वभावभान है तो अपने स्वभाव के बिना नहीं रहता। उसके स्वभाव को गुण कहते हैं और उसकी होनेवाली हालत-पर्याय को अवस्था कहते हैं। इन गुण और पर्यायों का समुदाय, वह द्रव्य है। आहा...हा...! यह तो वीतराग की कॉलेज है, बापू! यह तो पूरी दुनिया से अलग प्रकार है।

क्योंकि गुणपर्यायों को एक द्रव्यपना है, (अर्थात् गुणपर्यायें एक द्रव्य की पर्यायें हैं, क्योंकि वे एक ही द्रव्य हैं)... एक ही वस्तु है। आहा...हा...! यह शरीर है, यह परमाणु हैं, यह एक नहीं है, अनन्त परमाणुओं का दल-पिण्ड है, इसमें एक-एक परमाणु है, उसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण हैं और ऐसा होना – अवस्था होना, यह इसकी पर्याय है। ये गुण और पर्याय होकर, वह परमाणु है,

इस प्रकार प्रत्येक परमाणु अपने गुण और पर्याय होकर द्रव्य है। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में उसकी शक्तियाँ है और उसकी बदलती अवस्थाएँ है। वह शक्ति और अवस्था होकर यह तत्त्व है, दूसरा कोई इसकी अवस्था बदल दे (– ऐसा नहीं है)। कठिन काम है, बापू!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर दे – ऐसा नहीं है क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपनी शक्तिवाला तत्त्व होने से, उस शक्ति की बदलती अवस्था होने से वह द्रव्य ही है। उसे दूसरा द्रव्य कुछ कर सकता है – (ऐसा नहीं है)। पूरे दिन यह सब (काम) करते हैं न? डॉक्टर इंजेक्शन देता है, अमुक देता है...। आहा...हा...!

आज तो बड़ा डॉक्टर आया था। मुम्बई में आँख का (डॉक्टर) है न? क्या नाम था उसका? आँख का आपरेशन किया था। चिटनिस! आया था। दो-तीन बार आ गया है, आँख का बड़ा डॉक्टर है। व्याख्यान में बैठा था परन्तु कुछ अभ्यास ही नहीं है, पूरे दिन अकेली धूलधानी। व्यापार का धन्धा या नौकरी का धन्धा आदि पाप! उसमें थोड़ा समय मिले तो छह-सात घण्टे सो जाये, थोड़ा समय हो तो स्त्री-पुत्रादिक को प्रसन्न रखने में रहे परन्तु मैं कौन हूँ? यह वस्तु क्या है? और मेरा परिभ्रमण क्यों नहीं मिटता? चौरासी का अवतार कर-करके मर गया! यह कोई पहला अवतार नहीं है – ऐसे अवतार तो अनन्त किये हैं। इससे पहले अवतार... इससे पहले अवतार... इससे पहले अवतार... इससे पहले अवतार... इस प्रकार अनादि से अवतार-भव करता आया है। यह आत्मा परिभ्रमण क्यों करता है? यह कहते हैं। इसके गुण और पर्याय द्रव्य के आधार से हैं। द्रव्य के हैं, उसकी दृष्टि नहीं करता, इसलिए परिभ्रमण करता है। आहा...हा...! उसकी दृष्टि, परद्रव्य से उसका होता है, इससे उसका होता है, उससे इसका होता है, अमुक दवा लगाओ तो इसका यह होता है (इस पर ही उसकी दृष्टि है)। यह सब यहाँ मिथ्या करते हैं। आहा...हा...! है?

(वे एक ही द्रव्य हैं - भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं।) उनका एक द्रव्यत्व... द्रव्य अर्थात् वस्तु। द्रव्य क्यों कहते हैं? द्रवति इति द्रव्यं – जैसे पानी में तरंग उठती है, उसी प्रकार इस द्रव्य में पर्याय-अवस्था उत्पन्न होती है। यह भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं।

देखो, इसे द्रव्य कहते हैं। द्रवति इति द्रव्यं – द्रवे – पर्याय/अवस्था पलटे, पर्याय अवस्था द्रवे, उसे द्रव्य कहते हैं। आहा...हा...! दूसरा उसकी पर्याय को पलटावे – ऐसा तीन काल में नहीं होता – ऐसी बात है।

यह हाथ चलता है, देखो यह हाथ चलता है। वह अवस्था है, उसमें वर्ण, गंध है, वह उसके गुण हैं और यह परमाणु उनका धारक है। यह तो अनन्त परमाणु हैं, इन अनन्त परमाणुओं में एक-एक परमाणु में अनन्त गुण है-शक्ति है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इत्यादि गुण हैं, वह शक्ति प्रति समय पलटती है। वह पलटना और गुण यह सब होकर तत्त्व – परमाणु हैं। यह पलटना और गुण होकर दूसरा द्रव्य है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा है। क्या हो ? बापू! सम्पूर्ण मार्ग अलग है।

दृष्टान्त देते हैं **उनका एक द्रव्यत्व आम्रफल की भाँति है। (वह इस प्रकार)** – आम... आम... **जैसे – आम्रफल स्वयं ही हरितभाव में से पीतभावरूप परिणमित होता हुआ...** आम का दृष्टान्त देते हैं, आम जो हरितभावरूप रंग से है, वह पकता है तो हरा रंग पलटकर पीला होता है। **हरितभाव में से पीतभावरूप परिणमित होता हुआ, प्रथम और पश्चात् प्रवर्तमान हरितभाव और पीतभाव के द्वारा अपनी सत्ता का अनुभव करता है...** (अर्थात्) दोनों होकर स्वयं की सत्ता है। हरा और पीला, वह उसकी अपनी सत्ता – परमाणु की सत्ता है। आहा...हा...! **अपनी सत्ता का अनुभव करता है, इसलिए हरितभाव और पीतभाव के साथ अविशिष्ट सत्तावाला होने से...** एक सत्तावाला है – विशिष्ट एक सत्ता है। आहा...हा...! आम हरे में से पीला होता है, तथापि उसकी सत्ता तो एक ही है, दो सत्ता नहीं हैं। वह तो अवस्था बदली (तथापि) सत्ता एक ही है। आहा...हा...! ऐसी बातें! ऐसा किस प्रकार का (धर्म) ? मार्ग ऐसा है, बापू! क्या कहें ? आहा...हा...! यहाँ तो ७२ वर्ष से, १८ वर्ष की उम्र से शास्त्र का अभ्यास है। (अभी) तो ९० वर्ष हुए हैं। यह बात कोई दूसरे प्रकार की है, बापू! क्या कहें ? परिचय करे तो (पता पड़े)।

यहाँ यह कहते हैं कि तुझे यह जो दिखाई देता है न ? वह है या नहीं ? है तो वह जड़ है या चैतन्य है ? तब कहते हैं कि अन्दर चैतन्य जाननेवाला है, वह चैतन्य है और

यह शरीर, वाणी, मन ज्ञात होते हैं, यह सब दिखाई देता है, वह जड़ है। अब 'है' वह सत्ता उसकी है, इससे वह सत्व सत्ता से अलग नहीं है, उसका सत्ता नाम का गुण है - अस्तित्व नाम का गुण है, उस गुण से वह तत्त्व पृथक् नहीं है और उस गुण की होनेवाली अवस्था, उस अवस्था और गुण से वह द्रव्य पृथक् नहीं है। यह तीनों होकर एक सत्ता है। आहा...हा...! कहो, समझ में आता है या नहीं? यह प्रवचनसार तो वीतराग सर्वज्ञ (देव) त्रिलोकनाथ की वाणी है। आत्मा सर्वज्ञ होता है, (तब) तीन काल-तीन लोक को जानता है, तब इच्छा बिना जो वाणी निकलती है, वह यह वाणी है। आहा...हा...! परन्तु इसे अभ्यास नहीं है। यह कहते हैं।

अविशिष्ट सत्तावाला... अर्थात्? नीचे (मूल शास्त्र में फुटनोट में) अभिन्न सत्तावाला, एक ही सत्तावाला, (आम की सत्ता हरे और पीले भाव की सत्ता से अभिन्न है, इसलिए आम और हरितभाव तथा पीतभाव एक ही वस्तु हैं, भिन्न वस्तु नहीं।) आहा...हा...! यह शरीर जड़ है, इसमें बुखार आवे, यह सूक्ष्म परमाणु है, उन एक-एक परमाणु में रंग, गंध आदि शक्तियाँ हैं, इन शक्तियों को गुण कहते हैं और बुखार आया - ऐसा उनका परिणमन हुआ, वह पर्याय उनकी है - जड़ की है। वह पर्याय और गुण होकर वह द्रव्य है। उस बुखार की पर्याय और शक्ति / गुण होकर द्रव्य है। आहा...हा...! उसे दूसरे पर नजर नहीं करना है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

अन्दर तेरा जो द्रव्य है... आहा...हा...! वह वस्तुरूप से उसमें बसे हुए अनन्त गुण और शक्तियाँ हैं। उन गुणों का प्रतिक्षण परिणमन होता है, वह परिणमन अर्थात् पर्याय अर्थात् स्वभाव अर्थात् बदलना; वह बदलती अवस्था और गुण होकर द्रव्य है। वह कोई अन्य द्रव्य नहीं है। गुण अन्य द्रव्य और पर्याय अन्य द्रव्य - (ऐसा नहीं है)। समझ में आता है? भाषा तो सादी है परन्तु भाई! भाव चाहे जितना लो परन्तु यह तो अध्यात्मभाषा है। आहा...हा...!

अन्य वस्तु नहीं... देखा? आम का हरा और पीला जो भाव है, वह आम से अन्यभाव नहीं है, अन्य वस्तु नहीं है। वह वस्तु स्वयं ही है, अन्य वस्तु नहीं है। **इसी प्रकार द्रव्य स्वयं ही पूर्व अवस्था में अवस्थित गुण में से...** द्रव्य स्वयं वस्तु है, वह

पूर्व की अवस्था से अवस्थित **गुण में से उत्तर अवस्था में अवस्थित...** गुण में से दूसरी (पर्याय) हुई, हरी में से पीली हुई (ऐसे) **गुणरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर अवस्था में अवस्थित उन गुणों द्वारा...** पर्याय परिवर्तित हुई, तथापि गुण तो ऐसे के ऐसे हैं। गुण में कोई दूसरी प्रकार से शक्तियों की अवस्था नहीं होती। **उन गुणों के द्वारा अपनी सत्ता का अनुभव करता है इसलिए...** आहा...हा...! आत्मा इस जड़ पदार्थ से अत्यन्त पृथक् है और इसके अन्तर में अनन्त... अनन्त... गुण हैं। प्रभु आत्मा में अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अनन्त शक्तियोंरूप गुण है और वे गुण, जैसे द्रव्य कायम रहनेवाला है, उसी प्रकार वे शक्तियाँ भी कायम रहनेवाली हैं। उनकी वर्तमान होनेवाली - बदलनेवाली अवस्था, वह अवस्था और गुण, द्रव्य ही है; दूसरा द्रव्य नहीं। आहा...हा...! अथवा दूसरे द्रव्य से वे गुण-पर्याय होवें - ऐसा वह द्रव्य नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

पूरे दिन यह सब व्यापार-धन्धा करते हैं न? दुकान पर बैठकर (लेना-देना करते हैं)। यह विक्रय किया, यह पाँच रुपये, दस रुपये, पच्चीस-पचास (दिये) बापू! तुझे पता नहीं है, भाई! तू एक ही तत्त्व है - ऐसा नहीं है। दूसरे तत्त्व हैं और दूसरे तत्त्व हैं, वे उनके गुण और शक्ति से खाली नहीं हैं। दूसरे तत्त्व हैं, वे गुण और शक्ति से रिक्त नहीं होने पर भी वर्तमान में उनका बदलना होता है, वे परिणमते हैं, वे परिणमते हैं, वह पर्याय और गुण होकर वह द्रव्य है। दूसरे आत्मद्रव्य के गुण और पर्याय से यहाँ कुछ होता है - ऐसा नहीं हो सकता। बहुत कठिन बात है। पूरी दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! अभी सम्प्रदाय में तो यह नहीं चलता है।

पूर्व और उत्तर अवस्था में अवस्थित गुणों... पर्याय भले ही बदले परन्तु गुण तो अवस्थित है। **अपनी सत्ता का अनुभव करता है, इसलिए...** पूर्व की पर्याय और बाद की पर्याय में अपनी सत्ता का अनुभव करता है, एक ही सत्ता है। आहा...हा...! **पूर्व और उत्तर अवस्था में अवस्थित उन गुणों के साथ अविशिष्ट सत्तावाला होने से एक ही द्रव्य है...** पहले आया था न? भाई! ९५ गाथा! **अपरिच्चत्तसहावेणु** (अर्थात्)

प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव से अपरिचित अर्थात् पृथक् नहीं है। प्रत्येक वस्तु है, उसमें अन्दर में उसकी शक्तियाँ बसती हैं। वास्तु - वस्तु है। वास्तु लेते हैं, वह कोई पीपल में नहीं लेते, मकान में लेते हैं; इसी प्रकार यह आत्मा और परमाणु आदि वस्तु है, उसमें वास्तु अन्दर गुण (बसते हैं)। वस्तु में रहनेवाले अनन्त गुण हैं। आहा...हा...! उन गुणों की वर्तमान परिणति, वह पर्याय है। परि + आय = परि (अर्थात्) समस्त प्रकार से बदलना, परिणमित होना, इस प्रकार रूपान्तर हो जाना। जैसे हरित रंग का पीला आम हुआ, आहा...हा...! इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की, प्रत्येक तत्त्व की एक अवस्था से दूसरी अवस्था होती है, उसमें गुण तो अवस्थित रहते हैं और वह गुण और पर्याय, द्रव्य है। आहा...हा...! दूसरे का कुछ कर नहीं सकता - ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार दूसरे से तुझमें कुछ होता है, (इससे) इनकार करते हैं।

जो पैसा है, वह भी अस्ति है न? एक पैसा अस्ति है, वह एक तत्त्व नहीं है। पैसा में... यह तुम्हारे क्या कहलाते हैं? भूल गये। नोट! यह नोट अनन्त परमाणुओं से बना है। जैसे, यह अंगुली अनन्त परमाणुओं की बनी हुई है, यह एक परमाणु नहीं है, इसके अंश करते... करते... करते... करते... करते... करते... करते... अन्तिम Point रहे उसे परमाणु कहते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणु हैं। इसी प्रकार अन्दर जो यह आत्मा है, उसमें ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं, और प्रतिक्षण पलटती उसकी पर्याय है, वह पर्याय अर्थात् अवस्था; अवस्था और गुण होकर द्रव्य है और पर के कारण वह द्रव्य है - ऐसा नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? अब समझ में आता है या नहीं? भाषा तो सादी है, भाव तो जो है वह है। करोड़ रुपयों को सरल करने के लिये चार आना कहे, वह सरल कहलायेगा? करोड़ को करोड़ रुपया समझे, वह समझ का सार कहलाता है। इसी प्रकार वस्तु की स्थिति जिस प्रकार से है, उस प्रकार से समझा तो वह सार है। सरल करके - उलटा करके समझना, (वह सार नहीं है।) आहा...हा...! अरे...! चौरासी लाख (योनियों के) अवतार करते-करते अनन्त काल हुआ; स्वयं आत्मा तो नित्य है, किस भव में नहीं है? सब भवों में भ्रमते... भ्रमते... भ्रमते... भ्रमते... भूतकाल के भव... भव... भव... भव... भव... भव... आदि नहीं हैं? कौवे के, कुत्ते के ऐसे अनन्त-अनन्त भव किये हैं। आहा...हा...!

वस्तु स्वयं नित्य है और पर्याय पलटती है। वस्तु नित्य है, उसकी शक्तियाँ नित्य है और उसकी अवस्था पलटती है, यह छहों द्रव्यों का स्वरूप है। छह द्रव्य हैं, यह बात लम्बी पड़ती है। अभी तो हम आत्मा और परमाणु दो का लेते हैं। आहा...हा...!

एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं... यह क्या कहा ? आम की हरी-पीली अवस्था होती है, परन्तु परमाणु तो वह के वही हैं, दूसरा द्रव्य नहीं हुआ। आहा...हा...! इस प्रकार इस शरीर में बिलकुल बुखार नहीं था और इसमें बुखार की पर्याय होती है, इससे वह दूसरा द्रव्य हो गया - ऐसा नहीं है। इससे पूर्व की शीत पर्याय का व्यय होकर, उष्ण पर्याय का उत्पाद होकर और द्रव्यरूप से, वस्तुरूप से कायम रहता है। आहा...हा...! ऐसी चीज है। ऐसा मार्ग है। आहा...हा...! चाहे जितनी भाषा सादी करे तो भी उसकी मर्यादा से आयेगा न ? आहा...हा...!

इस जगत् में जो दिखाई देता है, वह 'है' वह दिखाई देता है न ? एक बात - और देखनेवाला है तो देखता है न ? दो बात। क्या कहा ? Logic से-न्याय से कुछ समझना पड़ेगा न ? यह वस्तुएँ दिखाई देती हैं तो वे हैं या नहीं ? अस्ति है या नहीं ? उनकी सत्ता है या नहीं ? वे अस्तिरूप वस्तु है या नहीं ? अथवा आकाश के फूल की तरह है ? आकाश के फूल नहीं होते। यह सब तो अस्ति है। यह सब अस्ति है और इन्हें जाननेवाला यह आत्मा है, उसकी इसे खबर नहीं है। स्वयं की इसे खबर नहीं है। वह तो जड़ मिट्टी है - भाषा जड़ है, इसकी इसे खबर नहीं है, जड़ शरीर को पता नहीं है कि मैं जड़ हूँ। जाननेवाला ऐसा आत्मा वह भी है और ज्ञात हो ऐसी वस्तुएँ भी हैं। आहा...हा...! दोनों वस्तुओं में जाननेवाला आत्मा एक है - ऐसे अनन्त आत्माएँ हैं। आहा...हा...! ज्ञात हो ऐसे पदार्थ अनन्त हैं, वे अनन्त तत्त्व हैं। अनन्त तत्त्वों को जाननेवाला आत्मा है। उसकी एक समय में अनन्त को जाननेवाली पर्याय अर्थात् अवस्था होती है। पहले थोड़े को जाननेवाली थी, बाद में बहुतों को जानने की हुई और जो ज्ञानगुण है, वह तो कायम रहा है। कायम एकरूप रहकर अवस्था परिवर्तित हुई है। वह परिवर्तित हुई अवस्था और गुण, द्रव्य-तत्त्व है। वह परिवर्तित अवस्था दूसरे से हुई है - (ऐसा नहीं है)। कर्म के कारण वह परिवर्तित

अवस्था हुई है – ऐसा नहीं है। अद्भुत काम, बापू! आहा...हा...! यह Logic – सूक्ष्म बात है, बापू! आहा...हा...!

यह यहाँ कहते हैं – **(आम के दृष्टान्त की भाँति, द्रव्य स्वयं ही गुण की पूर्व पर्याय में से उत्तरपर्यायरूप परिणमित होता हुआ)...** जैसे आम की पहली अवस्था हरी थी, फिर उत्तर अवस्था पीली हुई और आम के गुण हैं, वे आम में हैं; वैसे ही **(द्रव्य स्वयं ही...)** कोई भी वस्तु – आत्मा, परमाणु आदि **(गुण की पूर्व पर्याय में से उत्तरपर्यायरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर...)** पूर्व अर्थात् पहली; उत्तर अर्थात् बाद की। (ऐसे पूर्व और उत्तर) **(गुण पर्यायों के द्वारा अपने अस्तित्व का अनुभव करता है...)** अपनी सत्ता का अनुभव करता है। पूर्व पर्याय का व्यय होकर नयी पर्याय (उत्पन्न हुई), वह अपनी सत्ता की स्थिति है। अनुभव करता है का अर्थ होता है। जड़ को भी, अनुभव करता है – ऐसा यहाँ कहा है! उसमें जानना देखना नहीं है, वह तो मिट्टी है, परन्तु उसमें जो उत्पाद, व्यय होता है, उसकी पर्याय को उसके परमाणु अनुभव करते हैं, उसकी पर्याय को अनुभव करते हैं – ऐसा कहा है। आहा...हा...!

दूसरे प्रकार से कहें तो इस शरीर में जो बुखार आता है, वह अन्दर परमाणु की शक्ति है – रंग, गंध, रस, स्पर्श की (शक्ति है) उसका वह परिणमन है। (उसमें) स्पर्श नाम का गुण है। परमाणु है, वह अस्ति तत्त्व है। है... है... इसमें एक स्पर्श नाम की शक्ति-गुण है। स्पर्श... स्पर्श की ठण्डी अवस्था में से गरम अवस्था होती है। पहले ठण्डी थी, फिर गरम होती है, वह गरम होने पर और शीत का व्यय होने पर वह गुण और पर्याय होकर सब द्रव्य ही है। वह पर के कारण हुआ है और पर के कारण मिटता है – (ऐसा नहीं है)। (ऐसा होवे तो) यह सब दवाखाना बन्द करने पड़ेंगे! आहा...हा...! बापू प्रभु! यह तो उनकी चीज उनके कारण होती है, तू व्यर्थ अभिमान करता हो कि मुझसे होता है, वह निकाल देना है। समझ में आया? 'मैं करूँ, मैं करूँ यही अज्ञान है।' जूनागढ़ के नरसिंह मेहता कहते हैं। नरसिंह मेहता हैं न? 'मैं करूँ, मैं करूँ यही अज्ञान है, सकट का भार ज्यों श्वान ताणे!' जैसे गाड़ी का भार कुत्ता खींचे, गाड़ी तो चलती हो बैल से; डण्डा छुआ तो

मानता है कि मुझसे यह चलती है ! इसी प्रकार यह दुकान की पैड़ी पर बैठा हो और पाँच-पच्चीस हजार मिलते हों तो मानता है कि मुझसे यह सब मिलता है, मैं यह व्यवस्था करता हूँ। नौकरों को बराबर व्यवस्था करना नहीं आता। मैं गद्दी पर बैठता हूँ तो व्यवस्था करता हूँ। तुम बैठो और नौकर बैठें उसमें अन्तर नहीं पड़ेगा ? अन्तर पड़ेगा ? अन्तर तो स्वयं के कारण पड़ता है, तुम्हारे बैठने से अन्तर पड़ा है – ऐसा नहीं है। यह कहते हैं। सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म समझना (सूक्ष्म बात है)। परिभ्रमण करते हुए अनन्त... अनन्त... काल हुआ। यह दु:खी है, दु:खी है।

अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। आहा...हा...! परन्तु उससे विपरीत मान्यता में – विपरीत श्रद्धा में, जिसका अस्तित्व स्वतन्त्र है, वैसा न मानकर मेरे कारण उनमें होता है और उनके कारण मुझमें होता है – ऐसी मिथ्याश्रद्धा से वह दु:खी है। भले ही करोड़पति-अरबोपति हो, (तो भी) बेचारे दु:खी, दु:खी हैं। ठीक होंगे ? यह परमाणु, परमाणु स्वतन्त्र है, यह तेरे नहीं हैं। अर...र...र...!

प्रश्न – इतने करोड़ रुपये दे, उसे दु:खी कहना ?

समाधान – किसे कहना ? दो अरब कहा नहीं ? अपने गोवा में एक स्थानकवासी जैन हैं, दो अरब चालीस करोड़ ! स्वर्गस्थ हो गया अभी डेढ़-पौने दो वर्ष पहले मुम्बई में ! उसकी पत्नी को हेमरेज हुआ था। वहाँ तो चालीस लाख का बँगला है, दस-दस लाख के गोवा में बँगले हैं और दो अरब चालीस करोड़ रुपये हैं। उसकी पत्नी को हेमरेज हुआ, (इसलिए) वहाँ आया था। वहाँ दो-चार दिन हुए और कहने लगा मुझे दर्द है, डॉक्टर को बुलाओ। जहाँ डॉक्टर आता है, वहाँ... जाओ भटकने चार गति में ! आहा...हा...! कहाँ जाना ? जैसा भाव किया है, उस भाव से अनजाने क्षेत्र में अवतार लेगा। तेरे चालीस लाख के बँगले, दो अरब चालीस करोड़ नीचे पड़े रहेंगे। पाणासना का दशाश्रीमाली बनिया था। उसका लड़का अभी दर्शन करने आया था, अभी मुम्बई गये तब आया था। आते हैं, परन्तु बेचारों को बात कहाँ समझ में आती है ? ख्रिस्ती से विवाह किया है, पैसा बहुत है, इसलिए लड़के ने ख्रिस्ती से विवाह किया है। अभी मुम्बई में थे, तब दर्शन करने आया था। अरे...! बेचारा भिखारी...! भिखारी अर्थात् ? इस आत्मा में

ज्ञान, दर्शन, आनन्द की अनन्त लक्ष्मी है, उस लक्ष्मी की जिसे भावना और श्रद्धा नहीं है और यह लक्ष्मी आवे, स्त्री आवे, पुत्र आवे, यह सब बेचारे परवस्तुओं को माँगनेवाले भिखारी हैं। आहा...हा...!

दरबार को कहा था। भावनगर दरबार श्री कृष्णकुमार व्याख्यान में आये थे। अभी (जो) हैं, उनके पिता कृष्णकुमार। उनका पुत्र भावसिंह है, दो तीन बार व्याख्यान में आया था। कहा - दरबार! महिने में लाख माँगे वह छोटा भिखारी, पाँच लाख माँगे वह बड़ा भिखारी और करोड़ माँगे वह बड़े से बड़ा भिखारी है। यहाँ हमें कहाँ उनसे कुछ लेना था कि प्रसन्न होंगे तो पैसे देंगे। यहाँ क्या है ? व्यक्ति नरम था, बेचारा कहने लगा सत्य बात है महाराज! अतीन्द्रिय सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर पड़ा है। सत् - शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द जिसका स्वभाव है, उसकी मर्यादा क्या ? आहा...हा...! तेरी नजर गयी नहीं, तूने श्रद्धा नहीं की - ऐसा जो भगवान आत्मा उसे भूलकर यह लाओ... यह लाओ... स्त्री लाओ, लड़का लाओ, लड़के की बहू को ठिकाने करो और लड़के को ठिकाने करो... मर गया अनादि से। अपनी सत्ता का स्वीकार न करके पर की सत्ता के स्वीकार में; पर की सत्ता का कार्य मैं करता हूँ, मेरे कारण सब होता है -(ऐसा मानना) आहा...हा...! यह मूढ़ता है। ऐसा है। आहा...हा...!

तुम्हार सेठ आया था न ? मुम्बई आया था, पचास करोड़! आते हैं, जहाँ जाते हैं वहाँ बड़े-बड़े आते अवश्य हैं परन्तु बेचारे समझें क्या ? धूल! पचास करोड़! स्वयं सब वैष्णव और महिलाएँ सब जैन, आया था बेचारा! कुछ खबर नहीं है। बड़ी बातें करता, सुननेवाले बेचारे साधारण हों, यह बड़प्पन का मान देकर मार डालते हैं! आहा...हा...! बापू! बड़ा तो प्रभु तू अन्दर आनन्द और ज्ञान से भरपूर पड़ा है। आहा...हा...! अरे... रे...!

अन्दर चैतन्य हीरा है, जिस प्रकार हीरे को पासा होते हैं; उसी प्रकार इस चैतन्य को अनन्त गुण के पासा होते हैं। आहा...हा...! इस गुण की वर्तमान अवस्था हो, वह गुण-पर्याय है, यह गुण-पर्याय वह द्रव्य-वस्तु है। गुण-पर्याय, वह द्रव्य से अन्य वस्तु नहीं हुई

है। आहा...हा... ! समझ में आता है या नहीं ? अपने यहाँ तो ४४ वर्ष से चलता है। इस जंगल में ४४ वर्ष तीन महीने हुए ! ४५ वर्ष से यहाँ आये हैं, सवा ४४ वर्ष हुए। (संवत् १९९१ वें में) फाल्गुन कृष्ण तीज को आये थे। फिर करोड़ों रुपये लग गये। उनकी पर्याय होने के काल में होती है, उसमें (दूसरे) किसी से नहीं होती। आहा...हा... !

अस्ति है या नहीं ? जो दिखता है और देखनेवाला है – दिखता है और देखनेवाला है, वह अस्ति है या नहीं ? सत्ता है या नहीं ? मौजूद वस्तु है या नहीं ? तो मौजूदगी (धारक) वस्तु है, वह कायम रहनेवाली अनादि-अनन्त है या नयी-नयी होती है ? वह वस्तु है, उसमें अनन्त गुण भरे हैं। नया-नया होता है, वह तो पर्याय-अवस्था होती है। गुण और द्रव्य तो कायम हैं, अवस्था बदलती है – रूपान्तर होता है। आहा...हा... ! यह रूपान्तर और गुण, वह द्रव्य है। वे द्रव्य से पृथक् नहीं हैं। आहा...हा... ! ऐसा उपदेश ! है ?

(पूर्व पर्याय में से उत्तरपर्यायरूप परिणमित होता हुआ, पूर्व और उत्तर गुणपर्यायों के द्वारा अपने अस्तित्व का अनुभव करता है, इसलिए पूर्व और उत्तर गुणपर्यायों के साथ अभिन्न अस्तित्व होने से एक ही द्रव्य है...) द्रव्य अर्थात् वस्तु अथवा द्रव्य अर्थात् 'द्रवति इति द्रव्यं' – जैसे, पानी का पिण्ड होता है, उसमें तरंग उठती है – तरंग दबती है; इसी प्रकार वस्तु है, वह पर्याय-अवस्था बदलती है, उस अवस्था को द्रव्य करता है, इसलिए उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य की पर्याय स्वयं द्रव्य करता है परन्तु उसकी पर्याय दूसरा द्रव्य करता है – ऐसा तीन काल में नहीं होता। मानो न मानो स्वतन्त्र है। आहा...हा... ! यह परम सत्य है।

सत् साहेब चैतन्यप्रभु, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द से भरपूर सत् प्रभु है। उसकी अवस्था प्रतिक्षण होती है, वह अवस्था और गुण होकर द्रव्य है। शरीर होकर द्रव्य है, वाणी होकर द्रव्य है, पैसा होकर द्रव्य है, स्त्री के कारण द्रव्य है – (ऐसा नहीं है)। स्त्री अर्धांगना कहलाती है ! धूल में भी अर्धांगना नहीं है और स्त्री पतिदेव कहती है ! यह उसे धर्मपत्नी कहता है ! ऐसी भाषा लगाते हैं। कौन था ? बापू ! वस्तु अलग है, आहा...हा... ! अलग-अलग वस्तु को कोई अलग करे, (यह तीन काल में नहीं है)। सूक्ष्म पड़ता है, भाई ! एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को स्पर्श नहीं करता – कैसे जँचे ? भगवान आत्मा अन्दर

अरूपी-वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित और ज्ञान-दर्शन-आनन्दवाला है। वह शरीर को स्पर्श नहीं करता और इस शरीर के परमाणु आत्मा को स्पर्श नहीं करते क्योंकि यह तो जड़-रूपी है और वह प्रभु अरूपी है। आहा...हा...!

प्रश्न - बुखार आती है, तब दर्द क्यों होता है ?

समाधान - द्वेष करता है, इसलिए दर्द होता है। अरुचि करता है, उस द्वेष के कारण दर्द है। बुखार का (दु:ख) नहीं है; बुखार तो जड़ की अवस्था है, परन्तु उसमें अरुचि करता है कि यह ठीक नहीं है, इसका नाम द्वेष है-इसका नाम दु:ख है। आहा...हा...! धर्मी जीव को आत्मज्ञान, दर्शन और आनन्द का भान होने से उसे इस शरीर में रोगादि होने पर भी स्वयं को आनन्द मानता है, उस आनन्द का अनुभव करता है, किञ्चित् दु:ख होता है परन्तु उसे जानता है। आहा...हा...! वस्तु का बहुत अन्तर है।

यहाँ से सवा चवालीस वर्ष चलते हैं! (संवत् १९९१ के) फाल्गुन कृष्ण तीज को यहाँ आये हैं, तीन वर्ष दूसरे में रहे। 'स्टार ऑफ इण्डिया' मकान है, वहाँ तीन वर्ष रहे, फिर यह स्वाध्याय मन्दिर (संवत् १९९४ में) हुआ। आहा...हा...! यहाँ से बाईस लाख तो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। (लोग) पढ़ते हैं। नैरोबी है, अफ्रीका में है। अभी अफ्रीका में मन्दिर बनाते हैं। पैसेवाले हैं, आठ करोड़पति हैं, दूसरे पैसेवाले हैं। ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस को (खास मुहूर्त था) पन्द्रह लाख का मन्दिर तैयार किया है, अब उन लोगों की वहाँ आने की माँग है, होवे वह ठीक, अब ९० वर्ष हुए! ...... उनकी माँग है। आहा...हा...!

यह वस्तु... अरे...रे...! सुनने नहीं मिलती और जो सुनने मिलता है, वह सब उलटा मिलता है। अरे...! सत्य को कब पहुँचे ? सत्य को सत्यरूप से किस दिन स्वीकार करें ? है ? **(पूर्व और उत्तर गुणपर्यायों के साथ अभिन्न अस्तित्व होने से एक ही द्रव्य है...)** वस्तु एक ही है। आम की हरी से पीली (अवस्था) हुई और उसका जो वर्ण गुण है, उस गुण की हरी और पीली पर्याय कहलाती है और अन्दर रंग है, वह गुण कहलाता है। वह गुण और पर्याय - ऐसे अनन्त गुण और ऐसी अनन्त पर्यायें, वह वस्तु है - वह तत्त्व है। पर के कारण नहीं। आहा...हा...! परतत्त्व के कारण परतत्त्व की पर्यायें

नहीं हैं; परतत्त्व के कारण परतत्त्व के गुण नहीं हैं; परतत्त्व के कारण परतत्त्व का द्रव्य नहीं है। आहा...हा...! अब वे कब एकत्रित हों? जो सुनने मिलना कठिन, पकड़ना कठिन! दुनिया को जानते हैं न भाई! ६७ वर्ष हुए, ६७ वर्ष दुकान छोड़े हुए, मैं तो दुकान पर भी शास्त्र का अभ्यास करता था, छोटी उम्र से! पिताजी की दुकान थी, यह दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, सब दुकान पर पड़े थे। संवत् १९६४, ६५, ६६ के (साल)! इतने वर्ष की बात है, आहा...हा...! यह तत्त्व कोई अलौकिक है! यह तत्त्व उन पुस्तकों में कहीं नहीं था।

यहाँ यह कहा है कि जैसे आम है, वह परमाणु-रजकण हैं। उनमें रंग, गंध, रस, स्पर्श उसके गुण हैं और उनकी हरी और पीली अवस्था है। उस हरी-पीली अवस्था से उनके गुण और उनका द्रव्य अलग नहीं है, अभिन्न है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य को प्रतिक्षण होनेवाली अवस्था और उसके कायम रहनेवाले गुण-ये गुण और पर्यायें, वह द्रव्य है; दूसरे द्रव्य के कारण उसमें पर्याय पलटती है – ऐसा नहीं है। समझ में आता है या नहीं? आहा...हा...! सम्प्रदाय में तो ऐसा (कहते हैं कि) दया पालो, व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, मन्दिर बनाओ – इसमें धूल में क्या है? आहा...हा...!

इसका तात्पर्य यह है कि जब प्रत्येक द्रव्य के गुण-पर्याय, वह द्रव्य है तो तेरा आत्मा जो है, उसके गुण और पर्याय वह आत्मा है; इसलिए वह आत्मा अखण्ड है, उस पर दृष्टि कर कि जिससे तुझे सबकी सत्ता का नकार होगा और अपनी पूर्ण सत्ता का स्वीकार होगा, और स्वीकार होने पर तुझे अतीन्द्रिय आनन्द आयेगा। यह इसका तात्पर्य है। यह किसलिए समझना? ऐसा प्रश्न किया था न? आहा...हा...!

भगवान आत्मा! द्रव्य है – वस्तु है। इसमें ज्ञान, जानना-देखना, आनन्द यह उसके गुण हैं, ऐसे अनन्त गुण हैं और उनकी मतिज्ञान-श्रुतज्ञान वह पर्याय होती है न? थोड़ा ज्ञान हो, फिर बढ़े ऐसी दशा पलटती है, वह पर्याय है। वह पर्याय और गुण, आत्मा है। जब ऐसा है तो उसे दूसरे द्रव्य से दृष्टि उठा देना है क्योंकि दूसरे का कर नहीं सकता। दूसरे के द्रव्य-गुण-पर्याय उसके हैं। आहा...हा...! होशियार मनुष्य को इस व्यापार का क्या करना? होशियार मनुष्य कहलाता है न? दस हजार का वेतन हो, वह होशियार नहीं

कहलाता ? धूल में भी नहीं। आहा...हा... ! वह प्रत्येक रजकण उसके गुण-पर्याय, वह द्रव्य है, उसके कारण तू नहीं है और तेरे कारण वह नहीं है। आहा...हा... ! ऐसा बैठना कठिन पड़ता है।

(एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं...) यह क्या कहा ? प्रत्येक पदार्थ का जो गुण-शक्ति है और उसकी होनेवाली अवस्था, वह द्रव्य है। वह द्रव्य अर्थात् वही वस्तु है। द्रव्यान्तर अर्थात् अन्य द्रव्य नहीं है। अवस्था पलटी, इसलिए ऐसा होता है कि यह क्या ? हरी की पीली और पीली की काली (अवस्था होवे) तो कहते हैं कि यह तो उसकी अवस्था है, यह कोई अन्य द्रव्य नहीं है। यह द्रव्यस्वरूप ही है, यह पदार्थ, पदार्थस्वरूप ही है। आहा...हा... !

(अर्थात् वे वे गुणपर्यायें और द्रव्य एक ही द्रव्यरूप हैं, भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं हैं।)... आहा...हा... ! यह आत्मा, शरीर को अथवा वाणी को छुआ भी नहीं है। इसमें नित्य जो गुण हैं - देखना, जानना, आनन्द (आदि गुण हैं), उनकी वर्तमान पर्याय है। किसी की विकारी और अविकारी होती है। वह पर्याय और गुण वह आत्मा है, उसका आत्मा का अस्तित्व उसके गुण-पर्याय के अस्तित्व में है, उसका अस्तित्व-सत्ता है, उस अस्तित्व को छोड़कर पर की सत्ता के अस्तित्व में है - ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

और, जैसे पीतभाव से उत्पन्न होता... आम, **हरितभाव से नष्ट होता और आम्रफलरूप से स्थिर रहता होने से...** आमरूप से तो टिकता है न! **आम्रफल एक वस्तु की पर्यायों द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है...** इसमें क्या कहना है कि हम उत्पाद-व्यय-ध्रुव सिद्ध कर गये हैं परन्तु इसमें गुण-पर्याय, वह द्रव्य है - यह सिद्ध करना है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव; एक समय में उत्पन्न हो, व्यय हो, और ध्रुव रहे - यह सिद्ध कर गये हैं। यहाँ तो गुण-पर्याय, वह द्रव्य (है - ऐसा) सिद्ध करना है। आहा...हा... ! पहले तीन बोल थे, यह दो बोल हैं। नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पूर्व की अवस्था नष्ट होती है और वस्तुरूप से सदृश कायम रहती है। ये तीन होकर द्रव्य कहा था। यहाँ गुण-पर्याय दो होकर द्रव्य कहते हैं। आहा...हा... ! यह कॉलेज तो अलग प्रकार की है, भाई! दुनिया

की सब खबर नहीं है ? पूरे हिन्दुस्तान में दस-दस हजार मील तीन बार घूमे हैं, दस-दस हजार मील! सब समझने जैसे हैं।

यह जो अन्दर तत्त्व है, उसमें उसकी जो अवस्था-दशाएँ होती हैं - जानने की, देखने की, मानने की... अरे...! राग की, यह सब दशाएँ और गुण, वह तत्त्व है, उनका यह अस्तित्व है। उनका अस्तित्व है, उसमें पर के कारण विकार होता है, पर के कारण गुण टिकते हैं, पर के कारण द्रव्य आता है - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसा उपदेश किस प्रकार का ? पहले तो (सरल था) ऐसा करो, सेवा करो, दवाएँ करो, अमुक करो... आहा...हा...! भूखे को अनाज दो, प्यासे को पानी दो, खाली जगह में स्थान बनाओ, दवा दो, अमुक करो... भगवान! सुन न प्रभु! तू कर.. कर... कर... ऐसा कहता है तो सामने वह वस्तु है या नहीं ? सामने कोई वस्तु है या नहीं ? उसे तू करना चाहता है न ? तो सामने वस्तु है तो वह वस्तु उसके गुण और शक्ति से रहित है ? या गुण और शक्तिशाली है ? गुण और शक्तिवाली चीज होवे तो उसका परिणमन उससे होता है या तुझसे होता है ? आहा...हा...! Logic से-न्याय से यह बात है परन्तु यह समझना चाहिए। आहा...हा...!

आम्रफल एक वस्तु की पर्यायों द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है, उसी प्रकार उत्तर अवस्था में अवस्थित... देखा ? यहाँ गुण और पर्याय सिद्ध करना है न ? **उत्तर अवस्था में...** प्रत्येक द्रव्य की उत्तर अवस्था-बाद की पर्याय, **पूर्व अवस्था में अवस्थित गुण से नष्ट...** गुण तो अवस्थित है। **पूर्व अवस्था में अवस्थित गुण से नष्ट और द्रव्यत्वगुण से स्थिर होने से...** आहा...हा...! वस्तुरूप से टिकता होने से **द्रव्य एक द्रव्यपर्याय के द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।** लो! आहा...हा...! ऊपर (टीका की शुरुआत में तो) यह कहा था कि **गुण-पर्यायें एक द्रव्यपर्यायें हैं...** इसका यह सारांश किया है। उत्पाद-व्यय, पर्याय में आया और गुण आया गुण में अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वह गुणपर्याय है। वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी द्रव्य है और गुणपर्याय भी द्रव्य है। आहा...हा...! **और द्रव्यत्वगुण से स्थिर होने से, दव्य एक द्रव्यपर्याय के द्वारा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।**

भावार्थ - इससे पूर्व की गाथा में द्रव्यपर्याय के द्वारा (अनेक द्रव्यपर्यायों के द्वारा) द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये थे... आहा...हा... ! दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु एकत्रित हों, उनकी एक पर्याय को समानजातीय द्रव्य की पर्याय / अवस्था कहा जाता है और आत्मा और यह शरीर, इसे असमानजातीय द्रव्य (कहा जाता है) । यह बात अलग है, यह जाति अलग है। इसकी (शरीर की) जाति अलग, इसे असमानजातीय पर्याय कहते हैं। आहा...हा... ! यह भाषा किस प्रकार की है ? है न ? **इससे पूर्व की गाथा में द्रव्यपर्याय के द्वारा (अनेक द्रव्यपर्यायों के द्वारा) द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये गये थे। इस गाथा में गुणपर्याय के द्वारा...** बात यहाँ है। समझ में आया ? आहा...हा... !

पहले में तीन बोल थे - उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। उत्पाद (अर्थात्) प्रत्येक पदार्थ में नयी-नयी अवस्था होती है, पुरानी अवस्था बदलती है, ध्रुवरूप से रहती है, यह तीनों होकर एक तत्त्व है। यहाँ गुण-पर्याय को लिया है। गुण, द्रव्य में कायम रहनेवाले हैं, और उनकी बदलकर जो परिणति होती है, वह पर्याय और गुण, द्रव्य है, उसका उत्पाद-व्यय और ध्रुव, उसे द्रव्य कहा था। यहाँ गुण और पर्याय को द्रव्य कहा है। आहा...हा... ! दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

गुणपर्याय के द्वारा (एक द्रव्यपर्याय के द्वारा) द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताये गये हैं। लो ? पहले उत्पाद-व्यय से बताया था, इसमें गुण-पर्याय से बताया है। आहा...हा... !

(१०४ गाथा पूर्ण हुई।)